भगवान अरिष्टनेमि

और

कर्मयोगी श्रीकृष्ण

भगवान महावीर पच्चीस सौ वीं निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य में

भगवान् अरिष्टनेमि
और
कर्मयोगी श्रीकृष्ण
एक अनुशीलन

लेखक

राजस्थानकेसरी प्रसिद्धवक्ता प० प्रवर श्रद्धेय
सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनिजी म० के सुशिष्य
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रकाशक

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराड़ा, (राजस्थान)

श्री तारक गुरु ग्रन्थमाला का ११ वां पुष्प

पुस्तक ·
भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण :
एक अनुशीलन

लेखक
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

पुस्तक · पृष्ठ ४५२

प्रथम प्रकाशन
८, अप्रेल १६७१, महावीर जयती

मूल्य
साधारण संस्करण १०, रुपए
प्लास्टिक कवर युक्त ११, रुपए

प्रकाशक :
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराडा, जिला-उदयपुर, (राजस्थान)

मुद्रक
श्री रामनारायण मेडतवाल
श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मंडी, आगरा–२

समर्पण

जिनके अमर वात्सल्य का सरस व सुमधुर चिन्तन-पाथेय प्राप्त कर, मैं अपनी जीवन-यात्रा मे साहित्य साधना कर रहा हूँ, उन्ही, परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव राजस्थान केसरी, प्रसिद्धवक्ता, पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के कर कमलो मे सभक्ति, सविनय।

—देवेन्द्र मुनि

प्रकाशकीय

भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता है । प्रस्तुत ग्रन्थ की सामग्री, विपय-वस्तु तथा प्रतिपादन शैली सर्वथा मौलिक, अन्वेपणा प्रधान एव प्रभावोत्पादक है । लेखक ने शताधिक ग्रन्थो के प्रकाश मे जो प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की है, वह प्रबुद्ध पाठको के दिल को लुभाने वाली है । भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पर जैन, बौद्ध और वैदिक दृष्टि से लिखी गई यह प्रथम पुस्तक है । लेखक ने ग्रन्थ को लिखने मे अथक परिश्रम किया है ।

लेखक की भाषा शैली सरल, सरस व प्रवाहपूर्ण है । गभीर से गभीर विपय को वह इतने सुन्दर रूप से ललितभाषा मे प्रस्तुत करते है कि पाठक पढते-पढते आनन्द विभोर हो जाता है । ग्रन्थ की प्रत्येक पक्ति मे लेखक का गभीर अध्ययन व विराट् चिन्तन स्पष्ट रूप से झलक रहा है ।

लेखक मुनि श्री के ग्रन्थ अनेक सस्थाओ से प्रकाशित हुए हैं । प्रकृत ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिए अनेक सस्थाए प्रस्तुत थी, हमने श्रद्धेय गुरुदेव श्री से विनम्र प्रार्थना की कि प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन हमारी सस्था से होना चाहिए । श्रद्धेय गुरुदेव श्री ने हमारी प्रार्थना को सन्मान देकर ग्रन्थ हमे प्रकाशन के लिए प्रदान किया तदर्थ हम श्रद्धेय गुरुदेव श्री के और देवेन्द्र मुनि जी के अत्यन्त आभारी हैं ।

ग्रन्थ के प्रकाशन मे जिन दानवीरो ने उदारता मे आर्थिक सहयोग प्रदान किया है उनका हम हृदय से आभार मानते है, उनके अर्थ सहयोग के कारण ही हम ग्रन्थ को शीघ्र ही प्रकाशित कर सके हैं । साथ ही मुद्रणकला की दृष्टि से पुस्तक को चमकाने का कार्य हमारे परम स्नेही श्रीचन्दजी सुराना ने किया है । हम उनके सहयोग को कदापि विस्मृत नही हो सकते ।

अध्यक्ष
डालचन्द नाथुलाल परमार
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशन में अर्थ सहयोगी

सेठ लालचन्द्जी घेनाजी पुनमिया

दुकान नं० २४३, मोती धर्मकाटा बिल्डिंग

ममादेवी जौहरी बाजार, **बम्बई नं० २**

भूमिका

यह लोक या विश्व जड चेतनात्मक है। अनादिकाल से इस विश्व मे चेतन और जड़का अद्भुत खेल खेला जा रहा है। विश्व के इन दोनो मूल-भूत तत्वो मे जैन धर्म ने अनन्त शक्ति मानी है। जड या पुद्गल की अनन्त-शक्ति तो आज भौतिकविज्ञान द्वारा सर्वविदित हो रही है। चैतन्य की अनन्तशक्ति का साक्षात्कार भारतीय मनीपियो ने वहुत पहले ही किया था। उन्होने कठोर साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी। समय-समय पर ऐसे अनेक महापुरुष हो गये हैं, जिन्होने आत्मा के अनन्त ज्ञान-दर्शन और आनन्द को प्राप्त कर जगत के जीवो के कल्याण के लिए धर्म या आध्यात्म का विशिष्ट सन्देश प्रसारित किया। ऐसे महापुरुषो मे जैन तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि और पुरुपोत्तम श्रीकृष्ण भी उल्लेखनीय है। ये दोनो महापुरुप यदु कुल मे उत्पन्न हुए थे एव ये दोनो समकालीन ही नही, एक कुटुम्ब के ही थे। राजा समुद्रविजय के पुत्र भगवान् अरिष्टनेमि थे और समुद्रविजय के लघुभ्राता वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। जैन आगमो मे इन दोनो के घनिष्ठ सम्वन्ध के अनेको उल्लेख प्राप्त है। परवर्ती ग्रन्थो मे तो इन दोनो के विस्तृत जीवन चरित्र भी पाये जाते हैं अत इन दोनो के सयुक्त जीवन चरित्र का जो यह विशिष्ट ग्रन्थ विद्वान् मुनिवर्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने वडे परिश्रम व अध्ययन से तैयार किया है, वह वहुत ही समुचित एव उपयोगी कार्य है।

विश्व मे अनन्त प्राणी है। उन सवमे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। महाभारत मे श्री व्यासजी ने वहुत ही जोरदार शब्दो मे यह घोपणा की है कि मनुष्य से वढकर श्रेष्ठ और कोई भी (प्राणी) नही है। जैन आगम उत्तराध्ययन सूत्र मे भी चार दुर्लभ वस्तुओ मे पहली दुर्लभता मनुष्यत्व की ही वतलायी

है। वैसे तो मनुष्य असख्य है पर उनमे मनुष्यत्व के गुण वाले विरले या बहुत ही कम पाये जाते है। स्थानागसूत्र मे उत्तम, मध्यम और जघन्य पुरुप के तीन तीन प्रकार वतलाये है। इनमे से उत्तम पुरुप के तीन प्रकार हैं—(१) धर्म पुरुप (२) भोगपुरुप और (३) कर्मपुरुप। अर्हन्त-तीर्थंकर आदि धर्म पुरुप हैं, चक्रवर्ती भोग पुरुप हैं और वासुदेव कर्म-पुरुप हैं। इसी स्थानाग सूत्र मे ऋद्धिशाली मनुष्य पाच प्रकार के वतलाये है—(१) अरहन्त (२) चक्रवर्ती (३) वलदेव (४) वासुदेव और (५) अणगार। पाच प्रकार के उत्कृष्ट मनुष्य वतलाते हुए कहा गया है कि सर्वोत्कृष्ट अर्थात् सब प्रकार के उत्कर्ष को प्राप्त तीर्थंकर होते है। उसके वाद ही चक्रवर्ती आदि को स्थान प्राप्त है। स्थानाग सूत्र मे तीन वशो के तीन उत्तम पुरुप वतलाए गये हैं—(१) अरहन्त वश मे अरिहन्त (२) चक्रवर्तीवश मे चक्रवर्ती (३) दशारवश मे वलदेव और वासुदेव। वलदेव और वासुदेव दोनो भाई-भाई होते हैं। वे एक ही पिता की सन्तान होने पर भी माता उनकी भिन्न-भिन्न होती है।

समवायाग मे कहा है कि भरत और ऐरवत क्षेत्र मे प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल मे ५४-५४ महापुरुप होते है .—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती ९ वलदेव और ९ वासुदेव, इनमे से प्रस्तुत ग्रन्थ के चरितनायक भगवान अरिष्टनेमि बाइसवें तीर्थंकर हैं और श्रीकृष्ण नवमे-अतिम वासुदेव हैं। उपरोक्त ५४ महापुरुपो के सम्वन्ध मे चउपन्नमहापुरुपचरिय आदि ग्रन्थ रचे गये है। इन ५४ के साथ ९ प्रतिवासुदेवो को और जोडकर ६३ शलाका-पुरुप माने गये है। उनके चरित्रात्मकग्रन्थ-त्रिषष्टिशलाकापुरुपचरित्र आदि हैं। जैनागमो मे उल्लिखित महापुरुषो सम्वन्धी इतना विवरण देने का तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ मे वर्णित भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण दोनो जैन धर्म मे भी महापुरुष के रूप मे मान्य है। भगवान अरिष्टनेमि तो तीर्थंकर थे ही, श्रीकृष्ण भी आगामी चौवीशी मे तीर्थंकर होगे। नयापेक्षया भूत व वर्तमान तीर्थंकरो की तरह भावी तीर्थंकर भी मान्य होते हैं।

भारत आध्यात्मप्रधान देश है। यहा चक्रवर्ती सम्राटो और राजा महाराजाओ का इतना महत्व नही, जितना कि सदाचारी, साधक और भक्त व्यक्तियो का रहा है। वडे-वडे सम्राट् अकिंचन, त्यागी, तपस्वी, गुणी-जनो व महापुरुपो के चरणो मे सदा श्रद्धावनत रहे हैं। ज्ञान की अपेक्षा यहा चारित्र-आचरण को अधिक महत्व दिया गया है। आचार को प्रथम धर्म माना गया है। वडे-वडे विद्वान, आत्मानुभवी अनपढ या साधारण पढ़े लिखे सत महात्माओ के चरणो मे नतमस्तक रहते आये है। धर्म नायक या

धर्मप्रवर्तक महापुरुषो को यहा की जनता, सर्वोत्कृष्ट आराध्य व पूज्य मानती रही है। उनका जहा भी जन्म हुआ, तपस्या व साधना की, जहा-जहा भी धर्मप्रचार किया एवं सिद्धि या निर्वाण प्राप्त किया वे सभी स्थान उन महापुरुषो की पावन स्मृति मे 'तीर्थ' रूप मे मान्य हुए। भगवान अरिष्टनेमि का जन्मस्थान शौरीपुर एव दीक्षा, केवलज्ञान एव निर्वाण स्थान गिरनार तीर्थ रूप मे मान्य हुए, उनकी जन्मतिथि, दीक्षा, केवलज्ञान एव निर्वाण तिथि कल्याणक के रूप मे मान्य हुई। उनके माता पिता भी, महापुरुषो के जन्मदाता के रूप मे यशोभागी वने। महापुरुषो की वाणी का तो अत्यधिक आदर होना स्वाभाविक ही है। वास्तव मे कल्याण पथ-प्रदर्शक उस वाणी ने असख्य व्यक्तिया का उद्धार किया है। उनके मंगलमय व प्रेरणादायक प्रवचनो मे दुष्टजनो को शिष्ट वना दिया, पापी को धर्मी और पतित को पावन वना दिया। अत महापुरुषो के प्रति आदर और भक्ति-भावना होना वहुत ही आवश्यक एव उपयोगी है। महापुरुषो के जीवन प्रसगो से जो बोध-पाठ मिलता है, वह अन्य हजारो ग्रन्थो से भी नही मिल सकता। इसलिए उनके पावन चरित्र एक नही, अनेको लिखे गये। उनके गुणवर्णन एव स्तुतिरूप मे हजारो-लाखो रचनाए भारत के कौने-कौने मे और सभी प्रकार की भाषाओ मे रची जाती रही हैं।

भगवान अरिष्टनेमि का जीवन चरित्र भी वडा प्रेरणादायक रहा है। उनका पशुओ की करुण पुकार सुनकर विना व्याहे ही ससुराल से लौट जाना और सर्व सग परित्याग करके साधकीय-दीक्षा ग्रहण कर लेना तो प्रेरणादायक है ही, पर सती राजुल या राजमती ने भी जो सतीत्व का उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया वह ससारी जनो को भी वहुत ही आकर्षक व आदरणीय है, फलत नेमि-राजुल के प्रसग को लेकर सैंकडो वारह-मासे लिखे गये। रास, चौपाई, लुहर, स्तवन सज्झाय गीत आदि विविध प्रकार की रचनाए हजारो की सख्या मे प्राप्त हैं। घर-घर मे व जन-जन के कठ मे नेमि-राजीमती के पावनगीत गाये जाते रहे है। ऐसे महान तीर्थंकर का जीवन चरित्र आधुनिक शैली मे लिखा जाना वहुत ही आवश्यक था। यह आवश्यक-शुभकार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी द्वारा सम्पादित हुआ देखकर अवश्य ही प्रसन्नता होती है। पुरानी शैली के जीवन चरित्र तो अनेको लिखे जा चुके हैं। पर आज के शिक्षित व्यक्तियो के लिए पठनीय ग्रन्थ लिखा जाना वहुत आवश्यक था जिसकी पूर्ति वडे सुन्दर रूप मे प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा ही देखकर वडा हर्ष हो रहा है।

जैन धर्म मे सर्वोच्च स्थान तीर्थंकर महापुरुषो का है। वे जन्म जन्मान्तरो की साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करते है और अपने विशिष्ट ज्ञान द्वारा (जगह जगह निरन्तर विचरण कर) जनकल्याण का मार्ग प्रकाशित करते है। ऐसे निस्वार्थ-उपकारी महापुरुष मान्य और पूज्य होने ही चाहिये। परम्परागत दीर्घ समय तक उनके धर्म शासन से असख्य व्यक्ति लाभान्वित होते रहते है। साधु साध्वी, श्रावक श्राविका इस चतुर्विध सघरूप तीर्थ की स्थापना करने से ही वे तीर्थकर कहलाते है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे इस भरत क्षेत्र मे २४-२४ तीर्थंकर होते है। इस अवसर्पिणी काल मे प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव हुए, जो आदिनाथ आदीश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है। भारतीय सस्कृति के वे महान पुरस्कर्त्ता थे। जन जीवन मे अनेको विद्याओ, कलाओ का प्रचार तथा लिपि और अक विद्या का प्रवंतन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से ही हुआ।

ऋषभदेव के बाद बाईसवे तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि, तेइसवे भगवान पार्श्वनाथ, चौवीसवे भगवान महावीर स्वामी विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। आचार्य भद्रबाहु के कल्पसूत्र मे पश्चानुपूर्वी से भगवान महावीर, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान नेमिनाथ और भगवान ऋषभदेव का सक्षेप मे चरित्र वर्णित हैं। इससे इन चार तीर्थंकरो की विशेष प्रसिद्धि का सहज ही पता चल जाता है। आगे चलकर सोलहवे तीर्थंकर शातिनाथ जो पहले चक्रवर्ती भी थे, उनकी भी प्रसिद्धी बढी, फलत २४ मे से ५ तीर्थंकरो को मुख्यता देते हुए अनेको कवियो ने अपनी रचना के प्रारम्भ मे उन्हे स्मरण किया है, नमन किया है और श्रीमद् देवचन्द्रजी, जो महानतत्वज्ञ और आध्यात्मिक महापुरुष अठारवी शताब्दी मे हो गये हैं, उनके रचित भक्तिभावपूर्ण 'स्नात्र पूजा' मे भी इन पाँचो तीर्थंकरो को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

भगवान अरिष्टनेमि सम्बन्धी फुटकर विवरण तो स्थानाग और समवायाग सूत्र मे प्राप्त है और ज्ञाता, अन्तगड, उत्तराध्ययन आदि सूत्रो मे भी वर्णन मिलता है पर व्यवस्थित रूप से कल्पसूत्र मे ही सर्वप्रथम सक्षिप्त जीवनी मिलती है। उसके बाद तो आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि आदि अनेक ग्रन्थो मे आपका पावन चरित्र प्राप्त होता है। आगे चलकर उन्ही के आधार से एव गुरु परम्परा से प्राप्त तथ्यो पर से स्वतन्त्र चरित्र ग्रन्थ अनेको लिखे गये। प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा उनमे एक उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई है।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जैन आगमादि ग्रन्थो के अनुसार बहुत ही शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनका वर्चस्व बडा ही जबरदस्त था। वे बहुमुखी

प्रतिभा के धनी और अपने समय के बहुमान्य महापुरुष थे । ज्ञातासूत्र के द्रौपदी सम्बन्धी 'अपरकका' नामक १६ वे अध्ययन मे श्रीकृष्ण का जो वर्णन मिलता है, उससे वे कितने तेजस्वी, वीर, शक्तिसम्पन्न और मान्य पुरुष थे, इसका सहज ही पता चल जाता है । पाण्डव-पत्नी द्रौपदी के स्वयवर मे श्रीकृष्ण वासुदेव आदि वडे-वडे राजा महाराजा पहुँचते है । वहा लिखा गया है कि उनके परिवार मे समुद्रविजय आदि दशदशार्ह, वलदेव आदि पाच महावीर, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड राजकुमार, शाव आदि साठ हजार दुर्दान्त वलवान, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा वहा पधारे थे ।

नारद द्वारा द्रौपदी की प्रशसा सुनकर धातकी खड द्वीप के पूर्ववर्ती दक्षिण भरत की अपरकका नगरी का पद्मनाभ राजा, मित्रदेव द्वारा द्रौपदी का अपहरण करता है । तव श्रीकृष्ण अपनी बुआ कुन्ती के अनुरोध से अपरकका पाण्डवो सहित जाते है और युद्ध मे विजय प्राप्त कर द्रौपदी को वापस लाते है । उस समय पाचो पाण्डव युद्ध मे हार जाते है, जव श्रीकृष्ण नरसिंह रूप धारण कर विजय प्राप्त करते है । लवणसमुद्र के अधिष्ठाता सुस्थितदेव श्रीकृष्ण के महान व्यक्तित्व के कारण ही रथ ले जाने का मार्ग (लवण समुद्र मे) कर देता है । इससे मनुष्य तो क्या, देव भी उनकी धाक मानते थे व प्रभावित थे, सिद्ध होता है ।

पाच पाण्डव नौका से गगा नदी पारकर जाते है, पर श्रीकृष्ण के लिए नौका को वापिस नही भेजते हैं, तब श्रीकृष्ण एक हाथ मे घोडा, सारथी और रथ उठा लेते है और दूसरे हाथ से साढे वासठ योजन चौडी गंगा नदी को पार कर जाते हैं । ऐसा महान पराक्रम अन्य किसी मे नही दिखाई देता । नौका वापिस न भेजने के कारण श्रीकृष्ण पाण्डवो पर कुपित होकर उनके रथो को एक लोहदण्ड द्वारा चूर्ण कर देते है और देश निकाला दे देते है । तव माता कुन्ती श्रीकृष्ण के पास द्वारका जाकर निवेदन करती है कि तुम्हारा साम्राज्य तो सव दक्षिणार्ध भरत तक फैला हुआ है अत वताओ पाण्डव जावे कहाँ ? अन्त मे जहाँ श्रीकृष्ण ने पाण्डवो के रथो को चूर्ण किया था । वहाँ पाण्डु मथुरा वसाकर रहने लगते है । पाण्डवो के समर्थक (महाभारत के युद्ध आदि प्रसग मे) श्रीकृष्ण का अनोखा व्यक्तित्व महाभारत सम्बन्धी प्राकृत सस्कृत और अपभ्र श और हिन्दी राजस्थानी मे काफी रचनाएँ की हैं । सघदास गणि रचित पाचवी शताब्दी के विशिष्ट प्राकृत ग्रन्थ-वसुदेवहिंडी मे श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण और अनेक

कन्याओ से विवाह का वर्णन होने के साथ-साथ श्रीकृष्ण सम्बन्धी बहुत-सी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हैं।

प्राचीन जैनागमादि ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेको महत्वपूर्ण विवरण मिलते हैं। जो महाभारत पुराणादि जैनेतर ग्रन्थो मे नही मिलते। जैन एव पौराणिक ग्रन्थो के तुलनात्मक अध्ययन की वडी आवश्यकता है। दोनो के साहित्य के तटस्थ अध्ययन से अनेक नवीन तथ्य प्रकाश मे आ सकेंगे।

श्रीकृष्ण नीति निपुण राजनेता, धर्म सस्थापक, सबके सुहृद व सहायक और महान शासक होने के साथ-साथ धर्मज्ञ भी थे। महाभारत और पुराणो से उनके बहुरगी व्यक्तित्व का वडा सुन्दर परिचय मिलता है। महाभारत मे युद्ध के समय कर्मयोगी कृष्ण ने अर्जुन को जो (भगवद् गीता के रूप मे) उपदेश दिया था वह विश्वसाहित्य मे सर्वाधिक प्रसिद्ध और वडा प्रेरणा-दायी व मार्गदर्शक है। गीता मे वैदिक हिंसात्मक यज्ञ आदि का निषेध या विरोध किया गया है और जैन धर्म से बहुत सी मिलती जुलती बातें प्रति-पादित की गई हैं। गीता मे समन्वय की प्रधानता दिखाई देती है। जैन धर्म मे भी अनेकान्त दृष्टि की मुख्यता है। भगवद्गीता मे अनासक्ति एव समन्वय को महत्व दिया गया है। जो जैन धर्म का भी मर्म या प्राण है। श्री सतबालजी ने जैनदृष्टिकोण से गीता पर विस्तृत विवेचन लिखा है और आचाराङ्ग आदि से गीता वाक्यो की तुलना की है। जोधपुर के श्री दौलतरामजी मेहता ने तो गीता की जैन दृष्टि से गहरी छान-बीन की है। उनका मथन किया हुआ ग्रन्थ प्रकाशित होने पर बहुत से नये तथ्य प्रकाश मे आवेगे।

महाभारत मे भी अनेक स्थल जैन मान्यताओ से मिलते-जुलते हैं। महाभारत के विशिष्ट अभ्यासी श्री उपेन्द्रराय साडेसरा की एक पुस्तक महाभारत अने उत्तराध्ययन सूत्र प्रकाशित हो चुकी हैं। श्रीचन्द जी राम-पुरिया ने भी महाभारत का वडा अच्छा अध्ययन किया है और भी कई विद्वानो के महाभारत सम्बन्धी ग्रन्थ मैंने पढ़े है, उससे उस पर जैन प्रभाव पुष्ट होता है। श्री दौलतराम जी मेहता ने लिखा है कि गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सचित्र हिन्दी अनुवाद वाले महाभारत के शान्तिपर्व अध्याय २७८ के श्लोक २ मे अरिष्टनेमि का नाम और श्लोक ३ मे उनको परम ब्राह्मण कहा गया है। जैनागम मान्य समुद्रविजय आदि अनेक उल्लेखनीय व्यक्तियो का विवरण महाभारत मे जानबूझकर छोड दिया गया प्रतीत होता है।

श्रीकृष्ण भागवत धर्म या वैष्णव सम्प्रदाय के पुरस्कर्त्ता है। करीव दो ढाई हजार वर्षो से भागवत धर्म और विष्णु पूजा का प्रचार भारत मे निरन्तर दिखाई देता है। श्रीकृष्ण भक्ति के अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तित है। करोडो व्यक्ति श्रीकृष्ण की पूजा करते है। भागवतधर्म वैष्णवसम्प्रदाय अहिसा प्रधान है, इधर अहिसा जैन धर्म का सवसे वडा सिद्धान्त है ही। इस तरह भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण के मन्तव्य वहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। यह दोनो महापुरुषो के घनिष्ठ सम्बन्ध का प्रवल प्रमाण है। श्रीकृष्ण को हुए पाच हजार से कुछ वर्ष अधिक हुए है। अत जैन मान्यता अरिष्टनेमि के समय सम्वन्धी विचारणीय वन जाती है। क्योकि दोनो समकालीन व्यक्ति थे तो उनका समय भी एक ही होना चाहिए।

करीव ३०-३५ वर्ष पूर्व, जैन आगमादि ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण का जो महत्व-पूर्ण चरित्र मिलता है उसकी ओर मेरा ध्यान गया और मैंने एक शोधपूर्ण लेख शान्तिनिकेतन की हिन्दी विश्वभारती पत्रिका मे 'जैन आगमो मे श्रीकृष्ण' के नाम से प्रकाशित करवाया जिससे जैनेतर विद्वानो का भी श्रीकृष्ण सम्वन्धी जैनग्रन्थोक्त सामग्री की ओर ध्यान आकर्पित हो सके। उसके कुछ वर्ष वाद माननीय विद्वान डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के अनुरोध से उस लेख मे कुछ और परिवर्तन और परिवर्धन करके श्री कन्हैया-लाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ मे मैंने अपना निवन्ध छपवाया। तदनन्तर श्रीचन्दजी रामपुरिया की एक स्वतन्त्र लघु पुस्तिका तेरापथी महासभा कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इस विपय पर सवसे महत्वपूर्ण कार्य श्रीदेवेन्द्र मुनि जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के रूप मे सम्पन्न किया है। उन्होने जैन सामग्री के अतिरिक्त वौद्ध और पौराणिक सामग्री का भी उपयोग करके श्रीकृष्ण का पठनीय जीवन चरित्र इस ग्रन्थ मे सकलित किया है। अत. प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्व निर्विवाद है।

उन्होने इस ग्रन्थ के प्रकाशन से पूर्व इसकी पाण्डुलिपि मुझे अवलोकनार्थ भिजवादी थी और मैंने कुछ सशोधन व सूचनाएँ उन्हे लिख भेजी थी। जिनका उपयोग उन्होने अपनी पाण्डुलिपि मे कर लिया है। फिर भी कुछ वाते सशोधनीय रह गयी है उनकी थोडी-सी चर्चा कर देना यहा आवश्यक समझता हूँ।

(१) पृष्ठ ६१ मे ऋगवेद मे 'अरिष्टनेमि' शब्द चार वार प्रयुक्त हुआ है। वह भगवान अरिष्टनेमि के लिए आया है, लिखा गया है। पर मेरी राय मे वहाँ के अरिष्टनेमि शब्द का अर्थ अन्य ही होना चाहिए।

(२) पृष्ठ ६२ मे इसी तरह घोर अगिरम भगवान नेमिनाथ का ही नाम है। यह धर्मानन्दकौशाम्वी के मतानुमार लिखा गया है। मेरे विचार मे वह भी ठीक नही है। घोर अगिरम व नेमिनाथ भिन्न भिन्न व्यक्ति थे।

(३) पृष्ठ ७२ मे वसुदेव को वृष्णिकुल और समुद्रविजय को अन्धक-कुल का लिखा गया है। पर वे दोनो भाई-भाई थे अत दोनो के कुलो के नाम अलग-अलग देने से भ्रम होता है। वास्तव मे वे दोनो अन्धक वृ णिकुल के ही थे ऐसा मेरा मत है।

(४) मुनि नथमल जी के द्वारा सम्पादित उत्तराध्ययन के अभिमतानुमार मुनि जी ने भी द्वैधराज्य की वात लिखी है पर वह भी विचारणीय है। उत्तराध्ययन सूत्र मे समुद्रविजय और वसुदेव दोनो को सौरियपुर का राजा लिखा है। इसी से यह धारणा वनायी गयी है। पर समुद्रविजय वडे थे और वसुदेव उनके छोटे भाई थे अत दोनो को राजा लिखने से द्वैध राज्य नही होता। आज भी वडा भाई महाराजा कहलाता है और छोटे भाई को महाराज कहा जाता है। उदाहरणार्थ—वीकानेर के महाराजा रायसिह के सुप्रसिद्ध छोटे भाई कविवर पृथ्वीराज महाराज के रूप मे प्रसिद्ध थे।

(५) पृष्ठ १८२ मे मीरावार्ड के नरसी के मायरे का उल्लेख व उद्धरण है—जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के अनुसार दिया गया है, वह मायरा भी मीरावाई के द्वारा रचित नही हैं।

और भी कुछ वातें सशोधनीय है और कही-कही मुद्रण दोप की भी अशुद्धिया रह गयी है जिसका परिष्कार शुद्धि पत्र मे किया गया है, पर इमसे ग्रन्थ के महत्व मे कोई कमी नही आती। ग्रन्थ वास्तव मे ही उच्चकोटि का एव मौलिक है।

विद्वान् मुनिवर्य देवेन्द्र मुनि जी ने इधर कुछ वर्षों मे काफी अच्छे-अच्छे महत्वपूर्ण और विविध विद्याओ के ग्रन्थ लिखकर हिन्दी जैन साहित्य की उल्लेखनीय अभिवृद्धि की है। अभी उनमे और वहुत सी आशाए है। जैन ममाज उनके ग्रन्थो के पठन-पाठन मे अधिकाधिक रुचि दिखाये और वे जैन साहित्य का भण्डार निरन्तर भरते रहे यही शुभ कामना है।

वीकानेर
ता० २०-३-७१

— अगरचन्द नाहटा

लेखक की कलम से

भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण ये दोनो ही भारतीय सस्कृति के जाज्वल्यमान सितारे है। दोनो सस्कृति के सजग प्रहरी ही नही, अपितु सस्कृति और सभ्यता के निर्माता हैं। जैनसस्कृति मे जिस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि की गौरव-गाथाएँ मुक्त कठ से गाई गई है उसी प्रकार स्नेह की स्याही मे डुबोकर श्रीकृष्ण के अनलोद्धत व्यक्तित्व को भी उट्टङ्कित किया गया है। मैं साधिकार कह सकता हूँ कि श्रीकृष्ण के जीवन के उज्ज्वल प्रसग जो जैन साहित्य मे उपलब्ध हैं वे प्रसग न तो वैदिक साहित्य मे प्राप्त हैं और न बौद्ध साहित्य मे ही। जैन साहित्य मे कृष्ण को भगवान् नही, किन्तु महामानव माना है, वासुदेव और श्लाघनीय पुरुप कहा है। एक गरीब वृद्ध व्यक्ति को ईट उठाते हुए देखकर उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता है, तीन खण्ड के अधिपति होने पर भी वे स्वय ईट उठाते हैं यह प्रसग उनकी मानवता की भावना को उजागर करता है। वे माता-पिता व गुरुजनो को भक्ति भावना से विभोर होकर नमस्कार करते है, उनकी आज्ञा का पालन करते है यह उनकी विनम्र भावना का परिचायक है। वासुदेव होने के कारण वे स्वय सयम साधना को स्वीकार नही कर सकते है, पर अपने पुत्र, पत्नी तथा अन्य परिजनो को त्याग वैराग्य व सयम की प्रेरणा देते हैं, यह उनके विचारो की निर्मलता का द्योतक है। मृत कुत्ते के शरीर मे कीडे कुलबुला रहे हैं, भयकर दुर्गन्ध से मस्तिष्क फटने जा रहा है, उस समय भी वे उसके चमचमाते हुए दाँतो को ही देखते है यह उनके गुणानुरागी स्वभाव को प्रदर्शित करता है, इस प्रकार अनेक प्रसग है जो उनकी मानवता को महत्ता को प्रदर्शित करते हैं। वे सारे प्रसग इतने सुन्दर और रसप्रद है, कि उनके अभाव मे श्रीकृष्ण के तेजस्वी व्यक्तित्व को समझा नही जा सकता। वैदिक साहित्य मे श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार से लिखा गया है। प्राचीन और मध्ययुग के साहित्य मे श्रीकृष्ण की लीलाओ का निरुपण

है उन्हे राधा और गोपी-वल्लभ के रूप मे चित्रित किया गया है पर जैन साहित्य मे उनके उस रूप के दर्शन नही होते हैं। श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ जो जैन साहित्य मे है, वैसी ही घटनाए शब्दो के हेर-फेर के साथ वैदिक साहित्य मे भी है। किस सस्कृति ने किससे कितना लिया यह कहना अत्यन्त कठिन है। महापुरुष सूर्य, चाद, हवा और पानी की तरह होते हैं वे किसी भी सम्प्रदाय विशेष की धरोहर नही होते। उनका सार्व-भौमिक व्यक्तित्व प्रत्येक के लिए अनमोल निधि है। महापुरुप को सम्प्रदाय विशेष के घेरे मे आवद्ध करना उनके प्रति अन्याय करना है। साम्प्रदायिक ग्लास के चश्मे को उतार कर ही महापुरुप को देखने से उनका वास्तविक रूप समझ मे आ सकता है। मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ मे किसी सम्प्रदाय विशेप की आलोचना प्रत्यालोचना न कर श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप को रखने का प्रयास किया है, मैं कहाँ तक इस प्रयास मे सफल हो सका हूँ इसका निर्णय प्रवुद्ध पाठको पर छोडता हूँ।

यह पूर्ण सत्य है कि जितना श्रीकृष्ण के सम्वन्ध मे वैदिक साहित्य मे विस्तार से लिखा गया है उतना भगवान् श्रीअरिष्टनेमि के सम्वन्ध मे नही। वैदिक और अन्य साहित्य से जितने भी प्रमाण मुझे प्राप्त हुए है वे भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता शीर्षक मे दिये हैं। वैदिक हरिवशपुराण मे भी महर्षि वेद व्यास ने श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई माना है। उन्होने यदुवश का परिचय देते हुए लिखा है कि महाराजा यदु के सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील और अजिक नाम के देवकुमारो के तुल्य पाच पुत्र हुए।[१] क्रोष्टा की माद्री नामक द्वितीय रानी से युधाजित् और देवमीढुप नामक दो पुत्र हुए।[२] क्रोष्टा के ज्येष्ठ पुत्र युधाजित् के वृष्णि और अधक नाम के दो पुत्र हुए। वृष्णि के भी दो पुत्र हुए, एक का नाम स्वफल्क और दूसरे का नाम चित्रक था।[3] स्वफल्क के अक्रूर नामक महादानी पुत्र हुआ।[४] चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्ववाहु, सुपार्श्वक, गवेपण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत, सुवाहु, वहुवाहु नामक वारह पुत्र और श्रविष्ठा तथा श्रवणा नामक दो पुत्रियाँ हुई।[५] यहा पर यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रीमद्भागवत मे वृष्णि

---

१ हरिवश पर्व १, अध्याय ३३, श्लोक १

२ हरिवश १।३४।१-२

३ वहीं० १।३४।३

४ वहीं० १।३४।११

के दो पुत्रो का नाम स्वफल्क तथा चित्ररथ (चित्रक) दिया है। चित्ररथ (चित्रक) के पुत्रो का नामोल्लेख करते हुए "**पृथुर्विपृथु धन्याद्याः**" लिखा है, ऊपर पाठ मे "**पृथुर्विदूरथाद्याश्च**" का उल्लेख कर केवल तीन और दो पुत्रो के नाम लिखकर आगे प्रभृति लिख दिया है।

हरिवश मे अरिष्टनेमि के वश वर्णन के साथ ही श्रीकृष्ण का वश वर्णन भी दिया है। यदु के क्रोष्टा, क्रोष्टा के द्वितीय पुत्र देवमीढुप के पुत्र शूर और उनके पुत्र वसुदेव प्रभृति दश पुत्र तथा पृथुकीर्ति आदि पाच पुत्रिया हुई।[६] वसुदेव की देवकी नामक रानी से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ।[७]

साराश यह है कि वैदिक परम्परा की दृष्टि से भी श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि ये दोनो चचेरे भाई सिद्ध होते हैं। दोनो के परदादा युधाजित् और देवमीढुप सहोदर थे।

वैदिक और जैन सस्कृति की परम्परा मे यही अन्तर है कि जैन साहित्य मे अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय वसुदेव के बडे भ्राता है जबकि वैदिक हरिवशपुराण के अभिमतानुसार चित्रक और वसुदेव चचेरे भाई थे। चित्रक का ही श्रीमद्भागवत मे चित्ररथ नाम आया है। सभव है चित्रक या चित्ररथ का ही अपर नाम समुद्रविजय रहा हो। दोनो परम्परा के नामो मे जो अन्तर है उसके मूल कारण अनेक हो सकते है।

हमने ग्रन्थ के परिशिष्ट मे वश का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु चार्ट भी दिया है। तथा भौगोलिक परिचय आदि भी।

भगवान् श्री अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण की तुलना करने पर कुछ महत्व-पूर्ण तथ्य हमारे मामने आते है।

---

५ हरिवंश पर्व १, अ० १४, श्लोक १४-१५

६ देवभागस्ततो जज्ञे, तथा देवश्रवा पुन ।
अनाधृष्टि कनवको, वत्सवानथ गृजिम. ।।२१
श्याम शमीको गण्डूष पच चास्य वरांगना ।
पृथुकीर्ति पृथा चैव, श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः ।।२२
राजाधिदेवी च तथा, पंचैते वीरमातर ।।२३
—हरिवंश, १।३४।

७ वसुदेवाच्च देवक्या, जज्ञे शौरि महायशाः ।
—हरिवश पुराण पर्व १, अ० ३५, श्लोक ७ ।

श्रीकृष्ण गोपाल थे, उन्होंने बाल्यकाल में गौए चराई थी, जिसके कारण वैदिक परम्परा मे गौ-पूजा का महत्व स्थापित हुआ। गाय को माता और वृषभ को पिता माना गया।[८] गाय से रहित स्थान को श्मशान माना गया।[९] आज भारतवर्ष मे गौवध का सबसे बड़ा पाप माना जाता है वह हमारी दृष्टि से श्रीकृष्ण की देन है।

भगवान् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण से भी आगे बढ़े, उन्होंने गाय को ही नहीं, अपितु समस्त प्राणी के वध को हेय बताया, उन्होंने समस्त प्राणियो की रक्षा पर बल दिया। मासाहार का तीव्र विरोध किया, जिसके फलस्वरूप जैन परम्परा ही नही, अपितु वैदिक परम्परा भी मासाहार को बुरा मानने लगी।

यह पूर्ण सत्य है कि श्रीकृष्ण की अपेक्षा राम अधिक मर्यादा पालक थे इसीलिए उन्हे मर्यादापुरुषोत्तम कहा जाता है। वाल्मीकिरामायण और रामचरितमानस के अभिमतानुसार श्रीराम शिकार करते थे और मासाहार भी, किन्तु वैदिक परम्परा के ग्रन्थो मे भी श्रीकृष्ण के जीवन का एक भी ऐसा प्रसग नही आया है जिसमे श्रीकृष्ण ने शिकार खेला हो और मासाहारी किया हो, यह उन पर भगवान् अरिष्टनेमि का ही प्रभाव था, उनके प्रभाव से ही उनके मन मे मासाहार के प्रति घृणा थी।

समस्त भारतवर्ष मे गौ पालन और गोशालाओ का महत्व दिखलाई दे रहा है वह श्रीकृष्ण की देन है। गुजरात-सौराष्ट्र और राजस्थान आदि मे गौओ के साथ ही अन्य प्राणियो को भी रखा जाता है, उनका भी पालन-पोषण किया जाता है जिसे पाजरापोल कहते हैं, यह भगवान् अरिष्टनेमि की देन है।

श्रीकृष्ण के जीवन मे प्रवृत्ति की प्रधानता थी इसीलिए वे कर्मयोगी के नाम मे विश्रुत है जबकि अरिष्टनेमि के जीवन मे निवृत्ति की प्रधानता है। वैदिक सस्कृति प्रवृत्तिप्रधान है और श्रमण संस्कृति निवृत्ति प्रधान। इस प्रकार दोनो ही महापुरुषो मे भारतीय सस्कृति, जो श्रमण और वैदिक सस्कृति का मिला-जुला रूप है वह देखा जा सकता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो भगवान् श्री ऋषभदेव गृहस्थाश्रम मे प्रवृत्तिप्रधान रहे और

---

८. (क) गोर्मेमाता ऋषभ पिता
   (ख) गावो विश्वस्य मातर
९ धेनोश्च रहितं स्थानं श्मशानमेव मुच्यते

साधु अवस्था मे निवृत्ति प्रधान। उनके गृहस्थाश्रम का अनुकरण श्रीकृष्ण के जीवन मे देखा जा सकता है और उनके सन्त जीवन का अनुसरण भगवान् अरिष्टनेमि के जीवन मे।

राजीमती का जीवन महिला समाज के मुख को उज्ज्वल करने वाला है। वह जिसे उपास्य मान लेती है उससे शारीरिक सम्बन्ध न होने पर भी वह अपने हृदयधन के महान् निश्चय का स्वागत करती है। केवलज्ञान प्राप्त होने पर जब अरिष्टनेमि आत्म-कल्याण का मार्ग उपस्थित करते है तब वह आमंत्रण को स्वीकार कर प्रेम का उदात्तीकरण उपस्थित करती है।

रथनेमि को आत्म-साधना मे पुन स्थिर कर राजीमती ने उस परम्परा की रक्षा की जो ब्राह्मी और सुन्दरी ने चलाई थी। पुरुप को कर्तव्य बोध का सुन्दर पाठ पढाया। उसने अपनी रक्षा ही नही की, अपितु रथनेमि के पतन को भी बचा लिया।

ग्रन्थ मे एक प्रसग आया है जिसका स्पष्टीकरण करना मै आवश्यक समझता हूँ—प्रतिवासुदेव जरासध के भय से यादव मथुरा को छोडकर सौराष्ट्र मे पहुँचते है और वहा पर वे समुद्र के किनारे नव्य भव्य द्वारिका का निर्माण करते हैं। यादव श्रीकृष्ण को वहा का अधिपति बनाते हैं। वर्षों तक श्रीकृष्ण वहा पर राज्य करते है किन्तु जरासध को इसका पता भी नही चलता, अन्त मे व्यापारियो के द्वारा सूचना प्राप्त होने पर वह युद्ध के लिए प्रस्थित होता है।

प्रस्तुत घटना को पढकर वैज्ञानिक युग मे पले-पुसे मानवो के मानस मे यह सहज ही शका उद्बुद्ध हो सकती है कि यह किस प्रकार सभव है कि वर्षों तक पता ही न चले। आज वैज्ञानिक साधनो को प्रचुरता व सुलभता से दुनिया इतनी सिमट कर लघु हो गई है कि मानव घर के बद कमरे मे बैठकर भी रेडियो व टेलीविजन के द्वारा विश्व के समाचार सुन सकता है, देख सकता है। फोन के द्वारा हजारो मील की दूरी पर बैठे हुए व्यक्ति से वार्तालाप कर सकता है। एरोप्लेन और राकेट के द्वारा कुछ ही समय मे आधुनिक विश्व की प्रदक्षिणा कर सकता है। पर जिस युग की यह घटना है उस युग मे इस प्रकार के वैज्ञानिक साधन सुलभ नही थे। यहाँ तक कि आस-पास के गाँवो तक का भी पता नही चलता।

लाओत्से ने तीन हजार वर्ष पहले चीन के गाँव की घटना लिखी है—
"हमारे पिता तथा वृद्ध व्यक्ति कहते हैं कि हमारे गाँव के पास एक नदी बहती

है, उस नदी के दूसरे किनारे पर एक गाँव है । सायकाल उस गाँव का धुआ दिखाई देता है । रात्रि मे उस गाँव के कुत्ते भौंकते हुए सुनाई देते है, किन्तु हमारे गाव से उस गाँव का कोई सम्वन्ध नही है । आज तक उस गाँव को देखने के लिए हमारे गाँव से कोई गया नही और न उस गाँव मे हमारे गाँव को देखने के लिए ही कोई लोग आए ।"

प्रस्तुत प्रसग के प्रकाश मे जव हम उपर्युक्त घटना देखते हैं तो उसकी सत्यता मे हमे सशय नही हो सकता ।

ग्रन्थ लिखते समय ग्रन्थाभाव के कारण मेरे सामने अनेक समस्याए उपस्थित हुई । ग्रन्थ का 'पूर्वभव-विभाग' प्रेस मे जा चुका उसके पश्चात् लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदावाद से प्रकाशित द्वितीय आचार्य हरिभद्र का रचित 'नेमिनाहचरिउ' का प्रथम भाग प्राप्त हुआ अत मैं जानकर के भी उसका उपयोग न कर सका, द्वितीय भाग प्रेस मे होने से वह मुझे प्राप्त न हो सका । अन्य कुछ दिगम्वर व श्वेताम्वर ग्रन्थ भी मुझे प्राप्त न हो सके । श्रीकृष्ण के सम्वन्ध मे जैन व अजैन विद्वानो ने इतना अधिक लिखा है कि उन सभी ग्रन्थो को प्राप्त कर उनका उपयोग करना अत्यन्त कठिन कार्य है, तथापि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थो के आलोक मे तुलनात्मक दृष्टि से जो कुछ लिख गया हूँ वह उपयोगी सिद्ध होगा—यह मैं मानता हूँ ।

महामहिम परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी म० का असीम अनुग्रह, आशीर्वाद तथा पथ-प्रदर्शन मेरे जीवन को सदा आलोकित करता रहा है । उनकी अपार कृपा दृष्टि के कारण ही मैं साहित्यिक क्षेत्र मे प्रगति कर रहा हूँ, अत गुरुदेव के प्रति किन शव्दो मे आभार प्रदर्शित करू । आभार प्रदर्शन के लिए मेरे शव्द कोष मे उचित शव्द ही नही हैं । मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि उनका आशीर्वाद सदा मिलता रहे और मैं प्रगति के पथ पर आगे वढता रहूँ ।

परमादरणीया सतिशिरोमणि मातेश्वरी प्रतिभामूर्ति श्री प्रभावती जी म० तथा प्रिय वहिन परम विदुषी साध्वीरत्न श्री पुष्पवती जी साहित्यरत्न की प्रवल-प्रेरणा रही कि भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पर मैं शोधप्रधान ग्रन्थ लिखू, उनकी निरन्तर प्रेरणा के कारण मैं ग्रन्थ प्रस्तुत कर सका हूँ । माँ और वहिन के प्रेम भरे आग्रह को मैं कैसे टाल सकता था ?

आगम प्रभावक स्नेह सौजन्यमूर्ति श्री पुण्यविजय जी म० को तथा जैन साहित्य विकास मण्डल के अधिपति साहित्यप्रेमी सेठ अमृतलाल कालीदास

एव मण्डल के सचालक प० सुबोधचन्द भाई को विस्मृत नही हो सकता जिन्होने मुझे ग्रन्थ उपलब्ध किये तथा लम्बे समय तक उपयोग करने के लिए उदारता बतलाई।

ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को महान् साहित्यकार प० श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने तथा सुप्रसिद्ध इतिहासकार व पुरातत्ववेत्ता श्री अगरचन्द जी नाहटा ने आदि से अन्त तक अवलोकन कर मुझे अपने अनमोल सुझाव दिये तथा परिष्कार किया और साथ ही मेरे आग्रह को सन्मान देकर श्रीयुत नाहटा जी ने मननीय भूमिका लिखी तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूं। यहा अमर भारती के यशस्वी सम्पादक स्नेहमूर्ति श्रीचन्द्र जी सुराना 'सरस' को भी भूल नही सकता जिन्होंने ग्रन्थ को मुद्रण कला की दृष्टि से ही सुन्दर नही बनाया, पर प्रूफ सशोधन कर मेरे भार को हलका किया है। अन्त मे उन सभी लेखकों का व ग्रन्थकारों का आभार मानता हूं कि जिनसे मुझे सहयोग व मार्गदर्शन मिला है।

जैन-भवन
सायन, बम्बई
दिनाङ्क ५ मार्च १९७१

—देवेन्द्र मुनि

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

भगवान

अरिष्टनेमि

तीर्थंकर और वासुदेव

●

- तीर्थङ्कर
- तीर्थङ्कर अवतार नही
- उत्तारवाद
- तीर्थङ्कर और अन्य आत्माओ मे अन्तर
- जैन दृष्टि मे वासुदेव
- वैदिक दृष्टि मे वासुदेव

तीर्थंकर और वासुदेव

●

'तीर्थंकर' शब्द जैन साहित्य का मुख्य पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द कब और किस समय प्रचलित हुआ, यह कहना अत्यधिक कठिन है। वर्तमान इतिहास से इसकी आदि नही ढूढी जा सकती। निस्सन्देह यह शब्द उपलब्ध इतिहास से भी बहुत पहले प्राग् ऐतिहासिक काल मे भी प्रचलित था। जैन परम्परा मे इस शब्द का प्राधान्य रहने के कारण बौद्ध साहित्य मे भी इसका प्रयोग किया गया है। बौद्ध साहित्य मे अनेक स्थलो पर 'तीर्थंकर' शब्द व्यवहृत हुआ है।[1] सामञ्ञफल सुत्त मे छह तीर्थंकरो का उल्लेख किया है[2] किन्तु यह स्पष्ट है कि जैन साहित्य की तरह मुख्य रूप से यह शब्द वहाँ प्रचलित नही रहा है। कुछ ही स्थलो पर इसका उल्लेख हुआ है, किन्तु जैन साहित्य मे इस शब्द का प्रयोग अत्यधिक मात्रा मे हुआ है। तीर्थंकर जैन धर्म-सघ का पिता है, सर्वे-सर्वा है। जैन साहित्य मे खूब ही विस्तार से तीर्थंकर का महत्त्व उट्टङ्कित किया गया है। आगम साहित्य तक मे तीर्थंकर का महत्त्व प्रतिपादित है। चतुर्विशतिस्तव और शक्रस्तव मे तीर्थंकर के गुणो का जो उत्कीर्तन किया गया है उसे पढकर साधक का हृदय श्रद्धा से नत हो जाता है।

---

१. देखिए बौद्ध साहित्य का लकावतार-सूत्र

२. दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्त पृ० १६-२२, हिन्दी अनुवाद,

जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता होता है वह तीर्थंकर कहलाता है। जैन परिभाषा के अनुसार तीर्थ शब्द का अर्थ—धर्मशासन है। जो ससार समुद्र से पार करने वाले धर्म तीर्थ की सस्थापना करते है, वे तीर्थंकर कहलाते है। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये धर्म है, इस धर्म को धारण करने वाले श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका है। इस चतुर्विध सघ को भी तीर्थ कहा गया है। इस तीर्थ की जो स्थापना करते है उन विशिष्ट व्यक्तियो को तीर्थंकर कहते है।

सस्कृत साहित्य मे तीर्थ शब्द 'घाट' के लिए भी व्यवहृत हुआ है। जो घाट के निर्माता है वे तीर्थंकर कहलाते है। सरिता को पार करने के लिए घाट की कितनी उपयोगिता है, यह प्रत्येक अनुभवी व्यक्ति जानता है। ससार रूपी एक महान् नदी है। उसमे कही पर क्रोध के मगर मच्छ मुह फाडे हुए है। कही पर मान की मछलियाँ उछल रही है। कही पर माया के जहरीले साप फुत्कार मार रहे है तो कही पर लोभ के भवर है। इन सभी को पार करना कठिन है। साधारण साधक विकारो के भवर मे फस जाते है। कषाय के मगर उन्हे निगल जाते हैं। अनन्त दया के अवतार तीर्थंकर प्रभु ने साधको की सुविधा के लिए धर्म का घाट बनाया, अणुव्रत और महाव्रतो की निश्चित योजना प्रस्तुत की। जिससे प्रत्येक साधक इस ससार रूपी भयकर नदी को सहज ही पार कर सकता है।

तीर्थ का एक अर्थ—पुल भी है। चाहे जितनी बडी से बडी नदी क्यो न हो, यदि उस पर पुल है, तो निर्बल से निर्बल व्यक्ति भी उसे सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थंकरो ने ससार रूपी नदी को पार करने के लिए धर्म शासन अथवा साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूपी सघ-पुल का निर्माण किया। आप अपनी शक्ति व भक्ति के अनुसार इस पुल पर चढकर ससार को पार कर सकते है। धार्मिक साधना के द्वारा अपने जीवन को पावन बना सकते है। तीर्थकरो के शासन काल मे हजारो लाखो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना कर जीवन को परम पवित्र बनाकर मुक्त होते है।

प्रश्न हो सकता है कि प्रस्तुत अवसर्पिणी काल मे भगवान ऋषभदेव ने सर्वप्रथम तीर्थ की सस्थापना की अत उन्हे तीर्थंकर

कहना चाहिए, परन्तु उनके पश्चाद्वर्ती अन्य तेवीस महापुरुषो को तीर्थंकर क्यो कहा जाय ?

कुछ विद्वान यह भी कहते है कि धर्म की व्यवस्था जैसी एक तीर्थंकर करते है, वैसी ही व्यवस्था दूसरे तीर्थंकर भी करते है, अत एक ऋषभदेव को ही तीर्थंकर मानना चाहिए अन्य को नही।

उल्लिखित प्रश्नो के उत्तर मे निवेदन है कि एक तीर्थंकर ने जैसा निरूपण किया, सर्वथा वैसा ही निरूपण दूसरा तीर्थंकर नही करता। यदि वह पूरी तरह एकसदृश ही कथन करता है तो तीर्थंकर नही है। जिसका मार्ग देश काल पात्र आदि की भिन्नता के कारण पूर्व तीर्थङ्कर से भिन्न होता है—सर्वथा एक सदृश नही होता वही तीर्थङ्कर कहलाता है। जब पुराने घाट ढह जाते है, वे विकृत अथवा अनुपयुक्त हो जाते है, तब नवीन घाट निर्माण किये जाते है। जब धार्मिक विधि-विधानो मे विकृति आ जाती है, तब तीर्थङ्कर विकृतियो को नष्ट कर अपनी दृष्टि से पुन. धार्मिक विधानो का निर्माण करते है। तीर्थङ्करो का शासन-भेद इस बात का ज्वलत प्रमाण है। इस सम्बन्ध मे जिज्ञासु पाठको को लेखक का 'भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ का उपक्रम अवश्य देखना चाहिए।[3]

तीर्थङ्कर अवतार नहीं

एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि जैन धर्म ने तीर्थङ्कर को ईश्वर का अवतार या अग नही माना है और न दैवी सृष्टि का अजीव प्राणी ही स्वीकार किया है। उसका यह स्पष्ट मन्तव्य है कि तीर्थङ्कर का जीव एक दिन हमारी तरह ही वासना के दल-दल मे फँसा हुआ था। पापरूपी पक से लिप्त था। कषाय की कालिमा से कलुषित था, मोह की मदिरा से बेहोश था। आधि, व्याधि, और उपाधियो से सत्रस्त था। हेय, ज्ञेय और उपादेय का उसे तनिक भी ज्ञान नही था। वैराग्य से विमुख रह कर वह विकारो को अपनाता था, उपासना को छोड़कर वासना का दास बना हुआ था। त्याग के बदले वह राग मे फसा हुआ था। भौतिक व इन्द्रियजन्य सुखो को

३. देखिए पृष्ठ ३-२५

सच्चा सुख समझकर पागल की तरह उसके पीछे दौड रहा था, किन्तु एक दिन महान् पुरुषो के सग से उसके ज्ञान-नेत्र खुल गये। भेद विज्ञान की उपलब्धि होने से, तत्त्व की अभिरुचि जागृत हुई। सही व सत्य स्थिति का उसे परिज्ञान हुआ।

किन्तु कितनी ही बार ऐसा भी होता है कि मिथ्यात्व के पुन आक्रमण हो जाने से उसके ज्ञान नेत्र धु धले हो जाते है और वह पुन मार्ग को विस्मृत कर कुमार्ग पर आरूढ हो जाता है, और लम्बे समय के पश्चात् पुन सत् मार्ग पर आता है। तब वासना से मु ह मोडकर साधना को अपनाता है, उत्कृष्ट तप व सयम की आराधना करता हुआ एक दिन भावो की परम निर्मलता से तीर्थङ्कर नाम-कर्म का बधन करता है और फिर वह तृतीय भव मे तीर्थङ्कर बनता है।[४] किन्तु यह भी नही भूलना चाहिए कि जब तक तीर्थङ्कर का जीव ससार के भोग-विलास मे उलझा हुआ है, सोने के सिहासन पर आसीन है तब तक वह वस्तुत तीर्थकर नही है, तीर्थङ्कर बनने के लिए, उस अन्तिम भव मे भी राज्य-वैभव को छोडना होता है। श्रमण बनकर पहले महाव्रतो का पालन करना होता है। एकान्त शान्त, निर्जन स्थानो मे रहकर आत्म-मनन करना होता है, भयकर से भयकर उपसर्गो को शान्त भाव से सहन करना होता है। जब साधना से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म नष्ट होते हैं तब केवल ज्ञान, केवल दर्शन की प्राप्ति होती है। उस समय वे साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप तीर्थ को सस्थापना करते है तब तीर्थङ्कर कहलाते है।

उत्तारवाद

वैदिक परम्परा का विश्वास अवतारवाद मे है। गीता के अभिमतानुसार ईश्वर अज, अनन्त, और परात्पर होने पर भी अपनी अनन्तता को, अपनी माया शक्ति से सकुचित कर शरीर को धारण करता है। अवतारवाद का सीधा-सा अर्थ है ईश्वर का मानव के रूप मे उतरना—मानव शरीर मे जन्म लेना। गीता की दृष्टि से ईश्वर तो मानव बन सकता है, किन्तु मानव कभी ईश्वर नही बन सकता। ईश्वर के अवतार लेने का एक मात्र उद्देश्य है सृष्टि

४. समवायाङ्ग सूत्र १५७

मे चारो ओर जो अधर्म का अधकार छाया हुआ होता है उसे नष्ट कर धर्म का प्रकाश किया जाय। साधुओ का परित्राण, दुष्टो का नाश, और धर्म की स्थापना की जाय।"[५]

जैन धर्म का विश्वास अवतारवाद मे नही, उत्तारवाद मे है। अवतारवाद मे ईश्वर को स्वय मानव बनकर पुण्य और पाप करने पडते है। भक्तो की रक्षा के लिए उसे अधर्म भी करना पडता है। स्वय राग-द्वेष से मुक्त होने पर भी भक्तो के लिए उसे राग भी करना पड़ता है और द्वेष भी। वैदिक परम्परा के विचारको ने इस विकृति को ईश्वर की लीला कहकर उस पर आवरण डालने का प्रयास किया है। जैनदृष्टि से मानव का उत्तार होता है। वह प्रथम विकृति से संस्कृति की और बढता है फिर प्रकृति मे पहुँच जाता है। राग-द्वेष युक्त जो मिथ्यात्व की अवस्था है, वह विकृति है। राग-द्वेष मुक्त जो वीतराग अवस्था है वह सस्कृति है। पूर्ण रूप से कर्मो से मुक्त जो शुद्ध-सिद्ध अवस्था है, वह प्रकृति है। सिद्ध बनने का तात्पर्य है कि अनन्तकाल के लिए अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति मे लीन हो जाना। वहा कर्म बध और कर्म बध के कारणो का सर्वथा अभाव होने से जीव पुन ससार मे नही आता। उत्तारवाद का अथ है मानव का विकारी जीवन से ऊपर उठकर भगवान के अविकारी जीवन तक पहुँच जाना, पुन: उसमे कदापि लिप्त न होना। तात्पर्य यह है कि जैनधर्म का तीर्थङ्कर ईश्वरीय अवतार नही है। जो लोग तीर्थङ्करो को अवतार मानते है, वे भ्रम मे है। जैनधर्म का यह वज्र आघोष है कि प्रत्येक व्यक्ति साधना के द्वारा आन्तरिक शक्तियो का विकास कर तीर्थङ्कर बन सकता है। तीर्थङ्कर बनने के लिए जीवन मे आन्तरिक शक्तियो का विकास परमावश्यक है।

---

५. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे।
—श्री मद्भगवद् गीता

तीर्थङ्कर और अन्य मुक्त आत्माओं में अन्तर :

जैन धर्म का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि तीर्थङ्कर और अन्य मुक्त होने वाली आत्माओ मे आन्तरिक दृष्टि से कोई फर्क नही है। केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रभृति आत्मिकशक्तिया दोनो मे समान होने के बावजूद भी तीर्थङ्कर मे कुछ बाह्य विशेषताए होती है। उन बाह्य विशेषताओ (अतिशयो) का वर्णन इस प्रकार है[६]—

१ मस्तक के केश, दाढी, मूछ, रोम और नखो का मर्यादा से अधिक न बढना।
२ शरीर का स्वस्थ और निर्मल रहना।
३ रक्त और मास का गाय के दूध के समान श्वेत रहना।
४ पद्म गध के समान श्वासोच्छ्वास का सुगन्धित होना।
५ आहार और शौच क्रिया का प्रच्छन्न होना।
६ तीर्थङ्कर देव के आगे आकाश मे धर्म चक्र रहना।
७ उनके ऊपर तीन छत्र रहना।
८ दोनो ओर श्रेष्ठ चवर रहना।
९ आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक-मणि का बना पादपीठ वाला सिहासन होना।
१० तीर्थङ्कर देव के आगे आकाश मे इन्द्रध्वज का चलना।
११ जहा-जहा पर तीर्थङ्कर भगवान ठहरते है या बैठते है वहां पर उसी क्षण पत्र, पुष्प, और पल्लव से सुशोभित छत्र, ध्वज, घट, एव पताका सहित अशोकवृक्ष का उत्पन्न होना।
१२ कुछ पीछे मुकुट के स्थान पर तेजोमडल का होना, तथा अन्धकार होने पर दस दिशाओ मे प्रकाश होना।
१३ जहा-जहा पर तीर्थङ्कर पधारे वहा के भूभाग का समतल होना।
१४ जहा-जहा पधारे वहा-वहा कटको का अधोमुख हो जाना।
१५ जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ ऋतुओ का अनुकूल होना।
१६ जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ-वहाँ सवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यन्त क्षेत्र का शुद्ध होना।

---

६. समवायाङ्ग ३४, सूत्र, १ पृ० ७१, मुनि कमल सम्पादित

१७ मेघ द्वारा रज का उपशान्त होना।
१८ जानुप्रमाण देवकृत पुष्पो की वृष्टि होना एव पुष्पो के डठलो का अधोमुख होना।
१९ अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गध, एव स्पर्श का न होना।
२० मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गध, एव स्पर्श का प्रकट होना।
२१ योजन पर्यन्त सुनाई देने वाला हृदयस्पर्शी मधुर स्वर होना।
२२ अर्धमागधी भाषा मे उपदेश करना।
२३ उस अर्धमागधी भाषा का उपस्थित आर्य-अनार्य, द्विपद-चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरिसृपो की भाषा मे परिणत होना तथा उन्हे हितकारी, सुखकारी एव कल्याणकारी प्रतीत होना।
२४ पूर्वभव के वैरानुवन्ध से वद्धदेव, असुर, नाग सुपर्ण यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गधर्व, और महोरग का अरिहत के समीप प्रसन्नचित्त होकर धर्म सुनना।
२५ अन्यतीर्थिको का नत मस्तक होकर वन्दना करना।
२६ तीर्थङ्कर के समीप आकर अन्यतीर्थिको का निरुत्तर हो जाना।
२७ जहाँ-जहाँ तीर्थङ्कर भगवत पधारे वहा-वहा पच्चीस योजन पर्यन्त ईति—चूहे आदि का उपद्रव न होना।
२८ प्लेग आदि महामारी का उपद्रव न होना।
२९ स्वचक्र (स्व-सेना) का विप्लव न करना।
३० परचक्र (अन्य राज्य की सेना) का उपद्रव न होना।
३१ अधिक वर्षा न होना।
३२ वर्षा का अभाव न होना।
३३ दुर्भिक्ष न होना।
३४ पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियो का उपशान्त होना।

इस प्रकार अनेक लोकोपकारी सिद्धिया तीर्थङ्करो की होती है। अन्य साधारण मुक्त होने वाली आत्माओ मे इन सिद्धियो का अभाव होता है। वे प्राय तीर्थंकरो के समान धर्म प्रचारक भी नही होते। वे स्वय अपना विकास कर मुक्त हो जाते है किन्तु जन-जन के अन्तर्मानस पर चिरस्थायी व अक्षुण्ण आध्यात्मिक प्रभाव तीर्थङ्कर

की तरह नही जमा पाते। तीर्थङ्कर और अन्य मुक्त आत्माओ मे जो यह अन्तर है वह देहधारी अवस्था मे ही रहता है। देहमुक्त अवस्था मे नही।

प्रस्तुत अवसर्पिणीकाल मे चौवीस तीर्थङ्कर हुए है। पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव थे और चौवीसवे तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर। चौवीस तीर्थङ्करो के सम्बन्ध मे सब से प्राचीन उल्लेख दृष्टिवाद के मूलप्रथमानुयोग मे था, पर आज वह अनुपलब्ध है। आज सबसे प्राचीन उल्लेख समवायाङ्ग,[७] कल्पसूत्र[८] और आवश्यक निर्युक्ति[९] मे मिलता है। उसके पश्चात् त्रिषष्टिशलाकापुरुप-चरित्र, चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, महापुराण-उत्तरपुराण आदि ग्रन्थो मे विस्तार से प्रकाश डाला गया है। स्वतत्र रूप से भो एक-एक तीर्थङ्कर पर आचार्यों ने सस्कृत प्राकृत, अपभ्रश और अन्य प्रान्तीय भाषाओ मे अनेक ग्रन्थ लिखे है। अगले पृष्ठो मे उन्ही-प्राचीन ग्रन्थो के प्रकाश मे बावीसवे तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के सम्बन्ध मे विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। साथ ही भगवान् अरिष्टनेमि के समय मे पैदा हुए वासुदेव श्री कृष्ण के सम्बन्ध मे भी चिन्तन किया जायेगा। यहाँ हमे अब सक्षेप मे यह देखना है कि भारतीय सस्कृति मे वासुदेव का क्या स्थान रहा है।

जैन दृष्टि में वासुदेव ·

जैन साहित्य मे चौवीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ प्रति वासुदेव और नौ बलदेव, इन तिरेसठ व्यक्तियो को श्लाघनीय और उत्तम पुरुष माना है। स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, आवश्यक निर्युक्ति आदि मे उन सभी के नाम,[१०] उनके माता पिता के नाम,[११] उनकी

---

७ चउव्वीस देवाहिदेवा, पण्णत्ता त जहा—
उसभ-अजित-सभव-अभिणदण-सुमइ-पउमप्पह-सुपास-चदप्पह-सुविधि-सीअल--सिज्जस-वासुपुज्ज-विमल--अणत--धम्म-सति-कुथु--अर-मल्ली-मुणिसुव्वय-नमि-नेमी-पास-वद्धमाणा।

—समवायाग—२४

८ कल्पसूत्र

९ आवश्यक निर्युक्ति ३६९

लम्बाई, चौड़ाई और आयुष्य के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। समवायाग मे वलदेव-वासुदेव का परिचय देते हुए लिखा है—

"वलदेव और वामुदेव दशारवश के मडन सदृग थे। वे उत्तम थे, मध्यम थे, प्रधान थे, और वे ओजस्वी, तेजस्वी, बलशाली और सुशोभित शरीर वाले थे। वे कान्त, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप और सुखशील थे, उनके पास प्रत्येक व्यक्ति सुख रूप से पहुँच सकता है। सभी लोग उनके दर्शन के पीपासु है। वे महावली हैं। वे अप्रतिहत और अपराजित है। शत्रु के मर्दन करने वालो तथा हजारो शत्रुओ का मान नष्ट कर देने वाले है। दयालु, अमत्सरी, अचपल और अचण्ड हैं। मृदु मजुल, और मुस्कराते हुए वार्तालाप करने वाले है। उनकी वाणी गभीर, मधुर और सत्य होती है। वे वात्सल्य युक्त होते है, शरण योग्य है। उनका शरीर लक्षण व चिह्न युक्त तथा सर्वाङ्ग सुन्दर होता है। वे चन्द्र की तरह शीतल है, ईर्ष्या रहित है। प्रकाण्ड दडनीति वाले है। गभीर दर्शन वाले है। वलदेव तालध्वज और वासुदेव गरुडध्वज है। वे महान् धनुष्य का टकार करने वाले है। वे महान् वल मे

---

१० तिविट्ठे य दुविट्ठे य सयभूपुरिसुत्तमे पुरिससीहे य तह पुरिसपु डरीए दत्ते नारायणे कण्हे। —समवायाङ्ग १५८

(ख) आवश्यक निर्युक्तिभाष्य गाथा ४०

११ (क) जवुद्दीवे ण दीवे भारहेवासे इमीसे ओसप्पिणीए नववलदेव नववासुदेव-पियरो होत्था, त जहा, गाहाओ-
पयावई य वभो, सोमो रुद्दो सिवो महासिवो य।
अग्गिसिहो य दसरहो नवमो भणिओ य वासुदेवो॥
जवुद्दीवे ण दीवे भारहेवासे इमीसे ओसप्पिणीए णव-वासुदेव-मायरो होत्था, त जहा—गाहा-
मियावई उमा चेव पुहवी सीया य अम्मया।
लच्छिमई सेसमई केकई देवई तहा॥ —समवायाग-१५८

(ख) स्थानाग ९ स्थान, सू० ८८.

(ग) आवश्यक निर्युक्ति गा० ४११, निर्युक्ति की गाथा मे रुद्र के वाद मोम का नाम है।
माता के नाम के लिए आवश्यक निर्युक्ति गा० ४०९ देखो

समुद्र की तरह हैं। रणागण मे दुर्धर धनुर्धर है। वे धीर पुरुष है और युद्ध मे कीर्ति प्राप्त करने वाले है। महान् कुल मे पैदा हुए है। वज्र के भी टुकडे कर दे ऐसे वलवान् है। वे अर्ध भरत के अधिपति होते है। वे सौम्य है। राजवश के तिलक के समान है, अजित है, अजित रथ है। बलदेव हाथ मे हल रखते है। वासुदेव धनुष्य रखते है। वासुदेव शख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते है। उनके मुकुट मे श्रेष्ठ उज्ज्वल शुक्ल विमल कौस्तुभमणि होती है। कान मे कु डल होते है जिससे उनका मुख-शोभायमान रहता है। उनकी आँखे कमल सदृश होती है। उनकी छाती पर एकावली हार लटका रहता है। उनके श्रीवत्स का लाछन है। सर्व ऋतु मे सभवित ऐसे पचरगी सुगधित सुन्दर पुष्पो की माला उनके गले मे शोभायमान होती है, उनके अंगोपाग मे ८०० प्रशस्त चिह्न शोभित होते है। वे मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र के सदृश ललितगति होते है। क्रौच पक्षी के मधुर और गभीर शारद स्वर जैसा उनका निनाद है। बलदेव नीले रग के और वासुदेव पीले रग के वस्त्र पहनते है। वे तेजस्वी, नरसिह, नरपति, नरेन्द्र है। वे नरवृषभ है और देवराज इन्द्र के समान है। राजलक्ष्मी से शोभित वे राम और केशव दोनो भाई-भाई होते है।[१२]

जैन साहित्य मे वसुदेव के पुत्र को ही वासुदेव नही कहा गया है। नौ वासुदेवो मे केवल एक श्री कृष्ण ही वसुदेव के पुत्र है, अन्य नही। वासुदेव यह एक उपाधि विशेष है। जो तीन खण्ड के अधिपति होते है, जिनका तीन खण्ड पर एकच्छत्र साम्राज्य होता है वे वासुदेव कहलाते है। उन्हे अर्धचक्री भी कहा जाता है। यह पद निदानकृत होता है।[१३] वासुदेव के पूर्व प्रतिवासुदेव होते है, उनका भी तीन खण्ड पर साम्राज्य होता है। जीवन की साध्यवेला मे वे अधिकार के नशे मे बेभान बन जाते है और अन्याय अत्याचार करने लगते है। उस अत्याचार को मिटाने के लिए वासुदेव उनके साथ युद्ध करते है। युद्ध मे प्रतिवासुदेव वासुदेव से पराजित

---

१२ समवायाग १५८
(ख आवश्यक निर्युक्ति गा० ४१५

१३ समवायाग १५८

होते है। युद्ध के मैदान मे वासुदेव के हाथ से प्रतिवासुदेव की मृत्यु होती है, दूसरे शब्द मे कहा जाय तो स्वचक्र से उनका हनन होता है। प्रति वासुदेव के तीन खण्ड के राज्य को वासुदेव प्राप्त कर लेते है। वासुदेव महान् वीर होते है, कोई भी युद्ध मे उन्हे पराजित नही कर सकता। कहा जाता है कि वासुदेव अपने जीवन मे तीन सौ साठ युद्ध करते है, पर कभी भी किसी युद्ध मे वे पराजित नही होते। वासुदेव मे वीस लाख अष्टापदो की शक्ति होती है,[१४] किन्तु वे शक्ति का कभी भी दुरुपयोग नही करते। जैन परम्परा मे वासुदेव को भी ईश्वर का अंश या अवतार नही माना है। वासुदेव शासक है, पर उपास्य नही। तिरेसठ श्लाघनीय पुरुषो मे चौवीस तीर्थङ्कर ही उपास्य माने गय है। वासुदेव भी तीर्थङ्कर की उपासना करते है। भौतिक दृष्टि से वासुदेव उस युग के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक होते है, पर निदानकृत होने से वे आध्यात्मिक दृष्टि से चतुर्थ गुणस्थान से आगे नही वढ पाते।[१५] वासुदेव स्वय तीर्थङ्कर व श्रमणो की उपासना करते है। श्री कृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि के परमभक्त थे। जब अरिष्टनेमि द्वारका पधारते तव श्री कृष्ण अन्य कार्य छोडकर उन्हे वन्दन के लिए अवश्य जाते। अरिष्टनेमि से श्री कृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे तथापि आध्यात्मिक दृष्टि से अरिष्टनेमि ज्येष्ठ थे, अत. वे उनकी उपासना करते थे।[१६]

वैदिक दृष्टि में वासुदेव .

वैदिक परम्परा मे वासुदेव को विष्णु का अवतार माना है।[१७]

---

१४ समवायाग १५८

(ख) आवश्यक भाष्य गा० ४३

१५ समवायाग १५८

(ख) आवश्यक निर्युक्ति ४१५

१६ अन्तकृद्दशाग

१७ (क) महाभारत, भीष्म पर्व अ० ६५

(ख) सर्वेपामाश्रयो विष्णुरैश्वर्य–विधिमास्थित ।
मर्वभूतकृतावासो वासुदेवेति चोच्यते ।
—महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ३४७, श्लो० ६४

महाभारत मे वासुदेव का उल्लेख आया है किन्तु वासुदेव के स्वरूप के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद है। वासुदेव वैदिक परम्परा मे कब से उपास्य रहे है इसको बताने के लिए भण्डारकर,[१८] लोकमान्य तिलक[१९] डाक्टर राय चौधरी[२०] आदि विद्वानो ने पाणिनि व्याकरण[२१] के सूत्रो का प्रमाण प्रस्तुत किया है, और इसके आधार पर उन्होने बताया है कि ईसा के सात शताब्दी पूर्व वासुदेव की उपासना प्रचलित हो गई थी।[२२] किन्तु वासुदेव की भक्ति का विकसित रूप हमे महाभारत मे मिलता है। प० रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'सूरदास' मे स्पष्ट लिखा है कि 'वासुदेव भक्ति का तात्विक निरूपण महाभारत के काल मे ही प्रचलित हुआ।'[२३] विष्णु और वासुदेव का ऐक्य भी महाभारतकार ने स्वीकार किया है। वे विष्णु को ही वासुदेव का रूप मानते है।[२४]

वैदिक परम्परा मे श्री कृष्ण का अपर नाम ही वासुदेव है। डा० भण्डारकर का अनुमान है कि 'वासुदेव' भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम था।[२५] महाभारत के शान्तिपर्व मे यह कहा गया है कि सात्वत या भागवत धर्म का सबसे पहले कृष्ण वासुदेव ने अर्जुन को उपदेश दिया।[२६] यहाँ पर वासुदेव और श्री कृष्ण दो पृथक व्यक्ति न होकर एक ही है, किन्तु डॉ० भण्डारकर ने इन दोनो

---

१८. Collected Works of Sir R G. Bhandarkar Vol. IV, P. 415

१९. गीता रहस्य पृ० ५४६-४७, बालगगाधर तिलक

२० H Raychaudhary, The Early History of the Vaishanava Seet. P 24

२१ 'वासुदेवार्जुनाभ्या वुन्'—पाणिनि अष्टाध्यायी ४।३।९८ सूत्र के वसुदेवक शब्द से वसुदेव की भक्ति करने वाला सिद्ध होता है।

२२. देखिए—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० ११

२३ सूरदास (भक्ति का विकास) पृ० २६

२४. महाभारत, शान्तिपर्व अ० ३४७, श्लो० ९४

२५. H Raychaudhuri, Early History of the Vaishanava Seet, P. 44

२६ महाभारत, शान्तिपर्व अ० ३४७-४८

को पृथक्-पृथक् स्वीकार किया है। उनकी यह धारणा है कि प्रारभ मे ये दो पृथक अस्तित्व वाले देवता थे जो बाद मे एक हो गये। इस मत को परवर्ती विद्वानो ने स्वीकार नही किया है। महाभारत मे जिस श्री कृष्ण का वर्णन है वह एक ही है, उसके नाम चाहे अनेक हो। गीतारहस्य मे तिलक ने स्पष्ट लिखा है—'हमारा मत यह है कि कृष्ण चार पॉच नही हुए है, वे केवल एक ही ऐतिहासिक पुरुप थे।'[२७] हेमचन्द्र रायचौधरी ने अपने वैष्णवधर्म सम्बन्धी ग्रन्थ मे कृष्ण और वासुदेव का पार्थक्य स्वीकार नही किया है। अपने मत की पुष्टि में उन्होने कीथ के लेख का उद्धरण दिया है।[२८]

वासुदेव और श्री कृष्ण का सामजस्य घटित करने के लिए यह भी कहा जाता है कि वासुदेव मुख्य नाम था और 'कृष्ण' गोत्र-सूचक नाम के रूप मे प्रयुक्त होता था। 'घटजातक' मे वासुदेव के साथ कृष्ण या कान्ह एक विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उससे भिन्न व्यक्तित्व सूचित नही होता। दीघनिकाय के अनुसार वासुदेव का ही दूसरा नाम कृष्ण था।[२९] महाभाष्यकार पतजलि ने एक स्थान पर लिखा है कि 'कृष्ण ने कस को मारा और दूसरे स्थान पर लिखा है कि वासुदेव ने कस को मारा।' इस कथन से यह ज्ञात होता है कि वासुदेव और श्रीकृष्ण एक ही है। महाभाष्य मे वासुदेव शब्द चार वार और कृष्ण शब्द एक बार

---

२७ गीतारहस्य अथवा कर्मयोग, पृ० ५४८ (पाद टिप्पणी सहित) श्री वालगगाधर तिलक

२८ "But it is impossible to accept the Statement that Krishna whom epic tradition ideutifies with vasudeo was originally an altogether diffesent individual. On the coutrary, all available evidence, Hindu, Buddhist, and Greek, points to the Correctness of the identity, and we agree with keith when he says that "the separation of Vasudeva and krishna as two eutities it is impossible to justify"

—H Ray chaudhuri, early history of the Vaishanav Seet., P 36

२९. देखिए हिन्दी साहित्य मे राधा पृ० ३१ से उध्धृत

आया है। पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि जैसे वैयाकरणो के ग्रन्थो मे 'वासुदेवक' एव "जघान कस' किल वासुदेव ' आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरवार मे मकदूनिया के राजदूत मैगस्थनीज ने सात्वतो और वासुदेव कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है। डॉ रामकुमार वर्मा कृष्ण को वासुदेव का पर्यायवाची मानते है।[30] आर जी भण्डारकर ने अपने वैष्णविज्म और शैविज्म ग्रन्थ मे वासुदेव सम्वन्धी शिलालेखो का वर्णन किया है।[31]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक परम्परा मे वासुदेव अनेक नही, अपितु एक ही हुए है। श्री कृष्ण को ही वहाँ वासुदेव कहा गया है।[32] किन्तु जैन परम्परा मे वासुदेव नौ हुए है। श्री कृष्ण उन सभी मे अन्तिम वासुदेव थे।[33] श्री कृष्ण को जैन और वैदिक दोनो ही परम्पराओ ने वासुदेव माना है। हम अगले अध्यायो मे श्री कृष्ण के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जैन और वैदिक दृष्टि से चिन्तन करेंगे।

३० हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—
डा० रामकुमार वर्मा पृ० ४७२

३१. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर पृ० ८५

३२. वृष्णीना वासुदेवोऽस्मि पाण्डवाना धनञ्जय। —गीता १०।३७

३३. नवमो वासुदेवा ऽ गमिति देवा जगुस्तदा—हरिवशपुराण ५५।६०

अरिष्टनेमि : पूर्वभव

●

- विराट् विश्व
- भारतीय दर्शन मे आत्मतत्त्व का विवेचन
- धनकुमार और धनवती
- सौधर्म देवलोक मे
- चित्रगति और रत्नवती
- माहेन्द्रकल्प मे
- अपराजित और प्रीतिमती
- आरण्य
- शंख
- अपराजित
- अरिष्टनेमि

अरिष्टनेमि : पूर्वभव

●

विराट् विश्व :

भारत के मूर्धन्य मनीषियो ने इस विराट्विश्व के सम्बन्ध मे विविध कल्पनाएँ की है। चैतन्याद्वैतवादी वेदान्त दर्शन का अभिमत है कि यह विश्व चैतन्यमय ही है, किन्तु जैन दर्शन इस मान्यता को स्वीकार नही करता। उसका स्पष्ट आक्षेप है कि यदि विश्व (प्रपच) की उत्पत्ति के पूर्व केवल एक चैतन्य ब्रह्म ही था, अन्य वस्तु नही थी, तो यह प्रपच रूप विश्व कहाँ से उत्पन्न हो गया ? शुद्ध ब्रह्म मे विकार कैसे आ गया ? 'पर' के सयोग विना विकार आ ही नही सकता। यदि माया के कारण विकार आया है तो माया क्या है ? वह सत् रूप है या असत् रूप ? यदि वह सत् रूप है तो अद्वैतवाद किस प्रकार ठहर सकता है ? क्या ब्रह्म और माया यह द्वैत नही है ? यदि उसे नास्ति रूप या असत् माना जाय तो क्या वह आकाश कुसुमवत् नही है ? वह शुद्ध ब्रह्म को किस प्रकार विकृत कर सकती है ? जव वस्तु का अस्तित्व ही नही है तो वह किस प्रकार कर्ता वन सकता है ? कर्ता वही वन सकता है जो भाव-रूप और क्रियाशील होगा। किन्तु इन प्रश्नो का सही समाधान वेदान्त दर्शन के पास नही है।

चार्वाक दर्शन चैतन्याद्वैतवादी दर्शन के विपरीत है। चार्वाक दर्शन नास्तिक दर्शन है। वह विश्व को जड़ रूप ही मानता है।

चैतन्य नामक पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता को वह स्वीकार नहीं करता। जैन दर्शन उसके सम्बन्ध में भी कहता है कि केवल प्रकृति ही है, आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं है तो जड़ प्रकृति में यह सुख और दु:ख की अनुभूति किसे होती है? ज्ञान-दर्शनमयी चेतना का उद्भव स्थान क्या है? यह विवेक और बोध क्या पृथ्वी आदि जड भूतो के धर्म है? आत्मा का निषेध करने वाला कौन है? जड प्रकृति मे यह धर्म सभव नही है। जड वस्तुओ मे, जैसे ईंट और पत्थरों मे, कोई अनुभूति नही होती, वे एक सदृश ही रहते है, उन्हे कितना भी पीटा जाय पर कीडो और मकोडो की तरह आत्म-रक्षा का प्रयत्न उनमे नही होता। चार्वाक दर्शन के पास इन प्रश्नो का कोई उत्तर नही है।

जैन दर्शन विश्व को चैतन्य और जड रूप मे उभयात्मक मानता है। वह अनादि और अनन्त है, अतीत काल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। पर्याय रूप मे परिवर्तन होने पर भी द्रव्य रूप से सदा अवस्थित रहता है।

भारतीय दर्शन में आत्म तत्त्व का विवेचन .

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करनेवाले दर्शनो का भी आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध मे परस्पर एक मत नही है। सभी की विचार-धाराए पृथक्-पृथक् दिशा मे प्रवाहित है।

साख्य दर्शन के अनुसार आत्मा कूटस्थ नित्य है। उनका अभिमत है कि आत्मा तीनो कालो मे कूटस्थ—एक रूप रहता है, किञ्चित् मात्र भी उसमे परिवर्तन नही होता। जो सुख, दु:ख आदि प्रत्यक्ष रूप मे अनुभूत होते है, वे आत्मा के नही, प्रकृतिजन्य बुद्धि के धर्म हैं। स्मरण रहे कि साख्यदर्शन के अनुसार बुद्धि आत्मा का नही, प्रकृति का कार्य है।[1]

साख्य दृष्टि से आत्मा अकर्ता है। किसी भी प्रकार के कर्म का कर्ता आत्मा नही, प्रकृति है। आत्मा तो केवल प्रकृति के दृश्य को देखने वाला द्रष्टा है, वह मूढ है, जो अपने आपको कर्ता मानता है।[2]

---

१. प्रकृतेर्महान् महतोऽहकारस्तस्माद् गणश्च षोडशक ।

—साख्यतत्त्वकारिका, २२

वेदान्त दर्शन भी आत्मा को कूटस्थ नित्य मानता है किन्तु उसकी यह धारणा है कि ब्रह्म रूप आत्मा एक है, साख्य के समान अनेक नही। प्रत्यक्ष रूप मे जो नाना भेद दिखाई दे रहे है वे भेद माया के कारण से है, आत्मा स्वत अनेक नही है। पर ब्रह्म में जब माया का स्पर्श हुआ, तव वह पर ब्रह्म एक से अनेक हो गया। वेदान्त आत्मा को जहा एक मानता है, वहा उसे सर्वव्यापी भी मानता है। सम्पूर्ण विश्व मे एक ही आत्मा ओतप्रोत है, आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। उसका यह सिद्धान्त-सूत्र है—

"सर्वं खल्विद ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन"

वैशेपिक दर्शन अनेक आत्माएँ स्वीकार करता है। और साथ ही उन सबको सर्वव्यापी भी मानता है। उसकी यह धारणा है कि आत्मा एकान्त नित्य है, उसमे परिवर्तन नही होता। जो कुछ भी सुख-दु ख आदि परिवर्तन दिखलाई देता है वह आत्मा की अवस्थाओ मे है, आत्मा मे नही। ज्ञान आत्मा का गुण है, किन्तु वह आत्मा को वधन मे डालने वाला है। जब तक यह ज्ञान गुण सम्पूर्ण रूप से नष्ट नही होता तव तक मोक्ष नही हो पाता। तात्पर्य यह है कि आत्मा स्वरूपत जड है। आत्मा से पृथक् पदार्थ के रूप मे माने जाने वाले ज्ञान गुण के सम्वन्ध से आत्मा चेतन है, स्वरूपत नही।

वौद्ध दर्शन आत्मा को एकान्त क्षणिक ज्ञानसन्तान के रूप मे मानता है। प्रत्येक ज्ञान-क्षण प्रतिपल-प्रतिक्षण नष्ट होता है और नूतन उत्पन्न होता है। किन्तु उनका प्रवाह अनादि अनन्त काल से चला आ रहा है। आध्यात्मिक साधना के द्वारा जब ज्ञानसन्तान अथवा चित्तसन्तति पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है, तब नवीन चित्त उत्पन्न नही होता और वही मुक्ति कहलाती है। इस प्रकार जब चित्तसन्तति नही रहेगी तव सुख-दु ख भी नही रहेगा।

इन सभी दर्शनो से भिन्न जैन दर्शन आत्मा के सम्वन्ध मे अपनी मौलिक दृष्टि रखता है। उसका स्पष्ट मन्तव्य है कि आत्मा कूटस्थनित्य नही, अपितु परिणामी-परिवर्तनशील नित्य है। क्योकि आत्मा नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, और देव आदि नाना गतियो मे

---

२. प्रकृते क्रियमाणानि, गुणै कर्माणि सर्वश,
अहकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। —गीता ३।२७

परिभ्रमण करता है। कभी वह सुख सागर पर तैरता है, कभी दारुण दु ख भोगता है। कूटस्थनित्य मानने पर यह परिवर्तन नही हो सकता। यदि सुख-दु ख को प्रकृति का धर्म माना जाय तो भी युक्ति-युक्त नही है, क्योकि मृत शरीर मे सुख-दु ख का अनुभव नही होता। परिणामीनित्य मानने का तात्पर्य यह है है कि आत्मा कर्म के अनुसार नाना गतियो मे परिभ्रमण करता है, नाना प्रकार के चोले धारण करता है, किन्तु आत्मतत्त्व के रूप मे सदा स्थिर रहता है। जिस प्रकार सुवर्ण नाना आभूपणो का आकार धारण करता हुआ भी स्थायी रहता है।

जैन दर्शन वेदान्त दर्शन की तरह आत्मा को एक और सर्वव्यापी भी नही मानता, क्योकि—सर्वव्यापी मानने पर सभी को एक सदृश सुख-दु ख का अनुभव होना चाहिए। सर्वव्यापी मानने से परलोक भी घटित नही हो सकता और न बधन व मोक्ष ही हो सकता है।

वैशेषिक-दर्शन ने ज्ञान को आत्मा का स्वाभाविक गुण नही माना है, किन्तु जैन दर्शन ज्ञान को आत्मा का स्वाभाविक गुण मानता है। ज्ञान से ही जड और चैतन्य की भेद रेखा खीची जाती है। यदि आत्मा मे से ज्ञान गुण निकल जाय तो फिर आत्मा, आत्मा नही है।

वौद्ध दर्शन ने आत्मा को क्षणिक माना है, किन्तु जैन दर्शन निरन्वय क्षणिक नही मानता। निरन्वय क्षणिक मानने से कर्म और कर्मफल का एकाधिकरण रूप सम्वन्ध भी सम्यक् रूप से घट नही सकता। एक व्यक्ति दुराचार का सेवन करे और दूसरे को दण्ड मिले यह कहाँ का न्याय है? दुराचार करने वाले का कृत कर्म निष्फल गया और उधर दुराचार न करने वाले दूसरे आत्मा को बिना कार्य किये ही फल भोगना पडा, यह उचित नही।

चार्वाक दर्शन चेतना को पॉच भूतो से उत्पन्न हुआ मानता है, पर उसका भी मन्तव्य तर्कसगत नही है। भौतिक पदार्थो से आत्मा भिन्न है। पृथ्वी, पानी, तेज वायु और आकाश इन पाँच जड भूतो के समिश्रण से चैतन्य आत्मा कैसे उत्पन्न हो सकता है? जड के सयोग से जड की ही उत्पत्ति होती है, चैतन्य की नही। कारण के अनुरूप ही कार्य होता है। उत्पन्न भी तो वही वस्तु होती है जो पहले न हो, किन्तु आत्मा तो पूर्व मे था वर्तमान मे है और भविष्य

मे रहेगा । वह अनादि अनन्त है । आत्मा अरूपी है । रूप, रस, गध आदि पुद्गल के धर्म है, आत्मा के नही । दीपक स्व-पर-प्रकाशक होता है, उसे देखने के लिए दूसरे दीपक की आवश्यकता नही होती वैसे ही आत्मा भी स्व-पर-प्रकाशक है । उसको निहारने के लिए किसी भी भौतिक पदार्थ की आवश्यकता नही है । स्वानुभूति ही आत्मा की सिद्धि का सबसे बडा प्रमाण है ।

जैन दर्शन आत्मा को सर्वव्यापी नही, अपितु शरीरप्रमाण मानता है । दीपक के प्रकाश की भाँति उसके प्रदेशो का भी सकोच और विस्तार होता है ।

आत्मा निश्चय दृष्टि से शुद्ध, निर्मल और विकाररहित है किन्तु कषाय-मूलक वैभाविक परिणति के कारण वह अनादि काल से कर्मबधन से आबद्ध है । कर्म-मल से लिप्त होने के कारण ही वह अनादिकाल से ससार-चक्र मे घूम रहा है । चौरासी लाख जीव-योनियो मे भ्रमण कर रहा है । जैन दर्शन का मन्तव्य है कि आत्मा जो आज अल्पज्ञ है, वह साधना के द्वारा सर्वज्ञ बन सकता है । सम्यग्दर्शन के प्रादुर्भाव के पश्चात् यम नियम, तपश्चरण आदि सद्गुणो का विकास कर पूर्वबद्ध कर्मो को नष्ट कर वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो सकता है । जैनाचार्यो ने प्रस्तुत कथन का समर्थन करने के लिए ही तीर्थकरो के पूर्वभवो का निरूपण किया है । तीर्थकर का जीव एक दिन हमारे समान ही विषय वासना के चगुल मे फसा हुआ था, किन्तु विषय-वासना से विमुख होकर साधना कर वह एक दिन जन से जिन बन जाता है । उपासक से उपास्य बन जाता है ।

भगवान् अरिष्टनेमि प्रस्तुत अवसर्पिणी काल के बावीसवे तीर्थकर है । त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, भव-भावना, नेमिनाहचरिउ, (आचार्य हरिभद्र द्वितीय) तथा कल्पसूत्र की टीकाओ मे भगवान् अरिष्टनेमि के नौ भवो का वर्णन मिलता है और हरिवश पुराण, उत्तरपुराण आदि दिगम्बर ग्रन्थो मे पाँच भवो का उल्लेख है । भगवान् अरिष्टनेमि के जीव ने सर्वप्रथम धनकुमार के भव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था । राजीमती के जीव के साथ भी उनका उसी समय से स्नेह सम्बन्ध चला आ रहा था । सक्षेप मे उनके पूर्व भवो का वर्णन प्राचीन ग्रन्थो के प्रकाश मे इस प्रकार है :—

(१) धनकुमार और धनवती :

भगवान् अरिष्टनेमि के जीव ने एक बार जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे अचलपुर नगर मे जन्म लिया।[1] उसके पिता का नाम राजा विक्रमधन था[2] और माता का नाम धारिणी था।[3] एक समय महारानी धारिणी अपने शयन कक्ष मे आनन्द के साथ सो रही थी। रात्रि का चतुर्थ प्रहर था। उसने उस समय एक बडा विचित्र स्वप्न देखा--"एक सुहावना आम का वृक्ष है, बौर आ रहे है, मजरियाँ फूट रही है। उसकी भीनी-भीनी महक चारो ओर फैल रही है। भ्रमर सौरभ से आकृष्ट होकर उस पर मडरा रहे है। कोयल की मीठी स्वर लहरी से सारा वन प्रान्त मुखरित हो रहा है। ऐसे सुन्दर आम के वृक्ष को लेकर एक तेजस्वी पुरुष आता है और वह महारानी को सकेत कर कहता है—यह सुन्दर और सुहावना वृक्ष आज तुम्हारे आगन मे रोपा जा रहा है। भविष्य मे यह फलयुक्त होकर विभिन्न स्थानो पर नौ बार रोपा जायेगा।"[4]

---

१ जवूद्वीपे द्वीपेऽत्रैव क्षेत्रेऽत्रैवास्ति भारते।
अचलाया शिरोरत्न नाम्नाचलपुर पुरम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३

२ (क) तत्राभूद्विक्रमधनाभिधानो वसुधाधव।
—त्रिषष्टि० ८।१।४

(ख) धवलेइ सो नरिंदो त पालइ विक्कमधणो त्ति।
—भव-भावना गाथा ७। पृ० ८, मलधारी हेमचन्द्र

३ (क) सयलगुणधरणओ इव धारिणि नामेण विक्खाया।
—भव-भावना गा० ११, पृ० ८

(ख) त्रिषष्टि० ८।१।८

४ सान्यदा यामिनीशेषे चूत मत्तालिकोकिलम्।
उत्पन्नमजरीपुञ्ज फलित स्वप्नमैक्षत॥
तेन पाणिस्थितेनोचे कोऽप्येव रूपवान् पुमान्।
तवागणे रोप्यतेऽसावद्य चूतोऽयमुच्चकै॥
कियत्यपि गते कालेऽन्यत्रान्यत्र निधास्यते।
उत्कृष्टोत्कृष्टफलभाग्नववारावधिर्ह्यसौ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।११-१२

स्वप्न देखकर रानी अत्यन्त प्रमुदित हुई। उसने स्वप्नविशेषज्ञ के सामने स्वप्न की सम्पूर्ण वार्ता कही। स्वप्नविशेषज्ञ ने कहा—"तुम्हारे प्रतिभावान् पुत्र होगा, नौ बार वृक्ष रोपने की बात का रहस्य मेरी मति की गति से परे है।"[५]

समय पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम धनकुमार रखा गया।[६] उस सुषमामय गुलाबी शैशव पर जिसकी भी नजर टिकी, टिकी ही रह गई, जैसे जादू से बध गई हो। उसकी सुकुमारता उसकी सरलता, उसकी भोली-भाली लुभावनी सूरत और मीठी बोली सभी को मुग्ध कर लेती थी। एक दिन वह बचपन की देहली को पारकर यौवन के रग-मच पर पहुँच गया।

उस समय कुसुमपुर का अधिपति सिह राजा था। उसकी रानी का नाम विमला था, और पुत्री का नाम धनवती था। धनवती भी रूप-सौन्दर्य मे अप्सरा से कम नही थी। एकदिन वह अपनी सहेलियो के साथ क्रीडा करने के लिए उद्यान मे गई। प्राकृतिक सौन्दर्यसुषमा के सामने उसे कृत्रिम सौन्दर्य फीका लगने लगा। उद्यान मे परिभ्रमण करते हुए उसने अशोक वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक चित्रकार को देखा। कमलिनी नामक दासी उसके पास गई। उसने उसके पास धनकुमार का चित्र देखा तो दासी ठगी-सी रह गई। क्या विश्व मे इतना सुन्दर पुरुष हो सकता है?[७] उसने चित्रकार से जिज्ञासा की कि बताओ यह चित्र किसका है? तब चित्रकार ने विस्तार से धनकुमार का परिचय दिया, और कहा—"धनकुमार का

---

५ (क) होही पहाणपुत्तो तुह एय सुमिणएण वुज्झामो।
नववारारोवणवडअर तु ज त न याणामो॥
—भव-भावना १८। पृ० ९

(ख) त्रिषष्टि० ८।१।१५।

६ अकारि दिवसे पुण्ये धन इत्यभिधापि च॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१९

(ख) भव-भावना ९

७ रूपेण विस्मिता तेन सा प्रोचे चित्रकृन्नरम्।
कस्येदमद्भुत रूप सुरासुरनरेष्वहो॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३१

रूप तो इतना अधिक सुन्दर है कि उसका लाखवा हिस्सा भी मै चित्रित नही कर सका हूँ।[८] राजकुमारी धनवती ने भी चित्र देखा। वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने उसी समय यह दृढ सकल्प किया कि "इस जीवन मे मै धनकुमार के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति के साथ पाणिग्रहण नही करूगी।"

किसी समय राजा सिह का एक दूत कार्यवश राजा विक्रम के दरबार मे गया। उसने वहाँ पर युवराज धनकुमार को देखा। धनकुमार की सौन्दर्य-सुषमा को देखकर वह प्रभावित हुआ। लौटकर उसने राजा सिह से निवेदन किया। राजा सिह ने जब यह सुना तो उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने दूत को कहा—तुम्ही जाकर राजा विक्रम से निवेदन करके राजकुमारी के साथ धनकुमार का सम्बन्ध निश्चित करो। किसी गुप्तचर ने राजकुमारी धनवती को सूचना दी कि दूत तुम्हारा सम्बन्ध निश्चित करने के लिए जा रहा है। धनवती ने अपनी अन्तरग सहेली के द्वारा दूत को अपने पास बुलाया और अपने हृदय के उमडते हुए भावो को पत्र मे लिखकर दूत को दिया।[९] दूत ने वहा जाकर प्रथम राजा विक्रम को राजा सिह का सन्देश सुनाया,[१०] फिर एकान्त मे धनकुमार को लेजाकर राजकुमारी धनवती का प्रेम-पत्र दिया। राजकुमारी के स्नेह-स्निग्ध पत्र को पढकर धनकुमार प्रेम से पागल हो गया।[११] उसने भी उसी समय

---

८ (क) अय खलु मयाऽलेखि युवा निरुपमाकृति ।
धनोऽचलपुराधीशश्रीविक्रमधनात्मज ॥
प्रत्यक्ष प्रेक्ष्य यस्त हि प्रेक्षते चित्रवर्तिनम् ।
स कूटलेखक इति मा निन्दति मुहुर्मुहु ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३५-३६,

(ख) भव-भावना पृ० १२

९ अर्पणीयो धनस्याय मल्लेख इति भाषिणी ।
धनवत्यार्पयत्तस्य लिखित्वा पत्रक स्वयम् ॥
—त्रिषष्टि० ४।१।६९

१०. सोऽप्यूचे कुशल सिह इह मा प्राहिणोत्पुन
सुता धनवती दातु त्वत्सुताय धनाय स ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।७२

राजकुमारी को पत्र लिखा, और प्रेम के प्रतीक के रूप मे एक मुक्ता हार भी प्रेषित किया।[12]

दूत सगाई निश्चित कर पुन अपने स्थान पर लौट आया। राजकुमारी भी पत्र के साथ पुरस्कार को प्राप्त कर आनन्द से नाचने लगी।

योग्य समय पर राजकुमार का राजकुमारी के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। दोनो एक दूसरे को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न थे।

एक समय राजकुमार उद्यान मे घूमने के लिए गया। वहा उसने देखा चतुर्ज्ञानी वसुन्धर मुनि प्रवचन कर रहे है। वह भी मुनि के प्रवचन को सुनने के लिए बैठ गया। उस समय राजा विक्रम धन, धारिणी रानी और धनवती ये तीनो भी प्रवचन सुनने के लिए वहा पर उपस्थित हुए। प्रवचन पूर्ण होने पर राजा विक्रमधन ने मुनि से प्रश्न किया - भगवन् ! यह धनकुमार जब गर्भ मे आया था तब इसकी माता ने स्वप्न देखा था कि नौ बार आम का वृक्ष विभिन्न स्थानो पर लगाया गया, इसका क्या तात्पर्य है ?[13]

---

११. प्रैपीद धनवत्येति जल्पन् पत्रकमार्पयत्।
तन्मुद्रा धनकुमार स्फोटयित्वा स्वपाणिना।
तत्पत्र वाचयामास मदनस्येव शासनम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।७६-७७

१२ विमृश्येति स्वहस्तेन लिखित्वा सोऽपि पत्रकम्।
धनवत्यै तस्य हस्ते हारेण सममार्पयत्॥—त्रिषष्टि०८।१।८०
(ख) इअ चिंतिऊण तेणवि तहेव भुज्ज सहत्थ परिलिहिय
तह मुत्ताहलहारो य पेसिओ तीए तस्स करे।
—भव-भावना १६०। पृ २०

१३ देशनान्ते व्यज्ञपयत्त विक्रमधनो नृप।
धने गर्भस्थिते माता स्वप्ने चूतद्रुमैक्षात॥
तस्योत्कृष्टोत्कृष्ट-फलस्यान्यत्रान्यत्र रोपणम्।
भविष्यति नवकृत इत्याख्यात्तत्र कोऽपि ना॥
नववारारोपणस्य कथयार्थं प्रसीद न।
कुमारजन्मनाप्यन्यज्ज्ञात स्वप्नफल मया॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१०१ से १०३

मुनि ने अपने विशिष्ट ज्ञान से बताया कि—यह धनकुमार इस भव से लेकर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट नौ भव करेगा और नौवें भव मे जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे बावीसवा अरिष्टनेमि नामक तीर्थङ्कर होकर शाश्वत सिद्धि प्राप्त करेगा।[१४]

मुनि की भविष्यवाणी सुनकर सभी को परम प्रसन्नता हुई।[१५]

एक समय धनकुमार और धनवती क्रीडा करने के लिए एक रमणीय सरोवर के किनारे पहुँचे। क्रीडा करते हुए उनकी दृष्टि यकायक अशोक वृक्ष के नीचे गई जहा पर एक मुनि मूर्छित अवस्था मे पडे हुए थे। वे दोनो उसी समय मुनि के पास आये, उनके पैरो से रक्त बह रहा था। ओष्ठ आदि सूखे हुए थे। भक्ति भावना से विभोर होकर उन्होने मुनि का उपचार किया। मूर्च्छा दूर हुई, मुनि स्वस्थ बने। राजकुमार ने विनम्रवाणी मे प्रश्न किया—भगवन्! आपकी यह अवस्था कैसे हुई? आपका नाम क्या है?[१६]

मुनि ने बताया—मेरा नाम मुनिचन्द्र है।[१७] मै सार्थ के साथ एक

---

१४ मनोऽवधिभ्या स मुनिर्ज्ञात्वाख्यन्ते सुतो धन ।
भवेनानेप नवोत्कृष्टोत्कृष्टान् भवान् गमी ।।
भवे च नवमेऽरिष्टनेमिर्नाम्नेह भारते ।
द्वाविंशस्तीर्थकृद्भावी यदुवशसमुद्भव ।।
—त्रिषष्टि० ८।१।१०६-१०७

(ख) भव भावना ३०६-३०९ पृ० २७

१५ वही ८।१।१०८

१६ तत्राशोकतरोर्मूले शान्तो रस इवागवान् ।
घर्मश्रमतृषाक्रान्त· शुष्कताल्वोष्ठपल्लव ।।
स्फुटत्पादाब्जरुधिरसिक्तोर्वीको विमूर्च्छित ।
धनवत्या मुनि कोऽपि पतन् पत्यु प्रदर्शित ।।
— त्रिषष्टि० ८।१।११२-११३

१७ सभ्रमादभिसृत्योभौ मुनिं तमुपचेरतु ।
शिशिरैरुपचारैस्तौ चक्रतुश्चाप्तचेतनम् ।।
त च स्वस्थ प्रणम्योचे धनो धन्योऽस्मि सर्वथा ।
कल्पद्रुम इवावन्या मया प्राप्तोऽस्मि सप्रति ।।
—त्रिषष्टि० ८।११४।११५

गाँव से दूसरे गाँव विहार कर रहा था। एक दिन मुझे दिशाभ्रम हो गया, जिससे सार्थ का साथ छूट गया। मै एकाकी रह गया। इस भयकर जगल मे कभी इधर और कभी उधर भ्रमण करता रहा। तीक्ष्ण काटो से पैर विध गये। क्षुधा और तृषा से आक्रान्त होकर वेहोश हो गया। अव तुम्हारे उपचार से मैं स्वस्थ हुआ हूँ। मुनि ने उस समय धर्मोपदेश दिया। उपदेश को सुनकर सर्वप्रथम धनकुमार और धनवती के जीव को सम्यक् दर्शन की उपलब्धि हुई। उन्होने उस समय श्रावक धर्म को स्वीकार किया।[१८]

यथा समय धनकुमार राजसिहासन पर आसीन हुआ। एक समय धनकुमार राजा को उद्यानपाल ने सूचना दी कि वर्षो पहले आपके सम्वन्ध मे जिस वसुन्धर मुनि ने भविष्यवाणी की थी आज वे नगर के वाहर उद्यान मे पधारे हैं। धनकुमार और धनवती दोनों मुनिराज के प्रवचन सुनने को गये। मुनि के उपदेश को सुनकर ससार से विरक्ति हुई। अपने पुत्र जयन्तकुमार को राज्य देकर दोनो ने सयम ग्रहण किया।[१९] उनके साथ उनके भ्राता धनदत्त और धनदेव ने भी सयममार्ग स्वीकार किया। धनमुनि और धनवती ने उग्र तप और जप की साधना कर एक मासिक अनशन के साथ आयुष्य पूर्ण किया।[२०]

---

१८ तो मुणिवरेण सिद्धतसिंधुसारेण वयणमग्गेण।
सम्मद्दसणमती धणस्स उवदसिओ तत्थ ॥
तद्दसणम्मि हरिसेण पुलइओ सो न माइ अगेसु।
विन्नायतस्सरूवो मुणिऊण कयत्थमप्पाण ॥
पभणेइ मुनिवर सामि! तुज्झ अइगुरुपसायवरतरुणो।
भुवणत्तयस्स सार फल मए अज्ज सपत्त ॥

—भव-भावना गा० ३९९-४०१ पृ० ३३

(ख) धनवत्या सम सोऽथ मुनिचन्द्रमुने पुर.।
गृहस्थधर्मं सम्यक्त्वप्रधान प्रत्यपद्यत ॥

—त्रिपष्टि० ८।१।१२४

१९ वसुन्धराद्धनो दीक्षा धनवत्या सहाददे।
धनभ्राता धनदत्तो धनदेवश्च पृष्ठत ॥

—त्रिपष्टि० ८।१।१३२

२० त्रिपष्टि० ८।१।

(२) सौधर्म देवलोक मे :

धनमुनि और धनवती दोनो आयु पूर्णकर प्रथम सौधर्म कल्प मे शक्र के सामानिक महर्धिक देव हुए।[२१] धनमुनि के दोनो भाई भी महान् साधना कर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुए।[२२]

(३) चित्रगति और रत्नवती

प्रस्तुत भरत क्षेत्र के वैताढ्यगिरि की उत्तरश्रेणी मे सूरतेज नामक नगर था। वहा पर सूर नामक एक चक्रवर्ती राजा राज्य करता था।[२३] विद्युन्मति उस चक्रवर्ती की महारानी थी।[२४] एक दिन धनकुमार का जीव सौधर्म देवलोक का आयु पूर्ण कर विद्युन्मति की कुक्षि मे आया। शुभ दिन जन्म लेने पर बालक का नाम चित्रगति रखा गया।[२५]

वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणो मे शिवमन्दिर नामक नगर था। वहा का राजा अनगसिह था। रानी का नाम शशिप्रभा था। धनवती का जीव सौधर्म देवलोक की आयु पूर्ण कर वहा पर उत्पन्न

---

२१ (क) मासान्ते तौ विपद्योभौ कल्पे सौधर्मनामनि।
शक्रसामानिकौ देवावजायेता महर्द्धिकौ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१३५

(ख) इअ दुन्नि वि पवज्ज काऊण अणसण च अकलक।
सोहम्मे सामाणिअदेवा जाया महिड्ढीआ॥
—भव-भावना ४५७, पृ० २६

२२ (क) त्रिषष्टि० ८।१३६
(ख) भव-भावना ४५८

२३ इतोऽत्र भरते वैताढ्योत्तरश्रेणिभूपणे।
सूरतेज पुरे सूर इति खेचरचयप्रभु॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१३७

२४ वही ८।१।१३८

२५ पुण्येऽह्नि ददौ चित्रगतिरित्यभिधा पिता॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१४१

(ख) चित्तगइ त्ति पइट्ठिअमिमस्स नाम विभूईए।
—भव-भावना ४७५

हुआ। उसका नाम रत्नवती रखा गया।[२६] रत्नवती रूप मे देव कन्या के समान थी।

एक दिन राजा अनगसिंह ने किसी निमित्तज्ञ से प्रश्न किया—रत्नवती का पति कौन होगा ?

निमित्तज्ञ ने अपनी विद्या के बल से कहा—"जो तुम्हारे पास से खड्ग रत्न को ले जायगा, सिद्धायतन मे जिस पर देवगण पुष्पवृष्टि करेंगे, जो व्यक्ति मानव लोक मे मुकुट के समान शिरोमणि है, वही पुरुष रत्नवती का पति होगा।"[२७]

यह भविष्यवाणी सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ।

उस समय चक्रपुर का अधिपति सुग्रीव नामक राजा था। उसके यशस्वती और भद्रा नामक ये दो पत्निया थी। यशस्वती के सुमित्र और भद्रा के पद्म नामक पुत्र हुआ।[२८] दोनो राजकुमार समान वातावरण मे पले थे किन्तु उनके स्वभाव मे दिन-रात का अन्तर था। एक की प्रकृति सरल, सरस और विनीत थी, दूसरे की कठोर व मायायुक्त थी।[२९] एक दिन महारानी भद्रा ने विचारा—जब तक सुमित्र जीवित रहेगा तब तक मेरे पुत्र को राज्य नही मिल सकता। उसने भोजन मे सुमित्र को तीव्र जहर दे दिया। जहर से उसके सारे शरीर मे अपार कष्ट होने लगा। जब यह वृत्त राजा सुग्रीव

---

२६. इतश्चात्रैव वैताढ्ये दक्षिणश्रेणिवर्तिनी।
अनगसिंहो राजा भून्नगरे शिवमन्दिरे॥
पत्नी शशिमुखी तस्य नामतोऽभूच्छशिप्रभा।
च्युत्वा धनवतीजीवस्तस्या. कुक्षाववातरत्॥
....तस्या रत्नवतीत्याख्या पिता चक्रे शुभेऽहनि॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१४३ से १४६

२७ त्रिषष्टि० ८।१।१४८ से १५०
(ख) भव-भावना ४६३-४६५, पृ० ३६

२८ त्रिषष्टि ८।१।१५२-१५३

२९. सुमित्रस्तत्र गभीरो विनयी नयवत्सल·।
कृतज्ञोऽर्हच्छासनस्थ. पद्मस्त्वपरथाभवत्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१५४

चित्रगति ने मुस्कराते हुए कहा—क्या तुम इस लोहे के टुकडे से मुझे भयभीत करना चाहते हो ? धिक्कार है तुम्हे।[३७] तुम्हारा-मिथ्या अहकार क्षणभर मे मै नष्ट कर देता हूँ। उसने उसी समय विद्या के वल से चारो ओर भयकर अधकार कर दिया। उस गहरे अन्धकार मे कोई किसी को देख नही सकता था। चित्रगति ने अनगसिह के हाथ से खड्गरत्न छीन लिया और सुमित्र की वहिन को लेकर चल दिया।[३८]

शनै शनै अधकार कम हुआ। राजा अनग ने देखा—उसके हाथ से कोई खड्गरत्न लेकर भाग गया है। उसे निमित्तज्ञ का कथन स्मरण आया कि जो खड्गरत्न ले जायेगा वही रत्नवती का पति होगा।[३९]

चित्रगति ने सुमित्र को उसकी बहिन लौटा दी। वहिन के अपहरण से सुमित्र को वैराग्य हुआ। उसने सुयश केवली के पास दीक्षा ग्रहण की। नौ पूर्वो का अध्ययन किया। एक दिन सुमित्र मुनि एकान्त स्थान मे कायोत्सर्ग मुद्रा मे ध्यानस्थ खडे थे। उस समय उसका लघुभ्राता भद्रा का पुत्र पद्म वहा आया और उसने

ज्वालाशतदुरालोक द्विपल्लोकान्तकोपमम् ।
कृपाणरत्न तत्पाणावापपात क्षणादपि ॥
कृपाणपाणि स प्रोचे रे रेऽपसर वालक !
पुरतस्तिष्ठतश्छेत्स्ये शिरस्ते बिसकाडवत् ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२०४-२०६

(ख) भव-भावना

३७ ऊचे चित्रगतिश्चित्रमन्यादृगिव वीक्ष्यसे ।
वलेन लोहखडस्य धिक् त्वा स्ववलगर्वितम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२०७

३८ इत्युक्त्वा विद्यया ध्वान्त विचक्रे तत्र सर्वत ।
पुर स्थमप्यपश्यन्तो द्विपोऽस्थुर्लिखिता इव ॥
अथाच्छिदच्चित्रगतिस्त खड्ग तत्कराद्द्रुतम् ।
द्राक् सुमित्रस्य भगिनी जग्राह च जगाम च ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२०८-९

३९ त्रिषष्टि० ८।१।२१, ११ ।

क्रोध से सुमित्र मुनि के कलेजे मे तीर मारा, मुनि समभाव मे स्थिर रहे और आयु पूर्ण कर ब्रह्मदेवलोक मे इन्द्र के सामानिक देव वने।[४०]

पद्म प्रसन्नता से झूमता हुआ अपने महल की ओर आ रहा था कि मार्ग मे कृष्ण सर्प ने उसको डँसा, और वह आर्तध्यान-रौद्रध्यान मे मरकर सातवे नरक मे उत्पन्न हुआ।[४१]

सुमित्र मुनि के स्वर्गस्थ होने के समाचार श्रवण कर चित्रगति उसी समय सिद्धायतन पहुँचा। उस समय राजा अनगसिह भी अपनी पुत्री रत्नवती को लेकर वहाँ पर आया। सुमित्र मुनि का जीव, जो देव वना था, अवधिज्ञान से अपने पूर्व स्नेही चित्रगति को देखकर वहाँ आता है और चित्रगति के शोक को दूर करने के लिए उस पर पुष्पो की वृष्टि करता है और फिर स्वय प्रकट होकर कहता है— मित्र! तुम्हारे कारण से ही उस समय मुझे जीवन दान मिला, जिसके फलस्वरूप मैं मुनि वनकर महर्धिक देव वना। चित्रगति ने कहा—मित्र! तुम्हारे ही कारण मुझे श्रावक धर्म की उपलब्धि हुई।[४२]

चित्रगति के तेजस्वी रूप को देखकर पूर्वभवो के स्नेह-सम्वन्ध के कारण रत्नवती प्रेम-विह्वल हो गई। किन्तु उस समय राजा—अनग ने विवाह के प्रसग की चर्चा करना अनुचित समझा।[४३] सभी वहाँ से विसर्जित हो गये।

अनगसिह ने अपने मत्री को चक्रवर्ती सम्राट् सूरसिह के पास भेजा और चित्रगति के साथ रत्नवती के पाणिग्रहण की प्रार्थना की। सूरसेन ने स्वीकृति प्रदान की। योग्य समय मे चित्रगति का विवाह रत्नवती के साथ सम्पन्न हुआ।[४४] धनदेव और धनदत्त के

---

४० त्रिषष्टि० ८।१।२१४-२२२।

४१. प्रणश्व गच्छन् पद्मोऽपि दष्ट. कृष्णाहिना निशि।
विपद्य नारको जज्ञे सप्तम्या नरकावनौ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२२३

४२. त्रिषष्टि० ८।१।२२४-२३३

४३. त्रिषष्टि० ८।१।२३९

४४ त्रिषष्टि० ८।१।२४१-२४५।

को ज्ञात हुआ तब वह सीधा दौडकर वहाँ आया, अनेक उपचार किए, किन्तु विप न उतरा।[30]

विजली की लहरो की तरह सर्वत्र यह सूचना फैल गई कि भद्रा ने सुमित्र को जहर दिया है। पाप के प्रकट हो जाने से भद्रा को वहाँ से भागना पडा। राजा और प्रजा सभी सुमित्र की यह स्थिति देखकर आकुल-व्याकुल हो गये।[31]

उस समय चित्रगति विद्याधर विद्या के वल से आकाश मे होकर कही जा रहा था। उसने नगरनिवासियो को भय एव चिन्ता से ग्रस्त होकर दौडधूप करते देखा तो वह नीचे उतरा। जन-जन की जिह्वा पर सुमित्र के सदगुणो की चर्चा और रानी के दुष्टकृत्य के प्रति निन्दा को सुनकर वह शीघ्र ही सुमित्र के पास पहुँचा। मत्र-वल से उसने उसी समय सुमित्र का जहर उतार दिया।[32] सुमित्र को पूर्ण स्वस्थ देखकर राजा और प्रजा को अत्यधिक प्रसन्नता हुई।

जीवनदान देने के कारण चित्रगति विद्याधर के साथ सुमित्र का अत्यधिक प्रेम हो गया। चित्रगति जाना चाहता था किन्तु सुमित्र ने कहा—"मुझे समाचार मिले है कि यहाँ पर सुयश नामक केवलज्ञानी शीघ्र ही पधारने वाले है। उनके दर्शन कर फिर तुम यहाँ से जाना।[33]

---

३० त्रिपष्टि० ८।१।१५५ से १५८
भव-भावना ५०६-५०६

३१ त्रिपष्टि० ८।१।१५८-१५६

३२ अत्रान्तरे चित्रगति क्रीडया विचरन् दिवि,
विमानेनागतस्तत्रापश्यच्छोकातुर पुरम् ॥
विपव्यतिकर त च ज्ञात्वोत्तीर्य विमानत,
सोऽभ्यपिचत्त कुमार जलैर्विद्याभिमत्रितै ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।१६१-१६२

३३ मुमित्रोऽप्यब्रवीद्भ्रात सुयशा नाम केवली।
अत्रासन्नप्रदेशेपु विहरन्नस्ति सप्रति ॥
क्रमेण तमिहायात वन्दित्वा गन्तुमर्हसि।
तदागमनकाल तदत्रैव परिपालय ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।१७२-७३

सुयश केवली वहा पधारे। उनके उपदेश को सुनकर त्याग-वैराग्य की भावना उद्‌बुद्ध हुई। उस समय चित्रगति ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।[३४]

राजा सुग्रीव ने केवली भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! सुमित्र को विष देकर इसकी अपर माता भद्रा कहाँ गई है?

केवलज्ञानी भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—राजन्! मृत्यु के भय से रानी भद्रा राजमहल से निकलकर जगल मे पहुँची। उसके शरीर पर बहुमूल्य आभूषण थे। चोरो ने उसके सारे आभूषण छीन लिए, और भद्रा को पल्लीपति के पास ले जाकर उसे समर्पित कर दिया। पल्लीपति ने उसे एक श्रेष्ठी को बेच दी। वहाँ पर भी वह न रह सकी। वह पुन जंगल मे गई, अग्नि मे जलकर प्राण त्याग दिये, और इस समय वह प्रथम नरक मे उत्पन्न हुई। वहाँ से आयु पूर्ण कर वह चाडाल के घर स्त्री बनेगी। एकदिन दोनो मे कलह होगा। चण्डाल उसे मार डालेगा। वह मरकर तृतीय नरक मे जायेगी, फिर तिर्यक् योनियो मे परिभ्रमण करेगी।

केवली भगवान् के मुखारविन्द से सुग्रीव राजा ने रानी भद्रा की स्थिति सुनी, मन मे वैराग्य आया। उसी समय पुत्र को राज्य दे वह प्रव्रजित हो गया।[३५]

चित्रगति अपने घर पहुँचा। एक दिन चित्रगति को किसी ने सूचना दी कि अनगसिह के पुत्र कमल ने सुमित्र की बहिन का अपहरण किया है। जिससे सुमित्र शोकाकुल है। उसी समय चित्र-गति सैन्य लेकर वहाँ पहुँचा। कमल का उन्मूलन कर दिया। पुत्र को पराजित हुआ जानकर अनगसिंह को क्रोध आया, वह चित्रगति को पराजित करने के लिए युद्ध के मैदान मे आया परन्तु वह चित्र-गति के समाने टिक न सका। अन्त मे उसने देवनामी खड्गरत्न का स्मरण किया। स्मरण करते ही चमचमाता हुआ खड्गरत्न उसके हाथ मे आ गया। तभी उसने चित्रगति से कहा—अरे बालक! अब तू युद्ध के मैदान से भाग जा, अन्यथा यह खड्ग तेरा शिरश्छेद कर डालेगा।[३६]

---

३४ त्रिषष्टि० ८।१।१७८।१७९ ३५ त्रिषष्टि० ८।१।१९२

३६. अनगो दुर्जय ज्ञात्वा रिपु जेतुमनाश्च तम्।
देवतादत्तमस्मार्षीत् खड्गरत्न क्रमागतम्॥

जीव भी देवलोक से आयु पूर्ण कर चित्रगति के मनोगति और चपलगति नामक दो भाई बने। सभी आनन्दपूर्वक रहने लगे।[४५]

एक दिन चक्रवर्ती ने चित्रगति को राज्य दिया और जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट चारित्र की आराधना कर वे कर्म मुक्त हुए।[४६]

चित्रगति का एक सामन्त राजा था, जिसका नाम मणिचूल था। उसके शर्शी और शूर नामक दो पुत्र थे। दोनो पिता के निधन के पश्चात् राज्य के लिए परस्पर लडने लगे। तब चित्रगति ने राज्य को दो भागो मे बाट दिया, किन्तु उन दोनो के मन का समाधान न हो सका। कुछ दिनो के पश्चात् वे पुन राज्य के लिए लडने लगे और दोनो ही मृत्यु को प्राप्त हुए।[४७]

चित्रगति को जब यह वृत्त ज्ञात हुआ तब उसे मानव की मूढता का विचार आया।[४८] रत्नवती के पुत्र पुरन्दर को राज्य देकर रत्नवती और अपने दोनो भ्राताओ के साथ उसने दमधर आचार्य के निकट सयम स्वीकार किया। जीवन की साध्यवेला तक उत्कृष्ट तप की आराधना करते रहे और अन्त मे पादपोपगमन सथारा कर आयु पूर्ण किया।[४९]

---

४५ धनदेवधनदत्तजीवौ च्युत्वा बभूवतु ।
मनोगतिचपलगत्याख्यौ तस्यानुजावुभौ ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२४७

४६ तमन्यदा न्यधाद्राज्ये सूरचक्री स्वय पुन ।
उपाददे परिव्रज्या प्रपेदे च पर पदम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२५०

४७ त्रिषष्टि० ८।१।२५३-२५४

४८ श्रुत्वा चित्रगतिस्तच्च दध्याविति महामति. ।
विनश्वर्या. श्रियोऽर्थेऽमी धिग्जना मन्दबुद्धय ।
युध्यन्तेऽथ विपद्यन्ते निपतति च दुर्गतौ ॥

—त्रिषष्टि० ८।१-२५४, २५५

४९ विमृश्यैव भवोद्विग्न सुत रत्नवती भवम् ।
ज्येष्ठ पुरदर नाम राज्ये चित्रगतिर्न्यधात् ॥

(४) माहेन्द्रकल्प में

आयु पूर्ण करके चित्रगति, रत्नवती और उनके दोनो भाई माहेन्द्रकल्प मे देव वने । चारो जीव वहा आनन्द के सागर पर तैरने लगे ।

(५) अपराजित और प्रीतिमती

पूर्व विदेह के पद्मनामक विजय में सिहपुर नामक एक नगर था । वहाँ का राजा हरिनन्दी था । उसकी प्रियदर्शना पट्टरानी थी ।[51] चित्रगति का जीव माहेन्द्र स्वर्ग की आयु पूर्ण कर रानी की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ ।[52] जन्म लेने पर पुत्र का नाम 'अपराजित' रखा ।[53] आगे चलकर विमलवोध नामक मत्री पुत्र के साथ उसका हार्दिक स्नेह-सम्वन्ध हो गया ।

दोनो मित्र किसी समय घोडे पर वैठकर जगल मे घूमने के लिए गये । उलटी रेस (शिक्षा) के घोडे होने से वे उनको रोकने के लिए ज्यो-ज्यो लगाम खीचते त्यो-त्यो वे घोडे पवनवेग की तरह द्रुतगति से दौडते । वे दोनो भयानक जगल मे पहुँच गये । उन्होने ज्यो ही

रत्नवत्या कनिष्ठाभ्या ताभ्या च स समाददे ।
व्रत दमधराचार्यपार्श्वे चित्रगतिस्तत ॥
चिर तप्त्वा विधायान्ते पादपोपगमन च स ।
—त्रिषष्टि० ८।१।२५७, २५९

५० विपद्य कल्पे माहेन्द्रे सुरोऽभूत्परमर्द्धिक ।
रत्नवत्यपि तत्रैव कनिष्ठौ तौ च वान्धवौ ॥
रत्नवत्यपि तत्रैव कनिष्ठौ तौ च बान्धवौ ।
सजज्ञिरे सुरवरा प्रीतिभाज परस्परम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२५९-२६०

५१ त्रिषष्टि० ८।१।२६१-२६३

५२ जीवश्चित्रगते सोऽथ च्युत्वा माहेन्द्रकल्पत. ।
कुक्षाववातरत्तस्या महास्वप्नोपसूचित ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२६४

५३ अपराजित इत्याख्या तस्य चक्रे महीपति ।
—त्रिषष्टि० ८।१।२६६

लगाम ढीली की त्यो ही घोडे रुक गये। एक ओर कल-कल छल-छल करते हुए झरने वह रहे थे, हरियाली लहलहा रही थी, दूसरी ओर हिरण चौकडियाँ भर रहे थे। वन्यपशु इधर से उधर छलागे मार रहे थे। प्राकृतिक सौन्दर्य को निहार कर वे बहुत ही प्रसन्न थे। दोनो परस्पर वार्तालाप कर रहे थे कि उसी समय जगल मे से किसी मानव की आवाज आयी—'रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, बचाओ !'[५४]

अपराजित ने देखा—एक व्यक्ति भय से काप रहा है, उसकी शारीरिक भाव-भगिमा से ज्ञात हो रहा था कि वह शरण-दान माग रहा है। अपराजित को देखकर और उसके निकट आकर वह चरणो मे गिर पडा और सुबक-सुबक कर रोने लगा। अपराजित ने उसे धैर्य बधाते हुए कहा—घबरा मत, मै तेरी रक्षा करू गा।[५५]

विमलबोध ने कहा—मित्र ! तुमने ये शब्द विना विचारे कहे है। यदि यह कोई अपराधी हुआ तो रक्षण करने मे तुम्हे जोर पडेगा।

अपराजित—जो शरण मे आ चुका है उसकी रक्षा करना क्षत्रियो का कर्तव्य है, शरणागत की जो रक्षा नही करता वह वस्तुत क्षत्रिय नही है।[५६]

उसी समय तलवारो को चमकाता हुआ 'मारो, काटो' का भीषण शब्द करता हुआ शत्रु सैन्य वहाँ आ पहुँचा। सेनानायक ने अपराजित से कहा—कृपया आप इस व्यक्ति को छोड दीजिए। इसने हमारे नगर को लूटा है। यह हमारा अपराधी है।[५७]

---

५४ त्रिषष्टि० ८।१।२७४

५५ प्रवेपमानसर्वांगमस्थिरीभूतलोचनम् ।
मा भैपीरिति त प्रोचे कुमार शरणागतम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२७५

५६. ऊचेऽपराजितोऽप्युच्चै क्षत्रधर्मो ह्यसौ सदा।
अन्यायी यदि वा न्यायी त्रातव्य शरणागत ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२७७

५७. त्रिषष्टि० ८।१ २७८-२७९

अपराजित आपका कथन सत्य हो सकता है, पर यह मेरी शरण मे आ चुका है। मैं इसका परित्याग नही कर सकता।[५८]

सेनाध्यक्ष ने अपराजित को युद्ध के लिए आह्वान किया। आह्वान को स्वीकार कर अपराजित ज्यो ही युद्ध के मैदान मे आया और उसने अपनी युद्ध-कला का प्रदर्शन किया त्यो ही वह सम्पूर्ण सेना नौ दो ग्यारह हो गई। सेनाध्यक्ष ने अपने राजा कौशलपति के पास जाकर सारा वृत्त सुनाया। राजा कौशलपति भी ससैन्य वहाँ पहुँचा किन्तु वह भी अपराजित के सामने टिक न सका। अपराजित के अपार पराक्रम को देखकर वह चकित हो गया। मत्री ने राजा से कहा—'क्या इस उद्भट वीर को आपने नही पहचाना ? यह तो आपके मित्र का पुत्र अपराजित है।' राजा ने युद्ध वन्द किया और प्रेम से उसे गले लगाया। राजा अपराजित को लेकर राजप्रासाद मे आया और अपनी पुत्री कनकमाला का उसके साथ विवाह कर दिया।[५९]

एक दिन अर्धरात्रि मे अपराजित और विमलवोध ने विचार किया—सारे दिन राजमहल की चहारदीवारी मे ही वन्द रहते है, तो इस समय कही वाहर घूमने चलना चाहिए।[६०] चन्द्रमा की निर्मल चाँदनी छिटक रही थी। दोनो अपने शस्त्र-अस्त्र लेकर राजमहल से वाहर निकले, और जगल मे पहुँचे। जगल मे कही दूर से किसी नारी का करुण-क्रन्दन उनको सुनाई दिया। वे दोनो विचारने लगे—इस आधी रात में नारी के रुदन की ध्वनि कहा से आरही है ? वे शव्दवेधी वाण की तरह उसी दिशा मे आगे बढे।[६१] कुछ दूर

---

५८ स्मित्वा स्माह कुमारोऽपि शरण मामुपागत ।
शक्रेणापि न शक्योऽसौ हन्तुमन्यैस्तु का कथा ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।२८०

५९ कन्या कनकमालाख्या स्वा कौशलमहीपति ।
जातानन्दो हरिणन्दिनन्दनायान्यदा ददौ ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।२९२

६० त्रिपष्टि० ८।१।९३

६१. काप्येपा रोदिति स्त्रीति निश्चित्य स कृपानिधि ।
अनुशव्द ययौ वीर. शव्दापातीव सायक ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।२९५

जाने पर देखा—एक कुण्ड मे अग्नि धधक रही है। एक युवती उस अग्निकुण्ड के पास बैठी हुई है। उसकी आँखो से आँसुओ की धारा बह रही है। वह रह-रहकर पुकार रही है—'मेरी रक्षा करो, इस दुष्ट से मुझे बचाओ।' उस युवती के पास ही एक व्यक्ति हाथ मे चमचमाती तलवार लेकर खडा है और तलवार दिखाकर युवती को कुछ सकेत कर रहा है। अपराजित ने यह लोमहर्षक दृश्य देखा और युवक को ललकारते हुए कहा—'इस अबला नारी पर तू अपनी शक्ति आजमा रहा है! तुझे शर्म नही आती? तेरी भुजाओ मे शक्ति है तो मेरे साथ युद्ध कर।[६२] मेरे रहते तू इस नारी का बाल भी बाका नही कर सकता।

यह सुनते ही वह युवक जो विद्याधर था, अपराजित की ओर लपका, पर अपराजित को वह परास्त न कर सका। अन्त मे उसने अपराजित को नागपाश के द्वारा बाध दिया, किन्तु अपराजित ने एक ही झटके मे नागपाश के टुकडे-टुकडे कर दिये। विद्याधर युवक ने विद्या के द्वारा नाना प्रकार के शस्त्र निर्माण कर अपराजित पर प्रहार किया, किन्तु पुण्य की प्रबलता के कारण एव असाधारण शारीरिक सामर्थ्य के कारण कोई भी शस्त्र अपराजित को पराजित न कर सका।[६३]

रात्रि पूर्ण हुई। उषा की सुनहरी किरणे मुस्कराने लगी। अपराजित ने झपटकर विद्याधर युवक की तलवार छीन ली, और उसी तलवार से उसके शरीर पर प्रहार किया। घाव गहरा लगा, मूर्च्छा खाकर युवक भूमि पर लुढक पडा। अपराजित ने उपचार कर उसकी मूर्च्छा दूर की और पुन उद्बोधन के स्वर मे कहा—यदि अब भी सामर्थ्य हो तो आओ, तुम मेरे साथ युद्ध करो, मै

---

६२ आचिक्षेप कुमारस्तमुत्तिष्ठस्व रणाय रे।
अबलाया किमेतत्ते पुरुषाधम पौरुषम्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२९८

६३ पूर्वपुण्यप्रभावाच्च देहसामर्थ्यतोऽपि च।
कुमारे प्राभवस्तस्य प्रहारा न मनागपि॥

—त्रिषष्टि० ८।१।३०४

तुम्हारे सामने उपस्थित हू ।[६४]

विद्याधर—तुमने मुझे पूरी तरह पराजित कर दिया है। मै एक भयकर भूल करने जा रहा था, उससे तुमने मुझे बचा लिया है। अब तुम मेरे शत्रु नही, मित्र हो। पहले तुम एक कार्य करो। मेरे वस्त्र के एक छोर मे मणि और मूलिका बधी है। मणि को पानी मे धोकर उस धोवन से मूलिका घिसकर मेरे व्रणो पर लगाओ जिससे मै पूर्ण स्वस्थ बन सकू ।

अपराजित ने विद्याधर के कथनानुसार लेपन किया। देखते ही देखते जादू की तरह व्रण मिट गये और विद्याधर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

स्वस्थ होने पर विद्याधर ने अपना और उस युवती का परिचय देते हुए कहा—इस युवती का नाम 'रत्नमाला' है।[६६] यह विद्याधर की कन्या है। इसके पिता विद्याधर अमृतसेन ने एक बार किसी विशिष्ट ज्ञानी से प्रश्न किया था कि इसका पति कौन होगा?

ज्ञानी ने बताया—अपराजित कुमार इसका पति होगा।[६७] यह उसी समय से अपराजित कुमार के प्रति अनुरक्त हुई। रात-दिन उसी के ध्यान मे लीन रहने लगी।[६८] मै इसके मनोहारी रूप को देखकर मुग्ध हो गया। मैंने इसे अपने मन के अनुकूल बनाने के लिए

---

६४. भूय प्रापय्य चैतन्यमुपचारैर्नभश्चरम् ।
ऊचे कुमारो युध्यस्व सहोऽसि यदि सप्रति ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।३०७

६५. मम वस्त्राचलग्रन्थौ विद्येते मणिमूलिके ।
मणेस्तस्याभसा घृष्ट्वा मूलिका देहि मद्व्रणे ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।३०९

६६ रथनूपुरनाथस्य विद्याधरपतेरियम् ।
दुहितामृतसेनस्य रत्नमालेति नामत. ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।३११

६७ वरोऽस्या ज्ञानिनाचख्ये हरिणदिनृपात्मज. ।
युवापराजितो नाम गुणरत्नैकसागर ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।३१२

६८ वही० ८।१।३१३

अनेक प्रयत्न किए किन्तु इसने मेरी एक भी वात स्वीकार नही की। इसकी सदा एक ही रट लगी रही कि मुझे अग्नि मे जलना स्वीकार है किन्तु मै तुम्हारे साथ विवाह नही करूँगी। मै देखना चाहता था कि यह कैसे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहती है। मै इसे कह रहा था—या तो तू मुझे वरण कर या अग्निकुड मे कूदकर अपने शरीर को भस्म कर डाल, किन्तु यह न तो आग मे जलना चाहती थी और न मुझे वरण करना चाहती थी। यही प्रसग चल रहा था कि अकस्मात् तुम आगये। अच्छा हुआ कि तुमने नारी हत्या के भयकर पाप से वचा लिया। मित्र! वताओ तुम्हारा परिचय क्या है?

मत्रीपुत्र विमलबोध ने राजकुमार अपराजित का विस्तार से परिचय दिया। यह सब वार्तालाप चल ही रहा था कि इतने मे रत्नमाला के माता-पिता भी उसको खोज करते हुए वहा पहुँच गये। उन्होने उसी समय रत्नमाला का पाणिग्रहण अपराजितकुमार के साथ करा दिया। सूरकान्त विद्याधर को अपराजित ने अभयदान दिया। सूरकान्त ने प्रसन्न होकर अपराजित को वह मणि, मूलिका और रूप-परवर्तिनी गुटिका दी।[६९]

रत्नमाला को पिता के घर पर ही छोडकर अपराजित और विमलबोध देश-विदेश की यात्रा करने के लिए प्रस्थित हुए। कुछ दूर जाने पर अपराजित को प्यास लगी। वह एक आम के वृक्ष के नीचे वैठ गया और विमलबोध को पानी ले आने को कहा। विमल बोध पानी लेने के लिए गया। जब पानी लेकर वह लौटा तव अपराजित कुमार वहाँ पर नही था। विमलबोध पानी लेकर ०धर-

---

६९. आख्यच्च मन्त्रिसूस्तस्मै कुमारस्य कुलादिकम्।
मुमुदे रत्नमालापि सद्योऽभीप्टसमागमात्॥
पितरौ रत्नमालाया पृष्ठतश्च प्रधाविनौ।
कीर्तिमत्यमृतसेनौ तदानी तत्र चेयतु॥
ताभ्या दत्ता रत्नमालामुपयेमेऽपराजित।
तयोरेव गिरा दत्त सूरकान्ताय चामयम्॥
कुमारे नि स्पृहे सूरकान्तस्ते मणिमूलिके।
आर्पयन्मन्त्रिपुत्रस्य गुटिकाश्चान्यवेपदा॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३२०, ३२४

उधर भटकने लगा और उच्च स्वर से अपने मित्र को पुकारने लगा किन्तु वहीं पर भी अपराजित का पता न लगा।[७०]

इतने मे दो विद्याधर वहाँ आये। उन्होने विमलबोध से कहा—'आप घबराइए नही। हम आपके मित्र अपराजित का पता बताते हैं— इस जगल मे भुवनभानु नामक एक महान् ऋद्धिवाला विद्याधर रहता है। उसके कमलिनी और कुमुदिनी नामक ये दो पुत्रियाँ है। एक विशिष्ट ज्ञानी ने बताया कि इन कन्याओं का पति अपराजित राजकुमार होगा और वह अमुक दिन इस जगल मे आयेगा। यह भविष्यवाणी सुनकर हमारे स्वामी ने आप दोनो को लेने के लिए हमें यहाँ भेजा। जब हम यहाँ आये तब आप अपराजित के लिए पानी लेने गये हुए थे। हम अकेले अपराजित को लेकर अपने स्वामी के पास गये। हमारा स्वामी अपराजित को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उनके सामने दोनो लडकियो के विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु अपराजित कुमार तुम्हारे विरह के कारण अत्यन्त दुःखी थे अत. उन्होने कुछ भी उत्तर नही दिया। रह रहकर वे तुम्हारा ही नाम रटने लगे, अत हमारे स्वामी ने शीघ्र ही हमे तुम्हारे पास भेजा है। तुम हमारे साथ चलो।" विमलबोध मित्र के समाचार जानकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह उनके साथ चल दिया।[७१] अपराजित से मिलकर उसे बहुत आनन्द हुआ। दोनो कन्याओ के साथ अपराजित का पाणिग्रहण अत्यन्त उल्लास के क्षणो मे सम्पन्न हुआ। कुछ दिनो तक दोनो वहाँ रहे, फिर यात्रा के लिए आगे चल दिये।

वे दोनो श्रीमन्दिरपुर नगर मे पहुँचे। किन्तु वहाँ नगर निवासियो के चेहरे पर अजीव घबराहट देखकर विचारने लगे—बात क्या है? किसी व्यक्ति ने उन्हे बताया कि राजा का शत्रु असावधानी से राजमहल मे चला गया और उसने राजा पर शस्त्र से आक्रमण कर दिया जिससे राजा पीडित है। राजा की पीड़ा से नगरनिवासी दुःखी हैं।[७२]

---

७० त्रिषष्टि० ८।१।३२२-३३३

७१. त्रिषष्टि० ८।१।३३४-३४४

राजाओ ने क्रोधाविष्ट होकर उसे युद्ध के लिए ललकारा। अपराजित कुमार ने ऐसी अद्भुत युद्ध कला का प्रदर्शन किया कि सभी राजागण चकित हो गये। अपराजित के मामा राजा सोमप्रभ ने अपराजित को पहचान लिया। अपराजित ने भी अपना असलीरूप प्रकट कर दिया। सभी राजा सन्तुष्ट हुए। उल्लास व उत्साह के क्षणो मे प्रीतिमती का विवाह अपराजित के साथ सम्पन्न हुआ। दोनो एक दूसरे को पाकर प्रसन्न थे।[७९]

कुछ दिनो तक अपराजित वहा रहा फिर पिता का सन्देश-आने से अपनी सभी पत्नियो को लेकर अपने घर लौट गया।[८०]

पूर्वभव के अपराजित के दो भाई मनोगति और चपलगति, माहेन्द्र देवलोक मे देव हुए थे। वे दोनो वहाँ की आयु पूर्ण कर अपराजित कुमार के सूर और सोम नामक लघु-भ्राता हुए।

किसी दिन अपराजित के पिता हरिनन्दी ने अपराजित को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की और मुक्ति प्राप्त की।[८१]

एक दिन अपराजित राजा भ्रमण करने के लिए उद्यान मे गया। वहाँ अनगदेव नामक सार्थवाहपुत्र भी आया हुआ था। उसका विराट् वैभव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसके मन मे विचार आया कि मेरे राज्य मे श्रेष्ठी लोग भी कितने समृद्ध और सुखी है।[८२]

दूसरे दिन राजा घूमने के लिए बाहर निकला। राजा ने देखा—राजपथ पर सैकडो व्यक्तियो से घिरी हुई एक अर्थी जा रही है। राजा ने अनुचरो से पूछा—यह कौन है? अनुचर ने निवेदन किया—राजन्। यह वही अनगदेव है जो कल उद्यान मे क्रीड़ा कर रहा था। अकस्मात् व्याधि होने से इसकी मृत्यु हो गई है।[८३]

---

७९. ततोऽपराजितप्रीतिमत्योरन्योऽन्यरक्तयो ।
चक्रे विवाह पुण्येऽह्नि भूभुजा जितशत्रुणा ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४१५

८०. वही० ८।१।४१९।४२०

८१ अथान्यदा हरिणदी राज्य न्यस्यापराजिते।
प्रवव्राज तपस्तप्त्वा प्रपेदे च पर पदम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४३४

८२ त्रिषष्टि० ८।१।४३८, ४४२

संसार की असारता देखकर राजा के मन मे वैराग्य हुआ। प्रीतिमती के पुत्र पद्म को राज्य देकर प्रीतिमती, सूर, सोम, व विमलबोध के साथ अपराजित ने दीक्षा ग्रहण की।[८४] उत्कृष्ट तप सयम की आराधना कर अन्तिम समय मे सथारा कर आयु पूर्ण किया।

दिगम्बर ग्रन्थो में

दिगम्बर आचार्य जिनसेन और आचार्य गुणभद्र ने भगवान् अरिष्टनेमि के पाँच पूर्व भव बताये है। उनके पश्चाद्वर्त्ती जितने भी दिगम्बर परम्परा के लेखक हुए है, सभी ने इन्ही आचार्यो का अनुसरण किया है। उसमे सर्वप्रथम अपराजित राजा का भव बताया है। वह इस प्रकार है —

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र मे शीतोदा नदी के दक्षिणी तट पर सुपद्म नामक देश था। उस देश मे सिहपुर नामक नगर था। वहाँ का राजा अर्हद्दास था।[८५] जिनदत्ता उसकी रानी थी। एक दिन महारानी राजमहल मे सोयी हुई थी। उस समय उसे लक्ष्मी, हाथी, सिह, सूर्य और चन्द्र ये पाच शुभ स्वप्न दिखलाई दिये।[८६] रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। सवा नौ मास के पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम अपराजित रखा गया।[८७] युवावस्था आने पर 'प्रीतिमती' प्रभृति अनेक राजकन्याओ के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ।

---

८३ त्रिषष्टि० ८।१।४४३, ४४७

८४ त्रिषष्टि० ८।१।४४६-४५०

८५. (क) द्वीपेऽत्रैव सुपद्माया, शीतोदायास्त्वपाक्तटे।
अभूत् सिहपुरे भूभृदर्हद्दासो महाहित ॥
—हरिवश पुराण ३४।३। पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।४

८६ (क) हरिवशपुराण ३४।४। पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।८

८७ (क) अपराजित इत्याख्या स परैरपराजित।
पितृभ्या लम्भितो द्यावापृथिव्यो. प्रथितस्तत ॥
—हरिवशपुराण ३४।५ पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।६०

विमलबोध ने नगर की प्रसिद्ध गणिका रागलता से कहा—तुम जाकर राजा को सूचना करो कि एक महान् वैद्यराज आया हुआ है। उसके पास ऐसी जादूई दवा है कि कुछ ही क्षणों मे राजा पूर्ण रूप से ठीक हो जायेगा। गणिका ने सूचना की।

राजा ने अपराजित और विमलबोध को बुलाया। अपराजित ने मणि को धोकर राजा को पानी पिलाया, उसके पानी मे मूलिका को घिसकर राजा के अग पर लगाया। राजा पूर्ण स्वस्थ हो गया।[७३]

राजा ने परिचय पूछा तो विमलबोध ने विस्तार से अपराजित का परिचय दिया। राजा ने उसे गले लगाते हुए कहा—यह तो मेरे मित्र का पुत्र अपराजित है। प्रसन्न होकर राजा ने अपनी रभा नामक कन्या का विवाह अपराजित के साथ कर दिया।[७४] कुछ दिन वहाँ रहकर अपराजित ने आगे प्रस्थान किया। दोनो कुण्डपुर नगर मे पहुँचे। वहाँ पर केवलज्ञानी भगवान विराज रहे थे। भगवान् को वन्दन नमस्कार कर अपराजित ने प्रश्न किया—भगवन्! मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ?

समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—तुम दोनो भव्य हो। अपराजित तो भविष्य मे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे अरिष्टनेमि नामक बावीसवा तीर्थंकर होगा, और विमलबोध अरिष्टनेमि का प्रथम गणधर वरदत्त होगा।[७५]

---

७२ स प्रविश्यैकेन पुसा हृतश्छुरिकाच्छलात्।
राज्ञो राज्यधरश्चास्या पुत्रादिर्नास्ति कोऽपि हि॥
आत्मरक्षी भवन्नद्य तेनायमखिले पुरे।
भ्राम्यति व्याकुलो लोकस्तस्याय तुमुलो महान्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।३४६-५०

७३ मणिप्रक्षालनजल स भूपतिमपाययत्।
मूलिका तज्जलैर्घृष्ट्वा नृपाघाते न्यधत्त च॥

—वही० ८।१।३५७

७४ इत्युक्त्वा कन्यका रभा रूपाद्र भामिवापराम्।
उपरोध्य ददौ तस्मै गुणक्रीतो नरेश्वर॥

—त्रिषष्टि० ८।१।३६१

केवली भगवान् के मुखारविन्द से यह भविष्यवाणी सुनकर उन्हे वहुत प्रसन्नता हुई। वहाँ से भी वे दोनो आगे वढे।

उस समय जयानन्द नगर मे जितशत्रु राजा राज्य करता था। रत्नवती का जीव अपनी आयु पूर्ण कर जितशत्रु की पुत्री प्रीतिमती के रूप मे उत्पन्न हुआ था।[७६] प्रीतिमती प्रकृष्ट प्रतिभा की धनी थी। राजा ने प्रीतिमती के लिए स्वयवर मडप की रचना की। अपराजित ने स्वयवर के समाचार सुने। स्वयवर मे सैकडो राजा महाराजा आएँगे, कोई मुझे पहचान न ले एतदर्थ अपराजित गुटिका के द्वारा साधारण व्यक्ति का रूप धारण[७७] कर स्वयवर मे पहुँचा। स्वयवर मे अनेको राजा और राजकुमार आये थे। राजकुमारी को कोई भी पसन्द न आया और न वे राजकुमारी के प्रश्नो का ही समाधान कर सके।

राजकुमारी प्रीतिमती की दृष्टि ज्योही अपराजित राजकुमार पर पडी, त्योही पूर्वभवो के स्नेहसम्बन्ध के कारण उसके हृदय मे प्रीति उमड पडी। उसने राजकुमार के सामने जटिल से जटिल प्रश्न रखे, अपराजित कुमार ने क्षण भर मे सभी प्रश्नो का समाधान कर दिया।[७८] प्रीतिमती ने अपराजित के गले मे वरमाला डाल दी। अपराजित के विद्रूप रूप और मलिन वस्त्रो को देखकर सभी

---

७५ देशनान्ते तु त नत्वा पप्रच्छेत्यपराजित.।
किं भव्योऽहमुताभव्य आचख्यौ चेति केवली ॥
भव्योऽसि भविता चार्हन् द्वाविंश. पचमे भवे।
त्वन्मित्र गणभृच्चाय जबूद्वीपस्य भारते ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३६६

७६ त्रिषष्टि० ८।१।३७०

७७ गुटिकाया प्रयोगेण प्राकृत रूपमादधे।
—त्रिषष्टि० ८।१।३८०

७८. अभ्रच्छन्नमिवादित्य दुर्वेपमपि वीक्ष्य तम्।
प्राग्जन्यस्नेहसम्वन्धात् प्रीतिं प्रीतिमती दधौ ॥
पूर्वपक्ष प्रीतिमती प्रागुजग्राह तथैव हि।
ता द्राग्निरुत्तरीकृत्य पराजिग्येऽपराजित· ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४०३-४०४

राजाओ ने क्रोधाविष्ट होकर उसे युद्ध के लिए ललकारा। अपराजित कुमार ने ऐसी अद्भुत युद्ध कला का प्रदर्शन किया कि सभी राजागण चकित हो गये। अपराजित के मामा राजा सोमप्रभ ने अपराजित को पहचान लिया। अपराजित ने भी अपना असलीरूप प्रकट कर दिया। सभी राजा सन्तुष्ट हुए। उल्लास व उत्साह के क्षणो मे प्रीतिमती का विवाह अपराजित के साथ सम्पन्न हुआ। दोनो एक दूसरे को पाकर प्रसन्न थे।[७९]

कुछ दिनो तक अपराजित वहा रहा फिर पिता का सन्देश आने से अपनी सभी पत्नियो को लेकर अपने घर लौट गया।[८०]

पूर्वभव के अपराजित के दो भाई मनोगति और चपलगति, माहेन्द्र देवलोक मे देव हुए थे। वे दोनो वहाँ की आयु पूर्ण कर अपराजित कुमार के सूर और सोम नामक लघु-भ्राता हुए।

किसी दिन अपराजित के पिता हरिनन्दी ने अपराजित को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की और मुक्ति प्राप्त की।[८१]

एक दिन अपराजित राजा भ्रमण करने के लिए उद्यान मे गया। वहाँ अनगदेव नामक सार्थवाहपुत्र भी आया हुआ था। उसका विराट् वैभव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसके मन मे विचार आया कि मेरे राज्य मे श्रेष्ठी लोग भी कितने समृद्ध और सुखी है।[८२]

दूसरे दिन राजा घूमने के लिए वाहर निकला। राजा ने देखा—राजपथ पर सैकडो व्यक्तियो से घिरी हुई एक अर्थी जा रही है। राजा ने अनुचरो से पूछा—यह कौन है? अनुचर ने निवेदन किया--राजन्! यह वही अनगदेव है जो कल उद्यान मे क्रीडा कर रहा था। अकस्मात् व्याधि होने से इसकी मृत्यु हो गई है।[८३]

---

७९. तताऽपराजितप्रीतिमत्योरन्योऽन्यरक्तयो. ।
चक्रे विवाह पुण्येऽह्नि भूभुजा जितशत्रुणा ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४१५

८० वही० ८।१।४१६।४२०

८१. अथान्यदा हरिणदी राज्य न्यस्यापराजिते।
प्रवव्राज तपस्तप्त्वा प्रपेदे च पर पदम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४३४

८२ त्रिषष्टि० ८।१।४३८, ४४२

ससार की असारता देखकर राजा के मन मे वैराग्य हुआ। प्रीतिमती के पुत्र पद्म को राज्य देकर प्रीतिमती, सूर, सोम, व विमलबोध के साथ अपराजित ने दीक्षा ग्रहण की।[८४] उत्कृष्ट तप सयम की आराधना कर अन्तिम समय मे सथारा कर आयु पूर्ण किया।

दिगम्बर ग्रन्थो में

दिगम्बर आचार्य जिनसेन और आचार्य गुणभद्र ने भगवान् अरिष्टनेमि के पाँच पूर्व भव बताये है। उनके पश्चाद्वर्त्ती जितने भी दिगम्बर परम्परा के लेखक हुए है, सभी ने इन्ही आचार्यो का अनुसरण किया है। उसमे सर्वप्रथम अपराजित राजा का भव बताया है। वह इस प्रकार है —

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र मे शीतोदा नदी के दक्षिणी तट पर सुपद्म नामक देश था। उस देश मे सिहपुर नामक नगर था। वहाँ का राजा अर्हद्दास था।[८५] जिनदत्ता उसकी रानी थी। एक दिन महारानी राजमहल मे सोयी हुई थी। उस समय उसे लक्ष्मी, हाथी, सिह, सूर्य और चन्द्र ये पाच शुभ स्वप्न दिखलाई दिये।[८६] रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। सवा नौ मास के पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम अपराजित रखा गया।[८७] युवावस्था आने पर 'प्रीतिमती' प्रभृति अनेक राजकन्याओ के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ।

---

८३ त्रिषष्टि० ८।१।४४३, ४४७

८४ त्रिषष्टि० ८।१।४४६-४५०

८५. (क) द्वीपेऽत्रैव सुपद्मायां, शीतोदायास्त्वपाक्तटे।
अभूत् सिंहपुरे भूभृदर्हद्दासो महाहित ॥
—हरिवश पुराण ३४।३। पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।४

८६ (क) हरिवशपुराण ३४।४। पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।८

८७ (क) अपराजित इत्याख्या स परैरपराजित।
पितृभ्या लम्भितो द्यावापृथिव्यो. प्रथितस्तत ॥
—हरिवशपुराण ३४।५ पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।१०

एक दिन राजा अर्हद्दास अपने परिवार के साथ भगवान् विमल-वाहन को वन्दन करने हेतु मनोहर नामक वन मे पहुँचा।[८८] विमल-वाहन के प्रभावशाली प्रवचन को श्रवण कर अन्य पाँचसौ राजाओं के साथ अर्हद्दास ने दीक्षा ग्रहण की। अपराजित कुमार को भी उस समय सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई।[८९]

एक दिन अपराजित राजा ने सुना कि गधमादन पर्वत पर जिनेन्द्र विमलवाहन और पिता अर्हद्दास मुक्त हो गए है। यह सुनकर राजा ने अष्टमभक्त (तेला) की तपश्चर्या की।[९०] राजा धर्म साधना कर रहा था कि उस समय आकाश मार्ग से दो चारण-ऋद्धिधारी मुनि पधारे।[९१] राजा ने मुनियो को वन्दन किया। उनके चमकते हुए चेहरे को देखकर राजा के मन मे अत्यधिक अनुराग उत्पन्न हुआ। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैने पूर्व मे कही इन मुनियो को देखा है। राजा ने मुनिराज के सामने जिज्ञासा प्रस्तुत की। दोनो मुनियो मे ज्येष्ठ मुनि ने समाधान करते हुए अपने पूर्व भव का कथन इस प्रकार किया—

राजन् ! पश्चिम पुष्करार्ध के विदेह मे गण्यपुर नामक नगर था। वहाँ का राजा सूर्याभ था, उसकी रानी का नाम धारिणी था। उसके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नामक तीन पुत्र थे।[९२]

---

८८ उत्तर पुराण ३४।८।४१६

८९ (क) प्रवव्राज नृपोऽस्यान्ते पञ्चराजशतान्वितः।
वव्रेऽ पराजितो राज्य सम्यक्त्व चैव निर्मलम् ॥
—हरिवश पुराण ३४।९

(ख) उत्तरपुराण ७०।१६

९० जिनेन्द्रपितृनिर्वाण गन्धमादनपर्वते।
श्रुत्वा कृत्वाऽष्टम भक्त कृतनिर्वाणभक्तिक ॥
—हरिवशपुराण ३४।१०

९१ (क) हरिवशपुराण ३४।१२, पृ० ४२०
(ख) उत्तरपुराण ७०।२३

९२ पुत्रास्त्रयस्तयोश्चिन्तामनश्चपलपूर्वका।
गत्यन्ता वेगवन्नास्ते स्नेहवन्त सुपौरुषा ॥
—हरिवशपुराण ३४।१७। पृ० ४२०

उसी समय दूसरे एक नगर अरिञ्जय पुर के राजा का नाम अरिञ्जय था। उसके एक पुत्री थी, जिसका नाम प्रीतिमती था। प्रीतिमती का रूप ही सुन्दर नही था अपितु वह सभी विद्याओ मे पारंगत भी थी। वह उत्कृष्ट तप करना चाहती थी अतः उसने अपने पिता से कहा कि मुझे इच्छित वर दीजिए।[९३]

पिता ने कहा—तप के अतिरिक्त तू जो भी वस्तु चाहे, वह माग सकती है?[९४] उसने कहा—तो फिर जो गतियुद्ध मे मुझे पराजित करे उसी को आप मुझे दे, अन्य को नही। पिता ने कहा—'तथास्तु'। उसके विवाह के लिए स्वयवर की रचना की गई।[९६] सहस्रो विद्याधर उपस्थित हुए। चिन्तागति, मनोगति, और चपलगति—ये तीनो भाई भी वहाँ पहुँचे। सभी विद्याधरो ने विचार किया—प्रीतिमती विद्या में हमसे अधिक प्रवीण है और हम उसे गति युद्ध मे भी जीत नही सकते। अतः वे सभी चुप बैठे रहे किन्तु चिन्तागति, मनोगति, और चपलगति गतियुद्ध के लिए तैयार हुए[९७] पर वे उससे पराजित हो गये।[९८]

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि चिन्तागति ने प्रीतिमती को जीत लिया। जब वह चिन्तागति के गले मे वरमाला डालने लगी तब चिन्तागति ने उससे कहा—यह वरमाला मेरे छोटे भाई के गले मे डाल, क्योकि उसे प्राप्त करने के लिए तूने प्रथम उससे गति-युद्ध

---

९३ हरिवशपुराण ३४।१८-१९, पृ० ४२०

९४ कन्याकूतविदूचे स वृणीष्व वरमीप्सितम्।
तपसोऽन्यमितीद च श्रुत्वाऽह प्रीतिमत्यपि॥
—हरिवंशपुराण ३४।२०। पृ० ४२०

९५ तपो वरप्रसादो मे पितर्यदि न दीयते।
गतियुद्धे विजेत्रेऽह देयेत्येष वरोऽस्तु मे॥
—हरिवशपुराण ३४।२१, पृ० ४२०

९६ हरिवशपुराण ३४।२२

९७. हरिवशपुराण ३४।२६, पृ० ४२१

९८ हरिवशपुराण ३४।२८-२९, पृ० ४२१

किया था, अत: तू मेरे लिए त्याज्य है। प्रत्युत्तर मे उसने कहा— मुझे गतियुद्ध मे तुमने ही जीता है, मै दूसरे के गले मे वरमाला कैसे डाल सकती हूँ ?[९९] यह कहकर उसने दीक्षा ली और उसके असाधारण त्याग को देखकर तीनो भाइयो को भी विरक्ति हुई।[१००]

जिनसेन के अभिमतानुसार चिन्तागति, मनोगति और चपलगति ये तीनो ही भाई प्रीतिमती से पराजित होने पर अत्यन्त दु:खी हुए और उन्होने दमधर मुनिराज के समीप दीक्षा ग्रहण की।[१] उत्कृष्ट तप की आराधना कर अन्त मे समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया और तीनो भाई माहेन्द्र स्वर्ग के अन्तिम पटल मे सात सागर की आयु वाले देव बने।[२] वे दो भाई वहाँ से च्युत होकर पुष्कलावती मे गगनचन्द्र राजा के अमितवेग और अमिततेज पुत्र हुए।[3] स्वयप्रभ जिनेन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की। भगवान् के मुखारविन्द से पूर्वभव सुने। मुनि ने राजा को पुन सम्बोधित कर कहा—'राजन्! तुम हमारे पूर्वभव मे ज्येष्ठभ्राता चिन्तागति थे। माहेन्द्र स्वर्ग से आयु पूर्ण कर तुम यहाँ पर अपराजित राजा बने हो। सर्वज्ञ प्रभु से यह बात जानकर हम तुमसे मिलने के लिए यहाँ आये है।[४] जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि तुम पाँचवे भव मे जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे अरिष्टनेमि नामक बावीसवे तीर्थकर बनोगे।[५] इस समय

---

९९ श्रुतत्तद्वचना साह नाह जितवतोऽपरै।
मालामिमा क्षिपामीति स तामित्यब्रवीत् पुन.॥

—उत्तरपुराण ७०।३३, पृ० ३४१

१०० उत्तरपुराण ७०।३६

१ गतियुद्धे जितास्तेऽपि चिन्तागत्यादयस्तया।
दीक्षा दमवरस्यान्ते त्रयोऽपि भ्रातरो दधु॥

—हरिवशपुराण ३४।३२, पृ० ४२१

२ हरिवश० ३४।३३, पृ० ४२१

३ हरिवशपुराण ३४।३४-३५, पृ० ४२१

४. हरिवशपुराण ३४।३६-३७, पृ० ४२२

५ अरिष्टनेमिनामार्हन् भविता भरतावनौ।
हरिवशमहावशे त्वमित पञ्चमे भवे॥

—हरिवश० ३४।३८, पृ० ४२२

तुम्हारी उम्र केवल एक मास शेष रह गई है, एतदर्थ धार्मिक साधना आराधना कर जीवन को सुधारो।' इस प्रकार उद्‌बोधन देकर मुनि वहाँ से प्रस्थित हो गये।[६]

राजा अपराजित ने प्रीतिकर नामक पुत्र को राज्य देकर बावीस दिन का प्रायोपगमन (पादोपगमन) सथारा कर आयु पूर्ण किया।[७]

(६) आरण्य :

सभी वहाँ से आयु पूर्ण कर ग्यारहवे आरण देवलोक मे इन्द्र के सामान्य देव बने।[८]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन व शुभचन्द्र के अनुसार अच्युत स्वर्ग मे बावीससागर की स्थिति वाले देव बने।[९]

(७) शंख :

वहाँ से अपराजित का जीव आयुपूर्ण कर हस्तिनापुर मे श्रीषेण राजा की महारानी श्रीमती की कुक्षि मे उत्पन्न होता है। जन्म लेने पर उसका नाम शख रखा गया।[१०] विमलबोध मत्री का जीव भी आरण देवलोक से च्युत होकर गुणनिधि मत्री का पुत्र मतिप्रभ हुआ। दोनो का परस्पर पूर्ववत् ही प्रेम हुआ।[११]

---

६ आयुर्मासावशेष ते साम्प्रत पथ्यमात्मन।
क्रियतामिति तावुक्त्वा तमापृच्छ्य गतौ यती॥
—हरिवशपुराण ३४।३९, पृ० ४२२

७ हरिवशपुराण ३४।४१-४२, पृ० ४२२

८. ते सर्वेऽपि तपस्तप्त्वा मृत्वा कल्पेऽयुरारणे।
इन्द्रसामानिका प्रीतिभाजोऽभूवन् परस्परम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४५१

९. (क) स द्वाविंशत्यहोरात्रो प्रायोपगमनान्वितौ।
आराध्यापाच्युतेन्द्रत्व द्वाविंशत्यब्धिजीवित.॥
—हरिवश० ३४।४२

(ख) पाण्डवपुराण पर्व २५, श्लोक १५२, पृ० ५१०

१० (क) त्रिषष्टि० ८।१।४५२-४५७
(ख) भव-भावना

एक दिन सीमा-प्रान्त पर रहने वाले व्यक्तियो ने राजा श्रीषेण से प्रार्थना की—राजन्! चन्द्र नामक पर्वत की गुफा मे रहने वाला समरकेतु पल्लीपति हमे त्रास देता है। हमारे धन-माल को लूटता है। हमारी रक्षा करो।[१२]

सेना से सुसज्जित होकर राजा उसे पकडने के लिए जाने लगा। तब शख कुमार ने कहा— पिता जी! मै जाऊगा और उसे पकडकर आपके श्री चरणो मे लाऊगा। राजा ने शंख की बात स्वीकार की।

'शख कुमार मुझे पकडने के लिए आ रहा है', जब यह समाचार पल्लीपति ने जाना तब वह दुर्ग से बाहर निकल गया। शख ने भी अपनी कुछ सेना दुर्ग मे भेज दी और स्वय बाहर झाडियो मे छिप गया। पल्लीपति ने बाहर के दुर्ग को ज्यो ही घेरा त्यो ही शख ने झाडियो मे से निकल कर उसे पकड लिया। पल्लीपति ने सारा धन शख के चरणो मे रखा।[१३] पल्लीपति को पकड़कर शख राजधानो की ओर प्रस्तिथ हुआ। रास्ते मे विश्राम के लिए एक स्थान पर डेरा डाला।

अर्धरात्रि का समय था। शखकुमार को नीद नही आ रही थी। वह इधर-से उधर करवट बदल रहा था। उसी समय जगल मे से एक नारी का करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। शंख जिस दिशा से रुदन की आवाज आ रही थी उधर तलवार लेकर चल पडा। शख ने देखा— एक अधेड वय की स्त्री की आँखो से अश्रु की धारा बरस रही है, उसने उसे आश्वस्त कर पूछा—बताओ तुम्हारे रोने का कारण क्या है?[१४]

---

११. मतिप्रभो नाम गुणनिधि. श्रीपेणमन्त्रिण ।
सूतोऽभूद्विमलवोधजीव प्रच्युत आरणात् ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।४५६

१२ त्रिपष्टि० ८।१।४६२-४६४

१३ त्रिपष्टि० ८।१।४७५

१४ ददर्श चाग्रे रुदती महिलामर्धवार्द्धकाम् ।
ऊचे च मृदु मा रोदी ब्रूहि दु खस्य कारणम् ॥
—त्रिपष्टि० ८।१।४७८, ४८०

शख की मधुर वाणी और शारीरिक दिव्य तेज से वह नारी आश्वस्त हुई। उसने अपनी कहानी इस प्रकार कही :—

अगदेश की चम्पानगरी मे जितारि राजा है। उसकी रानी का नाम कीर्तिमती है। उसके अनेक पुत्रो के पश्चात् एक पुत्री हुई, जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोमती रूप और गुण से सम्पन्न है। मैं उसकी धाय माता हूँ। उसने जव से शखकुमार की वीरता, धीरता व रूप सौन्दर्य की प्रशसा सुनी है तब से वह उसमे अनुरक्त है। उसने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की है कि शखकुमार के अतिरिक्त मैं किसी भी व्यक्ति के साथ विवाह न करूगी।[१५] उसके पिता राजा जितारि ने भी शखकुमार के लिए श्रीषेण राजा के पास सम्बन्ध निश्चित करने के लिए अपने व्यक्ति भेजे। उधर विद्याधर मणिशेखर ने जितारि राजा से यशोमती की याचना की। राजा ने मणिशेखर को स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—मेरी पुत्री शखकुमार के अतिरिक्त किसी को भी नही चाहती है। यह सुनते ही मणिशेखर विद्याधर कुपित हुआ। उसने यशोमती का अपहरण किया। मैं यशोमती की धायमाता हूँ। आज तक मैं उसके साथ रही हूँ। मै यशोमती से ऐसी चिपट गई कि वह मुझे भी यहाँ तक घसीट कर ले आया। मुझे यहाँ वलात् छोडकर वह जगल मे भग गया है। अब मेरी प्यारी पुत्री यशोमती का क्या होगा, यह चिन्ता मुझे सता रही है, इसीलिए मै रो रही हू।[१६]

शखकुमार ने कहा—माता, घबरा मत। मैं उसकी खोज मे जाता हूँ। जहाँ कही पर भी वह होगा, उसे पकड़कर ले आता हूँ। ऐसा आश्वासन देकर शख आगे वढा।[१७]

सूर्य उदय हो चुका था। पहाड की एक गुफा मे यशोमती के साथ किसी युवक को उसने देखा। युवक उससे प्रार्थना कर रहा था किन्तु वह स्पष्ट इन्कार कर रही थी। कह रही थी कि मै शखकुमार के अतिरिक्त किसी का भी वरण नही करूगी।[१८] इसी समय शखकुमार दिखलाई दिया।

---

१५ त्रिषष्टि० ८।१।४८४

१६. त्रिषष्टि० ८।१।४८५ से ४८८

१७ त्रिषष्टि० ८।१।४८९

विद्याधर ने यशोमती से कहा—बहुत अच्छा हुआ, देखो यह शखकुमार भी यहाँ आगया है। अब मै तुम्हारे सामने ही उसे मार कर विवाह करूगा।[१९] शखकुमार भी तैयार था। दोनो का परस्पर युद्ध हुआ किन्तु अन्त मे शखकुमार ने विद्याधर को परास्त कर दिया। छाती मे बाण लगने से विद्याधर भूमि पर मूच्छित होकर गिर पडा। शखकुमार ने उसे उपचार कर पुनः सचेत किया और पुन युद्ध करने को आमत्रण दिया,[२०] पर वह बोला—तुमने मुझे ही नही, मेरे हृदय को भी जीत लिया है।

शखकुमार, धायमाता यशोमती और विद्याधर को लेकर जितारि राजा के पास गया। जितारि राजा के आग्रह से यशोमती व अन्य अनेक विद्याधर कुमारियो के साथ विवाह कर शख हस्तिनापुर आया और पिता से मिला।[२१]

अपराजितकुमार के भव मे सूर और सोम नाम के उनके दो भाई थे। वे भी आरण स्वर्ग की आयु पूर्ण कर शखकुमार के यशोधर और गुणभद्र नामक लघु भ्राता बने। श्रीधर राजा ने भी शखकुमार को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की।[२२]

एक दिन हस्तिनापुर में श्रीषेण केवलज्ञानी भगवान् पधारे। शखकुमार ने उनसे पूछा—यशोमती 'पर सहज रूप मे मेरा इतना अनुराग कैसे है?[२३]

---

१८. एकस्मिन् गह्वरे तस्य ता सोऽपश्यद्यशोमतीम्।
विवाहायार्थयन्त च खेचर ब्रुवतीमिति॥
शखोज्ज्वलगुण शखो भर्ता मे नापरः पुन.।
अप्रार्थितप्रार्थक रे! सखेदयसि किं मुधा॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४९१-४९२

१९ त्रिषष्टि० ८।१।४९३-४९४

२०. त्रिषष्टि० ८।१।४९९-५००

२१ त्रिषष्टि० ८।१।५०४-५१८

२२. श्रीषेणराजाप्यन्येद्युर्दत्वा शखाय मेदिनीम्।
गुणधरगणधरपादान्ते व्रतमाददे॥
—त्रिषष्टि० ८।१।५२०

२३. त्रिषष्टि० ८।१।५२२-५२५

केवली भगवान् ने कहा—धनकुमार के भव में धनवती नामक यह तुम्हारी पत्नी थी। वहाँ से सौधर्म देवलोक मे तुम दोनो मित्र के रूप मे रहे। वह चित्रगति के भव मे रत्नवती नामक तुम्हारी पत्नी हुई। माहेन्द्र देवलोक मे पुन: मित्र रूप मे रहे। अपराजित के भव मे प्रीतिमती नामक पत्नी हुई, और आरण देवलोक मे पुन. मित्र बने। सातवे भव मे यह यशोमती है। पुराना सम्बन्ध होने के नाते तुम्हारा इस पर अत्यधिक अनुराग है। यहाँ से आयु पूर्ण कर तुम दोनो अपराजित नामक अनुत्तर विमान मे उत्पन्न होओगे। वहाँ से जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे तुम बावीसवे तीर्थंकर अरिष्टनेमि बनोगे और यशोमती रानी उस समय राजीमती के रूप मे जन्म लेगी। विवाह न होने पर भी यह तुम्हारे प्रति अत्यन्त अनुरक्त रहेगी, अन्त मे तुम्हारे पास दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त करेगी। तुम्हारे यशोधर और गुणधर जो लघुबन्धु है वे तथा मतिप्रभ नामक मत्री भी तुम्हारे गणधर बनेगे और अन्त मे सिद्धिवरण करेगे।[२४]

शंख राजा ने अपने पुत्र पुण्डरीक को राज्य देकर अपने दोनो छोटे भाइयो, मत्री एव यशोमती पत्नी के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की।[२५] शखमुनि ने आगम साहित्य का गभीर अध्ययन किया। फिर उत्कृष्ट तप की साधना की।[२६] तीर्थंकरत्व की प्राप्ति के लिए जिन बीस निमित्तो की आराधना अपेक्षित है, वे इस प्रकार है :—

१ अरिहन्त की आराधना।
२ सिद्ध की आराधना।
३ प्रवचन की आराधना।
४ गुरु का विनय।
५ स्थविर का विनय।
६ बहुश्रुत का विनय।
७ तपस्वी का विनय।

---

२४ त्रिषष्टि० ८।१।५२६—५३१

२५. त्रिषष्टि० ८।१।५३२

२६. गीतार्थोऽभूत्क्रमाच्छखस्तपस्तेपे च दुस्तपम्।
अर्हद्भक्त्यादिभि स्थानैस्तीर्थकृत्कर्मचार्जयत्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।५३३

८ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ।
९ निर्मल सम्यग् दर्शन ।
१० विनय ।
११ षड् आवश्यक का विधिवत् समाचरण ।
१२ ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन ।
१३ ध्यान ।
१४ तपश्चर्या ।
१५ पात्र-दान ।
१६ वैयावृत्ति ।
१७ समाधि ।
१८ अपूर्व ज्ञानाभ्यास
१९ श्रुत-भक्ति ।
२० प्रवचन-प्रभावना[२७]

शखमुनि ने इनकी आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त मे पादपोपगमन सथारा कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया।[२८]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन के अनुसार अपराजित का जीव अच्युत स्वर्ग से च्यवन कर नागपुर मे श्रीचन्द राजा और श्रीमती का पुत्र सुप्रतिष्ठित हुआ।[२९]

---

२७. इमेहि य ण वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुली-
कएहिं तित्थयरनामगोय कम्म निव्वत्तिसु त जहा—
अरहत सिद्ध पवयण गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छल्लया य तेसिं अभिक्खणाणोवओगे य ॥
दसण विणय आवस्सए य सीलव्वए णिरइयार ।
खणलव तव च्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥
अपुव्वणाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्त लहइ जीओ ॥
—ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र अ० ८ सू० ७०

२८ त्रिषष्टि० ८।१।५३४

२९ च्युत्वा गजपुरे जज्ञे जिनेन्द्रमतभावित ।
श्रीचन्द्रश्रीमतीसूनु सुप्रतिष्ठ प्रतिष्ठित ॥
—हरिवशपुराण ३४।४३, पृ० ४२२

एकदिन श्रीचन्द्र राजा ने सुप्रतिष्ठित को राज्य देकर सुमन्दिर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की।

एक समय कार्तिकपूर्णिमा की रात मे राजा सुप्रतिष्ठित अपनी पत्नियो के साथ राजमहल की छत पर बैठा हुआ आनन्द क्रीडा कर रहा था। आकाश मे उमड-घुमडकर घटाए छा रही थी, विजलिया चमक रही थी। इस दृश्य को देखकर राजा विचारने लगा—"कि राजलक्ष्मी भी विजली की तरह ही चचल है, क्षणभगुर है। मन मे विरक्ति हुई, चार सहस्र राजादि के साथ सुमन्दिर गुरु के पास उसने प्रव्रज्या ग्रहण की।[30] अग और पूर्वो का अध्ययन किया। सर्वतोभद्र से लेकर सिंहनिष्क्रीडित आदि उत्कृष्ट तप की आराधना की।[31] सोलह कारण भावनाओ से तीर्थकर नाम कर्म का वध किया।[32] एक मास का अनशन कर आयु पूर्ण किया।[33]

(८) अपराजित :

त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र के अनुसार शख राजा का जीव अपराजित नामक अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुआ।[34] यशोमती आदि चारो जीव भी वही पर पैदा हुए।[35]

आचार्य जिनसेन के अनुसार सुप्रतिष्ठित का जीव जयन्त नामक अनुत्तर विमान मे वावीस सागर की स्थिति वाला अहमिन्द्र-देव वना।[36]

---

३० चतु.सहस्रसख्याता: सहस्रकिरणौजस.।
प्रातिष्ठन्त तपस्युग्रे सुप्रतिष्ठेन पार्थिवा ॥
—हरिवशपुराण ३४।४६ से ४८

३१ हरिवशपुराण ३४।४९-५०

३२ हरिवशपुराण ३४, श्लो० १३१ से १४९ पृ० ४४५-४६

३३ हरिवशपुराण ३४।१५०, पृ० ४४७

३४ त्रिषष्टि० ८।१।५३४, पृ० १९

३५ त्रिषष्टि० ८।१।५३५,

३६. त्रैलोक्यासनकम्पशक्तसुवृहत्पुण्यप्रकृत्यात्मका ।
प्रत्याख्याय स सुप्रतिष्ठसुमुनिर्भक्त ततो मासिकम् ॥
आराध्याथ चतुर्विधा वुधनुतामाराधना शुद्धधी ।
द्वात्रिंशज्जलधिस्थिति. पुरुसुख स्वर्गं जयन्त श्रित. ॥
—हरिवशपुराण ३४।१५०, पृ० ४४७

(६) अरिष्टनेमि

वहा से आयु पूर्ण होने पर शख राजा का जीव च्यवकर महाराजा समुद्रविजय की पत्नी शिवादेवी की कुक्षि मे अरिष्टनेमि के रूप मे उत्पन्न हुआ।[३७] यशोमती का जीव, राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती हुआ।[३८]

तीर्थंकरत्व यह एक गरिमामय महत्वपूर्ण पद है। वह सहज सुकृतसचय से प्राप्त होता है। किसी भौतिक कामना विशेष से तप करना जैन दृष्टि मे निषिद्ध माना है। उसे जैन परिभाषा मे निदान कहा है, और वह विराधना का प्रतीक है।[३९] जैन दृष्टि से वीतरागता के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए।[४०] प्रसुप्त अमृत तत्त्व को जागृत करने के लिए विचार को आचार के रूप मे परिणत करना चाहिए। बीजअकुर मे वदलकर ही विराट् वृक्ष बनता है, तभी उसमे फल-फूल पदा होते है। जब विचार-आचार मे परिणत होता है तभी अपूर्व ज्योति प्रकट होती है।

जैन दर्शन आत्मा की अनन्त आत्म-शक्ति को जागृत करने का सन्देश देता है कहा गया है—तुम्हारे अन्दर विराट् शक्तिया छिपी है, उन शक्तियो को प्रकट करो। आत्मा और परमात्मा मे कोई मौलिक भेद नही है। जो आत्मा है वही परमात्मा है। यदि कुछ अन्तर है तो वह इतना ही कि आत्मा कर्मो के बंधन मे बधी है। माया और अविद्या मे बधी है। जब आत्मा कर्म, माया, और वासना के बधनो को तोड देती है तब परमात्मा बन जाती है। भगवान् अरिष्टनेमि किस प्रकार साधना कर सिद्ध बनते है, इसका वर्णन अगले अध्याय मे प्रस्तुत है।

---

३७. (क) त्रिषष्टि० ८।५ (ख) कल्पसूत्र १६२

३८ त्रिषष्टि० ८।६

३९ दशाश्रुतस्कध, निदान प्रकरण

४० दशवैकालिक अ० ६, उ० ४

भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

●

वैदिक साहित्य के आलोक मे ◆

वेद

उपनिषद्

महाभारत

पुराण

इतिहासकारो की दृष्टि मे ◆

डा० राधाकृष्णन्

डा० राय चौधरी

पी० सी० दीवान

कर्नल टॉड

डा० नगेन्द्रनाथ वसु

भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

●

भगवान् अरिष्टनेमि बाईसवे तीर्थंकर है। आधुनिक इतिहास-कारो ने जो कि साम्प्रदायिक सकीर्णता से मुक्त एव शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न है, उनको ऐतिहासिक पुरुषो की पक्ति मे स्थान दिया है। किन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से इतिहास को भी अन्यथा रूप देने वाले लोग इस तथ्य को स्वीकार नही करना चाहते। मगर जब वे कर्मयोगी श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुप मानते है तो अरिष्टनेमि भी उसी युग मे हुए है और दोनो मे अत्यन्त निकट के पारिवारिक सम्बन्ध थे, अर्थात् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव और अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय दोनो सहोदर भाई थे, अत उन्हे ऐतिहासिक पुरुष मानने मे सकोच नही होना चाहिए।

वैदिक साहित्य के आलोक में :

ऋग्वेद मे 'अरिष्टनेमि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है।[1] 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि' (ऋग्वेद १।१४।८९।६) यहाँ पर अरिष्टनेमि शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिए आया है। कितने ही विद्वानो

---

१. (क) ऋग्वेद १।१४।८९।६ (ख) ऋग्वेद १।२४।१८०।१०
(ग) ऋग्वेद ३।४।५३।१७ (घ) ऋग्वेद १०।१२।१७८।१

की मान्यता है कि छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम 'घोर आगिरस ऋषि' आया है। घोर आगिरस ऋषि ने श्री कृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। उनकी दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिसा, सत्यवचन रूप थी।[२] धर्मानन्द कौशाम्बी का मानना है कि आगिरस भगवान् नेमिनाथ का ही नाम था।[३] घोर शब्द भी जैन श्रमणो के आचार और तपस्या की उग्रता वताने के लिए आगम साहित्य मे अनेक स्थलो पर व्यवहृत हुआ है।[४]

छान्दोग्योपनिषद् मे देवकीपुत्र श्रीकृष्ण को घोर आङ्गिरस ऋषि उपदेश देते हुए कहते है—अरे कृष्ण! जब मानव का अन्त समय सन्निकट आये तब उसे तीन वाक्यो का स्मरण करना चाहिए—

(१) त्व अक्षतमसि—तू अविनश्वर है।

(२) त्व अच्युतमसि—तू एक रस मे रहने वाला है।

(३) त्वं प्राणसशितमसि—तू प्राणियो का जीवनदाता है।[५]

श्रीकृष्ण इस उपदेश को श्रवण कर अपिपास हो गये, उन्हे अब किसी भी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नही रही। वे अपने आपको धन्य अनुभव करने लगे।

प्रस्तुत कथन की तुलना हम जैन आगमो मे आये हुए भगवान् अरिष्टनेमि के भविष्य कथन से कर सकते है। द्वारिका का विनाश और श्रीकृष्ण की जरत्कुमार के हाथ से मृत्यु होगी, यह सुनकर श्रीकृष्ण चिन्तित होते है। तब उन्हे भगवान् उपदेश सुनाते है। जिसे सुनकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट एव खेदरहित होते है।+

---

२. अत. यत् तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमितिता अस्य दक्षिणा।
—छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४

३ भारतीय सस्कृति और अहिसा—पृ० ५७

४ घोरतवे, घोरे, घोरगुणे, घोर तवस्सी, घोरवभचेरवासी।
—भगवती १।१

५ तद्धैतद् घोर आङ्गिरस, कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचाऽपिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रय प्रतिपद्येताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणसं शितमसीति। —छान्दोग्योपनिषद् प्र० ३, खण्ड १८

ऋग्वेद,[६] यजुर्वेद[७] और सामवेद[८] में भगवान् अरिष्टनेमि को तार्क्ष्य अरिष्टनेमि भी लिखा है :—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा. स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा: ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिदधातु ।।[९]

विज्ञो की धारणा है कि अरिष्टनेमि शब्द का प्रयोग जो वेदो मे हुआ है वह भगवान् अरिष्टनेमि के लिए है ।[१०]

महाभारत मे भी 'तार्क्ष्य' शब्द का प्रयोग हुआ है । जो भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम होना चाहिए ।[११] उन्होने राजा सगर को जो मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है वह जैन धर्म के मोक्षमन्तव्यो से अत्यधिक मिलता-जुलता है । उसे पढ़ते समय सहज ही ज्ञात होता है कि हम मोक्ष सम्बन्धी जैनागमिक वर्णन पढ रहे है । उन्होंने कहा—

सगर ! मोक्ष का सुख ही वस्तुत. समीचीन सुख है । जो अहर्निश धन-धान्य आदि के उपार्जन मे व्यस्त है, पुत्र और पशुओ मे ही अनुरक्त है वह मूर्ख है, उसे यथार्थ ज्ञान नही होता । जिसकी बुद्धि विषयो मे आसक्त है, जिसका मन अशान्त है, ऐसे मानव का उपचार कठिन है, क्योकि जो राग के बधन मे बधा हुआ है वह मूढ है तथा

+ अन्तकृद्दशा वर्ग ५, अ० १

६ (क) त्वमू पु वाजिन देवजूत सहावान तरुतार रथानाम् ।
अरिष्टनेमि पृतनाजमाशु स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ।।
—ऋग्वेद १०।१२।१७८।१

(ख) ऋग्वेद १।१।१६

७ यजुर्वेद २५।१९

८ सामवेद ३।९

९ ऋग्वेद १।१।१६

१०. उत्तराध्ययन - एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० ७

११. एवमुक्तस्तदा तार्क्ष्य सर्वशास्त्रविदावर ।
विवुध्य सपद चाग्र्या सद्वाक्यमिदमब्रवीत् ।।
—महाभारत शान्तिपर्व २८८।४

मोक्ष पाने के लिए अयोग्य है।[१२]

ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि सगर के समय मे वैदिक लोग मोक्ष मे विश्वास नही करते थे अत यह उपदेश किसी वैदिक ऋषि का नही हो सकता। उसका सम्बन्ध श्रमणसस्कृति से है।

यजुर्वेद मे अरिष्टनेमि का उल्लेख एक स्थान पर इस प्रकार आया है—अध्यात्मयज्ञ को प्रगट करने वाले, ससार के भव्य जीवो को सब प्रकार से यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से जीवो की आत्मा बलवान् होती है उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिए आहुति समर्पित करता हूँ।[१३]

डाक्टर राधाकृष्णन् ने लिखा है यजुर्वेद मे ऋषभदेव अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है।[१४]

स्कदपुराण के प्रभास खण्ड मे वर्णन है—अपने जन्म के पिछले भाग मे वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव श्यामवर्ण, अचेल तथा पद्मासन से स्थित थे। वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। यह नेमिनाथ इस घोर कलिकाल मे सब पापो का नाश करने वाले हैं। उनके दर्शन और स्पर्श से करोड़ो यज्ञो का फल प्राप्त होता है।[१५]

---

१२. महाभारत, शान्तिपर्व २८८।५,६

१३ वाजस्य नु प्रसव आवभूवेमात्र विश्वा भुवनावि सर्वत।
स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजा पुष्टि वर्द्धमानोऽस्मै स्वाहा ॥
—वाजसनेयि-माध्यदिन शुक्लयजुर्वेद, अध्याय ९ मत्र २५
सातवलेकर सस्करण (विक्रम १९८४

१४. Indian philosphy vol 1. p. 287
The Yajurveda mentions the names of Three Thirthankaras—Rishabha, Ajitnath and Arishtanemi

१५. भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तप. कृतम्।
तेनैवतपमाकृष्ट शिव: प्रत्यक्षता गत ॥
पद्मासन. समासीन श्याममूर्तिदिगम्बर।
नेमिनाथ शिवोऽथैव नाम चक्रेऽस्य वामन ॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशक.।
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रद: ॥
—स्कदपुराण, प्रभास खण्ड

प्रभासपुराण मे भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है।[१६]

महाभारत के अनुशासन पर्व, अध्याय १४९ मे विष्णुसहस्र नाम मे दो स्थानो पर 'शूर' शौरिर्जनेश्वर.' पद व्यवहृत हुआ है। जैसे—

अशोकस्तारणस्तार शूर. शौरिर्जनेश्वरः।
अनुकूलः शतावर्त. पद्मी पद्मनिभेक्षण. ॥५०॥
कालनेमि महावीरः शौरिः शूरजनेश्वर।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशव' केशिहाहरि ॥८२॥

इन श्लोको मे 'शूर शौरिर्जनेश्वर.' शब्दो के स्थान मे 'शूर. शौरिर्जिनेश्वर' पाठ मानकर अरिष्टनेमि अर्थ किया गया है।[१७]

स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ पर श्रीकृष्ण के लिए 'शौरि' शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्तमान मे आगरा जिले के बटेश्वर के सन्निकट शौरिपुर नामक स्थान है। वही प्राचीनयुग में यादवो की राजधानी थी। जरासध के भय से यादव वहा से भागकर द्वारिका मे जा बसे। शौरिपुर मे ही भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ था, एतदर्थ उन्हे 'शौरि' भी कहा गया है। वे जिनेश्वर तो थे ही अत. यहाँ 'शूरः शौरिर्जिनेश्वर' पाठ अधिक तर्कसगत लगता है। क्योकि वैदिक परम्परा के ग्रन्थो मे कही पर भी शौरिपुर के साथ यादवो का सम्बन्ध नही बताया, अत. महाभारत में श्री कृष्ण को 'शौरि' लिखना विचारणीय अवश्य है।

भगवान् अरिष्टनेमि का नाम अहिसा की अखण्ड ज्योति जगाने के कारण इतना अत्यधिक लोकप्रिय हुआ कि महात्मा बुद्ध के नामो की सूची मे एक नाम अरिष्टनेमि का भी है। लकावतार के तृतीय परिवर्तन मे बुद्ध के अनेक नाम दिये है। वहाँ लिखा है—जिस प्रकार एक ही वस्तु के अनेक नाम प्रयुक्त होते है उसी प्रकार बुद्ध

---

१६. कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽय जिनेश्वर।
चकार स्वावतार च सर्वज्ञ सर्वग. शिव.॥
रेवताद्री जिनो नेमिर्युगादिविमलाचले।
ऋषीणा याश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥
—प्रभासपुराण ४९-५०

१७ मोक्षमार्ग प्रकाश—प० टोडरमल

के असख्य नाम है। कोई उन्हे तथागत कहते है तो कोई उन्हे स्वयभू, नायक, विनायक, परिणायक, बुद्ध, ऋषि, वृषभ, ब्राह्मण, विष्णु, ईश्वर प्रधान, कपिल, भूतान्त, भास्कर, अरिष्टनेमि, राम, व्यास, शुक, इन्द्र, बलि, वरुण आदि नामो से पुकारते है।[१८]

इतिहासकारो की दृष्टि में :

नन्दी सूत्र मे ऋषि-भाषित (इसिभासिय) का उल्लेख है।[१९] उसमे पैतालीस प्रत्येक बुद्धो के द्वारा निरूपित पैतालिस अध्ययन हैं। उसमे बीस प्रत्येक बुद्ध भगवान् अरिष्टनेमि के समय हुए।[२०] उनके नाम इस प्रकार है।

१ नारद।
२ वज्जियपुत्र।
३ असित दविक।
४ भारद्वाज अगिरस,
५ पुष्पसाल पुत्र।
६ वल्कल चीरि।
७ कुर्मा पुत्र।
८ केतली पुत्र।
९ महाकश्यप।
१० तेतलिपुत्र।
११ मखली पुत्र।
१२ याज्ञवल्क्य।
१३ मैत्रय भयाली।
१४ बाहुक।
१५ मधुरायण।
१६ सोरियायण।
१७ विदु।
१८ वर्षपकृष्ण।
१९ आरियायण।
२० उत्कलवादी।

उनके द्वारा पुरूपित अध्ययन अरिष्टनेमि के अस्तित्व के स्वयभूत प्रमाण है।

प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर राय चौधरी ने अपने वैष्णव धर्म के प्राचीन इतिहास मे भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) को श्री कृष्ण का चचेरा भाई लिखा है।[२१]

---

१८. बौद्धधर्म दर्शन पृ० १६२

१९ नन्दीसूत्र

२० पत्तेय बुद्धमिसिणो, वीस तित्थे अरिट्ठणेमिस्स।
पासस्स य पण्णरस, वीरस्स विलीणमोहस्स॥
—इसिभासिय, पढमा सगहिणी गा० १

२१. णारद-वज्जिय-पुत्ते आसिते अगरिसि-पुप्फसाले य।
वक्कलकुम्मा केवलि कासव तह तेतलिसुते य॥

पी० सी० दीवान ने लिखा है जैन ग्रन्थो के अनुसार नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के बीच मे ८४००० वर्ष का अन्तर है। हिन्दू पुराणो मे इस बात का निर्देश नही है कि वसुदेव के समुद्रविजय बडे भाई थे और उनके अरिष्टनेमि नामक कोई पुत्र था। प्रथम कारण के सम्बन्ध मे दीवान का कहना है कि हमे यह स्वीकार करना होगा कि हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए यह सभव नही है कि जैन ग्रन्थकारो के द्वारा एक तीर्थकर से दूसरे तीर्थकर के बीच मे सुदीर्घकाल का अन्तराल कहने मे उनका क्या अभिप्राय है, इसका विश्लेषण कर सके, किन्तु केवल इसीकारण से जैनग्रन्थो मे वर्णित अरिष्टनेमि के जीवनवृत्तान्त को, जो अतिप्राचीन प्राकृत ग्रन्थो के आधार पर लिखा गया है, दृष्टि से ओझल कर देना युक्तियुक्त नही है।

दूसरे कारण का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि भागवत सम्प्रदाय के ग्रन्थकारो ने अपने परम्परागत ज्ञान का उतना ही उपयोग किया है जितना श्री कृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने के लिए आवश्यक था। जैनग्रन्थो मे ऐसे अनेक ऐतिहासिक तथ्य है जो भागवत साहित्य मे उपलब्ध नही है।[२२]

कर्नल टॉड ने अरिष्टनेमि के सम्वन्ध मे लिखा है 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे चार बुद्ध या मेधावी महापुरुष हुए है। उनमे पहले आदिनाथ और दूसरे नेमिनाथ थे। नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियो के प्रथम ओडिन तथा चीनियो के प्रथम 'फो' देवता थे।[२३]

प्रसिद्ध कोषकार डाक्टर नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर फुहर्र, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर

मखली जण्णभयालि वाहुय महु सोरियाण विदूविपू।
वरिसकण्हे आरिय उक्कलवादी य तरुणे य॥
— इसिभासियाइ पढमा सगहणी गा० २-३

२२ जैन साहित्य का इतिहास
—पूर्व पीठिका—ले० प० कैलाशचन्द्रजी पृ० १७०-१७१

२३. अन्नल्स आफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट-पत्रिका, जिल्द २३ पृ० १२२

प्राणनाथ विद्यालकार प्रभृति अन्य अनेक विद्वानो का स्पष्ट मन्तव्य है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष हुए थे, उन्हे ऐतिहासिक पुरुष मानने मे कोई बाधा नही है।

साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण वैदिक ग्रन्थो मे स्पष्ट नाम का निर्देश होने पर भी टीकाकारो ने अर्थ मे परिवर्तन किया है, अत आज आवश्यकता है तटस्थ दृष्टि से उस पर चिन्तन करने की। जब हम तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो सूर्य के उजाले की भाँति स्पष्ट ज्ञात होगा कि भगवान् अरिष्टनेमि एक ऐतिहासिक पुरुष थे।

जन्म एवं विवाह प्रसंग

●

- जन्मस्थली
- जन्म
- वश, गोत्र, कुल
- नामकरण
- बाह्याभ्यतर व्यक्तित्व
- पराक्रम दर्शन
- हरिवशपुराण मे
- राजुल की मगनी
- तोरण से लौट गये
- दिगम्बर ग्रन्थो मे

जन्म एवं विवाह प्रसंग

●

जन्मस्थली :

श्वेताम्बर, दिगम्बर सभी ग्रथो के अनुसार भगवान अरिष्टनेमि का जन्म सोरियपुर मे हुआ।[1] सोरियपुर कुशावंत जनपद की राजधानी थी।[2] जैनग्रन्थो के उल्लेखानुसार राजा शौरि ने अपने लघु भ्राता सुवीर को मथुरा का राज्य देकर कुशावर्त मे जा शौरिपुर नगर वसाया था।[3] पर यह स्मरण रखना चाहिए कि

---

१. (क) सोरियपुरंमि नयरे, आसी राया महिड्ढिए।
समुद्दविजए नाम रायलक्खणसजुए॥
तस्स भज्जा सिवा नाम तीसे पुत्तो महायसो।
भगव अरिट्ठनेमि त्ति लोगनाहे दमीसरे॥

—उत्तराध्ययन, २२।३-४

(ख) कल्पसूत्र सूत्र १६२

(ग) भव-भावना

२. (क) वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति १, ३२६३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र १।६६। पृ० १७३

(ग) प्रवचन सारोद्धार

३. कल्पसूत्र टीका ८, पृ० १७१

प्रस्तुत जनपद पश्चिमी तट के कुशार्त से भिन्न है। यह नगर यमुना के तट पर अवस्थित था।[४] सोरिक (सोरियपुर) नारद की जन्म भूमि थी।[५] सूत्रकृताङ्ग मे एक 'लोरी' मे अनेक नगरो के साथ 'सोरियपुर' का भी उल्लेख हुआ है।[६] वर्तमान मे इसकी पहचान आगरा जिले मे यमुना नदी के किनारे बटेश्वर के पास आये हुए 'सूर्यपुर' या 'सूरजपुर' की जाती है।[७] प्राचीन तीर्थमाला के अनुसार आगरा जिले के शिकुराबाद स्टेशन से यहाँ पहुँचा जाता है।[८]

भगवान् अरिष्टनेमि ने जिस समय सोरियपुर मे जन्म लिया उस समय वहाँ द्वैध राज्य था।[A] एक ओर वृष्णिकुल के नेता वसुदेव राज्य करते थे। उनकी दो रानियाँ थी—एक का नाम रोहिणी और दूसरी का नाम देवकी था। रोहिणी के पुत्र बलराम थे, देवकी के पुत्र 'केशव' थे।[९]

दूसरी ओर अन्धककुल के नेता समुद्रविजय राज्य करते थे, उनकी पटरानी का नाम शिवा था। उनके चार पुत्र थे—अरिष्टनेमि, रथनेमि सत्यनेमि, और दृढनेमि। अरिष्टनेमि बाईसवे तीर्थंकर हुए और रथनेमि सत्यनेमि प्रत्येक बुद्ध हुए।[१०]

---

४ विपाकसूत्र ८, पृ० ४५

५ आवश्यक चूर्णि, उत्तरभाग, पृ० १९४

६ (क) सूत्रकृताङ्ग वृत्ति, पत्र ११९
 (ख) उत्तराध्ययन—एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० ३७२

७. कालक कथा सग्रह, उपोद्‌घात पृ० ५२

८. (क) प्राचीन तीर्थमाला भाग १, भूमिका पृ० ३८
 (ख) गजेटियर ऑव आगरा पृ० १३७ २३६

A उत्तराध्ययन (मूल-अर्थ) तेरापथी महा सभा, कलकत्ता

९. सोरियपुरमि नयरे आसि राया महिड्ढिए।
 वसुदेवे त्ति नामेण रायलक्खणसजुए॥
 तस्स भज्जा दुवे आसो रोहिणी देवई तहा।
 तासि दोण्ह पि दो पुत्ता इट्ठा राम केसवा॥
 —उत्तराध्ययन २२ गा० १-२

इस प्रकार सोरियपुर मे द्वैध-राज्य प्रणाली प्रचलित थी। जिसे 'विरुद्ध राज्य' भी कहा जाता था।[11] अधक-वृष्णियो के सघ-राज्य का उल्लेख पाणिनि ने भी किया है।[12]

जन्म :

अर्हत् अरिष्टनेमि का जीव अपराजित महाविमान मे बत्तीस सागरोपम का आयुष्य भोगकर वर्षाऋतु के चतुर्थमास अर्थात् कार्तिक मास की कृष्णा त्रयोदशी के दिन च्यवकर माता शिवादेवी की कुक्षि मे आया। उस समय रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धि वेला थी। चित्रा नक्षत्र का योग था।[13]

आचार्य जिनसेन[14] और गुणभद्र[15] का मन्तव्य है कि कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन भगवान् स्वर्ग से च्युत होकर गर्भ मे आये थे।

---

१० सोरियपुरमि नयरे, आसी राया समुद्दविजओत्ति।
तस्सासि अग्गमहिसी, सिवत्ति देवी अणुज्जगी॥
तेसिं पुत्ता चउरो अरिट्ठनेमि तहेव रहनेमी।
तइओ अ सच्चनेमी, चउत्थओ होइ दढनेमि॥
जो सो अरिट्ठनेमी, वावीसइमो अहेसि सो अरिहा।
रहनेमि सच्चनेमी, एए पत्तेयवुद्धा उ॥
—उत्तराध्ययन निर्युक्ति गा० ४४३-४४५

११. आचारांग २।३।१।१६६, २।११।१।४४१

१२ अष्टाध्यायी (पाणिनी) ६।२।३४

१३. (क) कल्पसूत्र, सूत्र १६२, देवेन्द्रमुनि सम्पादित पृ० २२७
(ख) भव-भावना

१४ अनन्तर स्वप्नगणस्य कम्पयन्।
सुरासनान्याविशदम्बिकाननम्॥
सितेभरुपो भगवान् दिवश्च्युत।
प्रकाशयन् कार्तिकशुक्लषष्ठिकाम्॥
—हरिवंशपुराण ३७, श्लोक २२, पृ० ४७३

गर्भ मे आते ही गर्भ के प्रभाव से माता शिवा देवी ने हस्ती, वृषभ, सिह, लक्ष्मीदेवी पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कुभ, पद्मसरोवर, क्षीरसागर, विमान, रत्नपुञ्ज, और निर्धूम अग्नि, ये चौदह महास्वप्न देखे।[१६] दिगम्बर परम्परा के अनुसार सोलह स्वप्न देखे थे। उपरोक्त चौदह स्वप्नो के अतिरिक्त मत्स्ययुगल और नागेन्द्र भवन ये दो स्वप्न अधिक थे।[१७]

वर्षाऋतु के प्रथम मास श्रावण शुक्ला पञ्चमी के दिन नौ माह पूर्ण होने के पश्चात् चित्रा नक्षत्र के योग मे भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ।[१८] गुणभद्राचार्य ने श्रावण शुक्ला षष्ठी लिखा है[१९] परन्तु दिगम्बर परम्परा के समर्थ आचार्य जिनसेन ने हरिवश पुराण मे वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म माना है।[२०] हमारी दृष्टि से यह जन्मतिथि मानना सगत नही है, क्योकि कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन उनके मन्तव्यानुसार वे गर्भ मे आये, और वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को उनका जन्म हुआ तो उनका गर्भ काल छह माह और सात दिन का ही होता है, जबकि

---

१५ मासे कार्तिके शुक्लपक्षे ॥
षष्ठ्यामथोत्तराषाढे निशान्ते स्वप्नमालिकाम्।
आलोकतानुवक्त्राब्ज प्रविष्ठञ्च गजाधिपम् ॥
—उत्तरपुराण ७१।३१-३२ पृ० ३७७

१६. कल्पसूत्र, १६२

१७ (क) हरिवशपुराण सर्ग ३७, श्लोक ६-२१, पृ० ४७१-४७३
(ख) उत्तरपुराण ७१, श्लोक ३२

१८ अरिहा अरिट्ठनेमी जे से वासाण पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावण-सुद्धे तस्स ण सावणसुद्धस्स पचमीपक्खेण नवण्ह मासाण जाव चित्ताहि नक्खत्तेण जोगमुवागएण अरोगा अरोग पयाया।
—कल्पसूत्र १६३

१९ स पुन श्रावणे शुक्लपक्षे षष्ठीदिने जिन.।
ज्ञानत्रितयभृत्त्वष्ट्रयोगे तुष्ट्यामजायत ॥
—उत्तरपुराण ७१।३८, पृ० ३७७

स्वयं जिनसेन ने प्रस्तुत प्रकरण मे ही गर्भ मे नौ माह रहने का उल्लेख किया है।[21]

वंश, गोत्र, कुल :

भगवान् अरिष्टनेमि का वश हरिवश माना गया है।[22] हरिवश उत्तम वशो मे परिगणित है क्योकि अनेक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और वलदेव आदि हरिवश मे उत्पन्न हुआ करते है।[23]

अरिष्टनेमि का गोत्र गौतम[24] और कुल वृष्णि था।[25] अधक और वृष्णि दो भाई थे। वृष्णि अरिष्टनेमि के दादा थे। उनसे वृष्णि कुल का प्रवर्तन हुआ। अरिष्टनेमि वृष्णि कुल मे प्रधान पुरुष थे, अत: उन्हे 'वृष्णि पुङ्गव' कहा गया है।[26]

---

२०. तत कृतसुसङ्गमे निशि निशाकरे चित्रया।
प्रशस्तसमवस्थिते ग्रहगणे समस्ते शुभे ॥
असूत तनय शिवा शिवदशुद्धवैशाखज—
त्रयोदशतिथौ जगज्जयनकारिण हारिणम् ॥
—हरिवशपुराण ३८।६। पृ० ४७९ भारतीय ज्ञानपीठ काशी

२१. ' गमयत स्म मासान्नव।
—वही ३८।८। पृ० ४७९

२२. (क) तत्थ य पचसु लक्खेसु समइक्कतेसु णमिजिणाओ।
अरिट्ठणेमिकुमारो समुप्पण्णो। सो य हरिवसे ॥
—चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, पृ० १८०

(ख) नेमीशो हरिवंशशैलतिलको द्वाविंशसख्यो जिन ।
—हरिवशपुराण ३४।१५१

२३ एव खलु अरहता वा चक्कवट्टी वा वलदेवा वा वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइण्णकुलेसु वा, इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा, हरिवसकुलेसु वा अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवसेसु आयाइ सुवा, आयाइ ति वा आयाइस्सति वा।
—कल्पसूत्र सूत्र १७, पृ० ५६

२४ (क) उत्तराध्ययन २२।५
(ख) सप्ततिशतस्थान प्रकरण ३७-३८, द्वार, गा० १०५

उत्तराध्ययन[२७] और दशवैकालिक[२८] मे उनका कुल अधक-वृष्णि भी लिखा है। अधक-वृष्णि कुल उन दोनो भाइयो के सयुक्त नाम से चलता था।

उत्तरपुराण मे 'अधकवृष्टि' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो एक ही व्यक्ति का नाम है। कुशार्थ (कुशार्त) देश के सौर्यपुर के स्वामी शूरसेन के शूरवीर नामक पुत्र हुआ। उसके दो पुत्र हुए अधकवृष्टि और नरवृष्टि। समुद्रविजय प्रभृति अधकवृष्टि के दस पुत्र थे।[२९] सक्षेप मे उत्तरपुराण के अनुसार उनका वश इस प्रकार है।[30]

—(देखिए सारणी)

---

२५. (क) नियगाओ भवणाओ निज्जाओ वण्हिपुगवो।

—उत्तराध्ययन अ० २२, गा० १३

(ख) अह च भोगरायस्स त चऽसि अधगवण्हिणो।

—उत्तराध्ययन २२।४४

२६. 'वृष्णिपुंगव' यादवप्रधानो भगवानरिष्टनेमिरितियावत्।

—उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति। पत्र० ४९०

२७. उत्तराध्ययन अ० २२, गा० ४३

२८. दशवैकालिक २।८

२९ तदा कुशार्थविषये, तद्व शाम्बरभास्वत।
अवार्यनिजशौर्येण, निर्जिताशेपविद्विप॥
ख्यातशौर्यपुराधीश - सूरसेनमहीपते।
सुनस्य शूरवीरस्य, धारिण्याश्च तनूद्भवौ॥
विख्यातोऽन्धकवृष्णिश्च पतिर्वृष्टिर्नरादिवाक्॥

—उत्तरपुराण ७०।९२-९४

३०. उत्तरपुराण ७०।९३-१००

शूरसेन
शूरवीर
अधकवष्टि
नरवृष्टि
(१) समुद्रविजय
(२) स्तिमितसागर
(३) हिमवान्
(४) विजय
(५) विद्वान्
(६) अचलधारण
(७) पूरण
(८) पूरितार्थीच्छ
(९) अभिनन्द
(१०) वसुदेव
(१) कुन्ती
(२) माद्री
(१) उग्रसेन
(२) देवसेन
(३) महासेन
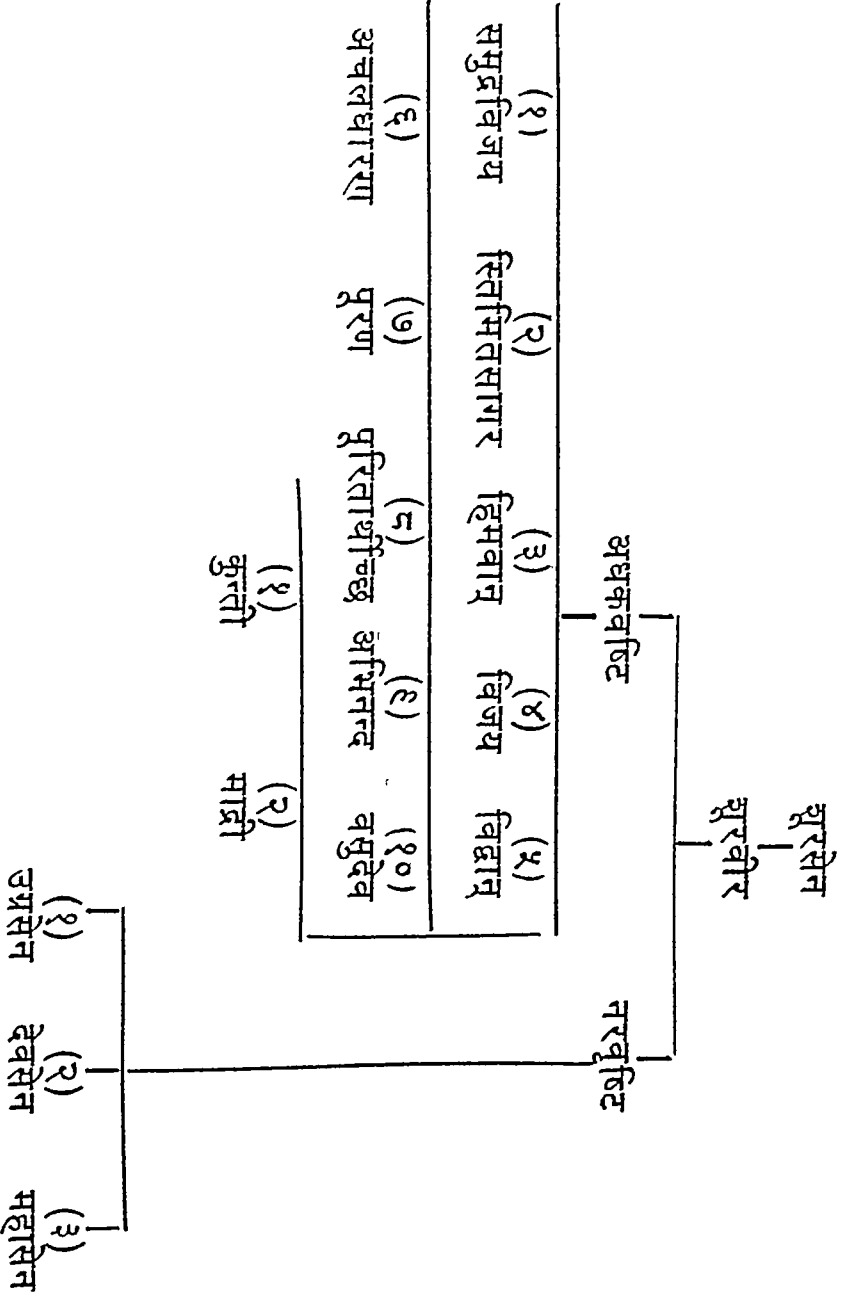
अन्तकृद्दशाग की वृत्ति के अनुसार समुद्रविजय आदि दस भाइयो के नाम इस प्रकार है[31] :—(१) समुद्रविजय, (२) अक्षोभ्य, (३) स्तिमित, (४) सागर (५) हिमवान् (६) अचल (७) धरण, (८) पूरण, (९) अभिचन्द्र, (१०) वसुदेव ।

नामकरण

भगवान् अरिष्टनेमि के नामकरण के सम्वन्ध मे विद्वानो मे विभिन्न मत है।

आचार्य हेमचन्द्र के अभिमतानुसार जव भगवान् गर्भ मे थे तव माता शिवा ने रिष्टरत्नमयीनेमि (चक्रधारा) स्वप्न मे देखी थी अत पुत्र का नाम अरिष्टनेमि रखा गया ।[32]

आचार्य जिनसेन ने उपरोक्त कथन का उल्लेख न करके, लिखा है कि जव इन्द्र भगवान् को मेरु पर्वत पर अभिषेक के लिए ले गये, तव अभिषेक के पश्चात् सुन्दर वस्त्राभूषणो से वेष्टित कर उनका अरिष्टनेमि नाम रखा और उनकी सस्तवना की ।[33]

गुणभद्र ने लिखा है कि इन्द्र ने भगवान् का अभिषेक कर वस्त्राभूषण पहनाये और 'ये समीचीन धर्मरूपी चक्र की नेमि है—चक्रधारा है' एतदर्थं उन्हे नेमि नाम से सम्बोधित किया ।[34]

---

३१ दसण्ह दसाराण ति तत्रैते दश—
समुद्रविजयोऽक्षोभ्य स्तिमित सागरस्तथा ।
हिमवानचलश्चैव, धरण पूरणस्तथा ।।
अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान् ।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती माद्री च विश्रुते ।।
—अन्तकृद्दशाग, वृत्ति १।१,

३२. स्वप्नेऽरिष्टमयी दृष्टा चक्रधारात्र गर्भगे ।
मात्रा तस्यारिष्टनेमिरित्याख्या तत्पिता व्यधात् ।।
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक १९८

३३ दुकूलमणिभूषणस्रगनुलेपनोद्भासित प्रयोज्य ।
शुभपर्वत विभुमरिष्टनेम्याख्यया ।।
सुरासुरगणास्तत स्तुतिभिरित्यत्थमिन्द्रादय ।
परीत्य परितुष्टुवुर्जिनमिन सुपृथ्वीश्रियाम् ।।
—हरिवशपुराण ३८।५५, पृ० ४८६

मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान् के नामकरण के सम्बन्ध मे निम्न कल्पनाए की है—

स्वप्न मे माता ने रत्नमयी श्रेष्ठ रिष्टनेमि देखी थी अत उनका नाम रिष्टनेमि रखा।

भगवान् के जन्म लेने से जो अरि थे वे सभी नष्ट हो गये, या भगवान् अरियो (शत्रुओ) के लिए भी इष्ट है, उन्हे श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाले है अत उनका नाम अरिष्टनेमि रखा।[35]

उत्तराध्ययन की सुखबोधावृत्ति मे भी ऐसा ही उल्लेख किया है।[36]

बाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्व :

भगवान् अरिष्टनेमि का शरीर सुगठित बलिष्ठ एव कान्तिमान् था। शारीरिक वर्ण श्याम[37] होने पर भी उनकी मुखाकृति अत्यन्त मनमोहक, चित्ताकर्षक, व तेजपूर्ण थी। जो भी उन्हे देखता, देखता ही रह जाता था। वे एक हजार आठ शुभ लक्षणो के धारक थे।[38] वज्र ऋषभनाराच सहनन, और समचतुरस्र सस्थान के धारक थे।[39]

---

३४ अभिषिच्य यथाकाममलङ्कृत्य यथोचितम्।
नेमिं सद्धर्मचक्रस्य नेमिनाम्ना तमभ्यधात्॥
—उत्तरपुराण ७१।४६, पृ० ३७८

३५ वररिट्ठरयणमइअ ज नेमिं सुमिणए निअइ जणणी।
पिअराइ रिट्ठनेमि त्ति तेण नाम निवेसति॥
अहवा वि अरिट्ठाइ नट्ठाइ ज इमेण जाएण।
इट्ठो अ अरीण पि हु अरिट्ठफलसामलो वा वि॥
ठावति तेण नाम अरिट्ठनेमि त्ति जिणवरिंदस्स।
रूवेण य चरिएहिं आणदिअसयलभुवणस्स॥
—भव-भावना गा० २३४३ से २३४५ पृ० १५७

३६ दिट्ठो रिट्ठरयणमतो नेमी सुमिणे गब्भगए इमम्मि।
सिवाए त्ति 'अरिट्ठनेमि' त्ति कय पिउणा नाम॥
—उत्तराध्ययन सुखबोध पृ० २७८

३७. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० ५।५८, पृ० ६९
(ख) उत्तराध्ययन अ० २२।५

मत्स्य की आकृति का उनका उदर था।[४०] वे दस धनुष्य लम्बे थे।[४१] उनका स्वर बहुत ही मधुर था।

शारीरिक सौन्दर्य की तरह ही उनका आन्तरिक सौन्दर्य भी कम आकर्षक नही था। उनका हृदय अत्यन्त उदार था। राजकुमार होने पर भी राजकीय वैभव का तनिक मात्र भी अभिमान उन्हे स्पर्श न कर सका था। उनकी वीरता-धीरता योग्यता एव ज्ञान-गरिमा को निहार कर सभी लोग चकित थे। वे अपने अनुपम विवेक, विचार, शिष्टता एव गाम्भीर्य प्रभृति हजारो गुणो के कारण जन-जन के अत्यधिक प्रिय हो चुके थे।

पराक्रम दर्शन :

जब अरिष्टनेमि आठ वर्ष के हुए तब मथुरा मे श्रीकृष्ण ने कस का वध कर डाला।[४२] राजा जरासध यादवो पर कुपित हो गये। मरने के भय से सभी यादव पश्चिमी समुद्र तट पर चले गये। वहाँ उन्होने नव्य-भव्य द्वारिका नगरी का निर्माण किया। सभी यादव सुखपूर्वक वहा रहने लगे। कुछ समय के पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण ने जरासध को मार दिया और वे तीन खण्ड के अधिपति राजा बन गये।[४३]

---

३८ सोऽरिट्ठनेमिनामो उ, लक्खणस्सरसजुओ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी॥
—उत्तराध्ययन अ० २२।५

३९ वज्जरिसहसघयणो, समचउरसो झसोयरो।
—उत्तराध्ययन २२।६

४०. उत्तराध्ययन २२।६

४१. (क) समवायाङ्ग सूत्र १०।४
(ख) ज्ञाताधर्म अ० ५।५८, पृ० ६९
(ग) निरयावलिका व० ५।१

४२. जातो अट्ठवरिसो, एत्थतरे य हरिणा कसे विणिवाइए।
—उत्तराध्ययन सुखबोधा पृ० २७८

४३ (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, पर्व ८, सर्ग ५ से आठ तक
(ख) चउप्पन्नमहापुरिसचरिय
(ग) सुखबोधा पृ० २७८

अरिष्टनेमि अब युवा हो चुके थे। एकदिन वे अपने हमजोली संगी-साथियो के साथ घूमते-घामते श्रीकृष्ण की आयुधशाला मे गये। आयुधशाला के रक्षको ने शस्त्रो का महत्त्व बताते हुए कहा—इन्हे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई काम मे नही ले सकता। किसी की शक्ति नही है जो इन्हे उठा सके। यह सुनते ही अरिष्टनेमि ने सूर्य के समान चमचमाते हुए सुदर्शनचक्र को अगुली पर रखकर कुंभकार के चक्र के समान फिरा दिया। सर्पराज की तरह भयकर शार्ङ्ग धनुष्य को कमल नाल की तरह मोड़ दिया। कौमुदीगदा सहज रूप से उठाकर स्कध पर रखली और पाञ्चजन्य शख को इस प्रकार फूंका कि सारी द्वारिका भय से काप उठी। उस प्रचड ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण सोचने लगे—कौन नया चक्रवर्ती पैदा हो गया है?[४४] शत्रु के भय से भयभीत श्रीकृष्ण सीधे आयुधशाला मे पहुँचे। अरिष्टनेमि द्वारा शख बजाने की बात जानकर वे बहुत ही चकित हुए। फिर भी शक्तिपरीक्षण के लिए श्रीकृष्ण ने अरिष्ट-नेमि से कहा—व्यायामशाला मे चलकर अपने बाहुबल की परीक्षा करे, क्योकि पाञ्चजन्य शख को फूंकने की शक्ति मेरे अतिरिक्त अन्य किसी मे नही है। तुमने यह शख फूंका, यह जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है। मुझे अधिक प्रसन्न करने के लिए तुम अपना भुजवल बताओ। मेरे साथ बाहुयुद्ध करो। अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की बात स्वीकार की।[४५]

---

४४ तो चिंतइ कण्हो नूण कोइ चक्की इह समुप्पन्नो।
सखाऊरणसत्तो जमिमस्सऽहिआ ममाहितो॥
—भव-भावना २९८८ पृ० १९७

४५ (क) पाञ्चजन्य पूरयितु मद्दते नापर· क्षम।
भवता पूरिते त्वस्मिन् भ्रात· प्रीतोऽस्मि सप्रति॥
मा विशेषात् प्रीणयितु स्वदो· स्थामापि दर्शय।
युध्यस्व वाहुयुद्धेन मयैव सह मानद!
—त्रिपष्टि० ८।९।१९-२०

(ख) भव-भावना

(ग) उत्तराध्ययन मुखवोधा २७८

सदय हृदय अरिष्टनेमि ने सोचा—यदि मै छाती से, भुजा से, और पैरो से श्रीकृष्ण को दवाऊगा तो इनका न जाने क्या हाल होगा। एतदर्थ ऐसा करू कि इनको कष्ट भी न हो और ये मेरो भुजा के वल को जान भी जाए। अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण से कहा—पृथ्वी पर इधर से उधर लोटना यह तो साधारण मानवों का कार्य है, अत परस्पर भुजा को झुकाने के लिए ही अपना युद्ध होना चाहिए।[४६] श्रीकृष्ण को भी यह वात पसन्द आयी और उन्होने अपनी भुजा लम्वी की। किन्तु वृक्ष की विराट शाखा के समान भुजा कमलनाल की तरह सहज रूप मे अरिष्टनेमि ने झुका दी। उसके पश्चात् नेमिनाथ ने अपनी वाम भुजा लम्वी की। तव श्रीकृष्ण जैसे वृक्ष पर वदर झूमता है, वैसे उस भुजा पर झूमने लगे। नेमिकुमार के भुजा-स्तभ को, जैसे जगल का हाथी वडे पहाड़ को नही झुका सकता, वेसे ही वे किञ्चित् मात्र भी नही झुका सके। तव श्रीकृष्ण नेमिकुमार का आलिगन करते हुए वोले—प्रिय वधु! जैसे वलराम मेरे वल से ससार को तृण समान समझता है, वैसे मैं भी तुम्हारे वल से विश्व को तृण समान समझता हूँ।[४७]

प्रस्तुत घटनाचित्र उनके महान् धैर्य, शौर्य और प्रवल-पराक्रम को उजागार कर रहा है।

श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के अतुल वल को देखकर आश्चर्यचकित हुए साथ ही चिन्ताग्रस्त भी कि "कही यह मेरा राज्य हडप

---

४६. प्रकृत्या सदयो नेमिर्दध्याविति ममोरसा।
दोष्णा पादेन वाक्रान्त कथ कृष्णो भविष्यति॥
यथासौ याति नानर्थं मद्भुजस्थाम वेत्ति च।
तथा कार्यमिति ध्यात्वा जनार्दनमभापत॥
प्राकृतामिद युद्ध' मुहुर्भूलुठनाकुलम्।
मिथो दोर्नामनेनैव तद्भूयाद्युद्धमावयो.॥

—त्रिपष्टि० ८।६।२२ से २४

४७ (क) त्रिपष्टि० ८।६, २५ से २६ पृ० १३०-१३१
(ख) उत्तराध्ययन सुखवोधा २७८
(ग) भव-भावना ३०२६
(घ) कल्पसूत्र सुवोधिका टीका

न ले।" उसी समय आकाशवाणी हुई कि अरिष्टनेमिकुमार अवस्था मे ही प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे। आकाशवाणी को सुनकर श्रीकृष्ण चिन्तामुक्त हुए।[४८] वे पूर्वापेक्षया अरिष्टनेमि का अधिक सत्कार और सन्मान करने लगे, क्योंकि वे समझते थे कि अरिष्टनेमि मुझ से अधिक शक्तिसम्पन्न हैं।

हरिवंशपुराण में :

आचार्य जिनसेन ने भगवान् अरिष्टनेमि के पराक्रम का वर्णन कुछ अन्य प्रकार से किया है। वे लिखते हैं एक बार भगवान् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण की राजसभा मे गये। श्रीकृष्ण ने उनका सत्कार किया और वे सिंहासन पर आसीन हुए।[४९]

उस समय सभा मे वीरता का प्रसग चल रहा था। वीरों की परिगणना की जा रही थी। किसी सभासद् ने वीर अर्जुन की प्रशसा की तो किसी ने भीम की, और किसी ने युधिष्ठिर की। किसी ने आगे बढकर बलदेव के बल का बखान किया तो किसी ने श्रीकृष्ण के अपूर्व तेज का उल्लेख किया। तब बलदेव ने कहा—प्रस्तुत सभा मे अरिष्टनेमि के समान कोई भी बली नही है। श्रीकृष्ण ने यह सुनकर अरिष्टनेमि की ओर देखा तथा मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कहा—आपके शरीर मे ऐसा अपूर्व बल है तो आज बाहु युद्ध कर उसकी परीक्षा क्यो न कर लें।[५०]

---

४८ (क) त्रिषष्टि० ८।९।३४-३६

(ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा

४९ अथ स नेमिकुमारयुवान्यदा धनदसभृतवस्त्रविभूषणै.।
स्रगनुलेपनकैररतिराजितो नृपसुतै प्रथितै परिवारित ॥
समविशत्समदेभगतिर्नृपैरभिगत प्रणतश्चलितासनै.।
कुसुमचित्रसमा बलकेशवप्रभृतियादवकोटिभिराचिताम् ॥
हरिकृताभिगतिर्हरिविष्टर स तदलङ्कुरुते हरिणा सह।
श्रियमुवाह परा तदल तदा धृतहरिद्वयहारि यथासमम् ॥
—हरिवशपुराण, ५५।१-२-३, पृ० ६१६

५० इति निशम्य वचोऽथ निशाम्य त स्मितमुखो हरिरीशमुवाच स.।
किमिति युष्मदुदारवपुर्बल भुजरणे भगवान् न परीक्ष्यते ॥९।

अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण से कहा—मुझे मल्लयुद्ध करने की आवश्यकता नही है, यदि आपको मेरी भुजा का बल जानना ही है तो इस आसन से मेरे पैर को विचलित कर दीजिए।[५१]

यह सुनते ही श्रीकृष्ण अपने आसन से उठे। अरिष्टनेमि को जीतने की इच्छा मन मे उद्‌बुद्ध हुई। श्रीकृष्ण ने अपने शरीर का सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाया, पर अरिष्टनेमि का पैर तो क्या, उगली भी न हिला सके।[५२] श्रीकृष्ण का शरीर पसीने मे तरबतर हो गया। उनका अभिमान बर्फ की तरह गल गया। उनके अन्त-र्मानस मे यह दृढ विश्वास हो गया कि अरिष्टनेमि बली ही नही, महाबली है।[५३] इस घटना के पश्चात् वे उनका सदा सत्कार करने लगे।[५४]

उपरोक्त प्रसग उत्तरपुराण आदि ग्रन्थो मे नही आया है। किन्तु निम्नलिखित प्रसग हरिवशपुराण और उत्तारपुराण दोनो मे मिलता है—

एकबार बसन्त ऋतु के सुनहरे अवसर पर श्रीकृष्ण अपनी पत्नियो के साथ, अरिष्टनेमि को लेकर क्रीडा करने हेतु गिरनार पर्वत पर पहुँचे।[५५] श्री कृष्ण चाहते थे कि अरिष्टनेमि किसी प्रकार ससार के आसक्त हो। एतदर्थ उन्होने अपनी पत्नियो को आदेश दिया कि वे अरिष्टनेमि के साथ स्वच्छन्द होकर क्रीडा करे।[५६] श्री कृष्ण के आदेश से वे विविध हाव-भाव कटाक्ष करती

---

५१ सह ममाभिनयोर्ध्वमुखोजिन किमिहमल्लयुधेति तमब्रवीत्।
भुजबल भवतोऽग्रजबुध्यते चलय मे चरण सहसासनम् ॥१०॥

५२ हरिवशपुराण ५५।११

५३ श्रमजवारिलवाञ्चितविग्रह प्रबलनिश्वसितोच्छ्वसितासन ।
बलमहो तव देव ! जनातिग स्फुटमिति स्मयमुक्तमुवाच स. ॥१२॥

५४ उपचरन्ननुवासरमादरात् प्रियशतैर्जिनचन्द्रमस हरि ।
प्रणयदर्शनपूर्वकमर्च्ययन् स्वयमनर्घगुण जिनमुन्नतम् ॥१३॥
—हरिवशपुराण ५५।६ से १३ पृ० ६१६-६१८

५५ निजवधूजनलालितनेमिना हरिरमा नृपपौरपयोधिना ।
कुसुमितोपवन स मधौ ययौ विदितरैवतक रमणेच्छया ॥
—हरिवशपुराण ५५।२६। पृ० ६१६

हुई, आनन्द क्रीडा करने लगी।[५७] स्नानादि के पश्चात् गीले वस्त्र को निचोड़ने के लिए श्री कृष्ण की कृपापात्री जाम्बवती[५८] (उत्तर पुराण मे सत्यभामा) की ओर देखा।[५९] जाम्बवती अत्यन्त चतुर थी। उसने कटाक्ष करते हुए कहा—अरिष्टनेमि! तुम जानते हो, मैं उस श्री कृष्ण की पत्नी हू, जिसका पराक्रम विश्व-विश्रुत है। उन्होने भी मुझे ऐसा आदेश कभी नही दिया जैसा आप दे रहे है। क्या आपमे उतना पराक्रम है? यह सुनते ही अरिष्टनेमि मुस्कराने लगे और श्रीकृष्ण के पराक्रम को मानो चुनौती देने के लिए वे श्रीकृष्ण की आयुधशाला मे गये। उन्होने शार्ङ्ग धनुष्य को दूना कर प्रत्यचा से युक्त कर दिया। उनके पाञ्चजन्य शख को जोर से फूक दिया।[६०] शख का वह भयकर शब्द चारो दिशाओ मे व्याप्त हो गया। ऐसा मालूम होने लगा कि शख के शब्द से पृथ्वी फटने जा रही है।[६१] हाथी और घोडे सभी अपने स्थानो को छोडकर भय से भागने लगे। महलो के उच्च शिखर और किनारे दनादन टूटने लग गये। श्रीकृष्ण ने जब यह शब्द सुना तो शत्रु के भय से तलवार खीचकर खडे हो गये। सारी राजसभा स्तब्ध रह गई।[६२]

जब श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि यह शब्द तो हमारे ही शख का है तो वे सीधे आयुधशाला मे आये। वहा अरिष्टनेमि को देखा।[६३]

---

५६ वही० ५५।४४। पृ० ६२१

५७ मपदिमुक्तजलाम्बरपीलने स्फुटकटाक्षगुणेन विलासिना।
मधुरिपुस्थिरगौरवभूमिकामतुलजाम्बवती समनोदयत्॥
—वही० ५५।५८। पृ० ६२३

५८ पुन स्नानविनोदावसाने तामेवमब्रवीत्।
स्नानवस्त्र त्वया ग्राह्य नीलोत्पलविलोचने॥
—उत्तरपुराण ७१।१३४। पृ० ३८४

५९ (क) हरिवशपुराण ५५।५९ से ६२, पृ० ६२३
(ख) उत्तरपुराण ७१।१३५-१३६, पृ० ३८४

६० (क) हरिवशपुराण ५५।६५ पृ० ६२३
(ख) उत्तरपुराण ७१।१३७ से १३९

६१. हरिवशपुराण ५५।६६

६२ हरिवशपुराण ५५।६७-६८

उनके कोप का कारण जाम्बवती के द्वारा किया गया अपमान ही है, यह जानकर श्रीकृष्ण को सन्तोष हुआ। उन्होने प्रेमपूर्वक अरिष्टनेमि का सन्मान किया और वहा से विदा किया।[६४]

राजुल की मंगनी :

अरिष्टनेमि राजकुमार थे। सुख, वैभव, और भोग विलास की सामग्री उनके चारो ओर बिखरी पडी थी। एक ओर माता पिता का ममतामय वात्सल्य उन पर स्नेह की सरस वृष्टि कर रहा था। दूसरी ओर तीन खण्ड के अधिपति श्रीकृष्ण का अपार प्रेम भी उन्हे प्राप्त था। अन्त पुर आदि किसी भी स्थल मे वे विना रोक-टोक प्रवेश कर सकते थे,[६५] किन्तु उनका मन उन रमणीय राजमहलो मे नही लग रहा था। उनके जीवन का लक्ष्य अन्य था। वे सासारिक माया के नाग पाशो को तोडकर मुक्त होना चाहते थे।

महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवा देवी अपने प्यारे पुत्र की चिन्तनशील मुद्रा देखकर सोचने लगते कि कही यह अन्य दिशा मे न बह जाय। वे उन्हे परिणय-बधन मे बाधना चाहते थे। श्रीकृष्ण की भी यही अन्तरेच्छा थी। उन्होने अरिष्टनेमि को विवाह के लिए प्रेमपूर्वक आग्रह किया, किन्तु वे सहमत नही हुए। श्रीकृष्ण के मन मे एक विचार यह भी था कि इनका विवाह होने पर इनका जो अतुल पराक्रम है वह मन्द हो जायेगा, फिर मुझे इनसे भय व शका नही रहेगी। इसके लिए सत्यभामा आदि को श्रीकृष्ण ने सकेत किया। श्रीकृष्ण के सकेतानुसार सत्यभामा आदि रानियो ने वसन्त ऋतु मे रेवताचल पर वसन्त-क्रीडा करते हुए हाव-भाव-कटाक्षादि के द्वारा अरिष्टनेमि कुमार के अन्तर्हृदय मे वासना जागृत करने का प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हो सकी। अरिष्टनेमि मन ही मन विचार रहे थे कि मोहाविष्ट प्राणी आत्म उपासना को छोडकर वासना

---

६३. हरिरवेत्य निजाम्वुजनिस्वन त्वरितमेत्य कुमारमवज्ञया ॥
स्फुरदहीशमहाशयने स्थित परिनिरीक्ष्य नृपै सुविसिस्मिते ॥
—हरिवशपुराण ५५।६१

६४ हरिवशपुराण ५५।७१

६५ त्रिषष्टि० पर्व ८। सर्ग ९ श्लोक ३७

को ही श्रेष्ठ समझने की भयकर भूल करता है। उस समय रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, पद्मावती, गाधारी, लक्ष्मणा प्रभृति श्रीकृष्ण की पटरानियों ने स्त्री के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा—स्त्री के विना मानव जीवन अपूर्ण है, स्त्री अमृत है, नारी ही नारायणी है आदि। अपनी भाभियो के मोह से भरे हुए वचनो को सुनकर अरिष्टनेमि मौन रहे और उनकी अज्ञता पर मन ही मन मुस्कराने लगे। कुमार को मौन देखकर 'अनिषिद्धम् अनुमतम्' के अनुसार सभी रानिया आनन्द से नाच उठी और सर्वत्र यह समाचार प्रसारित कर दिया कि अरिष्टनेमि विवाह के लिए प्रस्तुत है।[६६] पर अरिष्टनेमि अपने लक्ष्य पर ही स्थिर रहे। एकबार श्रीकृष्ण ने कहा—कुमार ! ऋषभ आदि अनेक तीर्थकर भी गृहस्थाश्रम के भोगो को भोग कर, परिणत वय मे दीक्षित हुए थे। उन्होने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह परमार्थ है।' अरिष्टनेमि ने नियति की प्रबलता जानकर श्रीकृष्ण की बात स्वीकार कर ली। श्रीकृष्ण ने समुद्रविजय को सारी वात कही। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण ने भोजकुल के राजन्य उग्रसेन से राजीमती को याचना की। राजीमती सर्व लक्षणो से सपन्न, विद्युत् और सौदामिनी के समान दीप्तिमती राजकन्या थी।[६७] राजीमती के पिता उग्रसेन ने श्रीकृष्ण से कहा—कुमार यहाँ आएँ तो मैं उन्हे अपनी राजकन्या दूँ।"[६८] श्रीकृष्ण ने स्वीकृति प्रदान की।

दोनो ओर वर्द्धापन हुआ। विवाह के पूर्व के समस्त कार्य सम्पन्न हुए। विवाह का दिन आया। बाजे बजने लगे। मगलदीप जलाए गए। खुशी के गीत गाये जाने लगे। राजीमती अलकृत हुई। अरिष्टनेमि को सर्व औषधियो के जल से स्नान कराया गया। कौतुक मगल किये गये, दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये गए।[६९] वासुदेव श्रीकृष्ण के मदोन्मत्त गधहस्ती पर वे आरूढ़ हुए। उस समय वे इस

---

६६. त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ९,

६७ अह सा रायवरकन्ना सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खणसपुन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा ॥ ७ ॥

६८ अहाह जणओ तीसे वासुदेव महिड्ढिय।
इहागच्छऊ कुमारो जा से कन्न दलामहं ॥ ८ ॥

प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो मस्तक पर चूड़ामणि हो।[७०] सिर पर छत्र सुशोभित हो रहा था। दोनो ओर चमर वीजे जा रहे थे। दशार्ह चक्र से वे चारो ओर से घिरे हुए थे।[७१] वाद्यो से नभ मडल गूज रहा था। चतुरगिनी सेना के साथ उनकी वरात आगे वढी जा रही थी। वह विवाह मण्डप के पास आयी। राजीमती ने दूर से अपने भावी पति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।[७२]

तोरण से लौट गये :

उस युग मे भी क्षत्रियो मे मासाहार का प्रचार था। राजा उग्रसेन ने बरातियो के भोजन के लिए सैकडो पशु और पक्षी एकत्रित किये।[७३] वर के रूप मे जब अरिष्टनेमि वहाँ पहुँचे तो उन्हे वाडे मे वन्द किए हुए पशुओ का करुण क्रन्दन सुनाई दिया।[७४] उनका हृदय दया से द्रवित हो गया।

भगवान् ने सारथी से पूछा हे महाभाग! ये सव सुखार्थी जीव बाडो और पिजरो मे क्यो डाले गये है?[७५] सारथी ने कहा--'ये समस्त मूक प्राणी आपके विवाह-कार्य मे आये हुए व्यक्तियो के भोजन के लिए है।[७६]

---

६९. सव्वोसहीहि ण्हविओ, कयकोउयमगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ॥ ९ ॥

७०. मत्त च गन्धहत्थि, वासुदेवस्स जेट्ठग।
आरूढो सोहए अहिय सिरे चूडामणी जहा। १०।

७१ (क) अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए।
दसारचक्केण य सो सव्वओ परिवारिओ। ११।

—उत्तराध्ययन २२।

(ख) त्रिषष्टि० २ ८।९। पृ० १८६-१८७

७२ त्रिषष्टि० ८।९। पृ० १८७

७३ उत्तराध्ययन सुखबोधा टीका पत्र २७९

७४ अह सो तत्थ निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए।
वाडेहिं पजरेहिं च सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥

—उत्तराध्ययन २२।१४

७५. कस्स अट्ठा इमे पाणा एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पजरेहि च सन्निरुद्धा य अच्छहिं। १६।

करुणामूर्ति अरिष्टनेमि ने सोचा—मेरे कारण से इन बहुत से जीवो का मारा जाना मेरे लिए कल्याणप्रद नही होगा।[७७] यह विचारकर उन्होने अपने कु डल, कटिसूत्र, आदि सभी आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये,[७८] और हाथी को मोडने के लिए कहा—सारथी! वापस चलो! मुझे इस प्रकार का हिसाकारी विवाह नही करना है। श्रीकृष्ण आदि वहुतो के समझाने पर भी वे नही माने और विना व्याहे ही लौट चले।[७९]

राजीमती के चेहरे पर जो गुलावी खुशिया छायी हुई थी, प्रभु के लौट जाने पर गायव हो गई। वह अपने भाग्य को कोसने लगी। उसे वहुत ही दु ख हुआ। अरिष्टनेमि उसके हृदय मे बसे हुए थे। माता, पिता, और सखियो ने समझाया 'अरिष्टनेमि चले गए तो क्या हुआ! वहुत से अच्छे वर प्राप्त हो जायेंगे। उसने दृढता के साथ कहा—विवाह का वाह्य रीतिरस्म (वरण) भले ही न हुआ हो, किन्तु अन्तरग हृदय से मैंने उन्हे वर लिया है, अव मै आजन्म उन्ही स्वामी की उपासना करूंगी[८०]

दिगम्बर ग्रन्थों में :

उत्तरपुराण और हरिवशपुराण मे इससे भिन्न वर्णन है। उनके अनुसार श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि को विरक्त करने के लिए वाडो मे हिरनो को एकत्रित करवाया था।[८१] श्रीकृष्ण ने सोचा—

---

७६ अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो।।
तुज्झ विवाहकज्जमि भोयावेउ वहु जण। १७।
—उत्तराध्ययन २२।

७७ जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति वहू जिया।
न मे एय तु निस्सेस, परलोगे भविस्सई। १९।

७८. सो कु डलाणजुयल सुत्त ग च महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि सारहिस्स पणामए॥ २०।
—उत्तराध्ययन २२।

७९ त्रिषष्टि० ८।९

८० त्रिषष्टि० ८।९, पृ० १९०-१९१

८१. उत्तरपुराण ७१।१५२

नेमिकुमार वैराग्य का कुछ कारण पाकर भोगो से विरक्त हो जायेगे। ऐसा सोचकर वे वैराग्य का कारण जुटाने का प्रयास करने लगे। उनकी समझ मे एक उपाय आया। उन्होने शिकारियो द्वारा अनेक मृगो को पकडवाया और उन्हे एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया। चारो ओर वाडा बनवा दिया। वहाँ रक्षक नियुक्त कर दिये। उन रक्षको से कह दिया कि अरिष्टनेमि कुमार दिशाओ का अवलोकन करने के लिए आए और इन मृगो के समूह के सम्बन्ध मे पूछे तो उनसे स्पष्ट कह देना कि आपके विवाह मे मारने के लिए चक्री ने यह मृगो का समूह एकत्र किया है।[८२]

एक दिन अरिष्टनेमि चित्रा नाम की पालकी मे बैठकर दिशाओ का अवलोकन करने के लिए निकले। उन्होने घोर करुण-स्वर मे आक्रोश करते और इधर उधर भगाते हुए, प्यासे, दीन दृष्टि से युक्त, तथा भय से व्याकुल मृगो को देखा। दयावश वहाँ के रक्षको से पूछा—पशुओ का यह इतना बड़ा समूह एक स्थान पर क्यो, किसलिए रोका गया है?[८३]

रक्षको ने उत्तर मे कहा—देव। आपके विवाहोत्सव मे जो

---

८२ निर्वेदकारण किञ्चिन्निरीक्ष्यैष विरस्यति।
भोगेभ्य इति सञ्चित्य तदुपायविधित्सया॥
व्याधाधिपैर्धृतानीत नानामृगकदम्बकम्।
विधायैकत्र सङ्कीर्णां वृतिं तत्परितो व्यधात्॥
अशिक्षयच्च तद्रक्षाध्यक्षान्यदि समीक्षितुम्।
दिशो नेमीश्वरोऽभ्येति भवद्भि सोऽभिधीयताम्॥
त्वद्विवाहे व्ययीकर्तुं चक्रिणैष मृगोत्कर।
ममानीत इति व्यक्त महापापोपलेपक॥

—उत्तरपुराण ७१।१५४-१५७, पृ० ३८५

८३ (क) किमर्थमिदमेकत्र निरुद्ध तृणभुक्कुलम्।
इत्यन्वयुड्क्त तद्रक्षानियुक्ताननुकम्पया॥

—उत्तरपुराण ७१।१६० से १६१

(ख) लघु निरुध्य रथ महि सारथि निजनिनादजिताम्बुदनिस्वन।
अपि विदन्नवदन्मृगजातय किमिह रोधमिमा' प्रतिलम्भिता॥

—हरिवशपुराण ५५।८६, पृ० ६२३

मासभोजी राजा आए गे, उनके लिए नाना प्रकार का मास तैयार करने के लिए यहाँ पर पशुओ का निरोध किया गया है।[८४]

इस प्रकार सारथी की बात को सुनकर ज्यो ही भगवान् ने मृगो के समूह को देखा, उनका हृदय प्राणी दया से सरावोर हो गया। वे अवधिज्ञानी तो थे ही, सोचने लगे—ये पशु जगल मे रहते है, तृण खाते है और कभी किसी का कुछ भी अपराध नही करते तो भी लोग अपने भोग के लिए इन्हे क्यो पीडा पहुँचाते है।[८५] इस प्रकार अरिष्टनेमि चिन्तन के सागर मे गहराई से डुबकी लगाने लगे। उसी समय लौकान्तिक देव आये, उन्होने भी उद्‌बोधन के रूप मे धर्मोद्योत करने की प्रार्थना की।

मृगो के हितैषी भगवान शीघ्र ही मृगो को मुक्त कर द्वारिका लौट आये।[८६]

प्रस्तुत वर्णन की अपेक्षा उत्तराध्ययन सूत्र और त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, चउप्पन्नमहापुरिस चरिय, भव-भावना आदि ग्रथो का वर्णन अधिक तर्कसगत व हृदयस्पर्शी है।

हिंसा को रोकने के लिए, जन-जन के अन्तर्मानस मे मासाहार के प्रति विद्रोह की भावना उद्‌बुद्ध करने के लिए अरिष्टनेमि विना विवाह किये ही उलटे पैरो लौट गये। जो कार्य वर्षो तक उपदेश देकर वे नही कर सकते थे वह कार्य कुछ ही क्षणो मे तोरण से

---

८४ (क) देवैतद्वासुदेवेन त्वद्विवाहमहोत्सवे।
व्ययीकर्तु मिहानीतमित्यभाषन्त तेऽपि तम् ॥
—उत्तरपुराण ७१।१६३

(ख) अकथयन् प्रणत स कृताञ्जलि क्षितिभुजामिह मासभुजा विभो।
तव विवाहविधौ मृगरोधन विविधमासनिमित्तमनुष्ठितम् ॥
—हरिवशपुराण ५५।८८, पृ० ६२६

८५ वसन्त्यरण्ये खादन्ति तृणान्यनपराधका।
किलैताश्च स्वभोगार्थं पीडयन्ति धिगीदृशान् ॥
—उत्तरपुराण ७१।१६४

८६ लघु विमुच्य मृगान् मृगवाधवो नृपसुतै. प्रविवेश पुर प्रभु।
सपदि तत्र नृपासनभूषण नुनुवुरेत्य पुरेव सुरेश्वरा ॥
—हरिवशपुराण ५५।१०४

लौटकर उन्होने कर दिखाया। मासाहार मानवीय प्रकृति नही, अपितु दानवीय व्यवहार है। हृदय की क्रूरता का प्रतीक है। भयकर पाप है। जब आप किसी मरते जीव को जीवन नही दे सकते तो उसे मारने का आपको क्या अधिकार है? पैर मे लगा जरा-सा काटा जब हमे बैचेन कर देता है तो जिनके गले पर छुरिया चलती है उन्हे कितना कष्ट होता होगा! एतदर्थ किसी जीव की हिसा न करना ही श्रेयस्कर है।

विचारशील व्यक्तियो को भूल महसूस हुई कि वस्तुत हम सही मार्ग पर नही है, हमे अपनी स्वादलोलुपता के लिए दूसरे प्राणियो के साथ खिलवाड नही करनी चाहिए।

श्रीकृष्ण आदि ने अरिष्टनेमि को समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हो सके। यदुवशी और भोगवशी कोई भी उन्हे अपने लक्ष्य से च्युत न कर सके।[८७]

यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि विवाह से लौटकर वे सीधे ही शिविका मे बैठकर प्रव्रज्या के लिए प्रस्थित नही होते है, अपितु एकवर्ष तक गृहवास मे रहकर वर्षीदान देते है। उत्तराध्ययन सूत्र मे अत्यन्त सक्षिप्तशैली अपनाने के कारण सारथी को आभूषण देने के पश्चात् तुरन्त ही अगली गाथा मे दीक्षा का वर्णन कर दिया गया है किन्तु वस्तुत. भावार्थ वैसा नही है, क्योकि उत्तराध्ययन की सुखबोधा वृत्ति मे, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, और भव-भावना आदि ग्रन्थो मे स्पष्ट उल्लेख है कि बाद मे उन्होने वर्षीदान दिया। दूल्हा बनने के पूर्व उन्होने वर्षीदान नही दिया था।[८८] किन्तु आश्चर्य

---

८७. हरिवशपुराण ५५।१०७, पृ० २२६

८८. (क) एत्थतरे दसारचक्केण विरइयकरजलिणा भणितो-नेमीकुमार! तए सपड चेव परिचत्तस्स जायववग्गस्स अत्थमइ व्व जियलोओ, ता पडिच्छाहि ताव कचि काल। ततो उवरोह सीलयाए सवच्छरियमहादाणनिमित्त च पडिवन्न सवच्छरमेत्तमवत्थाण। भयवया तप्पभिति च आढत्त किमिच्छिय महादाण।.... ...पडिपुण्णे य सवच्छरे आपुच्छि ऊण अम्मापियरो

—उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पृ० २८०

है कि आचार्य शीलाङ्क ने चउप्पन्नमहापुरिसचरियं 'मे तोरण से लौटने के पूर्व ही वर्षीदान का उल्लेख किया है जो अन्य आचार्यो के वर्णन से मेल नही खाता है।[८९] तर्क सगत भी कम है। हमारी अपनी दृष्टि से भी वर्षीदान विवाह से लौटने के बाद ही दिया होगा।

इधर राजीमती की सखियो ने राजीमती के आसू पोछते हुए कहा—'राजुल ! वस्तुत तुम बहुत भोली हो, जो तुम्हे चाहता नही उसके लिए तुम आसू बहा रही हो। जिसके पास नारी के कोमल हृदय को परखने का दिल नही, उसकी दारुण वेदना को समझने का हृदय नही, तुम उसके लिए अपना दिल लुटा रही हो। अरिष्ट नेमी कायर थे, वे गृहस्थाश्रम की जिम्मेदारिया निभाने से कतराते थे, इस कारण जीवदया का बहाना बनाकर बिना विवाह किये ही भाग गये।'

"हट जा यहाँ से, मु ह से थू क दे। अरिष्टनेमि जैसे दयालु और वीर पुरुप को तू कायर कह रही है ! वह कैसे करुणावतार थे, जिन्हे मूक पशुओ की करुण पुकार सुनकर अपने जीवन का समस्त सुख निछावर कर दिया ! उनकी महान् करुणा को तू बहाना कह रही है, तुझे लज्जा नही आती ?' अरिष्टनेमि की स्मृति मे खोई राजमती ने सखी को डाट कर दूर कर दिया।

'जिसने मूक पशुओ की पुकार सुनी, किन्तु एक अबला नारी की पुकार नही सुनी, क्या वह करुणाशील कहा जा सकता है ? उसने

(ख) ददौ च वार्षिक दान, निर्निदान जगद्गुरु ।
दीक्षाभिषेक चक्रुश्च शक्राद्या नाकिनायका. ॥
—त्रिषष्टि० ८।९।२३८

(ग) एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा ।
वियरिज्जइ कणय पइदिणपि लोयाण य जहिच्छ ॥
तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीइ च होति कोडीओ ।
असिय च सयसहस्सा एय सवच्छरे दिन्न ॥
तत्तो दिक्खासमय आसणकपेण मयलदेविन्दा ।
नाउ नेमिजिणिदस्स आगया सयलरिद्धीए ॥
—भव-भावना, ३५४०-४१-४२, पृ० २४२

८९ चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, पृ०

नारी के साथ न्याय नही किया। तू उसकी चिन्ता छोड़ दे। हम तेरे लिए उससे भी अधिक सुन्दर, सुकुमार तेजस्वी राजकुमार की अन्वेषणा करे।" सखी फिर कहने लगी।

राजीमती ने फिर से डाटते हुए कहा—'चुप भी रहो, मुह से ऐसी बाते न निकालो। अरिष्टनेमि मेरे प्रियतम है, मेरे जीवन-साथी है। मै हृदय से उनका वरण कर चुकी हूँ।'

'अरी राजुल ! इस प्रकार बचपन नही किया करते। तू पगली है। जब वे तेरे नही हुए तो तू उनकी कैसी हो गई ? पराये के लिए इस प्रकार आसू नही बहाया करते। उठ, हाथ मुह धो, कपड़ा बदल, माता जी तुम्हारी कब से राह देख रही है।"

'पागल मैं नही, तुम हो। मैं क्षत्रिय बाला हूँ। वह एक ही बार जीवन-साथी को चुनती है। मैंने अरिष्टनेमि को अपना बना लिया है, अब उनकी जो राह है वही राह मेरी भी होगी।"

प्रेममूर्ति राजीमती अरिष्टनेमि को अपलक प्रतीक्षा करती रही। सोचती रहती—भगवान् एक दिन मेरी अवश्य सुध लेगे। परन्तु उसकी भावना पूर्ण न हो सकी। बारह महीने तक उसके अन्तर्मानस मे विविध सकल्प-विकल्प उद्‌बुद्ध होते रहे, जिन्हे अनेक जैन कवियो ने बारहमासा के रूप मे चित्रित किया है। उनमे राजीमती के माध्यम से वियोग शृगार का हृदयग्राही सुन्दर निरूपण हुआ है। वह अनूठा और अपूर्व है। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "जो न होते नेम राजीमती, तो क्या करते जैन के यति।"

वैदिक साहित्य मे जैसा स्थान राधा और श्रीकृष्ण का है वैसा ही स्थान जैन साहित्य मे राजीमती और अरिष्टनेमि का है। हा, राजीमती के समक्ष किसी भी प्रकार की भौतिकवासना को स्थान नही है। वह देह की नही, देही की उपासना करना चाहती है। यही कारण है कि जब अरिष्टनेमि साधना के मार्ग पर बढते है तब वह भी उसी मार्ग को ग्रहण करती है और कठोर साधना कर अरिष्टनेमि से पूर्व ही मुक्त होती है। यदि वासना युक्त प्रेम होता तो वह साधना को न अपना सकती।

●●

साधक जीवन

महाभिनिष्क्रमण ◆

रथनेमि का आकर्षण ◆

साधक जीवन

●

महाभिनिष्क्रमण :

आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार चौबीस तीर्थंकरो मे से भगवान् महावीर, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, मल्ली भगवती और वासुपूज्य ने प्रथमवय मे प्रव्रज्या ग्रहण की तथा शेष तीर्थंकरो ने पश्चिमवय मे। इन पाँचो तीर्थंकरो ने राज्य नही किया था, शेष तीर्थंकरो ने राज्य किया था।[1]

भगवान् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष तक गृहस्थाश्रम मे रहकर श्रावण शुक्ला छट्ठ के दिन पूर्वाह्ण के समय उत्तराकुरु शिविका मे बैठकर द्वारिका नगरी के मध्य मे होकर रैवत नामक[2] उद्यान मे

---

१. वीरो अरिट्ठनेमी, पासो मल्ली अ वासुपुज्जो अ।
पढमवए पव्वइआ, सेसा पण पच्छिमवयमि ॥२२६।
वीर अरिट्ठनेमि पास मल्लि च वासुपुज्ज च।
एए मुत्तूण जिणे, अवसेसा आसि रायाणो ॥२२१।
—आवश्यक निर्युक्ति

२ (क) समवायाङ्ग सू० १५७-१७
(ख) कल्पसूत्र १६४ पृ० २३१

पहुँचते है, अशोकवृक्ष के नीचे अपने हाथ से आभूषण आदि उतारते है और पचमुष्टि लोच करते है,[3] निर्जल षष्ठ भक्त के साथ चित्रा नक्षत्र के योग मे एक देवदूष्य वस्त्र[4] को लेकर हजार पुरुषो के साथ मुण्डित होते है,[5] गृहवास को त्याग कर अनगारत्व स्वीकार करते है। ज्योही अरिष्टनेमि प्रभु अनगारत्व स्वीकार करते है त्योही उन्हे मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है।[6]

श्रीकृष्ण वासुदेव ने लुप्त-केश और जितेन्द्रिय भगवान् से कहा—"दमीश्वर ! तुम अपने इच्छित-मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करो।

तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षान्ति और मुक्ति की ओर बढो।[7]

प्रव्रज्या के पश्चात् बलराम श्रीकृष्ण दशार्ह तथा अन्य बहुत से व्यक्ति अरिष्टनेमि को वन्दन कर द्वारिकापुरी मे लौटे।

नोट—यहा यह स्मरण रखना चाहिए द्वारिका अरिष्टनेमि की जन्मभूमि नही थी, ऋषभ और अरिष्टनेमि के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थंकरो ने अपनी जन्मभूमि से ही अभिनिष्क्रमण किया था।

उसभो अ विणीआए, बारवईए अरिट्ठवनेमी।
अवसेसा तित्थयरा, निक्खता जम्मभूमीसु॥

—आवश्यकनिर्युक्ति २२९

३ (क) अह से सुगधगधिए, तुरिय मउयकु चिए।
सयमेव लुचई केसे पचमुट्ठीहिं समाहिओ॥

—उत्तराध्ययन २२।२४

(ख) कल्पसूत्र १६४, पृ० २३१

४ (क) समवायाङ्ग सूत्र १५७।२३

(ख) कल्पसूत्र सू० १८४, पृ० २३१

(ग) सव्वेऽवि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउव्वीस।

— आवश्यक निर्युक्ति २२७

५ (क) साहस्सीए परिवुडो। —उत्तराध्ययन २२।२३

(ख) आवश्यक निर्युक्ति गा० २२५

६ (क) हरिवशपुराण ५५।१२५, पृ० ६३२

(ख) मन पर्ययसज्ञ च जज्ञे ज्ञान जगद्गुरो।

—त्रिषष्टि० ८।९।२५३

७ उत्तराध्ययन २१ गा० २५-२६-२७

भगवान् वहाँ से दूसरे दिन 'गोष्ठ' मे पधारे।[8] वरदत्त ब्राह्मण ने उनको भक्ति-भाव से विभोर होकर परमान्न की भिक्षा दी।[9][10] उसी से उन्होने पारणा किया।

उत्तरपुराण मे लिखा है—पारणा के दिन उन सज्जनोत्तम भगवान् ने द्वारावती नगरी मे प्रवेश किया। वहा सुवर्ण के समान कान्तिवाले तथा श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न राजा वरदत्त ने भक्ति पूर्वक आहारदान दिया।[11] आचार्यजिनसेन के हरिवंशपुराण के अनुसार भगवान् द्वारिकापुरो पधारे और प्रवरदत्त ने उनको खीर का आहार दान दिया।[12]

आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकमलयगिरिवृत्ति मे भगवान् अरिष्ट-नेमि के पारणे का स्थान द्वारिका लिखा है।[13]

वहाँ से प्रभु ने घनघाती कर्मो को नष्ट करने के लिए सौराष्ट्र के विविध अचलो मे परिभ्रमण प्रारभ किया।[14] भगवान् छद्मस्थ अवस्था में किन-किन क्षेत्रो मे पधारे इसका वर्णन प्राप्त नही है तथापि यह स्पष्ट है कि वे सौराष्ट्र मे ही घूमे होगे क्योकि उनका छद्मस्थ काल सिर्फ पचपन दिन का ही है। मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने आर्य और अनार्यदेशो मे परिभ्रमण का उल्लेख किया है।

---

८. अथ गोष्ठे द्वितीयेऽह्नि वरदत्तद्विजौकसि। —त्रिषष्टि० ८।९।२५५

९. समवायाङ्ग सूत्र १५६।२८

१० समवायाङ्ग १५७।३१

११. उत्तरपुराण ७१।१७५-१७६, पृ० ३८६

१२ हरिवशपुराण ५५।१२९ पृ० ६३३

१३ (क) वीरपुर वारवई, कोवकड कोल्लयग्गामो।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३२५

(ख) अरिष्ठनेमेर्द्वारवती।

—आवश्यक मलय० वृत्ति पृ० २२७

१४. तत्तो य घाइकम्म वण व तवहुयवहेण दहमाणो।
भयव विहरइ आरियअणारिएसु च देसेसु॥

—भव-भावना ३५८५ पृ० २३४

रथनेमि का आकर्षण

अरिष्टनेमि का सहोदर रथनेमि राजीमती के पास आने-जाने लगा। वह राजीमती के रूप पर मुग्ध था। राजीमती को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए नित्य नवीन उपहार भेजता। सरल हृदया राजीमती उसकी वह कुटिल चाल न समझ सकी। वह अरिष्टनेमि का ही उपहार समझकर प्रेमपूर्वक ग्रहण करती रही।

एकदिन एकान्त मे राजीमती को देखकर रथनेमि ने अपने हृदय की इच्छा अभिव्यक्त की। राजीमती ने जब वह बात सुनी तो सारा रहस्य समझ गई। दूसरे दिन जब रथनेमि आया तब उसे समझाने के लिए उसने सुगंधित पय-पान किया। और उसके पश्चात् वमन की दवा (मदनफल) ली। जब दवा के प्रभाव से वमन हुआ तो उसे एक स्वर्ण पात्र मे ग्रहण कर लिया और रथनेमि से कहा—"लीजिए, इसका पान करिए।"

रथनेमि ने नाक-भौ सिकोडते हुए कहा—"क्या मै श्वान हूँ ? वमन का पान तो श्वान करता है, इन्सान नही।"

राजीमती ने कहा—बहुत अच्छा। तो मैं भी अरिष्टनेमि के द्वारा वमन की हुई हूँ, फिर मुझ पर मुग्ध होकर मेरी इच्छा क्यो कर रहे हो ? तुम्हारा विवेक क्यो नष्ट हो गया है ? क्या यह भी वमनपान नही है ? धिक्कार है तुम्हे, जो वमी हुई वस्तु को पीने की इच्छा करते हो, इससे तो तुम्हारा मरना श्रेयस्कर है।

राजीमती की फटकार से रथनेमि लज्जित होकर नीचा शिर किये अपने घर को चला गया।[१५]

राजीमती दीक्षाभिमुख हो अनेक प्रकार के तप और उपधानो को करने लगी।[१६]

---

१५ (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व, ८ सर्ग, ६ पृ० १९२-१९३
(ख) उत्तराध्ययन टीका

१६. (क) उत्तराध्ययन टीका २२　　(ख) कल्पसूत्र टीका

तीर्थंकर जीवन

- केवलज्ञान
- तीर्थ की सस्थापना
- जैन परम्परा मे गणधर
- गणधर कितने
- एक चिन्तनीय प्रश्न
- राजीमती की दीक्षा
- रथनेमि को प्रतिबोध
- देवकी की शका और भगवान का समाधान
- गजसुकुमार की दीक्षा

●●

तीर्थंकर जीवन

●

केवलज्ञान :

श्वेताम्बर आगम व आगमेतर साहित्य के अनुसार दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि चौपन रात्रि-दिवस तक छद्मस्थ पर्याय में रहे। इस बीच वे निरन्तर व्युत्सर्गकाय, और त्यक्तदेह हो ध्यानावस्थित रहे। वर्षा ऋतु का तृतीय मास आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन[1] ऊर्जयन्त (रैवत) नामक शैल-शिखर पर चित्रा नक्षत्र के योग में उन्हें अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात निरावरण प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त हुआ।[2]

केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् अरिष्टनेमि अर्हत् जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए और वे सम्पूर्ण देव-मानव असुर सहित सारे लोक को द्रव्य सहित समस्त पर्यायों को जानने-देखने लगे।

समवायाङ्ग[3], आवश्यकनियुक्ति[4] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित[5] भव भावना[6] आदि में भगवान् को केवलज्ञान की प्राप्ति का समय

---

१. आसोयअमावसाए नेमिजिणिंदस्स विणाहि।

—आवश्यक निर्युक्ति २७२

२. कल्पसूत्र १६५, पृ० २३३

सूर्योदय की वेला बतलाई गई है जब कि कल्पसूत्र मे आचार्य भद्रवाहु ने अमावस्या के दिन का पश्चिम भाग लिखा है।[७] चउप्पन्न-महापुरिसचरिय,[८] उत्तराध्ययन सुखबोधा[९] मे समय का निर्देश नही है।

आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण मे[१०] और आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण मे[११] भगवान् अरिष्टनेमि का छद्मस्थ काल छप्पन दिन का माना है और भगवान् को केवलज्ञान आश्विन शुक्ला

---

३. जबुद्दीवे ण दीवे भारहेवासे इमीसे ण ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाण सूरुग्गमणमुहुत्त मि केवलवरनाण दसणे समुप्पण्णे।

—समवायाग २३।२, पृ० ४७ कमलमुनि

४ तेवीसाए नाण उप्पन्न जिणवराणपुव्वण्हे।
वीरस्स पच्छिमण्हे पमाणपत्ताए चरमाए॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २७५, पृ० २०७

५ आश्विनस्यामावस्याया पूर्वाह्णे त्वाष्ट्रगे विधौ।
केवलज्ञानमुत्पेदे स्वामिनोऽरिष्टनेमिन.॥

—त्रिपष्टि० ८।९।२७७, पृ० १३९

६ पत्तस्स घाइकम्मे सयले खीणम्मि अट्ठमतवेण।
आसोयबहुलपक्खे अमावसाए य पुव्वण्हे॥

—भव-भावना ४६२३, पृ० २३७

७ पन्नरमीपक्खेण दिवसस्स पच्छिमे भागे।

—कल्पसूत्र १६५, पृ० २३३

८ देखिए अनुवाद पृ० २५७

९. उप्पन्न तत्थ सुहज्झवसाणस्स आसोयअमावसाए अट्ठमभत्तते केवलनाण।

—उत्तराध्ययन सुखबोधा पृ० २८०

१० षट्पञ्चाशदहोरात्रकाल सुतपसा नयत्॥
पूर्वाह्णेऽश्वयुजस्यात शुक्लप्रतिपदि प्रभु.।
शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा चतुर्घातिमहावनम्॥
अनन्तकेवलज्ञानदर्शनादिचतुष्टयम्।
त्रैलोक्येन्द्रासनाकम्पि सम्प्रापत्परदुर्लभम्॥

—हरिवशपुराण ५६, श्लो० १११-११२ पृ० ६४३-४४

प्रतिपदा को हुआ ऐसा लिखा है। हमारी दृष्टि से यह श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा की तिथि सबंधी मान्यताओ का ही भेद है।

अरिष्टनेमि भगवान् ने जिस स्थान पर दीक्षा ग्रहण की थी उसी स्थान पर उन्हे केवलज्ञान हुआ।[१२]

तीर्थ की संस्थापना.

भगवान् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है, यह सूचना सहस्राम्रवन के रक्षपाल ने वासुदेव श्रीकृष्ण को दी। श्रीकृष्ण ने जब यह शुभ सवाद सुना तो उन्हे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उन्होने यह शुभ संवाद सुनाने के उपलक्ष में रक्षपाल को बारह कोटि सोनैये दान मे दिये।[१३] श्रीकृष्ण उसी समय भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करने व उनके उपदेश को सुनने के लिए अपने परिजनो व सोलह सहस्र अन्य राजाओ के साथ हस्ती पर आरूढ होकर भगवान् के समवसरण मे पहुँचे।[१४]

भगवान् के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए विशिष्ट प्रवचन को सुनकर वरदत्त राजा ने सर्वप्रथम दीक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् दो हजार अन्य क्षत्रियो ने भी सयम स्वीकार किया, यक्षिणी नामक राजकुमारी ने भी अनेक राजकन्याओ के साथ दीक्षा ग्रहण की। श्रमणी यक्षिणी को प्रवर्तनी पद प्रदान किया।[१५] दश दशार्ह,

---

११ षष्ठोपवासयुक्तस्य, महावेणोरध स्थिते।
पूर्वेऽह्न्यश्वयुजे मासिशुक्लपक्षादिमे दिने॥
—उत्तरपुराण ७१, श्लोक १७९-८० पृ० ३८७

१२ उसभस्स पुरिमताले, वीरस्सुजुवालिआई-नईतीरे।
सेसाण केवलाइ जेसुज्जाणेसु पव्वइया॥
—आवश्यक निर्युक्ति २५४

१३ रूप्यस्स द्वादश कोटी मार्धास्तेभ्य प्रदाय स।
—त्रिषष्टि० ८।९।२८४, पृ० १३९

१४ त्रिषष्टि० ८।९।२८५, ८६, पृ० १३९

१५. (क) त्रिषष्टि० ८।९।३७७, पृ० १४२
(ख) जाया पवित्तिणी वि य जक्खिणी मयन्नाण अज्जाण॥
—भव-भावना ३७१२

उग्रसेन, वसुदेव, बलराम, और प्रद्युम्न आदि सहस्रों व्यक्तियो ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। शिवा, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी आदि हजारो महिलाएँ श्राविका बनी।[१६]

उस समय श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! राजीमती का आपके प्रति इतना अत्यधिक स्नेह क्यो है ? इस स्नेह का कारण क्या है ?[१७]

भगवान् ने समाधान करते हुए पूर्वभवो का सम्बन्ध बताया। पूर्वभवो के सम्बन्ध मे हम पूर्व अध्याय में विस्तार से लिख चुके है। धनकुमार के भव मे धनदत्त और धनदेव दोनो भाई थे, व अपराजित के भव मे विमलबोध नामक मत्री था—ये तीनो अरिष्टनेमि के पूर्वभवो के साथ सम्बन्धित थे। वे तीनो इस भव मे राजा थे। राजीमती के पूर्वभवो को सुनकर उन्हे जातिस्मरण ज्ञान हुआ, और उन तीनो ने भी प्रथम समवसरण मे दीक्षा ग्रहण की[१८] और वे गणधर हुए।[१९]

हरिवशपुराण के अनुसार—उस समय दो हजार राजाओ ने, दो हजार राजकन्याओ ने, एव दो हजार रानियो ने तथा हजारो अन्य लोगो ने जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए पूर्ण सयम को प्राप्त किया। शिवा देवी, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी तथा अन्य देवियो ने श्रावक धर्म स्वीकृत किया। यदुकुल और भोजकुल के श्रेष्ठ राजा तथा अनेक सुकुमारियाँ जिनमार्ग की ज्ञाता बनकर बारह अणुव्रतो की धारक हो गई।[२०]

(ग) समवायाङ्ग सूत्र १५७-४४

१६ (क) त्रिषष्टि० ८।९।३७८, ३७९

(ख) भव-भावना, ३७२७, ३७२८, पृ० २४७

१७ राजीमत्या विशेषानुरागे किं नाम कारणम् ?

—त्रिषष्टि० ८।९।३६५

१८ (क) त्रिषष्टि० ८।९।३७२-३७४

(ख) भव-भावना पृ० २४७

१९ नियचरिय सोऊण जाईसरणेण सयमवि मुणे उ।
पडिबुद्धा निक्खता तेऽवि हु गणहारिणो जाया ॥

—भव-भावना ३७२४

इस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि ने श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका रूप तीर्थ की सस्थापना की और तीर्थंकर पद प्राप्त किया।

जैन परम्परा में गणधर :

जैन परम्परा मे तीर्थंकर शब्द जितना प्राचीन व अर्थपूर्ण है उतना ही प्राचीन अर्थपूर्ण गणधर शब्द भी है। तीर्थंकर जहाँ तीर्थ के निर्माता होते है, तथा श्रुत रूप ज्ञान परम्परा के पुरस्कर्ता होते है वहाँ गणधर श्रमण, श्रमणी रूप सघ की मर्यादा, व्यवस्था व समाचारी के नियोजक, व्यवस्थापक तथा तीर्थंकरो के अर्थ रूप वाणी को सूत्र रूप मे सकलन करने वाले होते है।[२१]

मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र ने विशेषावश्यकभाष्य की टीका मे लिखा है—उत्तम ज्ञान-दर्शन आदि गुणो को धारण करने वाले गणधर होते है।[२२] प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में गणधर एक अत्यावश्यक उत्तरदायित्व पूर्ण महान प्रभावशाली व्यक्तित्व होता है।

गणधर कितने :

समवायाङ्ग[२३] आवश्यकनिर्युक्ति,[२४] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[२५] उत्तरपुराण[२६] आदि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर ग्रन्थो मे भगवान् अरिष्टनेमि के ग्यारह गण और ग्यारह गणधर बताये गये है। ग्यारह

---

२०. द्वे सहस्रे नरेन्द्रास्ते कन्याश्च नृपयोषित ।
सहस्राणि वहून्यापु सयम जिनदेशितम् ॥
शिवा च रोहिणी देवी देवकी रुक्मिणी तथा ।
देव्योऽन्याश्च सुचारित्र गृहिणा प्रतिपेदिरे ॥
यदुभोजकुलप्रष्ठा राजान सुकुमारिका ।
जिनमार्गविदो जाता द्वादशाणुव्रतस्थिता: ॥

—हरिवशपुराण ५८।३०८ से ३१० पृ० ६९२ भारतीय ज्ञानपीठ

२१ अत्थ भासई अरहा सुत्त गुफइ गणहरा निउणा ।

—आवश्यकनिर्युक्ति गा० १९२

२२ अनुत्तरज्ञानदर्शनादि गुणाना गणं धारयन्तीति गणधरा. ।

—विशेषावश्यकभाष्य टीका गा० १०६२

२३. सम—११

गणधरो मे वरदत्त प्रमुख गणधर थे, अन्य गणधरो का परिचय इन ग्रन्थो मे नही मिलता और न इनके नाम ही इनमे है।

किन्तु आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र मे अरिष्टनेमि के अठारह गण और अठारह गणधर लिखे है।[२७] वे किस अपेक्षा से लिखे गये है, यह विज्ञो के लिए विचारणीय है।

एक चिन्तनीय प्रश्न :

निर्युक्ति, वृत्ति और आचार्य हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र के अनुसार रथनेमि चार सौ वर्ष गृहस्थाश्रम मे रहे, एक वर्ष वे छद्मस्थ रहे और पाँच सौ वर्ष केवली पर्याय मे। इस प्रकार उनका नौ सौ वर्ष का आयुष्य हुआ।[२८] इसी प्रकार कौमारावस्था,

---

२४ (क) तित्तीस अट्ठावीसा, अट्ठारस चेव तहय सत्तरस।
एक्कारसदसनवग, गणाणमाण जिणिदाण॥
एक्कारस उ गणहरा, वीरजिणिदस्स सेसयाण तु।
जावइया जस्स गणा तावइया गणधरा तस्स॥
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० २९०-२९१

(ख) अरिष्टनेमेरेकादश—मलयगिरिवृत्ति० पृ० २१०

२५ तै सह वरदत्तादीनेकादशगणाधिपान्।
स्थापयामास विधिवन्नेमिनाथो जगद्गुरु.॥
—त्रिषष्टि० ८।९।३७५, पृ० १४२

२६ वरदत्तादयोऽभूवन्नेकादश गणेशिन। —उत्तरपुराण ७१।१८२।-८७

२७ अरहओ ण अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस गणा गणहरा होत्था।
—कल्पसूत्र १६६ पृ० २३६

२८ (क) निर्युक्ति—रहनेमिस्स भगवओ, गिहत्थए चउर हुति वाससया।
सवच्छरछउमत्थो, पचसए केवली हुत्ति॥
नववाससए वासा—हिए उ सव्वाउगस्स नायव्व।
एसो उ चेव कालो, राव (य) मईए उ नायव्वो॥
—अभिधान राजेन्द्र कोष० भाग० ६ पृ० ४९९

(ख) तत्र चत्वारि वर्षशतानि गृहस्थपर्याय', वर्ष छद्मस्थ पर्याय, वर्ष शतकपञ्चक केवलिपर्याय इति, मिलितानि नव वर्षशतानि वर्षाधिकानि सर्वाऽऽयुरभिहितम्।
—अभिधान० भा० ६ पृ० ४९९

छद्मस्थ अवस्था और केवली अवस्था का विभाग करके राजीमती ने भी उतना ही आयुष्य भोगा।[२९]

भगवान् नेमिनाथ ने तीन सौ वर्ष कुमार अवस्था मे और सात सौ वर्ष छद्मस्थ व केवली अवस्था मे व्यतीत करके एक हजार वर्ष का आयुष्य भोगा।[३०]

प्रश्न यह है कि रथनेमि भगवान् के लघुभ्राता है। भगवान् तीन सौ वर्ष गृहस्थाश्रम मे रहे है और रथनेमि तथा राजीमती चार सौ वर्ष। राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण मे सिर्फ चोपन (५४) दिन का अन्तर है।

यद्यपि राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण काल मे ५४ दिन का अन्तर है, इस सम्बन्ध मे कोई पुरातन साक्ष्य दृष्टिगोचर नही होता। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि या प्राचीन चरित्र ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख नही मिलता, तथापि पश्चाद्वर्त्ती कवियो की रचनाओ मे ऐसा उल्लेख मिलता है।[३१] यदि इस उल्लेख को प्रामाणिक मान लिया जाय तो इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि राजीमती श्री अरिष्टनेमि से दो सौ वर्ष पश्चात् दीक्षित हुई थी। मगर अरिष्टनेमि के कैवल्य प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी राजीमती का दो सौ वर्षो तक दीक्षित न होना और गृहस्थाश्रम मे रहना एक चिन्तनीय विषय

(ग) चतुरब्दशती गेहे छद्मस्थो वत्सर पुन।
केवलो पञ्चाब्दशतीमित्यायूरथनेमिन.॥
—त्रिषष्टि० ८।१२।११२

२९ ईदृगायु स्थिती राजीमत्यप्यासीत्तपोधना।
कौमारछद्मवासित्व - केवलित्वविभागत.॥
—त्रिषष्टि० ८।१२।११३

३०. (क) तिन्नेव य वाससया कुमारवासो अरिट्ठनेमिस्स।
सत्त य वाससयाइ सामण्णे होइ परियाओ॥
—आवश्यक निर्युक्ति ३२०

(ख) कल्पसूत्र सूत्र १६८, पृ० २३८, देवेन्द्र मुनि सम्पादित

(ग) अरिष्ठनेमेस्त्रीणि वर्षशतानि कुमारवास, राज्यानभ्युपगमान् राज्यपर्यायाभाव सप्त वर्षशतानि भवति श्रामण्य पर्याय
—आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पृ० २१३

है। इस सम्बन्ध मे विद्वानो को विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

राजीमती की दीक्षा

उत्तराध्ययन की सुखबोधा वृत्ति[३२] व वादीवेताल शान्तिसूरि रचित बृहद्वृत्ति मे, मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भव भावना ग्रन्थ[33] के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को सुनकर ही राजीमती ने दीक्षा ली। और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात् राजीमती, नन्द की कन्या एकवाशा और यादवो की अनेक महिलाओ के साथ दीक्षा लेती है।[३४] राजीमती के अन्तर्मानस मे ये विचार लहरिया उद्बुद्ध हुई कि भगवान् अरिष्टनेमि को धन्य है जिन्होने मोह को जीत लिया है, निर्मोही बन चुके है। मुझे धिक्कार है जो मोह के दल-दल मे

---

३१. (क) आप तो नेम जी पेली पधारचा, मुझे न लिधी लार।
आप पेली मे जाऊ मुगत मे, जाणजो थारी नार॥
चोपन्न दिनो रे पेली यो सती, पोहती मोक्ष मझार।
नेम राजुल या सरीखी जोडी, थोडी इण ससार॥
—नेमवाणी—पृ० २२३, स० पुष्करमुनिजी म०

(ख) श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग० ५, पृ० २७४

३२ परितुट्ठमणा य रायमई वि पत्ता समोसरण।
—उत्तराध्ययन सुखबोधा पृ० २८१

इत्थ चासौ तावदवस्थिता यावदन्यत्र प्रविहृत्य तत्रैव भगवानाजगाम, तत उत्पन्नकेवलस्य भगवतो निशम्य देशना विशेषत उत्पन्नवैराग्या किं कृतवतीत्याह 'अहे' त्यादि
—बृहद्वृत्ति पत्र ४९३

३३ पुव्वभवब्भासेण तो पडिबधो इमीइ सविसेसो।
इय कहियम्मि भगवया तुट्ठा कण्हाइणो सव्वे॥
राइमई वि य अहिय परितुट्ठा वड्ढमाणसवेगा।
पव्वज्ज पडिवज्जइ जिणेण दिन्न सहत्थेण॥
—भव-भावना ३७१६, १७, पृ० २४६

३४ त्रिषष्टि० ८।१०।१४८

फँसी हूँ। अब मेरे लिए ससार को त्याग कर दीक्षा अगीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है।[३५]

ऐसा दृढ सकल्प करके उसने कघी से सवारे हुए भ्रमर-सदृश काले केशो को उखाड डाला। वह सर्व इन्द्रियो को जीतकर दीक्षा के लिए तैयार हुई। श्रीकृष्ण ने राजीमती को आशीर्वाद दिया—'हे कन्या! इस भयकर ससार सागर से तू शीघ्र तर।[३६]' राजीमती ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास अनेक राजकन्याओ के साथ दीक्षा ग्रहण की।[३७] रथनेमि ने भी उस समय भगवान् के पास सयम सग्रहण किया।[३८]

रथनेमि को प्रतिबोध :

एक दिन की घटना है। बादलो की गडगडाहट से दिशाए काँप रही थी, बिजलियाँ कौंध रही थी। रैवतक का वनप्रान्तर् सांय-साय कर रहा था। महासती राजीमती अन्य साध्वियो के साथ रैवतक गिरि पर चढ रही थी। सहसा छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वियो का झुड आश्रय की खोज मे इधर-उधर बिखर गया। दल से बिछुड़ी राजहसी की तरह राजीमती ने वर्षा से बचने के लिए एक अधेरी गुफा का आश्रय लिया।[३९] राजीमती ने एकान्त शान्त

---

३५ राईमई विचिन्तेइ धिरत्थु मम जीविय।
जा ह तेण परिच्चत्ता, सेय पव्वइउ मम॥
—उत्तराध्ययन २२।२९

३६ अह सा भमरसन्निभे कुच्चफणगपसाहिए।
सयमेव लुचई कैसे धिइमन्ता ववस्सिया॥
—वही० २२।३०

३७ वासुदेवो य ण भणइ लुत्तकेस जिइन्दिय।
ससारसागर घोर, तर कन्ने! लहु लहु॥
—उत्तराध्ययन २२।३१

३८. (क) रायमई वि वहुयाहि रायकण्णगाहि सह निक्खता।
उत्तरा० सुखबोधा २८१

(ख) उत्तराध्ययन २२।३२

३९ रहनेमी वि सविग्गो पव्वइतो। —वही० २८१

पहले की तरह ही उन्हे भी आदर-सत्कार के साथ मोदको का दान दिया।

प्रतिलाभ के पश्चात् देवकी ने अपने अन्तर्मानस की जिज्ञासा प्रस्तुत की– 'भगवन्! वासुदेव श्रीकृष्ण की नौ योजन विस्तृत, और बारह योजन लम्बी इस द्वारिका मे उच्च, मध्यम और निम्न कुलो मे परिभ्रमण करते हुए निर्ग्रन्थो को क्या भक्त पान नही मिलता है, जिससे उन्हे एक ही घर मे आहार पानी के लिए पुन पुनः अनुप्रविष्ट होना पडता है ?

अनगारो ने समाधान करते हुए कहा—देवानुप्रिये! न तो ऐसा ही है कि द्वारवती नगरी मे भिक्षा न मिलती हो और न यही सत्य है कि पुन पुनः एक ही गृहस्थ के घर मे अनगार प्रवेश करते हो। तथापि तुम्हे जो शका हुई है उसका मूल कारण यह है कि हम भद्दिलपुर नगर के निवासी नाग गाथापति के पुत्र और सुलसा माता के आत्मज छह सहोदर भाई है। हम रूप, रग, आयु आदि मे समान है। हम छहो भाइयो ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की है। जिस दिन हमने प्रव्रज्या ग्रहण की उसी दिन से यह प्रतिज्ञा भी ग्रहण की कि षष्ठ-षष्ठ तप कर विचरेंगे। आज पारणा के दिन हम तीन सघाटक के रूप मे भिक्षा के लिए निकले है। यदि हमसे पहले कोई आये हो वे तो मुनि अन्य है, हम अन्य है। इस प्रकार कह वे जिस दिशा से आये थे उधर चले गये।

मुनियो के चले जाने के पश्चात् देवकी के मन मे विचार उत्पन्न हुआ। अतीत की स्मृति उद्‌बुद्ध हुई—मुझे पोलासपुर नगर मे अतिमुक्त नामक श्रमण ने कहा था—'तुम एक सरीखे और नल-कुबेर के समान आठ पुत्रो को जन्म दोगी। तुम्हारे समान अन्य कोई भी माता वैसे पुत्रो को जन्म देने वाली नही होगी।' पर प्रत्यक्ष है कि दूसरी माता ने भी वैसे पुत्रो को जन्म दिया है। मुनि की भविष्यवाणी कैसे मिथ्या हो गई, जरा, जाऊँ, और अर्हत् अरिष्टनेमि से पूछूं।" इस प्रकार चिन्तन कर देवकी धर्मयान मे आरूढ़ हो भगवान् के दर्शन के लिए पहुँची।

अर्हत् अरिष्टनेमि ने देवकी के प्रश्न करने से पूर्व ही स्पष्ट किया—तुम्हारे अन्तर्मानस मे इस प्रकार के विविध भाव उठे, और

तुम उनका समाधान करने के लिए यहा पर शीघ्र ही आयी हो ! क्या यह कथन सत्य है ?

देवकी ने निवेदन किया—प्रभो ! जो आप फरमाते है वह सत्य है। मै वही पूछने आयी हूँ कि क्या अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हो गई ?

भगवान् अरिष्टनेमि ने रहस्य खोलते हुए कहा—हे देवानुप्रिय ! भद्दिलपुर नामक मे नाग गाथापति[४८] निवास करता है, उसके सुलसा नामक भार्या है। जब वह बाल्यावस्था मे थी तब किसी निमित्तज्ञ ने कहा—सुलसा दारिका मृतपुत्रो को जन्म देने वाली होगी। सुलसा बाल्यावस्था से ही हरिणगमेषी देव की उपासिका थी। वह प्रतिदिन प्रात काल स्नान, कौतुक, मगल आदि कर भीगी साडी पहने ही प्रथम उसकी पूजा—अर्चना करती और फिर अन्य कार्य करतो।

उसकी भक्ति, बहुमान, और शुश्रूषा से हरिणगमेषी देव प्रसन्न हुआ। हरिणगमेषी देव सुलसा की अनुकम्पा से प्रेरित होकर सुलसा गाथा पत्नी को और तुम्हे एक ही काल मे ऋतुमती करने लगा। तुम दोनो एक ही समय मे गर्भवती होती, एक हो समय मे गर्भवहन करती और एक ही समय मे पुत्र को भी जन्म देती। सुलसा गाथापत्नी के मृत पुत्र को अपनी हथेली मे उठाकर हरिणगमेषी देव तुम्हारे पास सहरण कर दिया करता था और तुम जिस सुकुमार बालक का प्रसव करती उसे वह उठा लेकर सुलसा के पास रख देता था। इस प्रकार हे देवकी ! ये छहो पुत्र वस्तुत· तुम्हारे ही है, न कि सुलसा गाथापत्नी के।"

यह बात सुनकर देवकी अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन नमस्कार कर, जहा वे छह अनगार थे वहा गई और उन्हे वन्दन नमस्कार किया। अपने प्यारे पुत्रो को निहार कर उसके स्तन से दूध की धारा बहने लगी। आनन्दाश्रु से उसके नेत्र भीग गये, कचुकी ढीली हो गई, वलय टूट गये। मेघ की जलधारा से आहत कदम्ब के पुष्प की तरह उसके शरीर के रोम-रोम पुलकित

---

४८ हरिवशपुराण मे उनके पिता का नाम सुदृष्टि और माता का नाम अलका दिया है—देखे

—हरिवशपुराण—५९।१-१५, पृ० ७०४

स्थान समझ कर समस्त गीले वस्त्र उतारकर सूखने के लिए फैला दिये।[४०]

राजीमती की फटकार से प्रतिबुद्ध होकर रथनेमि प्रव्रजित हो गये थे और उसी गुफा मे ध्यान मग्न थे।[४१] आज विजली की चमक से राजीमती को अकेली और निर्वस्त्र देखकर उसका मन पुन विचलित हो गया। इतने मे एकाएक राजीमती की दृष्टि भी उन पर पडी। उन्हे देखते ही वह सहम गई, और अपने अगो का गोपन कर जमीन पर बैठ गई।[४२]

काम-विह्वल रथनेमि ने राजीमती से कहा—हे सुरूपे! मैं रथनेमि हूँ, तू मुझे अगीकार कर। प्रारभ से ही मै तुझ मे अनुरक्त हूँ। तेरे बिना मै शरीर धारण नही कर सकता। अभी मेरी मनोकामना पूर्ण कर फिर अवस्था आने पर हम दोनो सयम मार्ग स्वीकार कर लेंगे।[४३]

राजीमती ने देखा—रथनेमि का मनोबल टूट गया है। वे वासना-विह्वल होकर सयम से भ्रष्ट हो रहे है। उसने धैर्य के साथ कहा—भले ही तुम रूप मे वैश्रमण सदृश हो, भोग-लीला मे नल-कुबेर या साक्षात् इन्द्र के समान हो तो भी मैं तुम्हारी इच्छा नही करती।[४४] अगधन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प प्रज्वलित अग्नि मे जलकर मरना पसन्द करते है किन्तु वमन किये हुए विष को पुन पीने की इच्छा नही करते। हे कामी! वमन की हुई वस्तु को खाकर तू जीवित रहना चाहता है, इससे तो मृत्यु को वरण कर लेना श्रेयस्कर है।[४५]

---

४० गिरिं रेवयय जन्ती वासेणुल्ला उ अन्तरा।
वासन्ते अधयारमि अन्तो लयणस्स सा ठिया॥

—उत्तराध्ययन २२।३३

४१ उस गुफा को आज भी राजीमती गुफा कहा जाता है।

—विविध तीर्थकल्प पृ० ६

४२. उत्तराध्ययन २२।३५

४३. वही० २२।३७-३८

४४. वही० २२।४१

४५ वही० २२, ४२

साध्वी राजीमती के सुभाषित वचन सुनकर जैसे हस्ती अकुश से वश में आता है वैसे ही रथनेमि का मन स्थिर हो गया।[४६]

रथनेमि ने भगवान् के पास जाकर आलोचना की। वे उत्कृष्ट तप तपकर मोक्ष गये। राजीमती भी केवली हुई, फिर कर्मो को नष्ट कर मुक्त हुई।[४७]

देवकी की शंका . भगवान् का समाधान :

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि अपने शिष्य समुदाय सहित विहार करते हुए द्वारावती नगरी के सहस्राम्रवन मे पधारे। उस समय भगवान् के साथ अनीकयशा, अनन्तसेन अजितसेन, निहतशत्रु, देवयशा और शत्रुसेन ये छह अन्तेवासी अनगार भी थे। वे सहोदर भाई थे। रूप और वय मे वे सभी समान प्रतीत होते थे। उन सभी के शरीर का रग नीलोत्पल एव अलसीपुष्प के समान था। उनके वक्षस्थल पर वत्स का लक्षण था। उनकी सौन्दर्य-सुषमा नल कुबेर से भी बढकर थी। जिस दिन उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की थी उसी दिन उन्होने भगवान् के सामने यावज्जीवन षष्ठ भक्त तप करने की भीषण प्रतिज्ञा ग्रहण की थी।

एकबार उन्होने षष्ठभक्त के पारणे के दिन भगवान् श्रीअरिष्टनेमि की आज्ञा ग्रहण कर तीन सघाटक बना भिक्षा के लिए द्वारिका मे प्रवेश किया। एक सघाटक भिक्षा के लिए परिभ्रमण करता हुआ वसुदेव की रानी देवकी के महल मे आया। मुनियो को निहार कर देवको रानी अत्यधिक प्रसन्न हुई। वह अपने आसन से उठकर सात-आठ कदम सामने गई। मुनियो को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया, पश्चात् भोजन गृह मे जाकर उदार भावना से मुनियो को सिंह केसरिया मोदक बहराये। मुनि मोदक लेकर चले गये। कुछ समय के पश्चात् दूसरे संघाटक ने प्रवेश किया। देवकी ने पूर्ववत् ही सत्कार सन्मान कर आहारदान दिया। कुछ समय के पश्चात् तीसरे सघाटक ने भी उसी तरह प्रवेश किया। देवकी ने

---

४६ उत्तराध्ययन २२।४६

४७. वही० २२।४८

हो उठे। देवकी उन छहों अनगारो को टकटकी लगाकर लम्बे समय तक देखती रही। फिर उन्हे वन्दन नमस्कार कर भगवान् के पास आयी और वहा भी नमस्कार कर अपने महलो मे लौट आयी। भगवान् अरिष्टनेमि भी कुछ दिन वहा विराजे फिर अन्यत्र विहार कर गए।[४९]

गजसुकुमार की दीक्षा :

महारानी देवकी भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन कर राजमहल मे लौट आयी, पर मन मे शान्ति नही थी। एक तूफान मचल रहा था कि "मैंने सात-सात पुत्रो को जन्म दिया पर एक का भी लालन-पालन करने का आनन्द न प्राप्त कर सकी। उनकी बालक्रीडा न देख सकी। श्रीकृष्ण वासुदेव भी छह-छह माह के पश्चात् मेरे पास आता है। वस्तुत मै कितनी अभागिनी हूँ," उसकी आखो से आसुओ की धारा छूट पड़ी। उसका मुख म्लान हो गया।

उसी समय श्रीकृष्ण वासुदेव ने देवकी के महल मे प्रवेश किया। माता को शोक से आतुर देखकर श्रीकृष्ण ने निवेदन किया—मा, क्यो चिन्ता कर रही हो? मा ने मन की बात कही। माता की चिन्ता को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने पौषधशाला मे जाकर अष्टमभक्त तप कर हरिणगमेषी देव को बुलाया। हरिणगमेषी देव ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण से कहा—देवलोक से च्यवकर एक जीव तुम्हारा सहोदर भाई होगा किन्तु बाल्यावस्था पार कर युवावस्था मे प्रवेश करने के पूर्व ही अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करेगा।

समय पाकर देवकी गर्भवती हुई। स्वप्न मे उसने सिंह देखा, नौ माह पूर्ण होने पर दिवाकर के समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। हाथी की जीभ की तरह रक्त वर्ण होने से उसका नाम गजसुकुमाल रखा।

गजसुकुमाल का गुलाबी बचपन महकने लगा। देवकी के महल मे ही नही अपितु सर्वत्र उसके रूप की, लावण्य की चर्चा चलने

---

४९. (क) अन्तगडदशा, वर्ग ३, अ० ८

(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पर्व, ८, सर्ग १०,

(ग) चउप्पन्नमहापुरिसचरिय

लगी। उसके अद्‌भुत और अनुपम सौन्दर्य को देखकर सभी लोग चकित थे।

भगवान् अरिष्टनेमि सहस्राम्रवन मे पधारे। सर्वत्र उत्साह और उमग की लहर दौड गई। देवकी और श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन करने के लिए तैयार हुए। गजसुकुमार भी साथ हो लिया।

जिस राजमार्ग से कृष्ण की सवारी जा रही थी, उसके समीप ही एक सुन्दर सुकुमार वाला अपनी सहेलियो के साथ गेद खेल रही थी। वह खेल मे इतनी तल्लीन थी कि उसे किसी के आने जाने का ज्ञान भी नही था। किन्तु श्रीकृष्ण की दृष्टि सोमिल ब्राह्मण की पुत्री सोमा की सुषमा पर टिक गई। श्रीकृष्ण ने गजसुकुमाल के साथ विवाह करने के लिए सोमिल से सोमा की माग की। उसने श्रीकृष्ण का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया।

भगवान् के पावन प्रवचन को सुनकर गजसुकुमार के अन्तर्मानस मे वैराग्य उछाले मारने लगा। उसने महल मे पहुँचते ही प्रव्रज्या का प्रस्ताव रखा, देवकी का वात्सल्य, श्रीकृष्ण का स्नेह और भौजाइयो का मधुर हासविलास उसके मार्ग को रोक न सका।

निवृत्ति के प्रशस्त पथ पर बढने के लिए उसका मन मचल रहा था। उसने भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और भगवान् अरिष्टनेमि की अनुमति प्राप्त कर वह कठोर साधना करने के लिए उसी दिन महाकाल नामक श्मशान मे गया। उच्चार प्रश्रवण के लिए भूमि की प्रतिलेखना कर, शरीर को कुछ झुका, भुजाओ को पसार, नेत्रो को निर्निमेष रख, दोनो पैर एक साथ इकट्ठे कर एक रात्रि की महाप्रतिमा नामक तपश्चर्या ग्रहण कर खडा हो गया।

सोमिल ब्राह्मण, समिध, दर्भ, कुश, पत्ते आदि लेकर सन्ध्या के समय वन से नगर की ओर आ रहा था। उसने देखा कि मेरा जामाता होने वाला गजसुकुमार आज मुण्डित होकर तपस्वी हो गया है। मेरी सुकोमल वेटी के जीवन के साथ इस प्रकार का खिलवाड!

क्रोध मानव को अन्धा बना देता है। सोमिल के मन मे क्रोध की आंधी उठी, और उसने उसके विवेक के दीपक को बुझा दिया। उसने श्रीकृष्ण की राजसत्ता और अखंड प्रलाप को भी विस्मरण कर दिया। उसने चारो दिशाओ मे देखा। किसी को भी न देखकर

पास की तलैया से गीली मिट्टी ली, और ध्यान मुद्रा मे खड़े गजसुकुमार के सिर पर पाल बाधी। जलती चिता से धधकते अगार लेकर उसमे भर दिये, और उसी क्षण वह वहाँ से चल दिया।

उस तरुण-तपस्वी का मस्तक, चमडी, मज्जा मास, सभी जलने लगे। महाभयकर, महादारुण वेदना होने पर भी तपस्वी ध्यान मुद्रा से विचलित नही हुआ। उसके मन मे तनिक मात्र भी विरोध या प्रतिशोध की भावना जाग्रत नही हुई। वह देह मे नही, आत्मभाव मे रमण कर रहा था। वह सोच रहा था—यह मेरे किए हुए कर्मों का ही फल है। कभी मैंने सोमिल से कर्ज लिया होगा, आज उसे चुका कर मुक्त हो रहा हूँ। यह थी रोष पर तोष की शानदार विजय ! और था दानवता पर मानवता का अमर जयघोष।

दूसरे दिन अरिष्टनेमि को वन्दन करने हेतु श्रीकृष्ण पहुँचे। पर गजसुकुमार मुनि को न देखकर उन्होने भगवान् से पूछा—भगवन् ! मेरे लघुभ्राता गजसुकुमार मुनि कहाँ है ?

भगवान् ने गभीर स्वर मे कहा—कृष्ण ! वह तो कृतकृत्य हो गया। उसने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया।

कृष्ण ने कातर स्वर मे प्रतिप्रश्न किया—भगवन् ! क्या उस बाल साधक ने एक ही दिन मे साधना का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कर लिया ?

भगवान् ने कहा—कृष्ण ! आत्मा मे अनन्त बल है, वह सभी कुछ करने मे समर्थ है। गजसुकुमार मुनि को एक सहायक मिल गया। उसका निमित्त पाकर उसने सिद्धि का वरण किया है।

कृष्ण ने पुन निवेदन किया—प्रभो ! यह अनार्य कर्म किसने किया ? वह कहाँ रहता है ? उसका इतना साहस ! मै देखू वह कौन है ?

भगवान् ने कहा—कृष्ण, तुम उस व्यक्ति के प्रति द्वेष न करो। उस पुरुष ने निश्चय ही गजसुकुमार मुनि को सहारा दिया है।

कृष्ण ने पूछा—सो कैसे भगवन्

भगवान्—कृष्ण ! तुम अभी जब मेरे दर्शन के लिए आ रहे थे, तब रास्ते मे तुमने एक वृद्ध पुरुष को देखा, जिसका शरीर जर्जरित हो चुका था। वह आतुर बुभुक्षित, तृष्णा से प्रपीडित और श्रम से थका हुआ था। वह ईटों के ढेर में से एक-एक ईंट लेकर अपने

घर के अन्दर रख रहा था। उसको देखकर तुम्हारा दयालु हृदय द्रवित हो गया। तुमने हाथी पर वैठे वैठे ही एक ई ट लेकर उसके घर के अन्दर रख दी। तुम्हारा अनुकरण उन सभी ने किया जो तुम्हारे साथ यहाँ आ रहे थे। देखते ही देखते वह ई टो का ढेर उसके घर मे पहुँचाया। जैसे ई ट उठाकर तुमने उस वृद्ध की सहायता की वैसे ही उस पुरुष ने भी गजसुकुमार के अनेक सहस्र भवो के सचित किए हुए कर्मो की उदीरणा करके उनका सम्पूर्ण क्षय करने मे सहायता की है।

कृष्ण वासुदेव—हे भदन्त! मै उस पुरुष को कैसे जान सकता हूँ?

'कृष्ण! तुम उसे नगर मे प्रवेश करते ही देख सकोगे, अधीर मत वनो?' भगवान् ने कहा।

सोमिल ने सुना—श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करने गये है, उसके अन्तर्मानस मे एक महाभयानक प्रश्न कौध उठा। वहा मेरे सभी गुप्त पाप प्रकट हो जायेगे! अब मुझे श्रीकृष्ण किस बेमौत से मारेगे, कुछ पता नही।

सोमिल भयाक्रान्त हो नगर से अरण्य की ओर भागा जा रहा था। उधर से श्रीकृष्ण उदासीन व खिन्न मन से हाथी पर बैठकर आ रहे थे। ज्योही उसने श्रीकृष्ण के हाथी को देखा, भयातुर हो, पछाड़ खाकर गिर पडा और मर गया।

कृष्ण ने देखा– यह वही दुष्ट व्यक्ति है जिसने मेरे कनिष्ट सहोदर भाई को अकाल मे जीवन रहित कर दिया। उसके शव को चाण्डालो के द्वारा नगर के बाहर फिकवा दिया।

द्वारिका महानगरी मे सर्वत्र गजसुकुमार मुनि की क्षमा की चर्चा श्रद्धा-भक्ति के साथ की जाने लगी।[५०]

अन्य दीक्षाएँ:

गजसुकुमार के मुक्ति गमन के समाचार को श्रवण कर अन्य अनेक यादवो ने एव समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तमित, सागर, हिमवान्, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र, इन नौ दशार्हो ने तथा माता

---

५० (क) अतगडदसा वर्ग ३, अ० ८

(ख) त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १०

शिवादेवी और श्रीकृष्ण के अनेक राजकुमारो ने भी दीक्षा ग्रहण की।[५१] कनकवती, रोहिणी और देवकी के अतिरिक्त वसुदेव की जितनी भी रानियाँ थी उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की।[५२] महारानी कनकवती गृहस्थाश्रम मे ही रही पर एक दिन ससार के स्वरूप का चिन्तन करते-करते घनघाती कर्मो को नष्ट कर उसने भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।[५३]

जैसे आगमसाहित्य मे भगवान् महावीर का पुन पुन राजगृह नगर मे पधारने का वर्णन है वैसे ही भगवान् अरिष्टनेमि का द्वारिका मे पधारने का वर्णन मिलता है।

एक बार भगवान् द्वारिका मे पधारे। नन्दनवन मे विराजे। उस समय भगवान् के उपदेश को सुनकर अधकवृष्णि के पुत्र और धारिणी रानी के आत्मज गौतमकुमार ने दीक्षा ग्रहण की। ससारावस्था मे ये ऋद्धिसम्पन्न थे, इनकी आठ पत्निया थी और एक-एक सुसराल से आठ-आठ सुवर्णकोटिका दहेज मिला था। श्रमण बनने के पश्चात् स्थविरो से सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया था। भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर बारह भिक्षु प्रतिमाओ की आराधना की थी, और गुणरत्न सवत्सर तप की भी साधना की थी। बारह वर्ष तक सयम पालन कर अन्त मे एक मास की सलेखना कर सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए थे। गौतम की भाँति उनके अन्य समुद्र, सागर, गभीर, स्तिमित, अचल, काम्पिल्य

---

५१ तेन शोकेन यदवो वहवो नेमिसन्निधौ।
प्रवव्रजुर्दशार्हाश्च वसुदेव विना नव ॥
शिवा च स्वामिनो माता सप्त चापि सहोदरा।
अन्येऽपि हरिकुमारा प्राव्रजन्नन्तिके प्रभो ॥
विना च कनकवती रोहिणी देवकी तथा।
वसुदेवस्य पत्न्योऽपि प्राव्रजन्नेमिसन्निधौ ॥

—त्रिषष्टि० ८।१०।१४६ से १५०

५२ गृहेऽपि कनकवत्याश्चिन्तयन्ता भवस्थितिम्।
उत्पेदे केवलज्ञान सद्यस्त्रुटितकर्मण ॥

—त्रिषष्टि० ८।१०।१५१

५३. अन्तकृतदशा वर्ग १, अ० १ से १० तक

अक्षोभ, प्रसेन और विष्णु आदि ने भी अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ग्रहण की, और गौतम की भाँति सयम का आराधन कर मुक्त हुए थे। इन सभी के पिता अधकवृष्णि थे और माता धारिणी थी।

एकबार भगवान् जब पुनः द्वारिका पधारे तब वृष्णि के पुत्र और धारिणी के आत्मज अक्षोभ सागर, हिमवन्त, अचल, धरण, पूरण, और अभिचन्द्र ने दीक्षा ली। इन सभी ने गुणरत्न सवत्सर नामक तप कर्म का आचरण किया। सोलह वर्ष तक उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने के पश्चात् एक मास की सलेखना कर शत्रुञ्जय पर्वत पर आयु पूर्ण कर ये सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए।[५४]

फिर एक समय भगवान द्वारवती पधारे। उस समय वासुदेव के पुत्र और महारानी धारणी के अगजात सारणकुमार ने पचास भार्याओ को त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की। स्थविरो के पास चौदह पूर्वो का अभ्यास किया। बीस वर्ष तक सयम धर्म का पालन कर अन्त मे एक मास की सलेखना कर शत्रुञ्जय पर्वत पर मुक्ति प्राप्त की।[५५]

भगवान् एक वार पुन. द्वारवती पधारे। तव वलदेव राजा और धारिणी देवी के पुत्र सुमुखकुमार ने पचास पत्नियो को त्यागकर दीक्षा ली। चौदह पूर्वो का अभ्यास किया। वीस वर्ष तक सयम साधना, एव तप आराधना कर शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की। उसी समय वलदेव और धारिणी के पुत्र दुर्मुख और कूप ने, तथा वासुदेव धारिणी के पुत्र दारुक व अनादृष्टि ने दीक्षा ली और उत्कृष्ट साधना कर मुक्ति प्राप्त की।[५६]

किसी समय पुन भगवान् द्वारिका पधारे। उस समय वसुदेव और धारिणी के पुत्र जालिकुमार, मयालिकुमार, उपजालिकुमार, पुरुषसेन और वारिषेण तथा श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न, कृष्ण और जाम्ववती के पुत्र साम्वकुमार, प्रद्युम्न और वैदर्भी के पुत्र अनिरुद्ध और समुद्रविजय व शिवादेवी के पुत्र सत्यनेमि और दृढ़नेमि ने दीक्षा ली थी।[५७]

---

५४ अन्तकृतदशा वर्ग २, अ० १ से ८

५५. अन्तकृतदशा वर्ग ३, अ० ७

५६ अन्तकृतदशा वर्ग ३, अ० ९-१३

द्वारिका का विनाश कैसे :

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी के बाहर सहस्राम्र वन मे विराजे। श्रीकृष्ण अपनी धर्मपत्नी महारानी पद्मावती के साथ दर्शन के लिए गये। उस समय श्रीकृष्ण ने भगवान् को वन्दन कर प्रश्न किया—

प्रभो! नौ योजनप्रमाण विस्तृत, देवलोकसदृश सुन्दर इस द्वारवती नगरी का विनाश किस प्रकार होगा?[५८]

भगवान् ने समाधान दिया—कृष्ण! इस विस्तृत देवपुरी के समान द्वारवती का विनाश मदिरा, अग्नि और द्वीपायन—इन तीन कारणो से होगा।[५९]

भगवान् की भविष्यवाणी सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव चिन्तन सागर मे गहराई से डुबकी लगाने लगे। वे विचारने लगे—धन्य है जालि, मयालि, उवयाली, पुरुषसेन, वारिषेण, प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध, दृढनेमि, सत्यनेमि प्रभृति कुमार श्रमणो को, जिन्होने भरी जवानी मे सयममार्ग ग्रहण किया। राज्य वैभव को त्याग कर अर्हत् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या स्वीकार की। पर मै अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हू, राज्य वैभव मे, अन्त पुर मे, मानव सम्वन्धी कामभोगो मे आसक्त बना हुआ हूँ। इन सभी का त्याग कर अर्हत् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करने मे समर्थ नही हूँ।[६०]

---

५७ अन्तकृतदशा वर्ग ४, १-१०

५८. (क) भते! बारवई णयरीए दुवालसजोयणआयामाए णवजोयण विच्छिण्णाए जाव पच्चक्ख देवलोगभूयाए किंमूलए विणासे भविस्सइ?

—अन्तगडदशा वर्ग, ५, अ० १

(ख) त्रिषष्टि० ८।११

५९. अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी-एव खलु कण्हा! इमीसे बारवईए णयरीए दुवालसजोयणआयामाए णवजोयण विच्छिण्णाए जाव पच्चक्खदेवलोगभूयाए सुररिगदीवायणमूलए विणासे भविस्सई॥

—अन्तगडदसा वर्ग ५, अ० १

६०. अन्तगडदसा वर्ग, ५, अ० १, सूत्र ३

उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर कहा—कृष्ण ! अभी-अभी तुम्हारे अन्तर्मानस मे ये विचार लहरे उठ रही थी कि मैं जघन्य हूँ, जो प्रव्रज्या लेने मे समर्थ नही हूँ। क्या मेरा यह कथन सत्य है ?

हॉ, प्रभो ! आपका कथन पूर्ण सत्य है, यथार्थ है—श्रीकृष्ण ने निवेदन किया।

भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—कृष्ण ! न कभी ऐसा हुआ है, न होता है, और न होगा ही कि वासुदेव हिरण्य राज्य आदि को त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करे। क्योकि जितने भी वासुदेव है, वे सभी कृत-निदान होते है, जिससे वे प्रव्रज्या ग्रहण करने मे समर्थ नही होते।[६१]

श्रीकृष्ण ने पुनः प्रश्न निवेदन किया—प्रभो ! मै इस शरीर का त्याग कर कहॉ जाऊगा ? कहॉ पर उत्पन्न होऊगा ?[६२]

भगवान् ने समाधान देते हुए कहा—कृष्ण ! जिस समय द्वारवती नगरी द्वीपयान के कोप से भस्म होगी, उस समय तुम माता-पिता और अपने स्वजनो से रहित होकर वलदेव के साथ एकाकी दक्षिण दिशा के किनारे वसी हुई पाण्डुमथुरा जाने के लिए निकलोगे। तुम पाण्डु राजा के पाँचो पाण्डव पुत्रो से मिलना चाहोगे। उस समय कौशाम्वी नगरी के कानन मे न्यग्रोध नामक वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर पीत वस्त्र से अपने शरीर को आच्छादित कर तुम शयन करोगे। उस समय जराकुमार वहॉ आयेगा। मृग की आशका से तीक्ष्ण वाण छोडेगा। वह वाण तुम्हारे बाए पैर मे लगेगा। उस वाण से विद्ध होकर कालकर तुम तृतीय पृथ्वी मे उत्पन्न होओगे।[६३]

यह सुन कृष्ण कुछ चिन्तित हुए। तब भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—हे कृष्ण ! तुम चिन्ता न करो। तृतीय पृथ्वी से निकलकर

---

६१. अन्तगडदशा वर्ग, ५ अ० १, सूत्र ४

६२. भन्ते ! इओ कालमासे काल किच्चा कहिं गमिस्सामि ! कहिं उववज्जिस्सामि ?

—वही, वर्ग ५, अ० १ सूत्र ५

६३ (क) अन्तकृतदशाङ्ग वर्ग ५, अ० १ (ख) त्रिषष्टि० ८।११

जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे तुम पुण्ड्र जनपद मे शतद्वार नामक नगर मे बारहवा 'अमम' नामक तीर्थंकर बनोगे। अनेक वर्षो तक जन-जन का कल्याण कर अन्त मे सिद्ध बुद्ध और मुक्त होओगे।[६४]

यह सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने बाहु का आस्फोटन किया, उछाल मारी, पादन्यास किया और उच्च शब्द किया। फिर अरिष्टनेमि को वन्दन कर अपने महल मे लौट गये।

पद्मावती की दीक्षा :

भगवान् के उपदेश को सुनकर श्रीकृष्ण की अग्रमहिषी पद्मावती ससार से विरक्त हुई। उसने श्रीकृष्ण से निवेदन किया—हे देवानुप्रिय! आपकी आज्ञा पाकर मै अर्हत् अरिष्टनेमि से दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ।" श्रीकृष्ण ने सहर्ष अनुमति प्रदान की। अभिनिष्क्रमण अभिषेक की विराट् तैयारी की। सर्वप्रथम पद्मावती देवी को पट्ट पर आसीन एक सौ आठ सुवर्ण कलशो से अभिषिक्त किया। उसके पश्चात् अलकारो से अलकृत कर एक हजार पुरुषो द्वारा वहन की जाने वाली शिविका मे बैठाकर रैवतक पर्वत पर सहस्राम्र-वन नामक उद्यान मे पहुँचे। पद्मावती देवी शिविका से नीचे उतरी और अरिष्टनेमि के चरणो मे पहुँची। श्रीकृष्ण ने भगवान् से निवेदन किया—हे भदन्त! यह मेरी अग्रमहिषी पद्मावती देवी मुझे अत्यन्त इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, एव अभिराम है। हे देवानुप्रिय! मैं इसे शिष्या की भिक्षा रूप मे प्रदान करता हूँ।[६५] भगवान् कृपा कर इसे स्वीकार करे।

---

६४. कण्हाइ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—"मा ण तुम देवाणुप्पिया! ओहय जाव झियाहि। एव खलु तुम देवाणुप्पिया! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणतर उव्वट्टित्ता इहेव जबूद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए पुडेसु जणवएसु सयदुवारे नयरे वारसमे अममे णाम अरहा भविस्ससि। तत्थ तुम वहूइ वासाहि केवलपरियाय पाउणित्ता सिज्झिहिसि।

—अन्तगडदशा वर्ग ५, अ० १

भगवान् ने कहा—जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो।

उसके पश्चात् पद्मावती देवी उत्तर पूर्व दिशा की ओर चली गई। उसने अपने आभूषण और अलकार उतारे और स्वय पञ्चमुष्टि लोच किया। पश्चात् अरिष्टनेमि के पास आकर विधिपूर्वक वन्दन नमस्कार कर बोली—हे भगवन्! यह ससार जन्म, जरा, मरण आदि दु.ख रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। मैं उस दुःख से मुक्त होने के लिए आपके निकट प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हूँ।

अर्हत् अरिष्टनेमि ने पद्मावती को स्वय प्रव्रज्या दी और उसे यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप मे प्रदान की। पद्मावती ने यक्षिणी आर्या के पास ग्यारह अगो का अध्ययन किया। उपवास से लेकर मासिक उपवास तक उत्कृष्ट तप का आचरण करती हुई, एक मासिक सलेखना कर अन्त मे सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुई।[६६]

उसके पश्चात् द्वारवती के बाहर जब भगवान् नन्दनवन मे समवसृत हुए तब श्रीकृष्ण की अन्य रानिया गौरी,[६७] गाधारी,[६८] लक्ष्मणा,[६९] सुसीमा,[७०] जाम्बवती,[७१] सत्यभामा.[७२] और रुक्मिणी[७३] ने भी भगवान् के उपदेश को सुन, श्रीकृष्ण की आज्ञा ले सयम मार्ग ग्रहण किया और मुक्ति प्राप्त की।

उसके बाद पुन' भगवान् अरिष्टनेमि किसी समय द्वारवती पधारे। नन्दनवन मे विराजे। तब साबकुमार की पत्नी मूलश्री[७४] और मूलदत्ता[७५] ने प्रव्रज्या ग्रहण की और मुक्त हुई।

---

६५. एस ण भन्ते! मम अग्गमहिसी पउमावई नाम देवी इट्ठा कता पिया मणुण्णा मणामा अभिरामा जीवियऊसासा हिययाणदजणिया उ वरपुप्फविव दुल्लहा सवणयाए किमग पुण पासणयाए? तण्ण अह देवाणुप्पियाण! सिस्सिणीभिक्ख दलयामि।

— अन्तकृतदशा वर्ग ५, अ० १

६६ अन्तकृतदशा वर्ग ५, अ० १

६७. अन्तकृतदशा वर्ग ५, अ० २

६८ वही० अ० ३

६९. वही० अ० ४

७० वही० अ० ५

७१. वही० अ० ६

७२. वही० अ० ७

७३. वही० अ० ८

७४. वही० अ० ९

७५. वही० अ० १०

थावच्चापुत्र .

ज्ञातासूत्र मे थावच्चापुत्र की दीक्षा महोत्सव का ही वर्णन है किन्तु मुनि श्री जीवराज जी ने थावच्चापुत्र-रास मे उसके जीवन के एक प्रसग का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—

थावच्चापुत्र का असली नाम क्या था यह इतिहासकारो को भी ज्ञात नही है। उसकी माता का नाम थावच्चा था, इस कारण माता के नाम पर वह थावच्चा पुत्र के नाम से ही विश्रुत हो गया।

थावच्चापुत्र बाल्यकाल से ही चिन्तनशील था। उसका गुलावी बचपन खेल-खिलौनो की भूल-भुलैया में भ्रमित नही था, अपितु विलक्षण था। वह जो भी देखता-सुनता, उसके सम्बन्ध मे उसके अन्तर्मानस मे अनेको प्रश्न उठते और वह वस्तुस्थिति के अन्तस्तल तक पहुँचने का प्रयास करता। जब तक वह सही वस्तु-स्थिति नही समझ लेता तब तक उसे चैन नही पडता।

एक समय थावच्चापुत्र अपने भव्य भवन की सातवी मजिल पर खडा होकर नगर की शोभा को निहार रहा था। प्रात.काल का सुनहरा समय था। सहस्ररश्मि सूर्य की उजली धूप चारो ओर बिखर रही थी। इधर-उधर बिखरे हुए मेघखण्ड अपनी अनोखी आभा से दर्शको के दिल को लुभा रहे थे। रग-बिरगे पक्षी दाना-पानी की तलाश मे उडे जा रहे थे। बडा ही मनमोहक दृश्य था। थावच्चापुत्र मस्ती मे झूमता हुआ सारा दृश्य देख रहा था।

उसी समय पड़ौसी के घर मे से मगल-गीतो की मधुरध्वनि सुनाई दी। गीतो की मधुरता और मोहकता ने थावच्चापुत्र को अपनी ओर आकर्षित किया। वह एकाग्रता से गीतो को सुनने लगा, पर गीत क्यो गाये जा रहे है, इन गीतो का क्या अर्थ है, वह नही समझ पा रहा था। उसके मन मे जिज्ञासा जागृत हुई। नीचे उतर-कर उसने माता से पूछा—'माँ, पडौस मे इतने सुन्दर और मधुर गीत किसलिए गाये जा रहे है ?'

माता ने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटा ! अपनी पडौसिन ने आज चिरकाल के पश्चात् पुत्र का प्रसव किया है। पुत्र जन्म की प्रसन्नता मे ये गीत गाये जा रहे है।'

'माता ! क्या मेरे जन्म के समय भी इसी प्रकार गीत गाये गए थे ?'

'पुत्र ! तेरे जन्म की बात का पूछना ही क्या ! उस समय बहुत गीत गाये गए थे, बाजे बजाए गये थे। पूरे मोहल्ले मे मिठाइयाँ बांटी गई थी। महान् उत्सव किया गया था।'

'माता ! मेरा मन करता है कि ऐसे गीत हमेशा सुनता रहूँ, बड़े अच्छे लगते है, तुम भी चलो ऊपर, और गीत-सुनने का आनन्द लो।'

'पुत्र ! मुझे बहुत काम है, मै नही आ सकती, तुम जाओ और आनन्द से गीत सुनो।'

थावच्चापुत्र ऊपर गया किन्तु सुमधुर स्वर-लहरियो के स्थान पर कर्णकटु आक्रन्दन सुनाई दिया। भयावना-सा कोलाहल सुनाई दिया। उसे सुनते ही उसका मन रुआँसा होने लगा। वह वहा खडा न रह सका। उसी समय दौड़कर वह पुन. माता के पास गया। बोला—माता ! जो गीत पहले सुहावने लग रहे थे, जिन्हे सुनने के लिए जी चाहता था, अब वे बडे डरावने लग रहे है। क्या कारण है ?'

माता को वस्तु-स्थिति समझने मे देर न लगी। पडौसी पर आयी हुई आकस्मिक विपत्ति के कारण उसकी आँखे गीली हो गई। माता की आँखो मे आँसू छलकते देखकर थावच्चापुत्र ने कहा—"माँ क्यो रो रही हो ? मैने ऐसा क्या कहा जिससे तुम रोने लग गई ? मैंने तो इतना ही पूछा कि पहले गीत अच्छे लग रहे थे, अब क्यो नही लग रहे है ?"

माता थावच्चापुत्र की सरलता, व अबोधता पर गद्गद् हो उठी। वह अपने प्यारे पुत्र को गले लगाकर बोली—'वत्स ! कुछ समय पूर्व पडौसी के घर मे जिस पुत्र का जन्म हुआ था, जिसका उत्सव मनाया जा रहा था, वह मर गया है। इसलिए गायन रुदन में परिणत हो गया है। प्रसन्नता के स्थान पर शोक की काली घटाएँ छा गयी है।'

'माँ ! क्या इसी तरह मै भी एकदिन मर जाऊगा ?'

'बेटा ! ऐसी बात नही कहा करते। जा मुँह से थूक दे। तू तो मेरा आँखो का तारा, नयनो का सितारा है, तू क्यो मरेगा ?'

'अच्छा माता, मै कभी नही मरूगा ?'

माता कुछ क्षणो तक मौन रही। पुत्र के मुखडे को निहारती रही, उसकी जिज्ञासाओ को समझने का प्रयास करने लगी।

थावच्चापुत्र ने पुन कहा—'मा ! सत्य बता न ! क्या एक दिन मैं भी मरूगा ?'

माता की आँखो से अश्रु छलक पडे। उसने कहा—वत्स ! सभी को मरना पडता है। इस विश्व मे ऐसा कोई प्राणी नही जो न मरे। जो जन्मता है वह एक दिन अवश्य ही मरता है। जो सूर्य उदित होता है, वह अवश्य ही अस्त होता है, जो फूल खिलता है वह अवश्य ही मुरझाता है। जन्म ले किन्तु मरे नही, यह असभव है।'

'माता ! ऐसा कोई उपाय है कि मैं मरू और तुम्हे दु ख न हो, तुम्हे आसू न बहाने पडे ?'

माता ने जरा डाटते हुए कहा—'मेरे सलोने बेटे ! ऐसी बाते नही किया करते ! तुम्हारी ऐसी बातो को सुनकर मेरे को व्यथा होती है।'

थावच्चापुत्र माता के मना करने से चुप हो गया, पर उसके अन्तर्मानस मे वह प्रश्न सदा उद्‌बुद्ध होता रहा कि मानव क्यो मरता है ? ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे मानव अमर हो जाए ? अमर बनने की लालसा उसमे उत्तरोत्तर बलवती बनती गई। थावच्चापुत्र अब बालक से युवा हो गया, बत्तीस रूपवती रमणियो के साथ उसका पाणिग्रहण भी हो गया। सभी प्रकार की सुख-सुविधाए प्राप्त होने पर भी उसका मन किसी अज्ञात की खोज मे रहता। एक बार भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश को सुनते ही वह जागृत हो गया।[७६]

थावच्चापुत्र की दीक्षा :

एक बार अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी मे पधारे। श्रीकृष्ण ने उद्‌घोषणा करवाई। सहस्रो व्यक्तियो के साथ गधहस्ती पर आरूढ हो श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन करने के लिए गये।

भगवान् के उपदेश को श्रवण कर थावच्चापुत्र प्रव्रज्या लेने के लिए प्रस्तुत हुआ। थावच्चापुत्र की माता अभिनिष्क्रमण-

---

७६ थावच्चापुत्र रास—मुनि जीवराजजी कृत

महोत्सव मनाने के लिए श्रीकृष्ण के पास गई और श्रीकृष्ण से छत्र, मुकुट, और चवर प्रभृति वस्तुए मागी।

श्रीकृष्ण ने कहा—देवानुप्रिये ! तू निश्चिन्त रह, मै स्वय ही उसका अभिनिष्क्रमण सत्कार करूगा।" श्रीकृष्ण चतुरगिणी सेना सजाकर थावच्चा सार्थवाही के घर आये। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने थावच्चापुत्र से कहा—देवानुप्रिय ! तू मुण्डित होकर श्रमण धर्म स्वीकार न कर। मेरी भुजाओ का आश्रय ग्रहण कर और मानव सम्बन्धी विपुल काम-भोगों का सेवन कर। तेरे ऊपर से जो पवन जारहा है उसे निवारण करने मे तो मै असमर्थ हूँ किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी तुझे किञ्चित् मात्र भी बाधा नही पहुँचा सकेगा। मै सभी बाधाओ का निवारण करूंगा।"[७७]

थावच्चापुत्र ने अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन किया—'देवानुप्रिय ! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने वाली मृत्यु को आने से रोक सकते हो और मेरे शारीरिक सामर्थ्य एव सौन्दर्य को नष्ट करने वाली वृद्धावस्था को रोक सकते हो तो मै आपकी भुजाओ की छत्रछाया मे मानव सम्वन्धी विषयभोगो का उपभोग करता हुआ रहूं।'[७८]

---

७७ मा ण तुमे देवाणुप्पिया ! मु डे भवित्ता पव्वयाहि भु जाहि, ण देवाणुप्पिया ! विउले माणुस्सए कामभोए मम वाहुच्छायापरिग्गहिए, केवल देवाणुप्पियस्स अह णो सचाएमि वाउकाय उवरिमेण निवारित्तए। अण्णे ण देवाणुप्पियस्स ज किंचि वि आवाह वा वावाह वा उप्पाएइ त सव्व निवारेमि।

—ज्ञातासूत्र अ० ५ पृ० १८५

७८ कण्ह वासुदेव एव वयासी—जइ ण तुम देवाणुप्पिया ! मम जीवियतकरण मच्चु एज्जमाण निवारेसि, जर वा सरीररूवविणासिणि सरीर अइवय-माणि निवारेसि, तए ण अह तव बाहुच्छायापरिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भु जमाणे विहरामि।

—ज्ञातासूत्र अ० ५, पृ० १८५

श्रीकृष्ण ने कहा—मृत्यु और जरा तो दुरतिक्रम है वत्स ! उन्हे रोकने की शक्ति देव, दानव और मानव किसी मे भी नही है। विना कर्म क्षय किए उनका निवारण सभव नही है।[७९]

थावच्चापुत्र—देवानुप्रिय ! एतदर्थ ही तो मै दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योगो को नष्ट कर जन्म जरा और मरण के चक्र से मुक्त होना चाहता हूँ।

श्रीकृष्ण ने देखा—थावच्चापुत्र का वैराग्य पक्का है। उन्होने उसी समय अपने कौटुम्बिकपुरुष को आदेश दिया कि द्वारवती नगरी मे सर्वत्र घोषणा करो कि ससार से उद्विग्न जन्म जरा और मृत्यु से भयभीत थावच्चापुत्र अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता है। अत जो भी व्यक्ति थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रज्या लेना चाहे उसे श्रीकृष्ण वासुदेव अनुज्ञा प्रदान करते है। उनके आश्रित स्वजनो का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व श्रीकृष्ण वासुदेव स्वय वहन करेगे।[८०]

श्रीकृष्ण की उद्घोषणा से एक हजार व्यक्ति थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हुए।

श्रीकृष्ण ने सुवर्ण और चादी के कलशो से थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण अभिषेक किया। वस्त्र और अलकारो से सुसज्जित कर एक हजार पुरुषो द्वारा वहन की जाने वाली शिविका मे उसे बिठाया और द्वारवती के मध्य भाग मे होकर जहा पर अरिहन्त अरिष्टनेमि थे वहाँ पर पहुँचे।

---

७९ वही० अ० ५, १

८०. एव खलु देवाणुप्पिया ! थावच्चापुत्ते ससारभउव्विग्गे, भीए जम्मणमरणाण, इच्छइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मु डे भवित्ता पव्वइत्तए। त जो खलु देवाणुप्पिया ! राया वा, जुवराया वा, देवी वा, कुमारे वा, ईसरे वा, तलवरे वा, कोडु बिय-माडबिय इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहे वा थावच्चापुत्त पव्वयतमणुपव्वयइ, तस्स ण कण्हे वासुदेवे अणुजाणाइ, पच्छातुरस्स वि य से मित्तनाइ-नियगसबधिपरिजणस्स जोगखेम वट्टमाण पडिवहइ त्ति कट्टु घोसण घोसेह।' जाव घोसति।

- ज्ञातासूत्र ५। पृ० १८६

थावच्चापुत्र को सन्मुख कर श्रीकृष्ण ने भगवान् से निवेदन किया—प्रभो ! यह थावच्चापुत्र थावच्चा सार्थवाही का एकमात्र पुत्र है। यह अपनी माता का इष्ट, कान्त, जीवन-रूप, तथा उच्छ्वास-निश्वास रूप है। यह उसके हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। वह इसके दर्शन दुर्लभ मानती है। यह कामभोगो से कमलवत् निर्लिप्त है। ससार से उद्विग्न और जन्म जरा मरण से भयभीत है। यह आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है। उसकी माता आपको यह शिष्यभिक्षा प्रदान करती है। आप इस भिक्षा को ग्रहण कर अनुगृहीत करे।

तत्पश्चात् ईशानकोण मे जाकर थावच्चापुत्र ने आभरण, माला, और अलकार उतारे। थावच्चा सार्थवाही ने उनको ग्रहण किया। फिर आँखो से अश्रु गिराती हुई बोली—वत्स ! साधना के मार्ग मे प्रयत्न करना, सयम मे जरा भी प्रमाद न करना। इस प्रकार उद्बोधन देकर माता जिस मार्ग से आयी उधर चली गई। थावच्चा पुत्र ने हजार पुरुषो के साथ पचमुष्टि लोच कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

वर्षाऋतु में विहार क्यो नहीं :

एक वार भगवान् अरिष्टनेमि वर्षावास हेतु द्वारवती मे समवसृत हुए। श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा—भगवन् ! सन्तो को विहार पसन्द है। एक गाँव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर जाते रहने से किसी स्थान एव व्यक्ति के प्रति आसक्ति का भाव जागृत नही होता, उनकी आत्मा राग वन्धन और द्वेष बन्धन से मुक्त रहती है। साथ ही जनकल्याण भी अधिक होता है। तथापि सन्त वर्षा ऋतु मे विहार क्यो नही करते ? इसका क्या रहस्य है ?[८१]

भगवान् अरिष्टनेमि ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—कृष्ण ! वर्षाऋतु मे वर्षा होने के कारण त्रस और स्थावर जीवो की अधिक उत्पत्ति हो जाती है। अहिसा महाव्रत का उपासक सन्त, जीवो की विराधना न हो, एतदर्थ अहिसा—दया की निर्मल भावना से एक स्थान पर अवस्थित रहकर तप और सयम की आराधना करता है।[८२]

---

८१. शुश्रूपमाणस्त कृष्णो वभापे भगवन् कथम्।
विहरध्वे न वर्पासु यूयमन्येऽपि साधव.॥२०१।

भगवान् की विमल-वाणी को सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा तव तो मैं भी वर्षाऋतु मे दिग्विजय यात्रा नही करूगा और न सभा का आयोजन ही करूगा। तव से श्रीकृष्ण ने वर्षाऋतु मे सभा का आयोजन और दिग्विजययात्रा वन्द करदी।[८३]

स्वामिनी बनोगी या दासी :

एकदिन श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि के सामने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि भगवन् मैं स्वय तो आपके पास दीक्षा नही ले सकता, पर जो भी दीक्षा लेगे उनका मै सदा अनुमोदन करूगा। दीक्षा लेने वाले को त्याग-वैराग्य की प्रेरणा दूगा। उनका अपने पुत्रो की तरह निष्क्रमण महोत्सव करूगा।[८४]

श्रीकृष्ण राजमहल मे पहुँचे। उनकी लडकियाँ उन्हे नमस्कार करने आई।

उनमे जो विवाह के योग्य हो गई थी श्रीकृष्ण ने उनसे अत्यन्त स्नेह के साथ पूछा—पुत्रियो! तुम स्वामिनी वनकर जीना पसन्द करती हो या दासी बनकर जीना चाहती हो?[८५]

स्वभावत सभी ने एक स्वर से स्वामिनी वनने की वात कही।

---

८२ स्वामी वभापे वर्षासु नानाजीवाकुला मही।
जीवाभयप्रदास्तत्र सञ्चरन्ति न साधव॥

८३. कृष्णोऽप्युवाच यद्येव गच्छदागता मया।
भूयाज्जीवक्षयो भूय परिवारेण जायते॥२०३।
तद्वर्षासु बहिर्गेहान्नि सरिष्यामि न ह्यहम्।
अभिगृह्येति गत्वा च कृष्णो वेश्माविशन्निजम्॥२०४।
कस्यापि प्रावृप यावत् प्रवेशो मम वेश्मनि।
न प्रदेय इति द्वा स्थानादिदेश च शार्ङ्गभृत्॥२०५।
—त्रिपष्टि० ८।१०

८४ प्रव्रजिष्यति य कश्चिद्वारयिष्याम्यह न तम्।
पुत्रस्येव करिष्ये च तस्य निष्क्रमणोत्सवम्॥२१३।

८५ अभिगृह्येत्यगाद्विष्णुर्विवाह्या नन्तुमागता।
ऊचे स्वकन्या स्वामिन्यो दास्य. किं वा भविष्यथा॥२१४।
—त्रिषष्टि० ८।१०

श्रीकृष्ण ने अपनी वात का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—देखो, त्याग का मार्ग स्वामी बनने का मार्ग है और भोग का मार्ग दासी बनने का। त्यागी के चरणो मे सम्राट् झुकते है क्योकि वह षट्काय का स्वामी है, नाथ है। तुमने वहुत सुन्दर विचार किया है। तुम्हारे ये विचार, तुम्हारे कुल के अनुकूल है। अत मै आदेश देता हूँ कि स्वामिनी वनने के लिए भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो।"

श्रीकृष्ण के आदेश को स्वीकार कर सभी ने त्याग मार्ग ग्रहण किया।[८६]

श्रीकृष्ण के यहाँ जो भी विवाह योग्य कन्याएँ होती उन सभी से श्रीकृष्ण वही प्रश्न करते। त्याग-मार्ग का महत्त्व बताकर उन्हे त्यागमार्ग ग्रहण कराते। अपने पुत्रो और पुत्रियो को त्यागमार्ग मे प्रविष्ट देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होते।

केतुमंजरी को प्रतिबोध :

एक दिन एक महारानी ने अपनी पुत्री को सिखलाया कि पिता जी जव तुम्हे रानी या दासी वनने के लिए पूछे तव स्पष्ट शब्दो मे कहना कि मुझे रानी नही, दासी वनना है।[८७] उस पुत्री का नाम केतुमजरी था। श्रीकृष्ण ने एक दिन उससे पूछा—वेटी, तुम क्या वनना चाहती हो दासी, या रानी ? उसने माता के कहे अनुसार कह दिया—पिताजी, मुझे दासी वनना है रानी नही।

पुत्री की बात सुनकर श्रीकृष्ण विचारने लगे—यह विचित्र लडकी है, जो दासी वनना पसन्द करती है। यदि मैंने शिक्षा न देकर इसका पाणिग्रहण किसी राजा आदि के साथ करा दिया तो अन्य सन्तान भी इसी का अनुसरण करेगी। भोग का मार्ग ढलान का मार्ग है। हर किसी का पैर फिसल सकता है। एतदर्थ ऐसा उपाय करू जिससे भविष्य मे मेरी कोई भी सन्तान विषय-भोग के कीचड मे न फसे।

---

८६ त्रिषष्टि० ८।१०।२१५-२१६

८७. पृष्टा तातेन वत्से त्व भाषेथा अविशकितम्।
अहं दासीभविष्यामि न पुन. स्वामिनी प्रभो॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।२१७

इतने मे श्रीकृष्ण को एक वीरक कौलिक दिखलाई दिया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—वतलाओ ! तुमने अपने जीवन मे कभी कुछ वीरता का कार्य किया है ?

उसने कहा—मैंने अपने जीवन मे कभी कोई कार्य ऐसा नही किया जो आपके सामने कथनीय हो।

श्रीकृष्ण—वीरक ! जरा सोचो, कभी कुछ न कुछ तो किया ही होगा। उसने अपनी बहादुरी के सस्मरण सुनाये। श्रीकृष्ण उसे लेकर राजसभा मे आये। वीरक की वीरता का बखान करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—वीरक ने अपने जीवन मे जो कार्य किये हैं वे इसकी जाति के गौरव से बढकर है। इसने एक बार भूमिशस्त्र (पत्थर) से बेर के पेड पर रहे हुए रक्तफन (काकीडा) वाले नाग को मार दिया। चक्र से खोदी हुई, कलुषित जल को वहन करने वाली गगा नदी को अपने दाहिने पैर से रोक दिया। और नगरो की गटरो पर घोप करने वाली त्रिराट् सेना को दाहिने हाथ से पकडकर एक घडे मे पूर दिया, अत यह महान वीर है। अपनी पुत्री केतुमजरी इसे देकर मैं इसकी वीरता का सम्मान करता हूँ।

श्रीकृष्ण ने केतुमजरी का वीरक के साथ पाणिग्रहण करा दिया। केतुमजरी राजप्रासादो को छोडकर घासफूस की नन्ही-सी झोपडी मे पहुँच गई। वह सारे दिन पलग पर बैठी-बैठी आदेश देती रहती कि वह कार्य करो, यह कार्य करो। और वीरक मदारी के बन्दर की तरह उसके सकेतो पर नाचता रहता।

एक दिन श्रीकृष्ण ने वीरक से पूछा—कहो वीरक ! केतुमजरी तुम्हारी आज्ञा का पालन तो करती है न ? तुम्हारे घर का सभी कार्य तो करती है ? तुम्हे कोई कष्ट तो नही है ?

वीरक ने निवेदन किया—स्वामिन् ! मै रात दिन उसकी सेवा मे खडा रहता हूँ। वह जो भी आज्ञा करती है उसका सहर्ष पालन करता हूँ, तनिक मात्र भी उसे कष्ट नही देता।

श्रीकृष्ण ने कहा—वीरक ! मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण इसीलिए नही करवाया है कि तुम रात दिन उसकी सेवा मे लगे रहो। पत्नी यदि पति की सेवा नही करती, उसकी आज्ञा का पालन नही करती तो वह सच्ची पत्नी नही है, मै तुम्हे आदेश देता हूँ कि आज से घर के सारे कार्य उससे कराया करो। यदि तुमने उससे कार्य नही

करवाया और मेरी आज्ञा की अवहेलना की तो तुम्हे कठोर दण्ड दिया जायेगा।

वीरक श्रीकृष्ण के आदेश को सुनकर भय से काप उठा। उसने घर आते ही केतुमजरी को आज्ञा के स्वर मे कार्य करने के लिए कहा।

केतुमंजरी ने ज्योंही वीरक का आदेश सुना, उसे क्रोध आ गया। उसने कहा—वीरक! तुम जानते हो! मै वासुदेव श्रीकृष्ण की पुत्री हूँ, मुझे कार्य के लिए आदेश देने का अर्थ मेरा अपमान करना है।

वीरक ने आव देखा न ताव, उसे पीटना प्रारभ किया। केतुमजरी भाग कर अपने पिता के पास पहुँची। वीरक की शिकायत करने लगी।

कृष्ण ने कहा—मैंने पूर्व ही तुम्हे स्वामिनी वनने के लिए कहा था न! पर तुमने तो दासी वनना ही पसन्द किया। अव मै क्या करूं? तुम्हे अपने पति की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए।

केतुमजरी कृष्ण के चरणो मे गिरकर बोली—पिताजी! मैने माता जी के कहने से भूल की। अव मै दासी न रहकर रानी वनना चाहती हू? केतुमजरी के अत्यधिक आग्रह पर वीरक को समझाकर उसे अरिष्टनेमि के पास दीक्षा दिलवाई। उसके पश्चात् किसी ने भी दासी बनने की वात नही कही।

कृष्ण का वन्दन :

एक समय श्रीकृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा मे गये। सन्त मण्डली को देखकर मन मे विचार आया—मैं प्रतिदिन जव कभी दर्शन के लिए आता हूँ तब भगवान् को और अन्य विशिष्ट सन्तो को वन्दन कर वैठ जाता हूँ, क्यो न आज सभी सन्तो को विधियुक्त वन्दन किया जाय। भावना की उच्चता वढी, वे सभी सन्तो को अनुक्रम से वन्दन करने लगे। उनका मित्र वीर कौलिक भी साथ था। श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए वह भी उनके देखादेखी वन्दन करने लगा। वन्दन पूर्ण हुआ। श्रीकृष्ण बैठे। उन्होने भगवान् से निवेदन किया भगवन्! मैंने अपने जीवन मे तीन सौ साठ सग्राम किये है, पर उन सग्रामो मे मुझे जितना श्रम नही हुआ उतना श्रम

आज वन्दन करने मे हुआ है। कृपया फरमाइये कि वन्दन करने का मुझे क्या फल हुआ ?[८८]

भगवान् ने कहा— कृष्ण ! तुमने भाव-वन्दन किया है, उसके फलस्वरूप तुम्हे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है साथ ही तीर्थकर गोत्र की शुभ प्रकृति का बन्धन किया है। इतना ही नही, तुमने सातवी, छट्ठी पाँचवी, और चौथी नरक का बधन भी तोड दिया है।[८९] किन्तु वीरक ने तुम्हारे देखा देखी ही भावशून्य वन्दन किया है। तुम्हे प्रसन्न करना ही इसका उद्देश्य रहा है, अत इसका वन्दन कायक्लेश मात्र हुआ है।[९०]

शाम्ब और पालक :

शाम्ब और पालक श्रीकृष्ण के पुत्र थे। दोनो की प्रकृति मे दिन रात का अन्तर था। शाम्ब जहाँ दयालु, धर्मातमा, और उदार प्रकृति का धनी था वहां पालक, लोभी, दुराग्रही, और अभव्य प्रकृति का स्वामी था। भगवान् अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी के बाहर पधारे हुए थे। प्रसगवश श्रीकृष्ण ने कहा—जो कल प्रात:काल सर्वप्रथम भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करेगा, वह जो भी मागेगा मैं उसे

---

८८ अन्यदा सर्वसाधूना द्वादशावर्तवन्दनम् ।
कृष्णो ददौ नृपास्त्वन्ये निर्वीर्यास्त्ववतास्थिरे ॥२४०।
सर्वेषामपि साधूना वासुदेवानुवर्तनात् ।
तत्पृष्ठतो वीरकोऽदाद्द्वादशावर्तवन्दनम् ॥२४१।
वभाषे स्वामिन कृष्ण पष्टचग्रत्रिशताहवै. ।
न तथा ह परिश्रान्तो वन्दनेनामुना यथा ॥२४२।

८९. सर्वज्ञोऽप्यवदत् कृष्ण ! बह्वद्य भवतार्जितम् ।
पुण्य क्षायिकसम्यक्त्व तीर्थकृन्नाम कर्म च ॥२४३।
उद्धृत्य सप्तमावन्यास्तृतीयनरकोचितम् ॥२४४।
—त्रिषष्टि० ८।१०

९० (क) वीरकस्य फल कृष्णेनानुयुक्तोऽवदत् प्रभु ।
फलमस्य वपु क्लेशस्त्वच्छन्दाद्वन्दते ह्यसौ ॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।२४७

(ख) आवश्यक चूर्णि

वही दूंगा। पालक को रातभर नीद नही आयी। वह यही सोचता रहा कि कही शाम्ब मुझसे पूर्व वन्दन के लिए न चला जाए। वह प्रात काल वहुत शीघ्र उठा, घोडे पर बैठकर भगवान् जहा विराजे वहा उनकी सेवा मे पहुँचा। भगवान् को वन्दन किया। वह बाहर से भगवान् को नमस्कार कर रहा था पर उसके अन्तर्मानस मे लोभ की आग जल रही थी।

शाम्ब कुमार भी जगा, शय्या से उतरकर भगवान् को वही से उसने भक्ति भाव-विभोर होकर नमस्कार किया।

पालक श्रीकृष्ण के पास पहुँचा। उसने कहा—पिताजी, आज सबसे प्रथम अरिष्टनेमि को वन्दन करके आया हूँ अत मुझे दर्पक नामक अश्व मिलना चाहिए।

सूर्योदय होने पर श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन करने के लिए गये। उन्होने भगवान् से पूछा—भगवन्, आज सर्वप्रथम आपको पालक ने वन्दना की या शाम्ब ने ? भगवान् ने उत्तर दिया—द्रव्य से पालक ने और भाव से शाम्ब ने। उपहार शाम्ब को मिला।[९१]

ढंढण मुनि :

ढढणकुमार वासुदेव श्रीकृष्ण का पुत्र था। वह भगवान् श्री अरिष्टनेमि की कल्याणी वाणी श्रवण कर भोग से विमुख होकर योग की ओर वढा था। दीक्षा ग्रहण की थी। अलपसमय मे ही वह उग्र तप की साधना करने लगा।

एकसमय श्रीकृष्ण ने भगवान् से पूछा—भगवन्! आपके अठारह सहस्र श्रमणो में से सबसे अधिक उग्र तपस्वी, सबसे कठोर साधक, और सबसे उत्कृष्ट चारित्रवान् कौन श्रमण है ?

सर्वज्ञ यथार्थवक्ता होते हैं। वह सदा सत्य और स्पष्ट बात कहते है। भगवान् ने कहा—'ढंढण मुनि'!

श्रीकृष्ण ने पुन जिज्ञासा प्रस्तुत की। भगवन्! अल्पसमय मे ही ढंढण मुनि ने ऐसी कौन-सी कठोर व उग्र साधना की है ?

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—कृष्ण! उसने अलाभ परीषह को जीत लिया है। द्वारवती नगरी मे वह भिक्षा के लिए

---

९१ (क) त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १०, श्लोक २८७ से २९४
(ख) आवश्यक चूर्णि

निकलता है तो भिक्षा उपलब्ध नही होती। अन्तराय कर्म के प्रबलतम उदय से उसे सर्वत्र अलाभ ही अलाभ का सामना करना पडता है। कदाचित् लाभ होता भी है तो इसी कारण कि यह राजकुमार है।

ढढणमुनि ने यह उग्र अभिग्रह गहण कर लिया है कि पर-निमित्त से होने वाले लाभ को मैं गहण नही करू गा। ढढणमुनि के महान् अभिग्रह को जानकर कृष्ण के मन मे उनके दर्शन करने की तीव्र भावना उद्‌बुद्ध हुई। तव उन्होने पूछा—भगवन्! ढढणमुनि इस समय कहाँ है?

भगवान् ने कहा—कृष्ण! यहा से द्वारिका जाते समय जब तुम नगरी मे प्रवेश करोगे, तब तुम्हे भिक्षा के लिए घूमते हुए ढंढण मुनि दिखलाई देगे।

श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन कर गजारूढ हो वढे जा रहे थे। नगरी मे प्रवेश करते ही सामने से ढढण मुनि आते दिखलाई दिये। हाथी से उतरकर ढढण मुनि के दर्शन किये, सुख-शान्ति पूछी। हजारो श्रमणो मे अद्वितीय उग्र तपस्वी के दर्शन कर वासुदेव सहसा धन्य धन्य कह उठे। मन मे आनन्द की ये ऊर्मिया तरगित हो गई—यादव जाति धन्य है जिसमे एक से एक वढकर तपोधन, त्यागी, वैरागी, आत्माए साधना के क्षितिज पर निर्मल नक्षत्र की तरह चमक रही है।

भव्य-भवन के गवाक्ष से श्रीकृष्ण को वन्दन करते हुए एक सेठ ने देखा। मन मे सोचा—यह कोई विशिष्ट सन्त है जिसे तीन खण्ड के अधिपति श्रीकृष्ण भी रास्ते मे वन्दन कर रहे है।

श्रीकृष्ण वन्दन कर आगे वढे। मुनि ने भिक्षा के लिए उसी श्रेष्ठी के घर मे प्रवेश किया। सेठ ने भक्ति के साथ मुनि को मोदको का दान दिया। भिक्षा लेकर मुनि भगवान् के चरणो मे पहुँचे। अत्यन्त नम्रता के साथ भगवान् से पूछा—भगवन्! क्या मेरा अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है? क्या यह भिक्षा मेरी अपनी लब्धि की है?

भगवान् ने कहा—नही! अभी तुम्हारा अन्तराय कर्म नष्ट नही हुआ है। तुम्हारी यह भिक्षा पर-निमित्त की है, स्व-निमित्त की नही।

यह भिक्षा श्रीकृष्ण के प्रभाव से तुम्हे मिली है। ढढण मुनि ने सुना, किन्तु उनके अन्तर्मानस मे तनिक मात्र भी ग्लानि नही हुई।

ढंढण मुनि विचारने लगे—जो भिक्षा पर के प्रभाव से मिली हो वह कितनी भी सुन्दर क्यो न हो, मेरे लिए अग्राह्य है।

ढढण मुनि एकान्त स्थान पर पहुँचे। विवेक से मोदको को डालने (परठने) लगे। विचारधारा शुद्धता की ओर बढी। घनघाती कर्म नष्ट हुए, केवलज्ञान केवलदर्शन की उपलब्धि हुई। तब ये भगवान् की प्रदक्षिणा कर केवली परिषद् मे जा बैठे।

निराशा के वातावरण मे भी जो आशा के दीप सजोये रहता है, वही तो महान् कलाकार है। ढढण मुनि वैसे ही कलाकार थे।[९२]

निषधकुमार :

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी मे पधारे। वासुदेव श्रीकृष्ण ने यह शुभ संवाद सुना, उनके नेत्रो मे प्रसन्नता चमक उठी। प्रभु का आगमन, नगर का अहोभाग्य, भगवान् का दर्शन! जीवन की धन्यता है। वासुदेव के आदेश से द्वारिका सजाई गई। दर्शन यात्रा की तैयारी होने लगी। वासुदेव वस्त्रालकारो से सुसज्जित होकर, राजकीय वैभव के साथ प्रभु दर्शन को चल पड़े। निषधकुमार ने सुना, वह भी बडे ठाठ के साथ भगवान् को वन्दन करने के लिए पहुँचा। भगवान् की वाणी को सुनकर श्रावक के व्रतो को स्वीकार किया।

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य गणधर वरदत्त अनगार ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! यह निषधकुमार इष्ट है, इष्टरूप है, कान्त है, कान्त रूप है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनोरम है, सोम है, सोमरूप है, प्रियदर्शन है सुरूप है। हे भदन्त! इस निषधकुमार को मानव सम्बन्धी यह ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई?

भगवान् अरिष्टनेमि ने समाधान करते हुए कहा—उस काल उस समय मे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे रोहितक नामक नगर था।

---

९२. (क) उत्तराध्ययन अध्ययन, २, गाथा ३० की टीका
(ख) त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १० पृ० २१०-११
(ग) भरतेश्वर वाहुवलि वृत्ति, पूर्वभाग

वहाँ का राजा महाबल था और रानी पद्मावती थी। उसका वीरगत पुत्र था, जिसका बत्तीस कन्याओ के साथ पाणिग्रहण हुआ था। एक बार वहा आचार्य सिद्धार्थ अपने शिष्य परिवार सहित पधारे। उपदेश सुन वह श्रमण बना, ग्यारह अगो का अध्ययन किया, उत्कृष्ट तप. साधना की, अन्त मे समाधिमरण प्राप्त कर पाचवे ब्रह्मदेवलोक मे देव हुआ। वहा से आयु पूर्ण कर बलदेव की पत्नी रेवती का पुत्र हुआ। यह विराट् सम्पत्ति और ऋद्धि पूर्वकृत शुभ पुण्य का फल है।

वरदत्त ने पूछा—भगवन्! क्या यह निषधकुमार आपके सन्निकट प्रव्रजित होगा?

भगवान् ने कहा—हा, यह अनगारवृत्ति स्वीकार करेगा।

एक बार भगवान् पुन द्वारिका पधारे। भगवान् की वाणी सुनकर निषधकुमार ने सयम ग्रहण किया। तथारूप स्थविरो के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया। तथा बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि विचित्र तपो से आत्मा को भावित करते हुए, पूरे नौ वर्षो तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। अन्त मे बयालीस भक्तो का अनशन से छेदन कर, पाप स्थानको की आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक कालगत हुआ।

निषधकुमार को कालगत जानकर वरदत्त ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! आपका शिष्य निषध अनगार जो प्रकृति से भद्र और विनयी था, काल प्राप्त कर कहाँ गया है? कहा उत्पन्न हुआ है?

भगवान् ने कहा—वह सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ है। उसने तेतीस सागरोपम की स्थिति पायी है।[९३]

बलदेव को प्रतिबोध :

बलदेव श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता थे। उनका श्रीकृष्ण पर अत्यधिक अनुराग था। मोह के प्राबल्य के कारण वे एक दूसरे के बिना रह नही सकते थे। श्रीकृष्ण को प्यास लगी। बलदेव पानी लेकर लौटते है। श्रीकृष्ण को चिरनिद्रा अधीन देखकर मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पडते है। होश आने पर बालक की तरह करुण-

---

९३ निरियावलिआ—वर्ग ५-१

क्रन्दन करने लगते है। आखो से आसुओ की धारा प्रवाहित हो रही है! भाई के शरीर को झकझोरते हुए कहते है—भाई उठो! पानी पीलो! मुझे पानी लाने मे विलम्ब हो गया—और तुम रूठ गये! रूठो नही, भाई पर क्या कभी इतने नाराज होते है। जरा आख खोलो। मुस्कराओ!" बलदेव ने अनेक प्रयास किये, पर सफलता कैसे मिलती ?

बलदेव ने श्रीकृष्ण के मृत कलेवर को उठाया। उसे कधे पर लेकर वे एक जगल से दूसरे जगल मे घूमने लगे। स्वय भी खाना-पीना भूल गये। छहमाह का समय पूर्ण हो गया।

बलदेव के एक सारथी का नाम सिद्धार्थ था, जो सयम-पालन कर देवपर्याय मे उत्पन्न हुआ था। उसने अवधिज्ञान से बलदेव की यह अवस्था देखी। प्रतिबोध देने के लिए वह वहा आया। उसने देव-शक्ति से पत्थर के एक रथ का निर्माण किया। पहाड की चोटी से वह नीचे उतर रहा था, धड़ाम से विषम स्थान मे गिरा और टूट कर चकनाचूर हो गया। सारथी पुन. उसे ठीक करने का प्रयास करने लगा।

उधर से बलदेव आये। उन्होने देखा, सारथी मूर्खता कर रहा है। वे बोले—अरे मूर्ख! यह पत्थर का रथ टुकडा-टुकड़ा हो चुका है, क्या पुन. यह सँध (जुड) सकेगा ?

प्रत्युत्तर मे देव ने कहा—हजारो व्यक्तियों को जिसने युद्ध मे मार दिया, पर स्वयं न मरा, किन्तु बिना युद्ध किये ही जो मर गया है वह यदि पुन. जीवित हो सकता हो तो फिर मेरा रथ क्यो नही तैयार हो सकता ?

बलदेव देव की बात अनसुनी कर आगे बढ़ गये। देव ने एक किसान का रूप धारण किया। पत्थर की चट्टान पर कमल पैदा करने का वह उपक्रम कर रहा था। बलदेव ने कहा—अरे मूर्ख! क्या कभी पत्थर की चट्टान पर कमल पैदा होते हैं ?

देव—यदि तुम्हारा मृत भाई जीवित हो सकता है तो पत्थर पर कमल क्यो नही पैदा हो सकते ?

मुह मचकाकर बलदेव आगे चले। देव भी आगे बढ़ा। वह एक जले हुए ठूठ को पानी पिलाने लगा।

बलदेव ने कहा—अरे मूर्ख, क्या पानी पिलाने से जला हुआ ठू ठ हरा-भरा होगा ?

देव—यदि तुम्हारे कधे पर रखा हुआ यह मुर्दा जीवित हो सकता है तो फिर इस ठू ठ मे फल कैसे नही लगेंगे ?

बलदेव ने बिना सुने ही कदम आगे बढा दिये। देव ने अब ग्वाले का रूप बनाया और एक मरी हुई गाय के मु ह मे वह घास देने लगा ?

बलदेव ने कहा—अरे मूर्ख ! क्या मरी हुई गाय भी घास खाती है ?

देव—यदि तुम्हारा मरा हुआ भाई जीवित हो सकता है तो फिर मृत गाय घास क्यो नही खायेगी ?

बलदेव ने प्रत्येक के मु ह से अपनी भाई के मरने की बात सुनी। वे गहराई से सोचने लगे—क्या वस्तुत· मेरा भाई मर गया है ? क्या ये सभी लोग सत्य कहते है ?

देव ने देखा—बलदेव चिन्तन के सागर मे गहराई से गोते लगा रहे है। उसी समय उसने सिद्धार्थ सारथी का रूप बनाया और बलदेव से कहा—बलदेव ! मै तुम्हारा सारथी सिद्धार्थ हूँ। मैंने भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की थी, और देव हुआ हूँ। आपने एक बार मुझसे कहा था कि तू यदि देव बने तो विपत्ति में मेरी सहायता करना। अत मै आपके पास आया हूँ। भगवान् अरिष्टनेमि ने जो भविष्य कथन किया था वैसे ही जरद्कुमार के हाथ से वासुदेव श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई है। श्रीकृष्ण ने अपना कौस्तुभ रत्न देकर तुम्हारे आने के पूर्व ही पाण्डवो के पास भेजा। भाई के मोह से तुम इन्हे उठाकर छहमाह से घूम रहे हो ! देखो न, अब इनके शरीर के वर्ण, गध, रस, और स्पर्श सभी बदल गये हैं।

बलदेव की विलुप्त सज्ञा जागृत हुई। उन्होने उसी समय श्रीकृष्ण का दाहसस्कार किया। सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने एक विद्याधर मुनि को वहा भेजा। मुनि ने बलदेव को उपदेश दिया। बलदेव ने मुनि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। बलदेव मुनि अब उत्कृष्ट तप की आराधना करने लगे।

मासखमण का पारणा था ! बलदेव मुनि पारणा के लिए, नगर मे प्रवेश कर रहे थे। उनके दिव्य और भव्य रूप को निहार कर एक

महिला भान भूल गई। बलदेव मुनि ने देखा—कुए पर खड़ी महिला उनकी ओर टकटकी लगाकर देख रही है, घडे के गले मे डालने की रस्सी बालक के गले मे डाल रही है। अनर्थ! महान् अनर्थ! मुनि ने महिला को सावधान किया। बालक की रक्षा कर मुनि उलटे पैरो जगल में लौट गये। उन्होने सोचा—ऐसे रूप को धिक्कार है। आज से मैं किसी नगर या गाव मे प्रवेश नही करूगा। जगल मे जो व्यक्ति काष्ठ आदि लेने आवेगे, उनसे जो भी निर्दोष भिक्षा मिल जायेगी वही ग्रहण करूगा।

भयानक निर्जन जगल मे ऐसे दिव्य भव्य तेजस्वी तपस्वी सन्त को देखकर सभी आगन्तुक चकित थे! यह कौन है? यहा क्यो तप कर रहा है? क्या किसी मत्र-तत्र की साधना कर रहा है? लोगो ने राजा को सूचना दी। राजा ससैन्य वहा पहुँचा, तपस्वी को मारने के लिए। सिद्धार्थ देव ने गभीर गर्जना करते हुए सिह का रूप बनाया, राजा भाग गया।

"अहिसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग." की उक्ति के अनुसार जगल के प्राणी निर्भय होकर बलदेव मुनि के आस-पास घूमने लगे। एक मृग तो जातिस्मरण ज्ञान से अपने पूर्व भवो को स्मरण कर उनका परम भक्त बन गया। वह जगल मे इधर-उधर घूमता और देखता कि कौन काष्ठ लेने के लिए जगल मे आया है। उन्हे देखकर वह पुन बलदेव मुनि के पास आता, उनको नमस्कार कर अपने हृदय के भाव बताता कि आपको भिक्षा देने वाला इधर है। एक दिन मृग के सकेत से मुनि भिक्षा के लिए पहुँचे। मासखमण का पारणा था। मुनि को देखकर रथवाला अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह मुनि के चरणो मे गिर पडा। उदार भावना से उसने मुनि को आहार दान दिया। मुनि भिक्षा ग्रहण कर रहे है। मृग सोच रहा है—यह सारथी कितना भाग्यशाली है जो मुनि को दान दे रहा है। उसी समय तूफान आया और वह वृक्ष गिर पड़ा। बलदेव मुनि, सारथी तथा मृग तीनो ने शुभ ध्यान मे आयु पूर्ण किया। ब्रह्मदेव लोक के पद्मोत्तर नामक विमान मे वे तीनो उत्पन्न हुए।[९४]

---

९४ (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व ८, सर्ग १२

(ख) पाण्डवचरित्र सर्ग १८, ५६५-५७०, मलधारी देवप्रभ

युधिष्ठिर आदि पाँचो अनगार निरन्तर मास-मास का तप कर्म करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम होते हुए, हस्तिकल्प नगर के सहस्राम्र उद्यान मे पधारे। यथाप्रतिरूप अभिग्रह ग्रहण कर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए वहा ठहरे।[१०८] मन मे ये विचार चल रहे थे कि अब भगवान् सिर्फ बारह योजन दूर है, अत शीघ्र जाकर भगवान् के दर्शन करेगे। मन मे अपार प्रसन्नता थी।[१०९] प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय तथा दूसरे प्रहर मे ध्यान कर, तीसरे प्रहर मे युधिष्ठिर मुनि की आज्ञा लेकर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव मुनि मासखमण के पारणा के लिए नगर मे पधारे। भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए उन्होने अनेक व्यक्तियो के मुह से सुना कि अर्हत् अरिष्टनेमि ने उज्जयन्त शैल-शिखर पर जलरहित एक मास के अनशन से पाच सौ छत्तीस श्रमणो के साथ काल धर्म को प्राप्त किया है, यावत् वे सभी दु खो से मुक्त हुए है।[११०]

यह वृत्त सुनकर चारो अनगार सहस्राम्र उद्यान मे पधारे। भात पानी का प्रत्युपेक्षण किया। गमनागमन का प्रतिक्रमण कर एषणा अनैषणा की आलोचना की। लाये हुए भोजन को युधिष्ठिर अनगार को दिखाते हुए बोले—देवानुप्रिय ! निश्चय ही अर्हत् अरिष्टनेमि उज्जयन्त शैल-शिखर पर पाँच सौ अनगारो के साथ जल रहित अनशन कर मुक्त हुए है। अत देवानुप्रिय ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है कि इस ग्रहीत भक्त पान का परिष्ठापन कर शत्रुञ्जय पर्वत पर शनै-शनै चढकर, सलेखना से आत्मा को कृश कर मृत्यु की विना इच्छा किये विचरण करे।[१११] इस प्रकार विचार कर वे शत्रुञ्जय

---

१०८ तए ण ते जुहिट्ठिल्लपामोक्खा पच अणगारा थेरेहिं अब्भुणुन्नाया समाणा थेरे भगवते वदति नमसति व० २ त्ता थेराण अतियाओ पडि-निक्खमति मासमासेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण गामाणुगाम दूइज्जमाणा जेणेव हत्थकप्पे तेणेव उवागच्छति, हत्थकप्पस्स बहिया सहसबवणे उज्जाणे जाव विहरति।

—ज्ञातासूत्र १।१६

१०९. त्रिषष्टि० ८।१२

११० (क) ज्ञातासूत्र १।१६

(ख) त्रिषष्टि० ८।१२

पर्वत पर गये, दो महीने की सलेषणा से आत्मा को कृश कर, श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए ।[११२]

श्वेताम्बर परम्परा में :

श्वेताम्वर परम्परा के आचार्य मल्लधारी देवप्रभसूरि ने पाण्डव-चरित्र मे[११३], व आचार्य हेमचन्द्र कृत - त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[११४] मे, ज्ञातासूत्र के कथानक से एक बात अधिक है । वह यह कि पाचो पाण्डव मुनि जव हस्तीकल्प नगर मे पहुँचते है तब वे परस्पर विचार करते है कि यहा से रैवतगिरि केवल बारह योजन दूर है जहा भगवान् अरिष्टनेमि विराज रहे है । मासखमण का पारणा आज न कर भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन करने के पश्चात् ही पारणा करेगे । किन्तु भगवान् का दर्शन किये विना पारणा नही करेगे । इस प्रकार प्रतिज्ञा ग्रहण की ही थी कि लोगो के मुह से सुना कि रैवतगिरि पर भगवान् मोक्ष पधार गये है । पाण्डवचरित्र के अनुसार तो एक चारणलब्धि धारी मुनिराज वहा पर पधारते है और भगवान् के मोक्षगमन के समाचार सुनाते है । समाचार सुनकर पाँचो मुनियो को अत्यधिक दु ख होता है कि हम भगवान् के दर्शन नही कर सके । वे सिद्धाचल पर्वत (पांडव चरित्र मे विमलगिरि) पर गये, अनशन कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर मुक्त हुए ।

सती द्रौपदी भी अन्त समय मे आयुपूर्ण कर पाँचवे ब्रह्मदेव लोक मे उत्पन्न हुई ।[११५]

---

१११ ज्ञातासूत्र १।१६

११२. ज्ञातासूत्र १।१६।१३५

११३ पाण्डवचरित्र, सर्ग १८, पृ० ५८०-५८१, गुजराती अनुवाद भीमसिंह माणेक, मुम्बई, सन् १८७८

११४ त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १२

११५ (क) तए ण सा दोवई अज्जा सुव्वयाण अज्जियाण अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ २ त्ता वहूणि वासाणि मासियाए सलेहणाए आलोइयपडिक्कता कालमासे काल किच्चा वभलोए उववन्ना ।

—ज्ञातासूत्र १।१६, १३६

दिगम्बर ग्रन्थों में :

आचार्य जिनसेन के अनुसार जरत्कुमार के द्वारा श्रीकृष्ण के निधन के समाचार जब पाण्डवो को प्राप्त होते हैं तब पाण्डव माता कुन्ती और द्रौपदी के साथ जरत्कुमार को लेकर जहाँ बलभद्र थे वहा आये। दोनो का मधुर-मिलन हुआ।[९५] पाण्डवो ने श्रीकृष्ण के दाह सस्कार हेतु बलभद्र से निवेदन किया किन्तु जैसे बालक विषफल को न देकर उलटा कुपित होता है वैसे ही बलभद्र कुपित हुए।[९६] अन्त मे बलभद्र की इच्छानुसार पाण्डव चलने लगे। वर्षावास का समय व्यतीत किया।[९७] पहले श्रीकृष्ण के शरीर मे सप्तपर्ण के समान सुगध आती थी अब दुर्गन्ध आने लगी।[९८] तब सिद्धार्थ देव आकर पूर्वकथानुसार प्रतिबोध देता है।[९९]

शुभचन्द्राचार्य रचित पाण्डव पुराण के अनुसार पहले सिद्धार्थ देव आकर प्रतिबोध देता है पर वे प्रतिबुद्ध नही हुए। अत मे पाण्डव आते है, धीरे-धीरे प्रेम से समझाते है तब बलभद्र का मोह कम होता है और श्रीकृष्ण का अग्नि सस्कार होता है।[१००] शेष कथानक सभी श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थो मे एक समान है।

पाण्डवों की दीक्षा और मुक्ति :

भगवान् अरिष्टनेमि ने पाँच पाण्डवो और सती द्रौपदी को प्रतिबोध देने हेतु अपने शिष्य धर्मघोप नामक स्थविर को पाँच सौ

(ग) कथाकोशप्रकरण १७ जिनेश्वरसूरि

९५ ते कियद्भिरपि वासरैर्द्रुत द्रौपदीप्रभृतिभामिनीजनै ।
मातृपुत्रसहिता ससाधना. प्राप्य त ददृशुराहता वने ।।
व्यथिका शवशरीरगोचरोद्वर्तनस्नपनमण्डनक्रिया ।
वर्तयन्तमुपगृह्य त चिर बाधवा रुरुदुरुच्चकै स्वना. ।।
—हरिवशपुराण ६३।५४-५५

९६ वही० ६३।५६, पृ० ७७६

९७ निन्युरित्थमनुवृत्तितस्तु ते तत्र मेघसमय बलानुगा ।
मोहमेघपटल बलस्य वा भेत्तुमाविरभवत्तदाशरत् ।।
—वही० ६३।५९, पृ० ७७६

९८ वही० ६३।६०, पृ० ७७६

शिष्यो के साथ, व आर्या सुव्रता को अनेक श्रमणियो के साथ पाण्डु मथुरा प्रेषित किया।[101] धर्मघोष स्थविर चार ज्ञान के धारक एव प्रबल प्रतिभा के धनी थे। धर्मघोष के उपदेश को सुनकर, ज्ञातासूत्र के अनुसार, अपने पुत्र पण्डुसेन को राज्य देकर[102] और त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित्र के अनुसार जराकुमार को राज्य देकर[103] पाण्डवो ने धर्मघोष अनगार के पास और द्रौपदी ने आर्या सुव्रता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।[104] पाण्डवो ने बारह अगो का व द्रौपदी ने ग्यारह अगो का गंभीर अध्ययन किया, और उत्कृष्ट तपजप की साधना करने लगे।[105]

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि सौराष्ट्र जनपद मे विचरण कर रहे थे।[106] युधिष्ठिर आदि पाचो पाण्डव मुनियों के मन मे भगवान् के दर्शन करने की तीव्र भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने धर्मघोष स्थविर की आज्ञा लेकर सौराष्ट्र जन पद की ओर विहार किया।[107]

---

९९. वही० ६३।६१-६८, पृ० ७७६-७७७

१०० पाण्डवपुराण, पर्व २२, श्लोक ८७-९९, पृ० ४६८-४६९

१०१. ज्ञातासूत्र मे भगवान के द्वारा प्रेपित करने का उल्लेख नही है, पर त्रिषष्टि० आदि मे है—

तान् प्रविव्रजिषून्ज्ञात्वा श्रीनेमि· प्राहिणोन्मुनिम्।
धर्मघोष चतुर्ज्ञान मुनिपञ्चशतीयुतम् ॥

—त्रिपष्टि० ८।१२।९२

१०२. तए ण ते पच-पडवा पडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए, जाव रज्ज पासाहेमाणे विहरइ।

—ज्ञातासूत्र १।१६

१०३. जारेय न्यस्य ते राज्ये द्रौपद्यादिसमन्विता।

—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १२, श्लोक ९३

१०४. ज्ञाता सूत्र १।१६, सूत्र १३३-१३४, सुत्तागमे

१०५ वही० १।१६।१३३-१३४

१०६ अरहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ ……

—ज्ञातासूत्र १।१६।१३५

१०७. वही० १।१६।१३५

दिगम्बर परम्परा में :

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे पाण्डवो के सम्बन्ध में पृथक् रूप से उल्लेख मिलता है —

जरत्कुमार के द्वारा द्वारिकादहन, कृष्णमरण, वलभद्र मुनि का दीक्षाग्रहण प्रभृति समाचार सुनकर मथुरा से पाण्डव भगवान् अरिष्टनेमि के पास आते है।[११६] उस समय भगवान् पल्लव देश मे विहार कर रहे थे।[११७] पाण्डवो के मन मे कृष्णमरण और द्वारिका नगरी के विनाश से वैराग्य भावना उत्पन्न हो गई थी। उन्हे ससार के नश्वर स्वरूप का ज्ञान हो गया था। उन्होने भगवान् को वन्दन कर पूर्व भव पूछे।[११८] भगवान् ने विस्तार के साथ उनके पूर्वभवो का निरुपण किया। पूर्वभवो को सुनकर वैराग्य मे और अधिक अभिवृद्धि हुई। भगवान् के पास उन्होने दीक्षा ग्रहण की।[११९] कुन्ती, द्रौपदी, तथा सुभद्रा ने भी राजमती-आर्या से पास सयम लिया।[१२०] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान च सम्यक् चारित्र व तप का आचरण करने

(ख) त्रिषष्टि० ८।१२

(ग) पाण्डवचरित्र सर्ग १८, पृ० ५८१

११६. यत्सर्वं पाण्डवा. श्रुत्वा तदायन्मथुराधिपा ।
स्वामिवन्धुवियोगेन निर्विद्य त्यक्तराज्यका ॥
महाप्रस्थानकर्माण प्राप्य नेमिजिनेश्वरम् ।
तत्कालोचितसत्कर्म सर्व निर्माप्य भाक्तिका ॥

—उत्तरपुराण ७२।२२४-२२५

११७. अथ ते पाण्डवाश्चण्डससारभयभीरव ।
प्राप्य पल्लवदेशेषु विहरन्त जिनेश्वरम् ॥

—हरिवंशपुराण ६४।१

(ख) पाण्डवपुराण २३।३३ पृ० ४७३

११८ (क) हरिवशपुराण ६४।३

(ख) उत्तरपुराण ७२।२२६

(ग) पाण्डवपुराण, पर्व २३, श्लोक ७३-७५, पृ० ४७७
—शुभचन्द्राचार्य विरचित, जीवराज गौतमचन्द दोशी, सोलापुर द्वारा प्रकाशित, सन् १९५४

११९ हरिवशपुराण ६४।१४३

लगे। उन सभी पाण्डवो मे भीमसेन मुनि ने घोर अभिग्रह ग्रहण किया कि भाले के अग्रभाग पर दिये गये आहार को ही ग्रहण करूंगा। क्षुधा से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया। छह माह के पश्चात् उनका पारणा हुआ। युधिष्ठिर आदि वेले-तेले की तपस्या करते हुए भूमण्डल पर विचरण करते रहे।[१२१]

भगवान् अरिष्टनेमि उत्तरापथ से विहार कर सौराष्ट्र की ओर पधारे।[१२२] अन्तिम समय सन्निकट जानकर गिरनार पर्वत पर पधारे।[१२३] अघातिया कर्मो को नष्ट कर अनेक सौ मुनियो के साथ निर्वाणप्राप्त हुए।[१२४] समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकी के युगलिया छह पुत्र, शब और प्रद्युम्नकुमार आदि भी गिरनार पर्वत पर मोक्ष को प्राप्त हुए।[१२५]

धीर वीर पाँचो पाण्डव मुनि, भगवान् को मुक्त हुआ जानकर शत्रुञ्जय पर्वत पर प्रतिमायोग से विराजमान हुए।[१२६] उस समय दुर्योधन के वश का क्षुयवरोधन नामक कोई पुरुष रहता था। ज्यो ही उसने पाण्डवो का आगमन सुना त्योही वह वहा पर आया और उसने वैरवश घोर उपसर्ग करना प्रारभ किया। उसने तपाये हुए लोहे के मुकुट, कडे, तथा कटिसूत्र आदि वनाये और उन्हे अग्नि

---

१२० कुन्ती च द्रौपदी देवी सुभद्राद्याश्च योषित.।
राजीमत्या समीपे ता. समस्तास्तपसि स्थिता.॥

—हरिवशपुराण ६४

१२१ कुन्ताग्रेण वितीर्णभैक्ष्यनियमः क्षुत्क्षामगात्र क्षम.।
षण्मासैरथ भीमसेनमुनिपो निष्ठाप्य स्वान्तक्लमम्॥
षष्ठाद्यैरुपवासभेदविधिभिर्निष्ठाभिमुख्यैः स्थितै-।
र्ज्येष्ठाद्यै र्विजहार योगिभिरिला जैनागमाम्भोधिभि॥

—हरिवशपुराण ६४।१४६, पृ० ७६७

१२२ अथ सर्वामराकीर्णस्तीर्थकृत्कृतदेशनः।
उत्तरापथतो देश सुराष्ट्रमभितो ययौ॥

—हरिवशपुराण ६५।१

१२३. हरिवशपुराण ६५।४

१२४ वही० ६५।१०

१२५ वही० ६५।१६

मे अत्यन्त प्रज्वलित कर उनके मस्तक आदि स्थानो मे पहनाये। पर पाण्डव मुनियो ने कर्मो को क्षय करने की भावना से उस दाह के भयकर उपसर्ग को हिम के समान शीतल समझा।

भीम, अर्जुन, और युधिष्ठिर ये तीन मुनिराज तो शुक्ल ध्यान से युक्त हो आठो कर्मो को क्षय कर मोक्ष गये। परन्तु नकुल और सहदेव अपने ज्येष्ठ भ्राताओ को जलते हुए देखकर कुछ आकुलचित्त हुए, एतदर्थ सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न हुए।[१२७]

महाभारत में :

महाभारत मे पाण्डवो के अन्तिम जीवन का प्रसग अन्य रूप से चित्रित किया गया है। वह इस प्रकार है—

यादवो के सर्वनाश और श्रीकृष्ण के निर्वाण के शोकजनक समाचार जब हस्तिनापुर पहुँचे तो पाण्डवो के मन मे विराग छा गया, उनमे जीवित रहने की इच्छा नही रही। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी पर बिठाकर पाँचो पाण्डव द्रौपदी को लेकर तीर्थयात्रा के लिए निकले। वे अन्त मे हिमालय की तलहटी मे पहुँचे। उनके साथ एक कुत्ता भी था। सभी ने पहाड पर चढ़ना शुरू किया, चढते-चढते मार्ग मे द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने क्रमश शरीर त्याग दिया किन्तु सत्य-ब्रह्म का ज्ञान रखने

---

१२६ ज्ञात्वा भगवत. सिद्धि पञ्च पाण्डवमाधव ।
शत्रुञ्जयगिरौ धीरा प्रतिमायोगिन स्थिता ॥
दुर्योधनान्वयस्तत्र स्थितो क्षुयवरोधन ।
श्रुत्वागत्याकरोद्वैरादुपसर्गं सुदुस्सहम् ॥
तप्तायोमयमूर्तीनि मुकुटानि ज्वलन्त्यलम् ।
कटकै कटिसूत्रादि तन्मूर्धादिष्वयोजयत् ॥
रौद्र दाहोपसर्गं ते मेनिरे हिमशीतलम् ।

—हरिवशपुराण ६५।१८-२१

१२७ शुक्लध्यानसमाविष्टा भीमार्जुनयुधिष्ठिरा ।
कृत्वाष्टविधकर्मान्त मोक्ष जग्मुस्त्रयोऽक्षयम् ॥
नकुल सहदेवश्च ज्येष्ठदाह निरीक्ष्य तौ ।
अनाकुलितचेतस्कौ जातौ सर्वार्थसिद्धिजौ ॥

—हरिवशपुराण ६५।२२-२३

वाले युधिष्ठिर किञ्चित् मात्र भी विचलित नही हुए। वे ऊपर चढते ही गये। उनके पीछे-पीछे वह कुत्ता भी चलता रहा। बहुत दूर जाने पर देवराज इन्द्र दिव्य रथ लेकर युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुए और बोले—

युधिष्ठिर! द्रौपदी और तुम्हारे भाई स्वर्ग पहुँच चुके है। अकेले तुम्ही रह गये हो। तुम अपने शरीर के साथ ही इस रथ पर सवार होकर स्वर्ग चलो, तुम्हे ले जाने के लिए मै आया हूँ।

युधिष्ठिर रथ पर आरूढ होने लगे तब वह कुत्ता भी उनके साथ रथ पर चढने लगा। इन्द्र ने उसे रोका और कहा—कुत्ते के लिए स्वर्ग मे स्थान नही है। युधिष्ठिर ने कहा—यदि कुत्ते को स्वर्ग मे रहने का स्थान नही है तो मुझे भी वहाँ जाने की इच्छा नही है।

इन्द्र के बहुत समझाने पर भी युधिष्ठिर कुत्ते को छोडकर अकेले स्वर्ग जाने को तैयार न हुए।

धर्मदेव ने अपने पुत्र की परीक्षा लेने के लिए ही कुत्ते का रूप बनाया था। युधिष्ठिर की दृढता देखकर वे प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।

युधिष्ठिर स्वर्ग पहुचे, स्वर्ग मे भी उनकी परीक्षा ली गई। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर उन्होने मानवीय शरीर त्याग किया और अपने स्वजनो के साथ वहा आनन्दपूर्वक रहने लगे।[१२८]

जैन और वैदिक दोनो ही परम्परा मे पाण्डवो के प्रसग पृथक् रूप से आये है। जिज्ञासुओ के अन्तर्मानस मे यह प्रश्न उद्बुद्ध हो सकता है कि पाण्डव जैन थे, या वैदिक परम्परा के अनुयायी थे? यही प्रश्न एक बार महाराजा कुमारपाल की राजसभा मे उपस्थित हुआ था। तब आचार्य हेमचन्द्र ने एक आकाशवाणी का प्रमाण देते हुए कहा—सैकड़ो भीष्म हो चुके है, तीन सौ पाण्डव हुए है, हजारो द्रोणाचार्य हो चुके है और कर्ण नाम वालो की तो सख्या ही नही है। आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल से कहा—इनमे से कोई जैन पाण्डव शत्रुञ्जय पर्वत पर आये होगे और कोई वैदिक परम्परा के मानने वाले पाण्डव हिमालय पर गये होगे।[१२९]

---

१२८ महाभारत कथा—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी पृ० ४७४-७५

हम यहाँ इस चर्चा मे जाना नही चाहते किन्तु इतना स्पष्ट है कि महाभारत की कथा की अपेक्षा जैन कथा अधिक वास्तविकता लिए हुए प्रतीत होती है।

भगवान् का विहार :

भगवान् अरिष्टनेमि के विहार का वर्णन आगमसाहित्य मे विस्तार से नही मिलता है। अन्तकृद्दशाग मे उनका मुख्य रूप से द्वारिका मे पधारने का उल्लेख है। वे अनेक बार द्वारिका पधारे है।[130] एक बार वे भद्दिलपुर भी पधारे थे, ऐसा स्पष्ट वर्णन अनेक स्थलो पर आया है।[131] भद्दिलपुर मलय जनपद की राजधानी थी जिसकी पहचान हजारीबाग जिले के भदिया नामक गाव से की जाती है।[132]

आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि ने अनार्य देशो मे भी विहार किया था।[133] जिस समय द्वारिका का दहन हुआ उस समय भगवान् पल्हव नामक अनार्य देश मे विचरण कर रहे थे।[134] यह अन्वेषणीय है कि यह पल्हव भारत की सीमा मे था या भारत की सीमा से बाहर था? प्राचीन पार्थीया (वर्तमान ईरान) के एक भाग को पल्हव या पण्हव माना जाता है। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि श्रीकृष्ण की जिज्ञासा पर भगवान् अरिष्टनेमि ने द्वारवती के दहन की बात कही। उस समय भगवान् द्वारवती मे

---

१२९ (क) प्रभावक चरित्र
(ख) भगवान महावीर नी धर्मकथाओ पृ० २४५
१३० अन्तकृतदशा
१३१ (क) अन्तकृतदशा वर्ग ३, अ० ८
(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र
१३२ जैनआगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४७७
१३३ (क) मगहारायगिहाइसु मुणओ खेत्तारिएसु विहरिसु।
उसभोनेमि पासो, वीरो य अणारिएसु पि॥
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० २५६
(ख) विशेपावश्यकभाष्य गा० १६६६
१३४ उत्तराध्ययन सुखवोधा वृत्ति पत्र ३९

थे। उसके पश्चात् उन्होने अन्य जनपदो मे विहार किया। द्वारवती दहन से पूर्व वे पुनः रैवतपर्वत पर आये थे।[१३५] जब द्वारवती का दहन हुआ उस समय वे पल्हव देश मे थे। इस मध्यावधि मे बारह वर्ष का काल बीता है।[१३६] सभव है इस बीच वे ईरान भी गये हो क्योकि द्वारवती के दहन के पश्चात् श्रीकृष्ण और बलभद्र पाण्डव मथुरा (वर्तमान मदुरा) मे जा रहे थे। वे द्वारवती से पूर्व दिशा मे चले, सौराष्ट्र को पारकर हस्तिकल्पपुर पहुचे। वहा से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और कौसुम्वारण्य मे गये।[१३७] इस यात्रा मे वे भगवान् अरिष्टनेमि के पास गये हो ऐसा उल्लेख प्राप्त नही होता है। यह आश्चर्य की बात है कि द्वारवती दहन के बाद वे भगवान् के पास नही गये। इसलिए यह सहज ही कल्पना होती है कि भगवान् उस समय सौराष्ट्र मे नही होगे। यह भी हो सकता है कि वे उनके जाने के मार्ग से कही दूर हों, जब तक इस सम्बन्ध मे विश्वस्त प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक अन्तिम निर्णय नही लिया जा सकता।[१३८]

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार उनका विहारक्षेत्र सक्षेप मे इस प्रकार रहा है—भगवान् अरिष्टनेमि मध्यदेश आदि मे विहार कर उत्तर दिशा मे राजपुर आदि नगरो मे पधारे। वहां से 'ह्रीमान' गिरि पर पधारे। वहा से अनेक म्लेच्छ देशो मे पधारे, वहा के अनेक राजाओ को और मत्रियो को प्रतिबोध दिया। वहाँ से पुनः ह्रीमान गिरि पर आये। वहाँ से वे किरात देश मे गये। वहाँ से ह्रीमान पर्वत से उतरकर दक्षिणापथ देश मे आये। वहाँ से निर्वाण समय सन्निकट जानकर रैवतगिरि पर पधारे।[१३९]

---

१३५. एत्थतरे य भगव पुणरवि अरिट्ठनेमि सामी विहरतो आगओ, रेवयम्मि समोसढो।

१३६ (क) चउप्पन्नमहापुरिस चरिय

(ख) भव-भावना

१३७ पत्थिया ते पाएहिं चेव पुव्वदिसिमगीकाऊण' ' 'सुरट्ठादेस च ममुत्तरिऊण' ' ' पत्ता हत्थिकप्पपुर-वरस्सवाहिं''' ''''दक्खिणाभिमुह गतु पयत्ता। कोसु वारण नाम वण।

—उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पत्र ४०

मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र ने भी भव-भावना मे विहार का वर्णन निम्न प्रकार किया है।[१४०]

आचार्य जिनसेन ने लिखा है कि भगवान् अरिष्टनेमि ने भव्य जीवो को सम्बोधन देने हेतु जगत् के वैभव के लिए पृथ्वी पर विहार किया। भगवान् ने सुराष्ट्र, मत्स्य, लाट, विशाल, शूरसेन, पटच्चर, कुरुजागल, पाञ्चाल, कुशाग्र, मगध, अञ्जन, अङ्ग, वग, तथा कलिग आदि नाना देशो मे विहार करते हुए क्षत्रिय आदि वर्णो को जैन धर्म मे दीक्षित किया।[१४१]

---

१३८ अतीत का अनावरण पृ० १४६

१३९ इतश्च मध्यदेशादौ विहृत्य परमेश्वर ।
उदीच्या राजपुरादिपुरेपु व्यहरन् प्रभु ॥
शैले ह्रीमति गत्वा च म्लेच्छदेशेष्वनेकश ।
विहरन् पार्थिवामात्य प्रभृतीन् प्रत्यबोधयत् ॥
आर्यानार्येषु विहृत्य भूयो ह्रीमत्यगाद्विभु ।
तत किरातदेशेषु व्याहार्षीद्विश्वमोहहृत् ॥
उत्तीर्य ह्रीमत शैलाद्विजह्रे दक्षिणापथे ।
भव्यारविन्दखडानि बोधयन्नशुमानिव ॥
आरभ्य केवलादेव भर्तुर्विहरतोऽभवन् ।
निर्वाणसमय ज्ञात्वा ययौ रैवतके प्रभु ॥
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १२, श्लोक ९६ से १०५

१४० भयव पि मज्झ देसे नाणाविहजणवएसु गतूण ।
विहरइ उत्तरदेसे रायपुराई नयरेसु ॥
हिरिमतनग गतु विहरइ वहुएसु मेच्छदेसेसु ।
नरनाहअमच्चाइ ठावतो धम्ममग्गम्मि ॥
आरियमणारिएसु इय विहरेउण वहुयदेसेसु ।
हिरिमतमुवेइ पुणो गगाजलखालियसिलोह ॥
विहरइ किरायदेसे हिरिमतनगाउ तो समुत्तरिउ ।
विहरइ दाहिणदेसे वोहेतो भव्वकमलाइ ॥
—भव-भावना, गा० ४०१० से ४०१३ पृ० २६४-६५

भद्रिलपुर नामक नगर मलय मे स्थित था, जहाँ के छह भ्राताओ ने दीक्षा ली थी।[१४२]

परिनिर्वाण :

भगवान् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष पर्यन्त कुमार अवस्था मे रहे। चौपन रात्रि-दिवस छद्मस्थ पर्याय मे रहे। सात सौ वर्षों मे चौपन दिन कम केवली अवस्था मे रहे। सात सौ वर्षो तक श्रमण जीवन मे रहे।[१४३]

ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थमास, आषाढ मास की शुक्ला अष्टमी के दिन, रैवतक शैल-शिखर पर अन्य पाच सौ छत्तीस अनगारो के साथ, जल रहित मासिक तप कर चित्रा नक्षत्र के योग मे, मध्य-रात्रि मे, निपद्या मे अवस्थित होकर आयु कर्म, वेदनीय कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म—इन चारो कर्मो को नष्टकर वे कालगत हुए, सर्वदु.खो से मुक्त हुए।[१४४]

---

१४१ विभूत्योद्धतया भूत्यै जगता-जगता विभू ।
विजहार भुव भव्यान् वोधयन् वोधद क्रमात् ॥
सुराष्ट्रमत्स्यलाटोरुसूरसेनपटच्चरान् ।
कुरुजाङ्गलपाञ्चालकुशाग्रमगधाञ्जरान् ॥
अगवङ्गकलिङ्गादीन्नानाजनपदान् जिन ।
विहरन् जिनधर्मस्थाश्चक्रे क्षत्रियपूर्वकाम् ॥
—हरिवशपुराण ५९।१०९-१११

१४२ ततो मलयनामान देशमागत्य स क्रमात् ।
सहस्राम्रवने तस्यौ पुरे भद्रिलपूर्वके ॥
—हरिवशपुराण ५९।११२

१४३. कौमारे त्रिवर्षशती छद्मकेवलयो पुन. ।
सप्तवर्षशतीन्यब्दसहस्रायु शिवासुत ॥
—त्रिषष्टि० ८।१२।११५, पृ० १९३

१४४ (क) कल्पसूत्र सूत्र १६८
(ख) तत. प्रपेदेऽनशन पादपोपगम प्रभु. ।
मासिक सह साधूना षट्त्रिंशै पचभि शतै ॥

शिष्य परिवार :

कल्पसूत्र[१४५] के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि का संघ समुदाय इस प्रकार था .—

अर्हत् अरिष्टनेमि के अठारह गण और अठारह गणधर थे ।[१४६] उनके गण समुदाय मे वरदत्त आदि १८००० श्रमणो की उत्कृष्ट श्रमण .म्पदा थी। आर्यायक्षिणी आदि ४०००० श्रमणियो की उत्कृष्ट श्रमणी सम्पदा थी। उनके नन्द आदि १०००६९ श्रमणोपासक और महासुव्रता आदि ३०००३६ श्रमणोपासिकाए थी।

अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय मे जिन नही, पर जिन समान तथा सर्वअक्षरो के सयोगो को अच्छी तरह जानने वाले यावत् ४१४ पूर्वधारियो की सम्पदा थी। इसी प्रकार १५०० अवधिज्ञानी १५०० केवली, १५०० वैक्रिय लब्धिधारी, १००० विपुलमती मन पर्यवज्ञानी ८०० वादी, और १६०० अनुत्तरौपपातिको की सम्पदा थी। उनके श्रमण समुदाय से १५०० श्रमण सिद्ध हुए और ३००० श्रमणिया सिद्ध हुई।

हरिवशपुराण आदि दिगम्बर ग्रन्थो मे उनके सघ समुदाय का वर्णन इस प्रकार है—

भगवान् अरिष्टनेमि के समवसरण मे श्रुतज्ञानरूपी समुद्र के भीतरी भाग का देखने वाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर सुशोभित थे।[१४७] भगवान् के समवसरण मे सज्जनो के माननीय चार सौ

त्वाष्ट्रे शुचिसिताष्टम्या शैलेशीध्यानमास्थित ।
साय तैर्मुनिभि सार्धं नेमिर्निर्वाणमासदत् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१२।१०८-१०९

१४५ कल्पसूत्र सूत्र १३६, पृ० २३६-२३७
— देवेन्द्रमुनि सम्पादित

१४६. मलधारी आचार्य देवप्रभसूरि रचित पाण्डव चरित्र सर्ग, १८ पृ० ५३५ मे ग्यारह गणधर का उल्लेख है। विशेष स्पष्टीकरण गणधर कितने इस प्रकरण मे किया गया है।

१४७. एकादश गणाधीशा वरदत्तादयस्तदा ।
श्रुतज्ञानसमुद्रान्तर्दर्शिनोऽत्र विरेजिरे ॥
—हरिवशपुराण ५९।१२९।७०५

पूर्वधारी, ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक (उपाध्याय) पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विपुलमति मनः पर्यव-ज्ञानी, आठ सौ वादी, और ग्यारह सौ वैक्रिय ऋद्धि के धारक मुनिराज थे।[१४८]

राजीमती को साथ लेकर चालीस हजार आर्यिकाए एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक, तथा सम्यग्दर्शन से शुद्ध श्रावक के व्रत धारण करने वाली तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाए वहाँ विद्यमान थी।[१४९]

●●

---

१४८ चतुःशतानि तत्रान्ये मान्याः पूर्वधराः सताम्।
एकादशसहस्राष्टशतसख्यास्तु शिक्षका.॥
शतान्यवधिनेत्रास्तु केवलज्ञानिनोऽपि च।
ते पचदशसख्याना प्रत्येकमुपवर्णिता॥
मत्या विपुलया युक्ता शतानि नव सख्यया।
वादिनोऽष्टौ शतानि स्युरेकादश तु वैक्रिया॥
—वही० ५९।१२८-३० पृ० ७१५

१४९ चत्वारिंशत्सहस्राणि, राजीमत्या सहार्यिका।
लक्षैकैकोनसप्तत्या सहस्रै श्रावका स्मृता.।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि लक्षाणा त्रितय तथा।
सम्यग्दर्शनसशुद्धा श्राविका. श्रावकव्रता.॥
—हरिवशपुराण ५९।१३१-१३२, पृ० ७०५

अर्हत् अरिष्टनेमि के शिष्य परिवार की तालिका

	कल्पसूत्र (भद्रबाहु)	हरिवंशपुराण (जिनसेन)
गण	१८	११
गणधर	१८	११
श्रमण	१८०००	
श्रमणी	४००००	४००००
श्रमणोपासक	१०००६९	१०००६९
श्रमणोपासिका	३०००३६	३०००३६
केवली	१५००	१५००
मन पर्यवज्ञानी	१०००	६००
पूर्वधर	४१४	४००
अवधिज्ञानी	१५००	१५००
वैक्रियलब्धि	१५००	११००
वादी	८००	८००
अनुत्तरौपपातिक	१६००	
सिद्ध श्रमण	१५००	
,, श्रमणी	३०००	
उपाध्याय		११८००

द्वितीय खण्ड
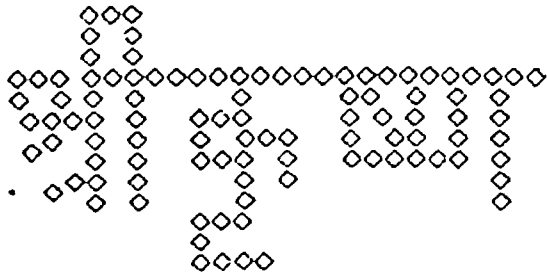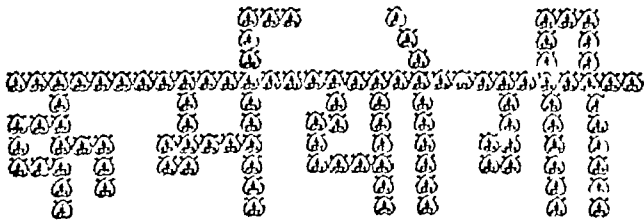
भारतीय साहित्य में कर्मयोगी श्रीकृष्ण

●

- जैन कृष्ण साहित्य
- सस्कृत जैन कृष्ण साहित्य
- बौद्ध साहित्य मे श्रीकृष्ण
- वैदिक साहित्य मे श्रीकृष्ण
- यूनानी लेखको के उल्लेख
- उपसहार

भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण

●

जैन कृष्ण साहित्य

जैन साहित्य मे श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे विस्तार से प्रकाश डाला गया है। द्वादशाङ्गी के अन्तिम अग का नाम दृष्टिवाद है। उसका एक विभाग अनुयोग है। अनुयोग के दो भेद है—मूल प्रथमानुयोग और गडिकानुयोग। गंडिकानुयोग मे अनेक गडिकाए थी, उसमे एक गडिका का नाम वासुदेव गडिका है।[1] उस गडिका मे इस अवसर्पिणी काल के नौ वासुदेवो का विस्तार से वर्णन था। अन्तिम वासुदेव श्रीकृष्ण है अत उनका भी उसमे सविस्तृत वर्णन होना चाहिए। पर खेद है कि आज वह गडिका अनुपलब्ध है। यदि वह गडिका उपलब्ध होती तो सभवत: श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे अन्य अनेक अज्ञात बाते भी प्रकाश मे आ सकती थी।

उपलब्ध जैन आगम साहित्य मे श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे बिखरी हुई सामग्री है। आगमो मे यद्यपि परवर्ती साहित्य की तरह व्यवस्थित जीवनचरित्र कही पर भी नही है तथापि जो सामग्री है वह उसे

---

१. (क) समवायाङ्ग सूत्र १४७

(ख) नन्दीसूत्र सूत्र ५६, पृ० १५१-१५२ पूज्य हस्तीमलजी म०।

व्यवस्थित रूप से एक स्थान पर एकत्रित करने से कृष्ण का तेजस्वी रूप हमारे सामने आता है।

अन्तकृत्दशाङ्ग[२], समवायाङ्ग[३] णायाधम्मकहाओ[४] स्थानाङ्ग[५] निरियावलिका[६] प्रश्नव्याकरण[७] उत्तराध्ययन[८], आदि मे उनके महान् व्यक्तित्व के दर्शन होते है। वे अनेक गुण सम्पन्न और सदाचार निष्ठ थे, अत्यन्त ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, और यशस्वी महापुरुष थे। उन्हे ओघवली, अतिवली, महावली अप्रतिहत और अपराजित कहा गया है। उनके शरीर मे अपार वल था। वे महारत्न वज्र को भी चुटकी से पीस डालते थे।

मनोविज्ञान का नियम है कि वाह्य व्यक्तित्व ही अन्तरग व्यक्तित्व का प्रथम परिचायक होता है। जिसके चेहरे पर ओज हो, प्रभाव चमक रहा हो, आकृति मे सौन्दर्य छलक रहा हो, आखो मे मन्दस्मित, शारीरिक गठन की सुभव्यता व सुन्दरता हो, उसका प्रथम दर्शन ही व्यक्ति को प्रभावित कर देता है। और जहा वाह्य-सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य भी हो, तो वहा तो सोने मे सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। यही कारण है कि जितने भी विशिष्ट पुरुष हुए है उनका वाह्य व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और

---

२ वर्ग १, अध्ययन १ मे द्वारिका के वैभव व कृष्ण वासुदेव का वर्णन, वर्ग ३, अ० ८ वे मे कृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का वर्णन, वर्ग ५ मे द्वारिका का विनाश और कृष्ण के देह त्याग का उल्लेख है।

३. श्लाघनीय पुरुषो की पक्ति मे श्रीकृष्ण का उल्लेख तथा उनके प्रतिद्वन्दी जरासध के वध का वर्णन है।

४ प्रथम श्रुतस्कध के अध्ययन ५ वे मे थावच्चा पुत्र की दीक्षा और श्रीकृष्ण का दल-वल सहित रैवतक पर्वत पर अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जाना। अ० १६ वे मे अमरकका जाने का वर्णन।

५. अ० ८ वे कृष्ण की आठ अग्रमहिषियो का वर्णन, उनके नाम।

६. प्रथम अध्ययन मे द्वारिका नगरी के राजा कृष्ण वासुदेव का रैवतक पर्वत पर अर्हत् अरिष्टनेमि के सभा मे जाने का वर्णन।

७. चतुर्थ आश्रव द्वार मे श्री कृष्ण द्वारा दो अग्रमहिषियो रुक्मणी और पद्मावती के लिए किये गए युद्धो का वर्णन।

८. अध्ययन २२ मे।

प्रभावशाली रहा है। जैन दृष्टि से जो तिरेसठ श्लाघनीय पुरुष हुए है, उन सभी का शारीरिक सस्थान अत्युत्तम था।[९] उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्ण रेखा के समान होती है।[१०]

श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान, और प्रमाण मे पूरा, सुजात और सर्वाङ्ग सुन्दर था। वे लक्षणो, व्यजनो और गुणो से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुप लम्बा था। देखने मे बड़े ही कान्त, सौम्य सुभग-स्वरूप और अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रगल्भ, धीर और विनयी थे। सुखशील होने पर भी उनके पास आलस्य फटकता नही था।

उनकी वाणी गभीर, मधुर और प्रतिपूर्ण थी। उनका निनाद क्रौच पक्षी के घोष, शरद् ऋतु की मेघ-ध्वनि और दु दुभि की तरह मधुर व गभीर था। वे सत्यवादी थे।

उनकी चाल मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र की तरह ललित थी। वे पीले रग के कौशेय-वस्त्र पहना करते थे। उनके मुकुट मे उत्तम धवल, शुक्ल, निर्मल कौस्तुभ मणि लगा रहता था। उनके कान मे कु डल, वक्षस्थल पर एकावली हार लटकता रहता था। उनके श्रीवत्स का लाछन था। वे सुगन्धित पुष्पो की माला धारण किया करते थे।

वे अपने हाथ मे धनुष रखा करते थे, वे दुर्धर धनुर्धर थे। उनके धनुप की टकार वड़ी ही उद्घोषकर होती थी। वे शख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते। ऊँची गरुड ध्वजा के धारक थे।

वे शत्रुओ के मद को मर्दन करने वाले, युद्ध मे कीर्ति प्राप्त करने वाले, अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।[११]

श्री कृष्ण सभी प्रकार से गुण सम्पन्न और श्रेष्ठ चरित्रवान थे। उनके जीवन के विविध प्रसगो से, जो अगले अध्यायो मे दिये गये है, सहज ही ज्ञात होता है कि वे प्रकृति से दयालु, शरणागत-वत्सल,

---

९ प्रज्ञापना सूत्र २३

१० हारिभद्रीयावश्यक, प्रथम भाग गा० ३६२-६३।

११ प्रश्नव्याकरण, अ० ४ पृ० १२१७, सुत्तागमे भाग १।

प्रगल्भ, धीर, विनयी, मातृ-भक्त, महान् वीर, धर्मात्मा, कर्तव्य परायण, वुद्धिमान्, नीतिमान् तथा तेजस्वी थे।

आगमेतर साहित्य मे भी श्रीकृष्ण का वही व्यक्तित्व अक्षुण्ण रहा है। निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका ग्रन्थो मे भी श्रीकृष्ण के जीवन से सम्वन्धित अनेक प्रसग आये है, जिनका हमने अगले अध्यायो मे यथास्थान उल्लेख किया है।

आगमेतर साहित्य मे सवसे प्राचीन ग्रन्थ सघदासगणी विरचित वसुदेव हिण्डी है।[१२] वसुदेव श्री कृष्ण के पिता थे। उन्ही का भ्रमण-वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ मे है। देवकी लम्वक मे श्रीकृष्ण के जन्म, आदि का वर्णन है। पीठिका मे प्रद्युम्न, शाम्वकुमार की कथा, बलराम और श्री कृष्ण की अग्रमहिषियो का वर्णन है। इस ग्रन्थ की शैली का आधार गुणाढ्य कृत वृहत्कथा को वतलाया गया है।[१३] इस ग्रन्थ मे कौरव-पाण्डवो का वर्णन भी हुआ है पर विशेष नही इसकी भाषा प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है।[१४]

चउप्पन्नमहापुरिषचरिय[१५]—यह आचार्य शीलाङ्क की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमे नौ प्रतिवासुदेवो को छोड़कर शेष चउप्पन्न महापुरुषो का जीवन उट्टङ्कित किया है। ४६, ५०, ५१ वे अध्याय मे अरिष्टनेमि, कृष्ण वासुदेव और वलदेव का चरित्र चित्रित किया गया है, भाषा साहित्यिक प्राकृत है।

---

१२ मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, आत्मानन्द जैन ग्रन्थ माला भावनगर की ओर से सन् १६३०-३१ मे प्रकाशित। इसका गुजराती भाषान्तर प्रोफेसर साडेसरा ने किया है जो उक्त ग्रन्थ माला की ओर से ही वि० स० २००३ मे प्रकाशित हुआ है।

१३ कथासरित्सागर की भूमिका, पृ० १३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।

१४. प्राकृतसाहित्य का इतिहास, —डा० जगदीशचन्द्र जैन पृ० ३८२

१५ प० अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित, प्राकृत-ग्रन्थ परिषद् वाराणसी द्वारा सन १६६१ मे प्रकाशित। गुजराती अनुवाद आचार्य हेमसागर सूरि द्वारा शेठ देवचन्द लालभाई द्वारा १६६६ मे प्रकाशित हुआ है।

नेमिनाहचरिउ—यह द्वितीय आचार्य हरिभद्र सूरि की महत्व पूर्ण रचना है। जिसका प्रथम भाग लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है, जिसमे भगवान् अरिष्टनेमि के पूर्वभव है।

भव-भावना—[१६] इसके रचयिता मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र सूरि है। उन्होने वि० सं० १२२३ (सन् ११७०) मे प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। इसमे भगवान् नेमिनाथ का चरित्र, कंस का वृत्तान्त, वसुदेव देवकी का विवाह, कृष्ण-जन्म, कस-वध, आदि विविध प्रसग है।

नेमिनाह चरिउ—यह आचार्य हरिभद्र सूरि की वि० स० १२१६ की रचना है।

उपदेशमालाप्रकरण[१७]— यह भी मल्लधारी हेमचन्द्र की ही कृति है। इसमे दान, शील, तप और भावना इन चार तत्वो का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। उसमे तप द्वार मे वसुदेव का चरित वर्णित हुआ है।

कुमारपाल पडिवोह[१८]—(कुमारपाल प्रतिबोध) इसके रचयिता सोमप्रभसूरि है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे मद्यपान के दुर्गुण बताते हुए द्वारिका दहन की कथा दी गई है। तप के सम्बन्ध मे रुक्मिणी की कथा आयी है।

कण्ह चरित[१९]—(कृष्ण चरित्र) इस ग्रंथ के रचयिता तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि है। प्रस्तुत चरित मे वसुदेव के पूर्वभव, कस का जन्म, वसुदेव का भ्रमण, अनेक कन्याओ से पाणिग्रहण, कृष्ण का जन्म,

---

१६. ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वेताम्बर सस्था, रतलाम द्वारा वि० स० १९९२ मे दो भागो मे प्रकाशित।

१७ ऋषभदेव जी केशरीमल सस्था द्वारा सन् १९३६ मे इन्दौर से प्रकाशित।

१८ यह ग्रन्थ गायकवाड ओरियटल सीरीज, बडौदा से मुनि जिन-विजय जी द्वारा सन् १९२० मे सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है, इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा की ओर से प्रकाशित हुआ।

१९. केशरीमल जी सस्था, रतलाम द्वारा सन् १९३० मे प्रकाशित।

कस का वध द्वारिका नगरी का निर्माण, कृष्ण की अग्रमहिपियाँ, प्रद्युम्न का जन्म, जरासध के साथ युद्ध, नेमिनाथ और राजीमती के साथ विवाह की चर्चा आदि सभी विपय आए है। इनके अतिरिक्त भी अनेक रचनाए है।

संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य :

जैन लेखको ने प्राकृत और अपभ्र श भापा मे ही नही सस्कृत भाषा मे भी विपुल कृष्ण साहित्य लिखा है। सस्कृत साहित्य के लेखक श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा के विद्वान रहे है।

हरिवश पुराण[२०]—इसके रचयिता दिगम्बर आचार्य जिनसेन है। इसमे ६६ सर्ग है और १२ हजार श्लोक है। ३२ वे सर्ग मे कृष्ण के बडे भाई बलदेव का वर्णन है। पेंतीसवें सर्ग मे कृष्ण जन्म से लेकर अन्तिम सर्ग तक श्री कृष्ण के जीवन के विविध प्रसग विस्तार के साथ लिखे गये है जैसे—कालियामर्दन, कसवध, उग्रसेन की मुक्ति, सत्यभामा से विवाह, जरासध के पुत्र का वध, जरासध के भय से मथुरा से प्रस्थान, द्वारकानिर्माण, रुक्मिणी का विवाह, शिशुपाल-वध, प्रद्युम्न का जन्म, जाम्बवती का विवाह, जरासध वध, कृष्ण की दक्षिण भारत विजय, कृष्ण की रानियो के पूर्व भव, द्वीपायन का क्रोध द्वारिका विनाश, बलदेव श्रीकृष्ण का दक्षिण गमन, कृष्ण-मरण, वलदेव विलाप, बलदेव की जिन दीक्षा।

उत्तरपुराण[२१]—इसके लेखक गुणभद्र है। उन्होने ७१, ७२, ७३वे पर्व मे कृष्ण कथा का उल्लेख किया है। हरिवशपुराण की अपेक्षा इसमे कथा वहुत ही सक्षिप्त है।

हरिवशपुराण और उत्तरपुराण को आधार बनाकर अन्य दिगम्बर विद्वानो ने श्रीकृष्ण पर लिखा है।

द्विसधान या राघवपाण्डवीय महाकाव्य—इसके रचयिता धनजय है। इसमे १८ सर्ग है। इसके प्रत्येक पद्य से दो अर्थ प्रकट होते है

---

२० श्री प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित और भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा सन् १६६२ मे प्रकाशित।

२१ प० पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञान-पीठ काशी द्वारा प्रकाशित।

जिनसे एक अर्थ मे रामायण और दूसरे अर्थ मे महाभारत की कथा कुशलता से लिखी गई है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो एक अर्थ मे राम तथा द्वितीय अर्थ मे कृष्ण कथा का सृजन होता है। ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन ने निम्न शब्दो मे उसकी प्रशसा लिखी है :—

द्विसंधाने निपुणतां सता चक्रे धनजय,
यथा जातं फल तस्य, सता चक्रे धनजयः।

प्रद्युम्न चरित[22]—इसके रचयिता महासेनाचार्य है। स्व० नाथूराम प्रेमी के अभिमतानुसार इसका रचनाकाल स० १०३१-१०६६ है। इसमे श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के पराक्रम का वर्णन है। प्रद्युम्न चरित नाम से अन्य लेखको के भी अनेक ग्रन्थ है।

भट्टारक सकलकीर्ति ने भी जिनसेन और गुणभद्र के महापुराण आदि के अनुसार ही हरिवशपुराण और प्रद्युम्न चरित्र लिखा है। जयपुर के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे इन ग्रन्थो की कई हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध है[23]।

पाण्डव पुराण[24]—इसके लेखक भण्डारक शुभचन्द्र है। पाण्डवपुराण की कथा हरिवशपुराण मे वर्णित पाण्डवो की कथा पर आधारित है।

भट्टारक श्री भूषण का पाण्डवपुराण भी सुन्दर रचना है। इन्ही का लिखा हुआ एक हरिवशपुराण भी मिलता है, जिसका रचना काल स० १६७५ है।[25] महाकवि वाग्भट्ट का नेमिनिर्वाण काव्य, ब्रह्मचारी नेमिदत्त का नेमिनाथ पुराण (स० १५७५ के

---

२२ प० नाथूराम प्रेमी द्वारा सम्पादित और हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय वम्वई द्वारा प्रकाशित।

२३ जिनवाणी – जुलाई १६६६, पृ० २६।

२४. प्रो० ए० एन्० उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर सन् १६५४ मे जैन सस्कृति सरक्षक सघ सोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

२५ (क) जैन साहित्य और इतिहास – नाथूराम प्रेमी पृ० ३८३-८४
(ख) सस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला—पृ० ३६१-६२।

लगभग) भट्टारक धर्मकीर्ति का हरिवशपुराण (सं० १६७१) भी सुन्दर कृतिया है।

श्वेताम्बर परम्परा मे त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र एक महत्वपूर्ण रचना है। यह विराट्काव्य ग्रन्थ है। इसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र है जो कलिकालसर्वज्ञ के नाम से विश्रुत है। डाक्टर व्हीलर के अभिमतानुसार विक्रम स० १२१६ से १२२६ के मध्य मे इस ग्रन्थ की रचना हुई। इसके आठवे पर्व मे भगवान् नेमिनाथ कृष्ण, बलभद्र और जरासध का विस्तृत वर्णन है।

श्री कल्याणविजय जी के शिष्य ने ५० पद्यो मे त्रिपष्टि शलाका पचाशिका की रचना की है और किसी अन्य अज्ञात लेखक ने तेतीस गाथाओ मे त्रिषष्टि शलाका पुरुष विचार लिखा है।

भगवान् अरिष्टनेमि और श्री कृष्ण का जीवन एक दूसरे से मिला-जुला जीवन है। अत भगवान् नेमिनाथ के सम्बन्ध मे जो ग्रथ लिखे गये है उनमे श्री कृष्ण का जीवन आ ही जाता है। नेमिनाथ चरित्र—यह द्विसधान काव्य रूप चरित्र द्रोणाचार्य के शिष्य सूराचार्य ने स० १०६० मे रचा है।

नेमिनिर्वाण काव्य—यह वाग्भट्टालकार के कर्ता वाग्भट्ट की रचना है जो 'काव्यमाला' मे ई० स० १८९५ मे प्रकाशित हुई है।

अरिष्टनेमि चरित्र—इसके रचयिता रत्नप्रभसूरि है। १२२३ मे इसकी रचना हुई।

नेमिनाथचरित्र—विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभ सूरि का है। वि० स० १२८५ मे प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गई है।

नेमिनाथचरित्र—(महाकाव्य) इसके लेखक कीर्तिराज है। रचना सवत् १४९५ है।[२६]

अरिष्टनेमि चरित्र—विजयगणी ने वि० स० १६६८ मे इसकी रचना की है।

नेमिनाथ चरित्र—यह गद्यमय है, इसके रचयिता गुणविजय गणी है।[२७]

नेमिनाथ चरित्र—वह वज्रसेन के शिष्य हरि की रचना है।

---

२६ यशोविजय ग्रन्थमाला द्वारा वीर स० २४४० मे प्रकाशित हुआ।

नेमिनाथ चरित्र- इसके रचयिता तिलकाचार्य है। और दूसरे एक नेमिनाथ चरित्र के रचयिता भोजराज है।

शत्रु जय माहात्म्य—इसके सर्ग १०-१२ मे कृष्ण चरित्र का आलेखन हुआ है।[२८]

इनके अतिरिक्त भी प्रस्तुत विषय के अनेक ग्रथ है।

हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड आदि प्रान्तीय भाषाओ मे जैन लेखको के द्वारा श्रीकृष्ण के जीवन प्रसगो पर विपुल साहित्य लिखा गया है। ज्यो-ज्यो प्राचीन हस्त लिखित भण्डारो की अन्वेषणा की जारही है त्यो-त्यो नित्य नवीन सामग्री प्रकाश मे आ रही है। स्थानाभाव और साधनाभाव के कारण उन सभी का परिचय देना सभव नही है। तथापि सक्षेप मे कुछ परिचय दिया जारहा है।

अमम स्वामी चरित्र—इसके लेखक मुनिरत्नसूरि है। उन्होने १२५२ मे प्रस्तुत ग्रथ की रचना की है। इसमे श्री कृष्ण अमम स्वामी नाम से भावी तीर्थंकर होने वाले है उनका परिचय दिया गया है, श्रीकृष्ण का जीवन विस्तार से आया है, साथ ही उनके पूर्वभव का भी उल्लेख है। श्रीकृष्ण के पूर्वभवो का विस्तार से उल्लेख इसी ग्रन्थ मे हुआ है।

नेमिनाथ रास—इसके रचयिता सुमतिगणी है। उन्होने स० १२७० मे प्रस्तुत रास की रचना की है। इस रास की हस्तलिखित प्रति जेसलमेरदुर्ग मे अवस्थित भण्डार मे है।[२९]

गयसुकुमाल रास—इसके रचयिता श्री देल्हण है। इनका रचना-काल स० १३१५-२५ के बीच अनुमान किया जाता है। इस रास की स० १४०० की एक प्रति जेसलमेर के भण्डार मे उपलब्ध है और अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर मे भी है।

---

२७ श्री मानचन्द वेलचन्द सूरत से ई० सन् १९२० मे प्रकाशित हुआ।

२८. इन सभी के परिचय के लिए देखें जैन सस्कृत साहित्य नो इतिहास प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया भाग—२।

२९ जिनवाणी—सितम्बर १९६९ मे प्रकाशित।
जैन कृष्ण साहित्य—महावीर कोटिया का लेख।

पचपाडव चरित्र रास—यह कवि शालिभद्रसूरि की रचना है। इसका रचना समय सवत् १४१० है।[30]

प्रद्युम्न चरित—इसके रचयिता सधारु है। इसका रचना स० १४११ माना जाता है।[31]

बलभद्र रास—इसके रचयिता कवि यशोधर है वि० सवत् १५८५ मे इसकी रचना की गई है।

नेमिजिनेश्वर रासो एव प्रद्युम्न रासो—इसके निर्माता कवि रायमल्ल है।

नेमीश्वर चन्द्रायण—यह कवि नरेन्द्र कीर्ति की रचना है।

हरिवशपुराण—इसके रचयिता शालिवाहन है। यह रचना जिनसेन के हरिवश पुराण पर आधृत है।

नेमीश्वर रास—इसके लेखक नेमिचन्द्र है, जिनका समय १७६९ है। यह प्रति आमेरशास्त्र भण्डार मे है।

प्रद्युम्न-प्रबन्ध—इसके रचयिता देवेन्द्रकीर्ति है। इनका रचना काल स० १७२२ है।

पाण्डव पुराण—यह बुलाकीदास की रचना है। जिन्होने वि० स० १७५४ मे बनाया है।

नेमिनाथ चरित्र—इसके रचयिता अजयराज पाटनी है। इसका रचना काल स० १७९३ है।

नेमिचन्द्रिका—इसके रचयिता मनरग लाल है।

स्थानकवासी जैन परम्परा के अनेक मुनिवरो ने भी भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पर लिखा है—साहित्य इस प्रकार है —

भगवान् नेमिनाथ, महारानी देवकी श्री कृष्ण की ऋद्धि, आदि के रचयिता आचार्य श्री जयमल जी म० है।[32]

---

३० हिन्दी के अज्ञात रास काव्य—मगल प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित, तथा गुर्जररासावली मे प्रकाशित।

३१ प० चैनसुखदास, डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल के सम्पादकत्व मे श्री महावीर क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी कमेटी जयपुर द्वारा प्रकाशित।

३२ श्री मधुकर मुनि के द्वारा सम्पादित, 'जयवाणी' सन्मतिज्ञान पीठ आगरा से वि० स०२०१६ मे प्रकाशित।

राजीमती नेमिनाथ का चोढाल्या—स० १८३४, राजमती रथनेमि की सज्भाय स० १८४१, कृष्ण-भैरी सवाद स० १८४३, देवकी राणी की ढाल आदि के रचयिता कवि रायचन्द्रजी म० है।[33]

भारत द्विशत पन्नत्ति के रचयिता आचार्य रामचन्द्रजी म० जो आचार्य जयमल जी म० की सम्प्रदाय के थे। मरुधरीय कविवर्य चौथमलजी म० ने भी श्रीकृष्ण लीला का निर्माण किया है। नेमिनाथ और राजुल के रचियता नेमिचन्द जी म० है।[34] आचार्य खूबचन्दजी म० ने प्रद्युम्न और शाम्बकुमार की ढाल वनायी। जैन दिवाकर चौथमलजी म० ने भगवान नेमिनाथ और पुरुपोत्तम श्रीकृष्ण[35] तथा मरुधर केशरी मिश्रीमलजी म० का महाभारत[36], व प्रवर्तक शुक्ल-चदजी म०[37] व प्रवर्तक सूर्यमुनिजी म० का महाभारत भी सुन्दर रच-नाए है। प० काशीनाथ जैन का नेमिनाथ चरित्र भी सुन्दर कृति है। तेरापथी मुनियो की भी अनेक रचनाए है।[38] इस प्रकार श्रीकृष्ण के सम्वन्ध मे सहस्राधिक रचनाए उपलव्ध है। जोधपुर, जयपुर, खाडप, पीपाड, आदि के स्थानकवासी भण्डारो को देखने का अवसर इन पक्तियो के लेखक को मिला है जहा अनेको लेखको की रचनाए है।

शोधप्रधान युग मे श्रीकृष्ण पर प० सुखलालजी ने 'चारतीर्थकर' मे, प कैलाशचन्द्रजी ने जैन साहित्य के इतिहास (पूर्व पीठिका) मे, श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'प्राचीन जैन ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण' लेख मे, श्रीचन्दजी रामपुरिया ने अर्हत्‌अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण' महावीर कोटिया ने जिनवाणी पत्रिका व मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ मे 'जैन कृष्ण साहित्य मे श्रीकृष्ण' लेख लिखकर प्रकाश डाला है। तथा प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया ने 'वासुदेव श्रीकृष्ण अने जैन साहित्य' मे अच्छा सकलन किया है।

---

३३ मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ—(लेख सन्त कविरायचन्द जी और उनकी रचनाएँ)।

३४ लेखक द्वारा सम्पादित नेमवाणी ग्रन्थ।

३५ दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, व्यावर से प्रकाशित।

३६ पाण्डव यशोरसायन-रघुनाथ ज्ञान भण्डार सोजत से प्रकाशित।

३७ अम्वाला, पजाव से प्रकाशित।

३८ मुनिधनराजजी का जैन महाभारत आदि।

बौद्ध साहित्य में श्रीकृष्ण

बौद्ध धर्म के ग्रन्थो मे जातक कथाओ का विशिष्ट स्थान है। इनमे तथागत बुद्ध के पूर्व जन्मो की कथाए लिखी गई है। इनकी परिगणना 'खुद्दक-निकाय' के अन्तर्गत होती है और उसका रचना काल कतिपय विद्वान् विक्रम पूर्व की द्वितीय शताब्दी मानते है।[३९] जातको मे बुद्धकालीन भारतीय सस्कृति मे सम्बन्धित विपुल सामग्री है। जातककथाओ मे 'घट जातक' का सम्बन्ध कृष्णचरित से है। वैदिकग्रन्थो मे वर्णित कृष्ण चरित से यह सर्वथा भिन्न है, तथापि बौद्ध साहित्य मे कृष्ण चरित के क्या सूत्र मिलते है और बौद्धो का श्रीकृष्ण के प्रति क्या दृष्टिकोण रहा है, इसे जानने के लिए 'घट जातक' की सक्षिप्त कथा यहा दी जा रही है।[४०]

प्राचीन युग मे उत्तरापथ के कसभोग राज्यान्तर्गत असितजन नगर मे मकाकस नामक एक राजा राज्य करता था। उसके कस और उपकस नामक दो पुत्र थे, और देवगम्भा नामक पुत्री थी। पुत्री के जन्म के समय ज्योतिपियो ने भविष्यवाणी की थी कि इसके पुत्र से कस के वश का विनाश होगा। राजा मकाकस स्नेहाधिक्य के कारण पुत्री को मरवा नही सका. पर यह भविष्यवाणी सभी जानते थे। मकाकस के मरने पर उसका पुत्र कस राजा हुआ और उपकस उपराजा। उन्होने विचार किया—यदि हम वहिन को मारेगे तो निन्दा होगी, अत इसे अविवाहित रखे जिससे इसके सन्तान ही नही होगी। उन्होने अपनी वहिन के निवास के लिए एक पृथक् मकान वना दिया और उसकी पहरेदारी पर नन्दगोपा और उसका पति अधकवेणु नियुक्त कर दिये।

उस समय उत्तर मथुरा मे महासागर नाम का राजा राज्य करता था। उसके सागर और उपसागर नाम के दो पुत्र थे। पिता मृत्यु के पश्चात् सागर राजा हुआ और उपसागर उपराजा हुआ। उपसागर और-उपकस दोनो मित्र थे। उनकी पढाई एक ही आचार्य-कुल मे साथ-साथ हुई थी। उपसागर ने अपने भाई के अन्त पुर मे कोई दुष्टता की अत वह भाई के भय से मथुरा से भागकर असितजन

---

३९ हिन्दु मिलन मदिर सूरत, वर्ष ६, अक १-११।

४०. पालि साहित्य का इतिहास पृ० २८०।

नगर मे अपने मित्र उपकस के पास चला गया। कस-उपकस ने उसे आदर के साथ अपने यहाँ रखा। उपसागर ने किसी दिन देवगभा को देख लिया, और दोनो में प्रेम हो गया। नदगोपा की सहायता से वे दोनो एकान्त मे मिलने लगे। देवगम्भा गर्भवती हो गई। रहस्योद्-घाटन हो जाने पर कस उपकस ने अपनी बहिन उपसागर को इस शर्त पर विवाह दी कि यदि उससे कोई लड़का होगा तो वे उसे मार देगे। देवगम्भा ने लडकी को जन्म दिया। उसका नाम अजन देवी रखा गया। कस ने गोवड्ढमान नामक ग्राम उपसागर को दे दिया। वह अपनी पत्नी और सेविका नन्दगोपा तथा सेवक अधकवेणु सहित वहाँ रहने लगा।

सयोगवशात् देवगम्भा और नन्दगोपा दोनो साथ-साथ गर्भवती हुई। देवगम्भा के पुत्र हुआ नन्दगोपा के पुत्री। भाइयो द्वारा पुत्र को मार देने के भय से देवगम्भा ने उसे नन्दगोपा को दे दिया। और उसकी पुत्री स्वय ले ली। इसप्रकार देवगम्भा के क्रमश दस पुत्र हुए और नन्दगोपा के दस पुत्रियाँ। देवगम्भा के सभी पुत्र नन्दगोपा के पुत्र प्रसिद्ध हुए और वे 'अधकवेणु दास-पुत्र' के नाम से पहचाने गए। उनके नाम इस प्रकार है—१ वासुदेव २ वलदेव, ३ चन्द्र देव, ४ सूर्यदेव, ५ अग्निदेव ६ वरुणदेव, ७ अर्जुन, ८ प्रद्युम्न ९ घटपडित और १० अकुर।

वे दसो पुत्र बड़े होने पर लूट-मार करने लगे। लोगो ने राजा कस से निवेदन किया कि 'अन्धक वेणु दास-पुत्र' बडा उपद्रव कर रहे है। राजा ने अधकवेणु को बुलवाया, तो उसने भय के कारण सब भेद खोल दिया। कहा—वे मेरे पुत्र नही है, देवगम्भा-उपसागर के पुत्र है। कस भयभीत हुआ उसने अमात्यो से विचार विमर्श किया। उन्होने कहा—वे दसो भाई बडे पहलवान है। उन्हे मल्ल-शाला मे बुलवाकर राजकीय मल्लो द्वारा मरवा दीजिए। राजा कस ने उन दसो भाइयो को बुलवाया और उनसे अपने मल्ल चाणूर और मुष्टिक से मल्लयुद्ध करने को कहा। उन दसो भाइयो ने नगर मे आकर धोबी, गन्धी और माली की दुकाने लूट ली, उस सामग्री से अपने अपने शरीर को सजाया, फिर आनन्द से झूमते हुए मल्लशाला मे जा पहुँचे। बलदेव ने बात ही बात मे चाणूर और मुष्टिक को

मार डाला। उसके पश्चात् कंस स्वयं मारने को उठा, किन्तु वासुदेव ने चक्र से कंस और उपकंस दोनो भाइयो को मार दिया।

उन्होने असितजन नगर और कंसभोग राज्य पर अधिकार कर लिया और अपने माता-पिता उपसागर और देवगम्भा को भी गोवड्ढमान से बुला लिया। फिर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का राज्य प्राप्त करने को वहाँ से चल दिये। प्रथम उन्होने अयोध्या के राजा काल-सेन को पराजित कर उसका राज्य हस्तगत किया। उसके पश्चात् वे द्वारवती पहुँचे। जहा एक ओर समुद्र और दूसरी ओर पर्वत था। वहा के राजा को मारकर उन्होने द्वारवती पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसप्रकार उन्होने जम्बूद्वीप के त्रेसठ हजार नगरो के समस्त राजाओ को चक्र से मारकर उनके राज्यों को अपने अधिकार मे ले लिया था। उसके बाद द्वारवती मे रहते हुए उन्होने अपने राज्य को दस भागो मे बांट लिया। नौभाग, नौ भाइयो को मिले। उनके एक भाई अकुर ने राज्य न लेकर व्यापार करना चाहा। उसका भाग उनकी बहिन अजन देवी को दिया गया। रोहिणोय्य उनका अमात्य था। अन्त मे वासुदेव महाराज का प्रिय पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ, इससे उन्हे अत्यधिक संताप हुआ। उस समय उनके भाई घट पडित ने बडे कौशल मे उनका पुत्र-शोक दूर किया। उस समय जो गाथाएँ कही गई, उनमे वासुदेव के कण्ह (कृष्ण) और केसव (केशव) ये नाम भी मिलते है।

वासुदेवादि दस भाइयो की सतान ने कृष्ण द्वीपायन का अपमान करने के लिए एक तरुण राजकुमार को गर्भवती नारी बताकर उसकी सन्तान के विषय मे उनसे पूछा। कृष्ण द्वीपायन ने उनका विनाश काल निकट जानकर कहा कि इससे एक लकड़ी का टुकड़ा उत्पन्न होगा और उससे वासुदेव के कुल का सर्वनाश हो जायेगा। तुम लकडी को जला देना और उसकी राख नदी मे फैक देना। अन्त मे उसी राख से उत्पन्न अरड के पत्तो द्वारा परस्पर लड़कर सब लोग मर गये। मुष्टिक ने मरकर यक्ष के रूप मे जन्म ग्रहण किया। वह बलदेव को खा गया। वासुदेव अपनी बहिन और पुरोहित को लेकर वहा से चला गया। मार्ग मे जरा नामक शिकारी ने सूअर के भ्रम से वासुदेव पर शक्ति फेककर उसे घायल कर दिया इससे उसकी भी मृत्यु हो गई। इस गाथा को कह कर गौतम बुद्ध ने उपासक

समुदाय से कहा था—'पूर्व जन्म मे सारिपुत्र वासुदेव था, आनन्द, अमात्य रोहिणोय्य था और स्वय मै घट पण्डित था।"

अन्तर :

घट जातक की इस कथा से जैन और वैदिक कथा मे पर्याप्त अन्तर है। इस कथा के अनुसार कस के पिता का नाम उग्रसेन न होकर मकाकस था। उसकी बहिन का नाम देवकी न होकर देवगम्भा (देवगर्भा) था, जो उसकी बहिन थी। कस की राजधानी मथुरा न होकर असितजन नामक नगरी थी और उसके राज्य का नाम कसभोग था। कस के अनुज का नाम उपकस था। इसमे देवकी का नाम नही है। कस और उपकस अत्याचारी तथा प्रजापीडक नही थे। वे अपनी बहिन के प्रति भी अधिक निर्दय नही थे, वे यह जानते थे कि उसके पुत्र से ही उनका विनाश होगा।

मथुरा का राजा सागर और उसका लघु भाई उपसागर था। उपसागर ही पुराणो का वसुदेव है। जो मथुरा से भागकर असितजन मे कंस-उपकम्स की शरण मे गया और वहा आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसने छिपकर देवगम्भा से प्रेम किया तो भी कस उपकस ने कुछ नही कहा, किन्तु उसके साथ अपनी बहिन का विवाह कर गोवड्ढमान (गोवर्धन) ग्राम भी दे दिया। ताकि वे दोनो वहा आनन्द से रह सकें। उन्होने इतनी सावधानी रखी थी कि देवगम्भा के कोई पुत्र न हो। यशोदा का नाम नन्दगोपा बताया गया है। उसके पति का नाम नन्द न होकर अधकवेणु है। नन्दगोपा के दस पुत्रियाँ हुई और देवगम्भा के दस पुत्र, वे परस्पर बदल लेते है किन्तु वे सभी जीवित रहते है, कस किसी की भी हत्या नही करता।

देवगम्भा के दस पुत्रो मे वासुदेव सबसे बड़ा था और बलदेव उससे छोटा। प्रद्युम्न, अर्जुन, अकुर (अक्रूर) आदि को भी वासुदेव का भाई बताया गया है। वासुदेव सहित दसो भाइयो को लुटेरा, निर्दयी और सर्वजनसहारक लिखा है। उन्होने अपने मामाओ को मारकर, जम्बूद्वीप के हजारो राजाओ को चक्र से काटकर उनका राज्य छीन लिया था।[४१] इस प्रकार घटनाओ और नामो मे अन्तर होने पर भी कथा के हार्द मे जो साहश्य है वह भी पाठको की दृष्टि मे आए विना नही रहेगा।

वैदिक साहित्य में कृष्ण :

वैदिक वाड्मय मे श्रीकृष्ण के असाधारण, अद्भुत एव अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। किन्तु यह समझना समीचीन न होगा कि कृष्ण नामक एक ही विशिष्ट व्यक्ति हुए है। विशाल अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि देवकी-तनय कृष्ण से भिन्न अन्य कृष्ण भी हुए है। जिनका अपनी-अपनी विशेषताओ के कारण साहित्य मे उल्लेख हुआ है। ऋग्वेदसहिता मे अनेक बार कृष्ण का नाम आया है। कृष्ण सूत्रो के रचयिता भी माने गये है। सूत्रो के रचयिता कृष्ण आगरिस गोत्र के थे। ऋग्वेद अष्टम मडल ७४ वे मत्र के स्रष्टा ऋषि कृष्ण वतलाये गये है।[४२] अष्टम मडल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम मडल के ४२, ४३, ४४ वे सूत्रो के ऋषि का नाम भी कृष्ण ही है। किन्तु विद्वानो का अभिमत है कि ये कृष्ण ऋषि देवकी पुत्र कृष्ण से भिन्न है।[४३] कृष्ण ऋषि के नाम पर कार्ष्णायिन गोत्र प्रचलित हुआ। विज्ञो का अनुमान है कि इस गोत्र प्रवर्तक के नाम पर ही वसुदेव के पुत्र का नाम कृष्ण रखा गया है।[४४] ऋग्वेद की अन्य दो ऋचाओ मे अपत्य-बालक के रूप मे कृष्णिय शब्द आया है।[४५] आगरिस ऋषि के शिष्य कृष्ण का नाम कौषीतकि ब्राह्मण मे मिलता है।[४६] ऐतरेय आरण्यक मे कृष्ण हरित नाम आया है।[४७] कृष्ण नामक एक असुरराज अपने दस सहस्र सैनिको के साथ अशुमती (यमुना) के तटवर्ती प्रदेश मे रहता था।

---

४१. विशेष वर्णन जानने हेतु भदन्त आनन्द कौसल्यायन अनुवादित जातक कथाओ के चतुर्थ खड मे स० ४५४ की 'घट जातक' कथा पढिए।

४२. ब्रज का सास्कृतिक इतिहास, ले० प्रभुदयाल मित्तल पृ० १५-१६।

४३ वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर पृ० १५

४४ हिन्दी साहित्य मे राधा—द्वारकाप्रसाद मित्तल पृ० २८।

४५ वही पृ० २८।

४६ ऋग्वेद १-११६-२३, १,७-७।

४७. कृष्णो हताङ्गिरसो ब्राह्मणाम् छसीय तृतीय सवन ददर्श।
—साख्यायन ब्राह्मण अ० ३० आनन्दाश्रम पूना।

वृहस्पति की सहायता लेकर इन्द्र ने उसे पराजित किया।[४८] ऋग्वेद मे इन्द्र को कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियो का वध करने वाला कहा है।[४९]

छान्दोग्य उपनिषद् मे कृष्ण देवकी पुत्र कहे गये है। वे घोर अङ्गिरस ऋषि के निकट अध्ययन करते है।[५०] देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के लिए वासुदेव, विष्णु, नारायण, गोविन्द, आदि अनेक नाम प्रचलित रहे है। कृष्ण वदेसुव के पुत्र थे अत. वासुदेव कहलाते थे। अनेक स्थलो पर वासुदेव का उल्लेख आया है।[५१] ऐतरेय ब्राह्मण मे विष्णु को सर्वोपरि देव माना है।[५२] ऋग्वेद मे विष्णु शब्द का प्रयोग अनेकार्थक और विपुल है, किन्तु उसकी एक विशेपता यह है कि वह सर्वत्र एक दिव्य महान् और व्यापक शक्तिका प्रतीक रहा है।[५३] विष्णु के विविध रूपो का वर्णन जे० गोडा नामक विद्वान् ने अपने शोध ग्रन्थ एस्पैटक्स ऑव अर्ली विष्णुइज्म मे विस्तारपूर्वक किया है। विष्णु की शक्ति का उत्तरोत्तर विकास ब्राह्मण ग्रन्थो मे मिलता है। विष्णु के वैशिष्ठ्य की कथाए शतपथ ब्राह्मण[५४] और तैत्तिरीयारण्यक मे मिलती है और उसकी महत्ता मैत्रेय उपनिपद् और कठोपनिपद्[५५] में वताई गई है। कृष्ण को शान्तिपर्व मे विष्णु का रूप वताया है।[५६] गीता मे कृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार है।

महाभारत मे कृष्ण के लिए गोविन्द नाम भी आया है। वासुदेव श्रीकृष्ण ने शान्ति पर्व मे अपना नाम गोविन्द वताया है।

---

४८ ऐतरेय आरण्यक ३।२।६

४९. ऋग्वेद १।१०।११

५० छान्दोग्योपनिपद्, तृतीय अध्याय, सप्तदश खण्ड श्लोक ६, गीताप्रेस गोरखपुर।

५१ देखिए—तीर्थंकर और वासुदेव।

५२ ऐतरेयब्राह्मण—१-१।

५३ J Gonda Aspects of Early Vishnuism, P 3.

५४. शतपथ १।२।५। १४-१-१

५५. कठोपनिपद् ३।६

५६. महाभारत शान्ति पर्व अ० ४८।

कृष्ण नर रूप मे अवतरित होकर भी नारायण रूप की सभी विशिष्टताओ से युक्त है। "नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्" कह कर महाभारतकार ने उनका अभिनन्दन किया है। उनके दिव्य भव्य मानवीय स्वरूप के दर्शन हमें महाभारत में होते हैं।

महाभारत के कृष्ण का व्यक्तित्व आकर्षक है। इन्द्रनील मणि के समान उनका श्यामवर्ण शोभायुक्त था। कमल सदृश उनके नेत्र थे, सुडौल, मन मोहक उनकी वाह्य छवि थी। अपने अप्रतिम रूप के साथ ही वे अतुल बलसम्पन्न भी थे। उनका उत्तम चरित्र सभी प्रकार के श्रेष्ठ गुणो और आदर्शो की खान है। वे महान् वीर, मित्रजनो के प्रशसक, जाति और बन्धु बाधवो के प्रेमी, क्षमाशील, अहकार रहित, ब्राह्मण भक्त, भयातुरो का भय दूर करने वाले, मित्रो का आनन्द बढाने वाले, समस्त प्राणियो को शरण देने वाले, दीन-दु खियो को पालने मे तत्पर, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, धनवान, सर्वभूतवन्दित, शरणागत को वर देने वाले, शत्रु को अभय देने वाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, वेदो के वक्ता, तथा जितेन्द्रिय कहे गये हैं।[५७] वे धैर्यशाली, पराक्रमी, बुद्धिमान और तेजस्वी हैं।[५८] इस प्रकार कक्कृष्ण लोक के रक्षक, धर्म व नीति के सस्थापक और आदर्श पुरुषोत्तम है।

शतपथ ब्राह्मण मे नारायण का उल्लेख है[५९]। ऋग्वेद में पाञ्च-रात्र-सत्र का प्रयोजक पुरुष तथा पुरुष-सूक्त का कर्ता भी नारायण

---

५७. वीरो मित्रजन श्लाघी, ज्ञाति-बन्धुजनप्रिय ।
क्षमावाश्चानहवादी, ब्रह्मज्ञो ब्रह्मनायक ।।
भयहर्ता भयार्ताना, मित्राणा नन्दिवर्धन
शरण्य सर्वभूताना दीनाना पालने रत
श्रुतवानर्थसम्पन्न सर्वभूत नमस्कृत ।
समाश्रिताना वरद शत्रूणामपि धर्मवित्
नीतिज्ञो नीतिसम्पन्नो, ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ।
—महाभारत अनुशासन पर्व १४७।१९-२०

५८. तस्मिन् धृतिश्च, वीर्य च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ।
—उद्योग पर्व ६५।६

५९ शतपथ ब्राह्मण १२-३-४।

को वताया है[६०]। तैत्तिरीयारण्यक मे नारायण को सवगुण-सम्पन्न कहा है[६१]। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान मे नारायण को सर्वेश्वर का रूप दिया गया है। महाभारत के अनुसार मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को बताया कि जनार्दन ही स्वय नारायण है। वासुदेव और अर्जुन का महाभारत मे कई स्थानो पर नर और नारायण के रूप मे निर्देश है[६२]।

कृष्णचरित्र का वर्णन कुछ पुराणो मे विस्तार से और कुछ पुराणो मे सक्षेप से आया है। निम्नलिखित पुराणो मे कृष्णचरित्र का वर्णन विस्तार से आया है—पद्मपुराण, वायुपुराण, वामन-पुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवशपुराण और श्रीमद्भागवत।

ब्रह्मपुराण मे कृष्ण की कथा विस्तार से दी गई है। पद्मपुराण के पातालखण्ड मे कृष्णचरित का वर्णन आया है। श्रीकृष्ण के माहात्म्य का प्ररूपण ६९वे अध्याय से ७२ वे अध्याय तक है और ७३ से ८३ अध्याय तक वृन्दावन आदि का माहात्म्य और कृष्णलीला का वर्णन है।

विष्णुपुराण के चोथे अश के १५वे अध्याय मे श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है और पांचवे अश मे कृष्ण का चरित्र विशेप रूप से दिया है और उनकी लीलाओ के साथ रास का भी वर्णन दिया है।

श्रीमद्भागवत मे कृष्ण को परम ब्रह्म बताया गया है[६३]। सत्तरहवे और उन्नीसवे अध्याय मे गोपो और गायो को दावानल से वचाने का उल्लेख है। इक्कीसवे अध्याय मे वेणुगीत है। वावीसवे अध्याय मे चीर-हरणलीला का वर्णन है। गीता और भागवत दोनो ने श्रीकृष्ण को ज्ञान, शाति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—इन छह गुणो से विशिष्ट माना है। श्रीमद्भागवत मे कृष्ण के रूपो का चित्रण इस प्रकार हुआ है—१ अद्भुतकर्मा असुर सहारक कृष्ण, २ वाल-

---

६० ऋग्वेद १२।६।१, १२।१०।९० ।

६१ तैत्तिरीयारण्यक १०।११ ।

६२ महाभारत वनपर्व १६-४७ तथा उद्योगपर्व ४९-१ ।

६३ श्री मद्भागवत दशमस्कन्ध ८-४५, ३-१३, २४-२५ ।

कृष्ण, ३ गोपीविहारी कृष्ण, ४ राजनीति वेत्ता, कूटनीति-विशारद श्रीकृष्ण, ५ योगेश्वर श्रीकृष्ण, ६ परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण।

भागवत के द्वितीय स्कध के सप्तम अध्याय मे कृष्ण और बलराम के अवतारो की ओर सकेत किया गया है। तृतीय अध्याय मे अन्य लीलाओ का वर्णन है। दशमस्कध के पूर्वार्द्ध मे श्रीकृष्ण का वालचरित्र तथा गोपी-विहार है। दशम स्कध मे लीलाओ का विशद चित्रण है। एक शब्द मे कहा जाय तो श्रीमद्‌भागवत में महाभारत, गीता आदि का समन्वय हुआ है। उसमे एक ओर महाभारत मे कुरुक्षेत्र के युद्ध मे पाण्डवो के सखा वीर कृष्ण का रूप तथा दूसरी ओर गीता के साधुओ के परित्राता तथ पापियो के विनाशक एव धर्म की स्थापना कर निष्काम कर्मयोग का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण का रूप निहारने को मिलता है।

वायुपुराण के द्वितीय खण्ड के चौतीसवे अध्याय मे स्यमतक मणि की कथा के वर्णन मे कृष्ण का विवरण आया है। वायुपुराण के द्वितीय खण्ड के वयालीसवे अध्याय मे श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म से परे और राधा के साथ गोलोक-लीला विलासी बताया है[६४]। यही उपनिषदो का अरूप, अनिर्देश्य और अनिर्वाच्य ब्रह्म है। यही किसी नाम द्वारा अभिहित न किया जाने वाला परम तत्त्व है जिसे सात्वत वैष्णव श्रीकृष्ण कहते है।

अग्निपुराण के वारहवे अध्याय मे कृष्णावतार की कथा है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण मे श्रीकृष्ण के चरित का पूर्ण विवेचन है। उसके तेरहवे अध्याय मे 'कृष्ण' शब्द की अनेक दृष्टियो से व्याख्या की है। कृष्ण शब्द का 'क' अक्षर ब्रह्मवाचक, 'ऋ' अनन्तवाचक 'ष' शिववाचक, न धर्म वाचक, अ विष्णु वाचक, और विसर्ग नर-नारायण अर्थ का वाचक है।[६५] सर्वाधार, सर्वबीज, और सर्वमूर्ति स्वरूप होने के कारण वे कृष्ण कहलाते है।

मार्कण्डेय पुराण की जो विषयसूची नारदीय पुराण मे दी गई है उसके अनुसार मार्कण्डेय पुराण मे यदुवश, श्रीकृष्ण की लीलाए,

---

६४ वायुपुराण द्वितीय खण्ड अ० ४२ श्लो० ४२ से ५७।

६५ ब्रह्मवैवर्तपुराण १३।५५-६८।

द्वारिका वर्णन आदि होना चाहिए, किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध पुस्तको मे वह नही है।

वामनपुराण मे केशी, सुर तथा काल नेमि के वध की कथा है।

कूर्मपुराण के पूर्वार्ध मे यदुवश का वर्णन है। पच्चीसवे अध्याय मे कृष्ण पुत्र-प्राप्ति के लिए महादव आदि की आराधना करते है। सत्ताईसवे अध्याय मे साम्ब आदि कुमारो का वर्णन है।

गरुडपुराण के आचार काण्ड मे कृष्णलीलाओ का वर्णन है।[६६] इसमे पूतनावध, यमलार्जुन उद्धार कालियदमन, गोवर्द्धन धारण, केसी-चाणूर वध, सदीपनि गुरु से शिक्षा लाभ आदि सभी कथाएं सक्षेप मे दी गई है। गोपियो का तथा कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि अष्ट पत्नियो का उल्लेख है, किन्तु राधा का नाम नही आया है। २३ वे अध्याय मे गीता का सार भी प्रस्तुत किया है। २७वे अध्याय मे जाम्ववती के साथ कृष्ण पाणिग्रहण का वर्णन भी है।

ब्रह्माण्ड पुराण के वीसवे अध्याय मे कृष्ण के जन्म लेने आदि की घटनाए है।

दैवी भागवत के चतुर्थस्कन्ध मे भी श्रीकृष्ण की कथा वर्णित है।

हरिवशपुराण मे गोपालकृष्ण सम्बन्धी सवसे अधिक कथाए हैं। यह पुराण गाथात्मक है और लौकिकशैली मे निर्मित है। पाश्चात्य विद्वानो ने इसको ईसा की पहली शताब्दी की कृति माना है।[६७] इसमे पूतनावध, शकटभग, यमलार्जुन पतन, माखनचोरी कालिय दमन, धेनुकवध, गोवर्द्धन धारण आदि लीलाओ का विस्तार से वर्णन है। विष्णु पर्व मे कृष्णजीवन की सम्पूर्ण कथा है।[६८] कृष्ण के सौन्दर्य का निरूपण है[६९]। यमलार्जुन भग मे कृष्ण व वलराम के अगो का वर्णन है। हरिवश[७०] के कृष्ण आवाल वृद्ध सभी को प्रिय

---

६६ गरुडपुराण, आचार काड अ० १४४, श्लो० १११।

६७. हिन्दी साहित्य मे राधा, पृ० ४१ देखे।

६८. विष्णु पर्व अ० १२८।

६९. हरिवशपुराण अ० २० श्लो० १९-२०-२१।

७० अध्याय ७, श्लो० ७।

है। जब कभी गोकुल मे उपद्रव होता तब गोपिकाए श्रीकृष्ण को सुरक्षित देखने के लिए आकुल-व्याकुल हो जाती थी। उसमे रास-लीला का भी वर्णन है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप मे चित्रित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि भाषा और विषयवैविध्य की दृष्टि से पुराण एक काल मे निर्मित नही हुए है, अपितु इनकी विभिन्न कालो मे रचना हुई है। साम्प्रदायिक आचार्य अपनी-अपनी परम्परा अनुकूल इन पुराणो मे श्रीकृष्ण के चरित्र का निरूपण करते रहे है।

इन्ही पुराणो मे चित्रित श्रीकृष्ण चरित्र को मुख्य आधार बनाकर सस्कृत, अपभ्रश, हिन्दी तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओ मे विपुल मात्रा मे कृष्ण पर साहित्य लिखा गया।

जयदेव ने कृष्ण के प्रेमी रूप को ग्रहण किया, विद्यापति ने उसमे अपना सुर मिलाया। कृष्ण भक्ति शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। कृष्ण भक्ति शाखा मे कृष्ण निर्गुण नही, सगुण है, वे परब्रह्म और पुरुषोत्तम है। पुरुषोत्तम की सभी क्रीडाए और लीलाए नित्य हैं। वल्लभाचार्य ने प्रेमलक्षण भक्ति को स्वीकार कर पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन किया। उन्होने तथा उनकी परम्परा के भक्तकवियो ने भागवत मे वर्णित कृष्ण के मधुर रूप को ग्रहण किया व प्रेमतत्व की बडे विस्तार से अभिव्यजना की। इन भक्तकवियो के कृष्ण, मर्यादापालक, लोकरक्षक कृष्ण नही, प्रेमोन्मत्त गोपिकाओ से घिरे हुए गोकुल के गोपीवल्लभ कृष्ण है। सूरदास, कुभनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास ये आठो अष्टछाप के कवियो के नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी ने कृष्ण को इष्टदेव मानकर उनकी बाललीला, और यौवनलीला का विस्तार से विश्लेषण किया है। इसमे कोई सन्देह नही कि इन कवियो ने शृङ्गार और वात्सल्य रसो को पराकाष्ठ पर पहुँचाया है। मुख्य रूप से इन्होने मुक्तको की रचना की है, प्रबन्ध के रूप मे नही। सूर-सागर, भ्रमर-गीत आदि रचनाए काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। मीराबाई भी कृष्ण भक्ति मे लीन रहा करती थी। उसने श्रीकृष्ण को प्रियतम मानकर उपासना की। नरसीजी का मायरा, आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाए है। देखिए —

वसो मेरे नैनन मे नन्दलाल,
मोहनी मूरति सॉवरि सूरति नैना बने रसाल।
मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल अरुन तिलक दिए भाल।
मीरा प्रभु सतन सुखदायी, भक्तवच्छल गोपाल।।

गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, श्री भट्ट, व्यासजी, ध्रुवदास, नागरीदास, अलवेली अलिजी, चाचा हितवृ दावनदास जी, भगवत रसिक आदि भक्तिकाल के कवियो ने, व रीतिकाल तथा आधुनिक काल के कवियो ने भी कृष्ण पर वहुत कुछ लिखा है।[७१] बकिमचन्द्र चटर्जी का कृष्णचरित्र, हरिऔधजी का प्रियप्रवास, कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी का कृष्णावतार आदि आधुनिक युग की सुदर कृतिया है।

यूनानी लेखकों का उल्लेख :

चन्द्रगुप्त मौर्य के दरवार मे नियुक्त यूनानी राजदूत मैगस्थनीज ने अपने जो संस्मरण लिखे थे, वे मूलरूप मे इस समय उपलब्ध नही हैं, किन्तु उसके कुछ अवतरण एरियन नामक एक दूसरे यूनानी लेखक की रचना मे मिलते है। उसमे मैगस्थनीज का कृष्ण-सम्बन्धी अवतरण इस प्रकार है—

'वह भारतीय हरक्लीज (हरिकृष्ण) अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्ति मे समस्त जनसमुदाय मे बढे हुए थे। उन्होने भूमण्डल को पाप से मुक्त कर दिया था और अनेक नगरो की स्थापना की थी। उनके देहावसान के पश्चात् उनके प्रति देवताओ के समान श्रद्धा व्यक्त की गई थी। उन हरक्लीज (हरिकृष्ण) के प्रति शौर-सेनाइ (शूरसेन जनपद के निवासी) लोगो की विशेष रूप से पूज्य दृष्टि है। शौरसेनाइ लोगो के प्रदेश मे दो वडे नगर है, जिनके नाम मथुरा तथा क्लीसोवोरा (कृष्ण पुरा। है और जिनके निकट जोबरेस (यमुना) नदी वहती है जिसमे नावे चलती है[७२]।'

---

७१ देखिए —हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल।

७२. श्री ई० जे० चैनोक कृत 'इण्डिका' से अनुवादित ग्रन्थ से।

उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय सस्कृति की जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनो धाराओ ने कर्मयोगी श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार और सक्षेप मे युगानुकूल भाषा मे चित्रित किया है। जहाँ वैदिक परम्परा ने विष्णु का पूर्ण अवतार मानकर श्रद्धा और भक्ति से कृष्ण की स्तवना की है वहाँ जैन परम्परा ने भावी तीर्थंकर और श्लाघनीयपुरुष मानकर उनका गुणानुवाद किया है; तथा बौद्ध परम्परा ने भी बुद्ध का अवतार मानकर उनकी उपासना की है।

यह सत्य है कि उपासको ने अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार महापुरुषो को चित्रित किया है। यही कारण है कि कथाओ के विविध प्रसग लेखक की दृष्टि से बदलते रहे है। वैदिक परम्परा मे जो रूप है वह जैन परम्परा से कुछ पृथक् है, यहाँ तककि श्वेताम्बर दिगम्बर जैन लेखको मे भी मतभेद है। बौद्धपरम्परा की कथा तो काफी स्वतत्र रूप लिए हुए है।

हम अगले अध्यायो में समन्वय की दृष्टि से ही श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषण करेगे। किसी भी परम्परा का खण्डन करना हमारा लक्ष्य नही है। हमारा लक्ष्य केवल विविध दृष्टिकोणो का निदर्शन एव सत्य तथ्य का विश्लेषण करना है।

कंस : एक परिचय

- कस का जीवयशा के साथ पाणिग्रहण
- वसुदेव का देवकी के साथ विवाह
- अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी
- वैदिक परम्परा के सदर्भ में
- जैन परम्परा के सदर्भ मे

कंस : एक परिचय

●

वसुदेवहिण्डी, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, आदि ग्रन्थो के अनुसार भोजवृष्णि मथुरा मे राज्य करते थे। उनके उग्रपराक्रमवाला उग्रसेन नामक पुत्र हुआ। युवावस्था आने पर धारिणी के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। भोजवृष्णि के पश्चात् उग्रसेन मथुरा के राजा हुए। एकदिन महारानी धारिणी गर्भवती हुई। गर्भ के प्रभाव से रानी के अन्तरमानस मे महाराजा उग्रसेन के शरीर का मास खाने की भावना उद्‌बुद्ध हुई, पर उसने अपनी यह कुत्सित मनोकामना किसी के सामने प्रकट नही की। चिन्ता से वह प्रतिदिन कृश होने लगी।[1] राजा ने रानी के कृश होने का कारण जानना चाहा, तव किसी प्रकार लज्जा के साथ रानी ने अपने हृदय की बात कही, राजा ने मंत्रियो से परामर्श किया। तव रानी ने दोहद को पूर्ण करने के लिए मंत्रीगण राजा को एक अधेरे कमरे मे ले गये। उसी के सन्निकटवर्त्ती कमरे मे रानी को वैठाया गया, जहा से वह राजा के शब्दो को भली-भाति सुन सके। राजा के उदर पर एक शशक का ताजा मास रखा गया। शशक के मास को जब काटने का प्रदर्शन किया गया तव राजा इतना जोर से चिल्लाया जैसे वस्तुत

१. त्रिषष्टिशलाका० ८।२।६

उसी का मास काटा जा रहा हो[3]। राजा के करुण क्रन्दन को सुनकर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह मास खाकर फूली न समाई। तब वह दोहदपूर्त्ति हो जाने पर सन्तुष्ट हुई तत्पश्चात् उसे घोर पश्चात्ताप हुआ कि यह मैने क्या किया? जो पुत्र गर्भ मे भी पिता के प्रति इतनी दुर्भावना रखता हो, वह वाद मे किस प्रकार की भावना रखेगा, इसकी कल्पना कर रानी धारिणी भावी अमगल की कल्पना से सिहर उठी। समय व्यतीत हुआ। जन्म लेने पर वालक को कास्य की पेटी मे रखकर, साथ ही जन्मपत्रिका और माता-पिता के नाम की दो मुद्रिकाए रखकर यमुना नदी मे वहा दिया। सोचा – न रहेगा वास न बजेगी बासुरी। जव यहा पर वालक ही न रहेगा तव पिता को किसी प्रकार का खतरा भी न होगा। वह पेटी यमुना नदी मे बहती हुई चली जा रही थी। सुभद्र नामक श्रेष्ठी ने वह पेटी निकाली। पेटी मे तेजस्वी बालक को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने वह बालक पालन-पोषण के लिए अपनी पत्नी को दिया। वालक का नाम कास्य की पेटी मे से निकलने के कारण 'कस' रखा। बडा होने पर कस वसुदेव के वहा अनुचार रहा, वसुदेव से कस ने युद्ध आदि की समस्त कलाए सीखी।[5]

कंस का जीवयशा के साथ पाणिग्रहण :

उस समय राजगृह का अधिपति जरासध नामक प्रतिवासुदेव था। प्रायः सभी राजा उसके अधीन थे। एक दिन प्रतिवासुदेव ने

---

२. सोऽथोग्रसेनभार्याया धारिण्या उदरेऽभवत्।
तस्याश्च दोहदो जज्ञे पत्यु पललभक्षणे ॥
—त्रिषष्टि० ८।२।६२

३. त्रिषष्टि० ८।२।६९-७०

४. कस इत्यभिधा तस्य चक्रतुस्तौ तु दपती।
वर्धयामासतुस्त स मधुक्षीरघृतादिभि ॥
—त्रिषष्टि० ८।२।७२

५ ततस्ताभ्या दशवर्ष. सेवकत्वेन सोऽर्पित'।
वसुदेवकुमारस्य सोऽभूत्तस्याप्यतिप्रिय ॥
—त्रिषष्टि० ८।२।७७

सोरियपुर के राजा समुद्रविजय को आदेश दिया कि वह सिंह राजा को पकडकर लावे। जो सिंह राजा को पकडकर लायेगा उसके साथ मैं अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह करूगा।[६] और राज्य भी दूगा। समुद्रविजय युद्ध के लिए जाने लगे, पर वसुदेव ने कहा—मैं जाऊगा, वसुदेव गये और सिह राजा को परास्त कर विजयपताका फहराकर घर पर आये। वसुदेव को एकान्त मे ले जाकर समुद्र-विजय ने कहा – मुझे एक विशिष्ट निमित्तज्ञ कोष्टुक ने बताया है कि जरासध की पुत्री जीवयशा कनिष्ठ लक्षणो वाली है। वह पति और पिता के दोनो ही कुलो को कलकित व क्षय करेगी, अत तुम उसका पाणिग्रहण मत करना। जीवयशा का पाणिग्रहण तुम्हारे अनुचार कस के साथ करा दिया जाय। समुद्रविजय जी ने कस के वश का पता लगाया। सुभद्र श्रेष्ठी से मुद्रिका और जन्मपत्री साथ लेकर जरासध के दरवार मे गये। जरासध ने पूछा—सिह राजा को किसने पकडा?[७] समुद्रविजय ने कस का नाम लिया और कस के साथ जीवयशा का पाणिग्रहण हो गया। कस समुद्रविजय और वसुदेव पर वहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने पिता उग्रसेन पर अत्यन्त क्रुद्ध। जरासध की सेना लेकर कस मथुरा आया,[८] राजा उग्रसेन को जो उसके पिता थे, वन्दी बनाकर स्वय मथुरा का राजा वन गया।[९]

उग्रसेन के अतिमुक्त आदि अन्य पुत्र भी थे। अतिमुक्तक को पिता की दुर्दशा देख, वैराग्य उत्पन्न हुआ और दीक्षा ग्रहण की।[१०]

---

६ त्रिपष्टि० ८।२।८२।८४

७ वही० ८।२।८५-६५

८ वसुदेव रहस्यूचे समुद्रविजयो नृप।
यज्ज्ञानी क्रोष्टुकिनामाचख्यौ मम हित ह्यद.॥
जरासधस्य कन्येय नाम्ना जीवयशा इति.।
अलक्षणा पतिपितृकुलक्षयकरी खलु॥
—त्रिपष्टि० ८।२।६५-६६

६. जरासधार्पितवलो मथुरायामुपेत्य च।
कसो नृशस पितर वद्ध्वा चिक्षेप पजरे।
—त्रिपष्टि० ८।२।१०६

वसुदेव का देवकी के साथ विवाह :

जरासध ने समुद्रविजय जी आदि का सत्कार किया। वे पुनः वहा से सौर्यपुर आये। वसुदेव का रूप अत्यन्त सुन्दर था, उनके दिव्य, भव्य एव चित्ताकर्षक रूप को निहार कर अनेको महिलाए उन पर मुग्ध हो जाती थी, किसी ने समुद्रविजयजी से कहा कि वसुदेव जिधर से भी निकलते है महिलाए उन पर न्यौछावर हो जाती है![११] समुद्रविजय जी ने वसुदेव को राजमहलो मे और वगीचो मे ही घूमने का प्रेम से आदेश दिया।[१२] एक दिन कुब्जा दासी ने यह वात वसुदेव को वता दी, वसुदेव वहा से विदेश-यात्रा के लिए निकल पडते है।[१३] वसुदेव निदानकृत होने से स्त्री-वल्लभ थे। शताधिक स्त्रियो के साथ उनका पाणिग्रहण होता है। उन सभी स्त्रियो मे दो मुख्य स्त्रिया थी—रोहिणी और देवकी। रोहिणी से वलभद्र पुत्र हुए उनका अपर नाम राम भी था।[१४] देवकी का वर्णन इस प्रकार है।

एक समय कस ने वडे ही स्नेह से वसुदेव को मथुरा वुलाया। समुद्रविजय जी की आज्ञा लेकर वसुदेव मथुरा गये।[१५] जीवयशा के साथ वैठे हुए कस ने वसुदेव से निवेदन किया कि मृत्तिकावती मे मेरे चाचा देवक राजा की पुत्री देवकी है उसके साथ आपको विवाह करना पडेगा।"[१६]

---

१० उग्रसेनस्य चाभूवन्नतिमुक्तादय सुता.।
अतिमुक्त. पितृदु खान् प्रव्रज्यामाददे तदा॥
—त्रिषष्टि० ८।२।१०८

११. त्रिषष्टि० ८।२।११५-११७

१२ त्रिषष्टि० ८।२।१२१-१२२

१३ त्रिषष्टि० ८।२।१२३-१२६

१४. राम इत्यभिराम च तस्य नामाकरोत् पिता।
क्रमाच्च ववृधे राम. सर्वेषा रमयन् मन॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२५-२६

१५. त्रिषष्टि० ८।५।४३

१६ वही० ८।५।४४-४६

कस के प्रस्ताव को वसुदेव ने स्वीकार किया और वे कस के साथ वहा जाने को तैयार हुए। मार्ग मे ही नारद ऋषि मिल गये। उन्होने उनका हार्दिक सत्कार किया। नारद ऋषि कस और वसुदेव पर बहुत प्रसन्न हुए। नारद ऋषि वसुदेव और कस के जाने के पूर्व ही देवकी के पास पहुँचे और दिल खोलकर वसुदेव के रूप सौन्दर्य व स्वभाव की प्रशसा की। देवकी नारद के कहने से वसुदेव पर मुग्ध हो गई।[१७]

कस और वसुदेव वहा पहुँचे। देवक राजा के सामने कस ने विवाह का प्रस्ताव रखा। पहले देवक राजा आनाकानी करता रहा पर अन्त मे देवकी की तीव्र इच्छा होने से देवकी का वसुदेव के साथ विवाह कर दिया।[१८] राजा देवक ने पाणिग्रहण के समय विराट् सम्पत्ति के साथ दस गोकुल के अधिपति नन्द को भी गायो के साथ अर्पित किया।[१९]

विवाह कर कस के साथ वसुदेव मथुरा आये, विवाह की प्रसन्नता मे एक महान् महोत्सव का आयोजन किया।[२०]

अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी :

महोत्सव की तैयारियाँ चल रही थी। उस समय कस के लघु-भ्राता अतिमुक्त मुनि, जिनका शरीर उग्र तप की साधना करने से अत्यन्त कृश हो चुका था, जिन्हे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो चुकी थी, भिक्षा के लिए कस के वहा आये। उस समय कस की पत्नी जीवयशा अभिमान की मदिरा से बेभान बनी हुई थी। वह अतिमुक्त मुनि से अमर्यादित वाणी मे इस प्रकार बोली—"अरे देवर! तुम ठीक समय

---

१७ त्रिषष्टि० ८।५।५४ से ५६

१८. जज्ञे विवाहः पुण्येऽह्नि देवकी-वसुदेवयोः।
तारतार गीयमानैर्नवैर्धवलमगलैः ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।६५-६८

१९. देवको वसुदेवाय ददौ स्वर्णादि भूरिशः।
दशगोकुलनाथ च नद गोकोटिसयुतम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।६९

२०. त्रिषष्टि० ८।५।७०

समय उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी—अरे मूर्ख ! जिसको तू रथ मे बैठाकर ले जा रहा है उसी देवकी का आठवा बालक तुझे मारेगा ।[29]

आकाशवाणी सुनते ही कस देवकी को मारने के लिए उद्यत हो गया। उसने उसी समय देवकी के केश पकड लिए ।[30] उस समय कस को महाक्रूर कर्म करते हुए देखकर वसुदेव ने कस को समझाते हुए कहा[31]—इस समय इसे मारना उचित नही है। हे सौम्य ! इस देवकी से तो आपको कुछ भी भय नही है, अत जिन पुत्रो से आपको भय है, वे सभी पुत्र मैं आपको सौप देता हूँ ।[32]

इस प्रकार वसुदेव ने उस समय दक्षता से कार्य किया। एक महान् अनर्थ होने जा रहा था उसे बचा लिया। कस ने अपनी बहिन को मारने का सकल्प छोड दिया ।[33]

---

२८ चतु शत पारिबर्हं गजाना हेममालिनाम् ।
अश्वानामयुत सार्धं रथाना च त्रिपट् शतम् ॥
दासीना सुकुमारीणा द्वे शते समलकृते ।
दुहित्रे देवक प्रादाद्याने दुहितृवत्सल. ॥
— श्रीमद्भागवत १०।१।३१-३२, पृ० २१६

२६ पथि प्रग्रहिण कसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता या वहसेऽबुध ॥
—श्रीमद्भागवत १०।१।३४

३० इत्युक्त स खल पापो भोजाना कुलपासव ।
भगिनी हन्तुमारब्ध खड्गपाणि कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ।

३१. त जुगुप्सितकर्माण नृशस निरपत्रपम् ।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ।

३२ नह्यस्यास्ते भय सौम्य ! यद्वै साहाशरीरवाक् ।
पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ।

३३ स्वमुर्वधान्निववृते कसस्तद्वाक्यसारवित् ।
वसुदेवोऽपि त प्रीत प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ।
—सभी उद्धरण श्रीमद्भागवत १०।१

जैन परम्परा के संदर्भ के :

उस समय भद्दिलपुर नगर में नाग सेठ की सुलसा नामक स्त्री थी,[३४] वह मृत बच्चों को जन्म दिया करती थी, अतः उसने हरिणैगमैषी देव की उपासना की। उस पर देव प्रसन्न हुआ। देव देवकी के बच्चों को सुलसा के वहाँ पर रख देता था और सुलसा के मृत बच्चों को देवकी के वहाँ पर रख देता था। देवकी के छहो पुत्र सुलसा के वहा पर अभिवृद्धि को प्राप्त हुए उनके नाम १ अनीकयश, २ अनन्तसेन, ३ अजितसेन, ४ निहतारी, ५ देवयश और ६ शत्रुसेन हुए।[३५] जिसका विशेष परिचय अरिष्टनेमि के प्रकरण मे दिया गया है। देवकी के मृत छहो पुत्रो के साथ कस ने नृशसतापूर्वक वर्ताव किया। कस अत्यन्त प्रमुदित था कि मेरा प्रयास पूर्ण सफल रहा।

◆

---

३४ इतश्च भद्दिलपुरे श्रेष्ठीभ्यो नाग इत्यभूत्।
श्रेष्ठिनी सुलसा नाम परमश्रावकौ च तौ ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।८१

३५ त्रिषष्टि० ८।५।९०-९७

पर यहाँ पर आये हो। अच्छा हो तुम मेरे साथ नृत्य करो, गायन करो!' वह मुनि से उच्छृङ्खल मजाक करने लगी।[२१] मुनि बहुत समय तक उसका अभद्र व्यवहार देखते रहे, चदन शीतल होता है पर चन्दन को यो ही घिसा जाय तो उसमे से भी आग पैदा हो जाती है। मुनि स्वभावत. शान्त होते है, पर अधिक कष्ट देने पर उन्हे भी कभी-कभी क्रोध आ जाता है। ज्ञानी अतिमुक्त मुनि ने रोष मे कह दिया—अरे जीवयशा! जिसके निमित्त यह उत्सव मनाया जा रहा है, उसका सातवा गर्भ तेरे पिता और पति को मारने वाला होगा।[२२]

मुनि की गभीर घोषणा सुनते ही जीवयशा का मद उतर गया। उसने मुनि को छोड दिया[२३] मुनि चले गये। जीवयशा ने शीघ्र हो कस के पास पहुच कर आखो से आसू को बरसाकर मुनि की भविष्यवाणी सुनाई। मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर कस भी एक बार काप उठा। क्योकि मुनि की वाणी कभी भी मिथ्या नही होती[२४], दूसरे ही क्षण उसने सोचा—जब तक यह बात प्रकट नही हो जाती तब तक मुझे पूरा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। वसुदेव से देवकी के सातो गर्भ मुझे माग लेने चाहिए। कस सीधा वसुदेव के पास गया और उसने अत्यन्त नम्रता के साथ वसुदेव से कहा—आप तो मेरे महान् उपकारी है। आपने ही शस्त्र विद्या आदि मुझे सिखाई है। आपने ही मेरा जीवयशा के साथ विवाह कराया। अब मेरी एक इच्छा की पूर्ति करने की कृपा करे। वह यह कि देवकी के

---

२१ (क) साधूत्सवदिनेऽमुष्मिन् देवरासि समागत।
नृत्य गाय मया सार्धमित्यादि वहुधा तया॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७१

(ख) वसुदेव हिण्डी

२२ सोऽपि ज्ञानी शशसैव यन्निमित्तोऽयमुत्सव।
तद्गर्भः सप्तमो हता पतिपित्रोस्त्वदीययो॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७४

२३. ता वाच स्फुर्जथुनिभा श्रुत्वा जीवयशा द्रुतम्।
भयाद् गतमदावस्था त मुमोच महामुनिम्॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७५

२४. त्रिषष्टि० ८।५।७६

सात गर्भ जन्मते ही आप मुझे दे दे।[२५] सरलहृदय वसुदेव कस के कपट को नही समझ सके। उन्होंने सोचा—कंस के कारण हो मेरा देवकी के साथ पाणिग्रहण हुआ है, अत यह जब मांगता है तो मुझे दे देना चाहिए। उन्होंने कस के कहे अनुसार अभिवचन दे दिया कि सातो पुत्र जन्मते ही तुम्हारे अधीन होगे।[२६] कस वसुदेव से वचन लेकर बहुत प्रसन्न हुआ। मुनि की भविष्यवाणी नही जानने वाली देवकी ने भी कहा—भाई! तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही होगा। वसुदेव और तुम्हारे पुत्र में कोई अन्तर नही है, हमारा दोनो का सम्बन्ध भी तुम्हारे कारण ही तो हुआ है।

वसुदेव कस को वचन देकर जब घर पर पहुँचे तब उन्हे अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी का पता चला। उन्हे विचार आया—मधुर शब्द बोलकर कंस ने मुझे ठग लिया है, पर अब क्या हो सकता था![२७]

वैदिक परम्परा के संदर्भ में ·

वैदिक परम्परा के ग्रथो के अनुसार से एकबार मथुरा नगरी मे वसुदेवजी देवकी के साथ विवाह कर अपने घर जाने के लिए प्रस्थित हुए। उस समय राजा उग्रसेन का पुत्र कस ने उन्हे स्वर्णमण्डित रथ मे बैठाकर बहिन देवकी की प्रसन्नता के लिए घोड़ो की रास पकड़ ली।

महाराजा देवक ने कन्या को विदा करते समय स्वर्णमाला से विभूषित चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोडे, अठारह सौ रथ तथा विचित्र वस्त्राभूपणों से विभूपित दो सौ सुकुमार दासिया दहेज मे दी।[२८] मार्ग मे जिस समय कंस देवकी का रथ चला रहा था उस

---

२५. सप्तेतो देवकी गर्भाञ्जामात्रान्ममार्पये ।
वसुदेवोऽप्यृजुमनास्तन्तथा प्रत्यपद्यत ॥
—त्रिपष्टि० ८।५।७७ से ८३

२६. त्रिपष्टि० ८।५।८४-८६

२७ उग्रसेनसुतः कस स्वसु. प्रियचिकीर्षया ।
रश्मीन्हयाना जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृत ॥
—श्रीमद्भागवत १०।१।३०, पृ० २१६

गोकुल और मथुरा में श्रीकृष्ण

- श्रीकृष्ण का जन्म
- शकुनी और पूतना
- यमलार्जुनोद्धार
- बलराम को गोकुल मे भेजना
- निमित्तज्ञ का कथन
- कृष्ण का धनुष्य चढाना
- कालिया नाग दमन
- पद्मोत्तर और चम्पक वध
- कस वध
- सत्यभामा के साथ पाणिग्रहण
- सोमक का आगमन

गोकुल और मथुरा में श्रीकृष्ण

●

श्रीकृष्ण का जन्म :

श्रीकृष्ण भारतीय सस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र रहे है। जैन और वैदिक दोनो ही परम्पराओ मे मुक्त कठ से उनके यशोगान गाये गये है। दोनो ही परम्पराओ मे वे एक महान् व्यक्ति के रूप में उट्टङ्कित किये गए है। वैदिक परम्परा मे वे विष्णु के अवतार माने गए हैं तो जैन परम्परा मे वे श्लाघनीयपुरुष एव भावी तीर्थकर स्वीकार किये गए हैं।

जैन दृष्टि से जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ मे आते है तब माता देवकी स्वप्न मे सिंह, अग्निगज, ध्वजा, विमान, और पद्म सरोवर देखती है।[1]

श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद अष्टमी की अर्धरात्रि को होता है।[2] उस समय सर्वत्र दु:ख और अधकार फैला हुआ था। मौसम भी

---

१ (क) त्रिषष्टि० ८।५।९८

(ख) वसुदेवहिण्डी अनु० पृ० ४८२

२. पुत्र नभ सिताष्टम्या निशीथेऽसूत देवकी।
कृष्ण मदेवसान्निध्य शत्रुदृक्पातघातिनम्॥

—त्रिषष्टि० ८।५।१००

भयावना था। आकाश मे काली घटाए छायी हुई थी, विजलिया कड़क रही थी। प्रचण्ड वर्षा हो रही थी। सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन मे भी भयानक तूफान आ रहा था। कस के क्रूर शासन की काली घटाए छायी हुई थी। जरासध के अत्याचार की विजलियाँ कडक रही थी। दुर्योधन और शिशुपाल जैसी मदान्ध शक्तियाँ भारतीय क्षितिज पर मडरा रही थी। 'जिसके पास शक्ति है वही इस धरती का अधिपति है।' शक्तिहीन को जीवित रहने का अधिकार नही।' इस मान्यता की भयानकता से सभी का मानस व्यथित था। तात्पर्य यह है कि प्रकृति मे ही नही, समाज मे भी तूफान मचलरहा था। इस अन्तर्बहिर तूफान के बीच श्रीकृष्ण का जन्म होता है। श्रीकृष्ण के पुण्य के प्रभाव से कारागृह के बाहर जो पहरेदार कस की आज्ञा से पहरा दे रहे थे उन्हे गहरी नीद आजाती है।[3]

महारानी देवकी ने वसुदेव से कहा—पतिराज! कस ने छल करके हमारे गर्भ के बच्चे माग लिये थे। इसके पूर्व के मेरे छह बालको को उसने मार डाला है।[४] इस बच्चे की किसी प्रकार रक्षा करे। आप इस बालक को गोकुल मे ले जावे और नन्द के घर रख दे। यह वही पर बडा होगा।[५]

वसुदेव ने देवकी की बात सुनकर अपनी सहमति प्रकट की। वे उसी समय बालक को लेकर चल दिये। द्वार आदि स्वतः खुलते

---

३. वसुदेवहिण्डी मे

४ (क) वसुदेव हिण्डी पृ० ३६८-९ मे मारने का स्पष्ट उल्लेख है।

(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक ९०-९७ तक, चउप्पन्नमहापुरिसचरिय—श्लोक ४६-४७ पृ० १८३ और हरिवशपुराण सर्ग ३५, श्लोक १-१५ के अनुसार देवकी के छह सजीव बालको को हरिणैगमेसी परिवर्तन करता है और सुलसा के मृत बालको को देवकी के पास रखता है और कस उन्हे पछाडता है।

(ग) हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना।

—भागवतस्कध, १०, अ० २, श्लोक ४ के अनुसार देवकी के जन्मे हुए बलभद्र के पहले के छ सजीव बालको को कस पटक कर मार देता है।

गए। सभी लोग निद्राधीन थे किन्तु दरवाजे पर पिंजरे मे बद्ध उग्रसेन उस समय भी जग रहे थे। उन्होने साश्चर्य पूछा—कौन है ? वसुदेव ने धीरे से कहा—कस का शत्रु है। यह तुम्हे कारागृह से मुक्त करेगा। शत्रु का निग्रह करेगा, किन्तु यह बात अत्यन्त गोपनीय है, किसी से आप कहे नही।[६]

वसुदेव बालक को लेकर नन्द के घर पहुँचे। उस समय नन्द की धर्मपत्नी यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया, अत. वसुदेव ने उसे अपना पुत्र दिया और उसके वदले मे उसकी पुत्री को लेकर वे पुन: देवकी के पास आये और देवकी को यशोदा की पुत्री दे दी।[७]

वसुदेव ज्योंही देवकी के कमरे से बाहर आये त्योंही द्वारपालो की निद्रा खुल गई। 'कौन जन्मा है',[८] कहते हुए कन्या को देखा।

वे उसी समय बालिका लेकर कस के पास गये, बालिका को देखकर कस ने अपनी मूछो पर हाथ फेरते हुए कहा—अतिमुक्त मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि देवकी का सातवा गर्भ तुझे मारेगा किन्तु वह तो लड़की के रूप मे पैदा हुआ है,[९] मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हो गई। यह बालिका मेरा क्या विगाड सकती है ? बालिका मे शक्ति कहाँ है ?

---

५ नदस्य गोकुले नीत्वा मुचेम मम वालकम्।
गृहे मातामहस्येव तत्र वर्धिष्यते ह्यसौ॥

—त्रिपष्टि० ८।५।१०२-१०४

६. (क) वसुदेवहिण्डी
(ख) त्रिषष्टि० ८।५॥१०५-११०
(ग) भव-भावना गा० २१९३ से २१९५ पृ० १४६

७ (क) सुत दत्वा यशोदायै शौरिरादाय तत्सुताम्।
आनीय देवकीपार्श्वे सुतस्थानेऽमुचत् क्षणात्॥११२।
(ख) भव-भावना गा० २१९६-२१९७

८ शौरिश्च निर्ययौ ते च प्रवुद्धा कसपूरुषा।
कि जातमिति जल्पतो ददृशुस्तत्र ता सुताम्॥११३।

९ ता कसस्यार्पयस्तेऽथ दध्यौ कसोऽपि यो मम।
मृत्यवे सप्तमो गर्भ स स्त्रीमात्रमभूदसौ॥११४।

—सभी स्थल त्रिपष्टि० ८।५

सघदास गणी[10] और आचार्य हेमचन्द्र[11] के अनुसार कस के आदेश से बालिका की नाक काट दी गई, और वह पुन· देवकी को दे दी गई।

आचार्य जिनसेन के अनुसार उसकी नाक चपटी की गई।[12]

श्रीमद्भागवत के अनुसार विष्णु की योगमाया यशोदा के उदर से पुत्री रूप मे जन्म लेकर वसुदेव के हाथ देवकी के पास पहुँचती है[A] और देवकी के गर्भ से जन्मे हुए श्रीकृष्ण वसुदेव के हाथ यशोदा के वहाँ पर पहुँचते है। उस पुत्री को मारने के लिए कस पछाडता है, पटकता है, पर वह योग माया होकर छिटक जाती है। वह जाती हुई यह उद्घोषणा भी करती है कि तुम्हारा शत्रु तो उत्पन्न हो चुका है।[13]

कंस को कही पता न लग जाय कि सातवे गर्भ का बालक जीवित है, अत· एक महीने के पश्चात् देवकी गौपूजन के बहाने गौकुल मे जाती है। वहाँ अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न होती है। उसके पश्चात् समय-समय पर देवकी गौ

---

१० (क) वसुदेवहिण्डी
(ख) भव-भावना, २१६६

११. छिन्ननासापुटा कृत्वा देवक्यास्ता समर्पयत्।
—त्रिषष्टि० ८।५।११५

१२. विचिन्त्य शकाकुलितस्तदेति निरस्तकोपोऽपि स दीर्घदर्शी।
स्वय समादाय करेण तस्या प्रणुद्य नासा चिपिटीचकार॥
—हरिवशपुराण ३५।३२, पृ० ४५२

A श्रीमद्भागवत १०।३।५२

१३. ता गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रा स्वसु सुताम्।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृद॥
सा तद्धस्तात्समुत्पत्य ह्यो देव्यम्बर गता।
अदृश्यतानुजा विष्णो सायुधाष्टमहाभुजा॥
उपाहृतोरुबलिभि स्तूयमानेदमब्रवीत्॥
कि मया हतया मन्द-जात खलु तवान्तकृत्।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिसी कृपणान्वृथा॥
—श्रीमद्भागवत १०।४।८ से १२ पृ० २३३-३४

पूजा का वहाना लेकर गोकुल मे जाती रहती है।[१४] पुत्र के दिव्य तेज को देखकर उसकी प्रसन्नता दिन-प्रतिदिन वढने लगती है। कृष्ण के कान्तिमय श्याम रूप को देखकर बालक का नाम श्रीकृष्ण रखा जाता है।[१५]

जैन और वैदिक दोनो ही परम्परा के ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व को बताने वाली बाल्यकाल की अनेक चामत्कारिक घटनाए लिखी गई है। वे सारी घटनाए ऐतिहासिक ही है, ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। हम यहाँ इतना ही वताना चाहते है कि वे घटनाए जैन और वैदिक ग्रन्थो मे किस-किस रूप में आयी है—

शकुनी और पूतना :

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[१६] व भव-भावना के अनुसार सूर्पक विद्याधर की पुत्री शकुनी और पूतना ये दोनो वसुदेव की विरोधिनी थी। उन्हे किसी तरह ज्ञात हो गया था कि कृष्ण वसुदेव का पुत्र है अत· श्रीकृष्ण को मारने के लिए वे गोकुल मे आयी। शकुनी ने श्रीकृष्ण को जोर से दबाया, भय उत्पन्न करने के लिए जोर से कर्ण-कटु किलकारिया की, किन्तु कृष्ण डरे नही अपितु उन्होने शकुनी को

---

१४. (क) वसुदेवहिण्डी देवकी लम्भक अनुवाद पृ० ४८३

(ख) ततोऽन्विता वहुस्त्रीभि सर्वतोगोपथेन गा.।
अर्चन्ती गोकुल गच्छेर्देवक्यपि तथाकरोत्॥
श्री वत्सलाछितोरस्क नीलोत्पलदलद्यु तिम्।
उत्फुल्लपु डरीकाक्ष चक्राद्य ककरक्रमम्॥
नीलरत्नमिवोन्मृष्ट यशोदोत्सगवर्तिनम्।
ददर्श हृदयानद नदन तत्र देवकी॥

—त्रिषष्टि० ८।५।११९-१२१

(ग) भव-भावना गा० २२०१-२२०४

१५ त्रिषष्टि० ८।५।११६

१६. (क) त्रिषष्टि० ८।५।१२३-१२६

(ख) भव-भावना गा० २२०६ से २२१० पृ० १४७

ही समाप्त कर दिया। पूतना ने विष-लिप्त स्तन श्रीकृष्ण के मुंह मे दिये, पर कृष्ण का वाल वाका न हुआ, वह स्वय ही मर गई।

आचार्य जिनसेन[१७] के हरिवंशपुराणानुसार एक दिन कस के हितैषी वरुण नामक निमित्तज्ञ ने उससे कहा—राजन्! यहा कही नगर अथवा वन मे तुम्हारा शत्रु वढ रहा है, उसकी खोज करनी चाहिए। उसके पश्चात् शत्रु के नाश की भावना से कस ने तीन दिन का उपवास किया, देविया आयी और कस से कहने लगी कि हम सव आपके पूर्वभव के तप से सिद्ध हुई देविया है। आपका जो कार्य हो वह कहिए। कस ने कहा—हमारा कोई वैरी कही गुप्त रूप से वढ रहा है। तुम दया से निरपेक्ष हो शीघ्र ही उसका पता लगाकर उसे मृत्यु के मुंह मे पहुँचाओ—उसे मार डालो। कस के कथन को स्वीकृत कर देविया चली गई। उनमे से एक देवी शीघ्र ही भयकर पक्षी का रूप वनाकर आयी। चोच द्वारा प्रहार कर वालक कृष्ण को मारने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु कृष्ण ने उसकी चोच पकडकर इतने जोर से दवाई कि वह भयभीत हो प्रचण्ड शव्द करती हुई भाग गई। दूसरी देवी प्रपूतन भूत का रूप धारण कुपूतना वन गई और अपने विप सहित स्तन उन्हे पिलाने लगी। परन्तु देवताओ से अधिष्ठित होने के कारण श्रीकृष्ण का मुख अत्यन्त कठोर हो गया था, इसलिए उन्होने स्तन का अग्रभाग इतने जोर से चूसा कि वह वेचारी चिल्लाने लगी।

श्री मद्‌भागवत के अनुसार कस कृष्ण के नाश के लिए पूतना राक्षसी को व्रज मे भेजता है वह वालकृष्ण को विषमय स्तन पान कराती है। यह रहस्य श्रीकृष्ण जान जाते है अत वे स्तनपान इतनी उग्रता से करते है कि पूतना पीडित होकर वही मर जाती है।[१८]

यमलार्जुनोद्धार :

श्रीकृष्ण बडी ही चचल प्रकृति के थे। एक स्थान पर टिककर नही रहा करते थे। अत परेशान होकर यशोदा उनके उदर मे एक रस्सी बाध दिया करती थी। एक दिन यशोदा रस्सी बाधकर किसी

---

१७ हरिवशपुराण ३५।३७ से ४२ पृ० ४५२ से ४५३

आवश्यक कार्य हेतु पडौसी के घर गई। उस समय सूर्पक विद्याधर का पुत्र अपने पिता के वैर को स्मरण कर 'यह वसुदेव का पुत्र है' ऐसा सोचकर जहां श्रीकृष्ण खेल रहे थे वहा पर आया और विद्या के वल से उसने दो अर्जुन जाति के वृक्षों का रूप बनाया। श्रीकृष्ण उस वृक्ष के वीच मे से गये और उन्होने उस वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। श्रीकृष्ण के अपूर्व वल से वह उसी क्षण मर गया। श्रीकृष्ण के पेट मे डोरी बाधी जाती थी, अतः वे दामोदर के नाम से भी विश्रुत हुए।[१९] आचार्य जिनसेन ने जमल और अर्जुन को देविया मानी हैं।[२०] श्रीमद्भागवत मे भी यमलार्जुनोद्धार की कथा विस्तार के साथ दी गई है।[२१]

---

१८ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम्।
योपित्वा माययात्मान प्राविशत्कामचारिणी॥ ४॥
वालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्।
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम्॥
वाल प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजस।
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहित भसि॥ ७॥
तस्मिन्स्तन दुर्जरवीर्यमुल्वण।
घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ॥
गाढ कराभ्या भगवान्प्रपीड्य त-
त्प्राणै. मम रोपसमन्वितोऽपिवत्॥ १०।
निशाचरीत्थ व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशाश्चरणौ भुजावपि॥
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता।
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप॥ १३।

—श्रीमद्भागवत १०।६।४ से १३

१९. (क) तौ धूलिधूसर कृष्ण मोहान्मूर्ध्नि चुचुवतु।
दामोदरेत्यूचिरे च त गोपा दामवधनात्॥

—त्रिषष्टि० ८।५।१४१

(ख) भव-भावना गा० २२११-२२१५

२०. यशोदया दामगुणेन जातु यदृच्छयोदूखलवद्धपाद।
निपीडयन्तौ रिपुदेवतागौ न्यपातयन्तौ जमलार्जुनौ स॥

—हरिवशपुराण ३५।४५, पृ० ४५३

बलराम को गोकुल भेजना :

वसुदेव ने जब ये सभी घटनाएं सुनी तो उन्हे भय लगा कि कस कृष्ण के पराक्रम को जानकर और उसे पहचान कर कही उसका अनिष्ट न कर डाले। एतदर्थ उन्होने शौर्यपुर से अपने बडे लडके बलराम को कृष्ण की सहायता के लिए बुलाया और उसे सारा रहस्य समझाकर नन्द और यशोदा को पुत्र रूप मे अर्पित किया। बलराम से श्रीकृष्ण ने धनुर्विद्या व अन्य युद्ध कलाएं आदि सीखी।[22] श्रीकृष्ण के रूप, शौर्य और गुणो पर गोकुलवासी अत्यन्त मुग्ध हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने गोकुल मे आनन्दपूर्वक रहते हुए ग्यारह वर्ष पूर्ण किये।[23]

निमित्तज्ञ का कथन :

एक दिन कस घूमता-घामता देवकी के भवन मे जा पहुचा। उस समय छेदी हुई नासिका वाली लडकी को देखकर अपने लघु-भ्राता अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी उसे स्मरण हो आयी। उसने उसी समय सभा मे जाकर किसी विशिष्ट निमित्तज्ञ को बुलाया और प्रश्न किया—बताओ, मुनि की यह भविष्यवाणी कि 'देवकी का सातवा गर्भ मुझे मारेगा, क्या सत्य है या मिथ्या है ?[24]

---

२१ श्रीमद्भागवत १०।१०।१ से ४३, पृ० २५९-२६३

२२ (क) त्रिषष्टि० ८।५।१४६ से १५३
(ख) हरिवशपुराण ३५।६४, पृ० ४५६
(ग) भव-भावना २२१७-२२१९

२३ एव च क्रीडतोस्तत्र गोपयो रामकृष्णयो ।
एकादश समा जग्मु सुषमाकालवत् सुखम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।१६९

२४ (क) वसुदेवगृहेऽन्येद्यु र्देवकी द्रष्टुमागत ।
ता छिन्नैकघ्राणपुटा कस कन्यामुदैक्षत ॥
भीतोऽथ कसो वेश्मैत्यापृच्छन्नैमित्तिकोत्तमम् ।
सप्तमाद्देवकीगर्भान्मुनिनोक्त वृथाथ न ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२००।२०१

(ख) भव-भावना २३४७ से २३५०

निमित्तज्ञ ने दृढ़ता के साथ कहा—राजन् ! मुनि का कथन कभी भी मिथ्या नही होता। वह पूर्ण सत्य है। तुम्हारा अन्त करने वाला, देवकी का सातवा गर्भ उत्पन्न हो गया है और वह किसी स्थान-विशेष पर अभिवृद्धि को प्राप्त हो रहा है। यदि तुम उसकी परीक्षा लेना चाहो तो जो अरिष्टनामक तुम्हारा शक्ति सम्पन्न वृषभ है, केशी नामक जो महान् अश्व है, दुर्दान्त खर और मेष है, उन्हे वृन्दावन मे खुले छोड दो। जो इन चारो को क्रीड़ा करते-करते मार डाले उसे ही तुम देवकी का सातवा गर्भ समझना।[२५]

निमित्तज्ञ ने कुछ देर रुककर पुनः कहा—ज्ञानियो ने बताया है कि भुजा के बल मे वासुदेव सामान्य व्यक्तियो से अधिक समर्थ होते है। आपका शत्रु वासुदेव है, वह महाक्रूर कालियनाग का दमन करेगा और तुम्हारे पद्मोत्तर व चम्पक नाम के बलिष्ठ हाथियो को भी मारेगा। वही व्यक्ति एक दिन तुम्हारे प्राणो का अन्त करेगा।[२६]

इस प्रकार निमित्तवेत्ता के कथन को श्रवण करते ही कस के रोगटे खड़े हो गये। साक्षात् मृत्यु उसकी आखो के सामने नाचने

---

२५ (क) नैमित्तिकोऽप्यभाषिष्ट न मृषा ऋषिभाषितम्।
सप्तमो देवकी गर्भः क्वचिदस्ति तवांतकृत्॥
अरिष्टो यस्तवोक्षास्ति केशी नाम महाहय।
खरमेषौ च दुर्दान्तौ मुञ्च वृन्दावनेऽथ तान्॥
गिरिसारानप्यमून् यस्तत्र क्रीडन् यदृच्छया।
हनिष्यति स हता ते देवक्या सप्तम सुत.॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२०२-२०४

(ख) भव-भावना २३५२ से २३५६

२६ (क) अन्यच्च यत्क्रमायात शाङ्र्ग धन्वत्वदोकसि।
पूज्यमान त्वज्जनन्या स एवारोपयिष्यति॥
आख्यात ज्ञानिना यत्तद्भविष्यति भविष्यत।
दोष्मतो वासुदेवस्य दुःस्पर्शमितरैर्जनै॥
कालियाहे स दमकश्चाणूरस्य च घातक।
पद्मोत्तर चपक च हनिष्यति तव द्विपौ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२०५-२०७

(ख) भव-भावना गा० २३५७-२३५९

लगी। वह बुरी तरह घबरा गया। उसने उसी क्षण शत्रु का पता लगाने के लिए अरिष्ट आदि चारो बलवान् पशुओ को वृन्दावन मे छोड दिया। चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानो को बुलाकर आदेश दिया कि प्रतिदिन व्यायाम आदि कर अपने शरीर को अत्यन्त पुष्ट बनावे।[२७]

अरिष्टनामक बैल ज्योही वृन्दावन मे पहुँचा त्योही ग्रामवासियो को परेशान करने लगा। वह कभी गायो को त्रस्त करता कभी स्त्री-पुरुषो को। कभी किसी के घर मे घुसकर वस्तुओ को हानि पहुँचाता, कभी दही दूध, और घी के बर्तनो को ही फोड देता! सभी लोग उसके उपद्रव से त्रस्त हो गये। सभी लोगो ने श्रीकृष्ण और बलराम से फरियाद की। श्रीकृष्ण उसे पकडने के लिए ज्योही सामने गये त्योही वह क्रोध से नथुने फुलाता हुआ कृष्ण को ही मारने दौडा! श्रीकृष्ण ने उसी क्षण दोनो सीग पकडकर गला मरोड़ा और उसके जीवन का अन्त कर डाला। सारे गौकुलवासी प्रसन्नता से झूम उठे।[२८]

---

२७ (क) स्वारिं ज्ञातुमथो कसोऽरिष्टादीनमुचद्वने।
चाणूरमुष्टिकौ मल्लावादिदेश श्रमाय च॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२०८

(ख) भव-भावना २३६०-२३६२

२८. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२०९-२१६

(ख) कण्होऽवि रामसहिओ कीलतो भमइ तम्मि गोट्ठम्मि।
अह अन्नया य सरओ समागओ परमरमणिज्जो॥
अह सो अरिट्ठवसहो अरिट्ठफलसन्निभोकसिणदेहो।
कालोव्व परिभमतो समागओ तम्मि गोट्ठम्मि॥
मयमत्तो सो वलव ढिक्कियसद्देण सयलगोवग्ग।
वित्तासइ गोवियण मारइ गेहाइ भजेइ।
इअ असमजसकारी दिट्ठो कण्हेण सो महावसहो।
तो तयभिमुहो धावइ वारिज्जतोऽवि गोवीहि॥
जो कोडिसिल उक्खिवइ तस्स कि गणणमेक्कगोमेत्ते।
तो लीलाए सह तेण जुज्झए विविहभगेहि

कृष्ण का धनुष्य चढ़ाना :

एक दिन श्रीकृष्ण वृन्दावन मे क्रीडा कर रहे थे। उस समय कस का केशी नामक अश्व यमराज की तरह हिनहिनाता हुआ वहा पर आया। लोगो को वह मारने लगा। गर्भिणी गायो को नष्ट करने लगा। कृष्ण ने देखा वृन्दावनवासी उसके उपद्रवो से घबरा रहे है। श्रीकृष्ण ने उसे उसी क्षण मार दिया।[२९]

इसी तरह खर और मेढा को भी उन्होने समाप्त कर दिया।[३०] इन पशुओ को समाप्त क्या किया, मानो कस को ही समाप्त कर दिया हो, इस प्रकार कस को भय लगने लगा। तथापि अपने शत्रु की अच्छी तरह से परीक्षा लेने के लिए उसने शार्ङ्ग धनुष्य की पूजा का आयोजन किया। शार्ङ्ग धनुष्य के पास अपनी वहिन सत्यभामा को विठलाया, साथ ही कस ने यह उद्घोषणा की कि जो इस शार्ङ्ग धनुष्य को चढ़ाएगा, उसी के साथ सत्यभामा का पाणिग्रहण किया जायेगा।[३१] शार्ङ्ग धनुष्य के महोत्सव में अनेक राजा गण उपस्थित हुए।

वसुदेव की एक पत्नी मदनवेगा का पुत्र अनाधृष्टि भी उस उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए शौर्यपुर से मथुरा के लिए प्रस्थित

पुच्छे धरिऊण चिर भामइ कोऊहलेण अह पच्छा।
कुच्छीए हओ मुट्ठीए तह इभो जह गओ निहण ॥
पीणपओहरवच्छत्थलाहिं हरिसागयाहिं गोवीहिं।
आलिगिज्जइ कण्हो पुणो-पुणो पयडरागाहिं ॥
—भव-भावना २३६८-२३७५

२९ (क) त्रिपष्टि० ८।५।२१७-२२०
(ख) भव-भावना २३७६-२३७७

३०. (क) कसस्य खरमेषौ तु तत्राटतौ खरौजसौ।
अन्येद्युर्लीलया कृष्णो निजघान महाभुज. ॥
—त्रिपष्टि० ८।४।२२१

(ख) भव-भावना २३८१

३१ त्रिपष्टि० ८।५।२२३-२२४

हुआ। वह सीधा ही गोकुल मे आया। वहां बलराम और श्रीकृष्ण को देखकर एक रात्रि विश्रान्ति के लिए रुका। प्रातः मथुरा का मार्ग दिखाने के लिए श्रीकृष्ण को साथ लेकर रथ पर आरूढ़ हो चला। मार्ग वृक्षो से आक्रान्त था। उस सकरे रास्ते पर रथ वड़ी कठिनता से वढ रहा था। एक वड़े वृक्ष मे रथ टकरा गया, और वही फस गया। अनाधृष्टि ने पूरा जोर लगाया पर निकल न सका। उसके निराश हो जाने पर श्रीकृष्ण ने वृक्ष को सहज ही उखाडकर एक तरफ फेंक दिया और रथ का मार्ग सुगम बना दिया। अनाधृष्टि श्रीकृष्ण के पराक्रम को देखकर वहुत प्रसन्न हुआ। रथ से नीचे उतरकर वह श्रीकृष्ण से प्रेमपूर्वक मिला। कृष्ण को साथ लेकर यमुना नदी मे से होकर सीधे मथुरा मे, जहा सभामण्डप था, पहुँचा। धनुष्य के पास अतिशय रूपवती सत्यभामा वैठी थी। अनाधृष्टि ने धनुष्य चढाने के लिए वहुत श्रम किया, पर वह धनुष्य को चढा न सका। उसी समय श्रीकृष्ण उठे और उन्होने लीलामात्र से ही शार्ङ्ग धनुष्य चढा दिया। वसुदेव के सकेत से अनाधृष्टि और श्रीकृष्ण शीघ्र ही वहा से रवाना हो गये।

सर्वत्र यह वार्ता प्रसारित हो गई कि नन्द के पुत्र ने शार्ङ्ग धनुष्य को चढा दिया। कस ने जव यह सुना तो उसे अपार दु:ख हुआ।[32]

प्रस्तुत प्रसग जिनसेन के हरिवंशपुराण मे अन्य रूप से चित्रित किया गया है। कस गोकुल मे गया, पर वहा उसे कृष्ण नही मिले तब वह मथुरा लौट आया। उसी समय यहा सिहवाहिनी नागशय्या, अजितजय नामक धनुष और पाञ्चजन्य नामक शख ये तीन अद्‌भुत पदार्थ प्रकट हुए। कस के ज्योतिषी ने वताया कि 'जो कोई नागशय्या पर चढकर धनुष पर डोरी चढा दे और पाचजन्य शख को फूक दे वही तुम्हारा शत्रु है।' ज्योतिषी के कहे अनुसार कार्य करने वाले कस ने अपने शत्रु की तलाश करने के लिए आत्मीय-जनो के द्वारा नगर मे यह घोषणा करा दी कि जो कोई यहां आकर सिहवाहिनी नागशय्या पर चढेगा, अजितजय धनुष पर डोरी

---

३२ (क) त्रिषष्टि० ८।५।२२३-२४२
(ख) भव-भावना गा० २३८५-२३९७

चढाएगा और पाञ्चजन्य शख को मुख से पूर्ण करेगा—फूँकेगा वह पुरुषो मे उत्तम तथा सबके पराक्रम को पराजित करने वाला समझा जायेगा। पुरुषो के अन्तर को जानने वाला कस उस पर बहुत प्रसन्न होगा, अपने आपको उसका मित्र समझेगा तथा उसके लिए अलभ्य इष्ट वस्तु देगा।

कस की यह घोषणा सुनकर अनेक राजा मथुरा आये, नागशय्या पर चढने का प्रयत्न किया परन्तु भयभीत हो, लज्जित हो चले गये। एक दिन कस की स्त्री जीवयशा का भाई भानु किसी कार्य वश गोकुल गया। वहा कृष्ण का अद्‌भुत पराक्रम देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हे अपने साथ मथुरा ले गया।

यहा, जिसके समीप का प्रदेश अत्यन्त सुसज्जित था, जिसका पृष्ठ भाग चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था, एव जिसके ऊपर भयकर सर्पो के फण लहलहा रहे थे, ऐसी महानागशय्या पर कृष्ण साधारण शय्या की तरह शीघ्र चढ गए। तदनन्तर उन्होने सापो के द्वारा उगले हुए धूम को बिखेरने वाले धनुष्य को प्रत्यञ्चा से युक्त किया और अपनी घोर टकार से समस्त दिशाओ को व्याप्त कर देने वाले शख को अनायास ही पूर्ण कर दिया। कृष्ण का अपार पराक्रम देख बलराम को शका हुई और उन्होने उसी समय अपने विश्वस्त व्यक्तियो के साथ श्रीकृष्ण को व्रज भेज दिया।[33]

कस ने शार्ङ्ग धनुष के महोत्सव के बहाने पहलवानो के बाहु-युद्ध का आयोजन किया। वसुदेव ने कस की दुर्भावना समझ ली। उन्होने उसी समय अपने ज्येष्ठ बन्धुओ को तथा अक्रूर आदि सभी पुत्रो को वहा पर बुलाया। सभी का यथोचित सत्कार कर उन्हे योग्य आसन पर बिठाया।[34]

मल्लयुद्ध की वार्ता को सुनकर श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा—भैया! हम भी मथुरा चले और मल्ल युद्ध देखे। बलराम ने यशोदा को स्नान के लिए पानी तैयार करने को कहा। पर यशोदा ने पानी तैयार नही किया। वह शान्त बैठी रही। तब बलराम ने

---

३३ हरिवशपुराण ३५।७१-७६, पृ० ४५७-४५८

३४. त्रिषष्टि० ८।५।२४४-२४६

क्रोध से कहा—यशोदा ! क्या तू पूर्व के दासीभाव को भूल गई है जिससे हमारी आज्ञा का पालन करने मे विलम्ब कर रही है ?'[३५]

वलभद्र की वात को सुनकर कृष्ण मुरझा गये। मन-ही-मन सोचने लगे कि भाई वलभद्र ने ऐसी वात कैसे कही ? इसी बीच बलभद्र ने कहा—अच्छा कृष्ण, चलो, हम यमुना मे स्नान करने के लिए चले। दोनो यमुना नदी पर पहुँचे, किन्तु कृष्ण का मुरझाया हुआ चेहरा देखकर वलभद्र ने पूछा—क्या वात है, इतने उदास क्यो हो गये हो ?'

कृष्ण—भाई वलभद्र ! तुमने मेरी मा को दासी कैसे कहा ?[३६]

वलभद्र ने आदि से अन्त तक सारी रामकहानी सुनादी कि तुम किनके पुत्र हो, और यहा पर किस कारण से गुप्त रूप से रहना पड रहा है। तव श्रीकृष्ण ने कस को मारने की प्रतिज्ञा ग्रहण की।[३७]

कालिया नाग दमन :

श्रीकृष्ण ने ज्योही स्नान करने के लिए यमुना नदी मे प्रवेश किया, कालिया नाग श्रीकृष्ण की ओर दौडा। उसकी मणि के प्रखर प्रकाश से सारा पानी प्रकाशित हो गया। श्रीकृष्ण ने उसे कमल नाग की तरह पकड लिया, और उसकी नासिका नाथ कर

---

३५. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२४८-२५१
(ख) भव-भावना २४०३-२४०५

३६ (क) त्रिषष्टि० ८।५।२५२-२५४
(ख) भव-भावना २४०६

३७. (क) रामाभिराम रामोऽपि निजगाद जनार्दनम्।
न ते यशोदा जननी नदश्च जनको न च ॥
किन्तु ते देवकी माता सा देवकनृपात्मजा।
विश्वैकवीरसुभगो वसुदेवश्च ते पिता ॥
तच्छ्रुत्वा कुपित कृष्ण कृष्णवर्त्मेव दारुण।
प्रत्यज्ञासीत् कसवध नद्या स्नातु विवेश च ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२५५-२६१

(ख) भव-भावना २४१८

उसके साथ क्रीडा करते रहे । कालिया नाग के उपद्रव को उन्होने शान्त किया[३८] और स्नान करके मथुरा की ओर चले ।

हरिवशपुराण के अनुसार कृष्ण का अन्त करने की भावना से कस ने कमल लाने के लिए समस्त गोपो के समूह को यमुना के उस ह्रद के सन्मुख भेजा जो प्राणियो के लिए अत्यन्त दुर्गम था, और जहा विपम सॉप लहलहाते रहते थे ।

अपनी भुजाओ के वल से सुशोभित कृष्ण अनायास ही उस ह्रद मे घुस गये और कालिय नामक नाग का, जो कुपित होकर सामने आया था, महाभयकर, फरणपर स्थित मणियो की किरणो के समूह से अग्नि के स्फुलिगो की शोभा को प्रकट रहा था, तथा अत्यन्त काला था, उन्होने शीघ्र ही मर्दन कर डाला ।[३९] नदी के किनारे पर गोप वाल जय जय कार करने लगे । श्रीकृष्ण कमल को तोडकर वायु के समान शीघ्र ही तट पर आगए और वे कमल कस के सामने उपस्थित किए गए । उन्हे देखकर कस घवरा गया । उसने आज्ञा दी कि नन्द गोप के पुत्र सहित समस्त गोप अविलम्ब मल्लयुद्ध के लिए तैयार हो जावे ।[४०]

वसुदेव ने कस की दुष्ट भावना समझ ली थी । उन्होंने अपने वडे भाइयो को शीघ्र ही मथुरा बुलाने का सन्देश भेज दिया, और वे सभी वहा आगए ।[४१]

---

३८ त्रिषष्टि० ८।५।२६२-२६५

३९ विदितहरिसमीहश्चापि कसस्तदानी ।
पुनरपि तदपायोपायधीर्गोपवर्गम् ॥
कमलहरणहेतोर्दुर्गमभ्यङ्गभाजा ।
ह्रदमपि विपमाहि प्राहिणो द्यामुन स. ॥
निजभुजवलशाली हेलयैवावगाह्य ।
ह्रदमपि कुपितोत्थ कालियाहिं महोग्रम् ॥
फणमणिकिरणौद्योग्दीर्णवह्निस्फुलिङ्ग- ।
व्यतिकरमतिकृष्ण मक्षु कृष्णो ममर्द ॥
—हरिवशपुराण ३६।६-७, पृ० ४५९-६०

४० हरिवशपुराण ३६।८-१०, पृ० ४६०

४१ वही० ३६।११-१५, पृ० ४६१

बलभद्र ने गौकुल जाकर श्रीकृष्ण के सामने ही यशोदा से कहा—जल्दी स्नान कर! क्यो इतना विलम्ब कर रही है। तू अपने शरीर को ही सभालने मे भूली हुई है। अनेक वार कहने पर भी अपनो आदत नही छोडती!

चिरकाल तक साथ-साथ रहने पर भी बलभद्र ने यशोदा से ऐसे कटुवचन कभी नही कहे थे। इस कारण यह वचन सुनकर वह बहुत ही चकित और भयभीत हुई। उसने बलभद्र से कुछ भी नही कहा किन्तु उसके नेत्रो से आसू निकल आये। वह चुपचाप शीघ्र स्नान कर भोजन बनाने लगी। इधर बलभद्र और श्रीकृष्ण दोनो स्नान के लिए नदी पर चले गये।[४२]

वहा श्रीकृष्ण के म्लान मुख को देखकर बलभद्र कारण पूछते है। तब कृष्ण कहते है—मेरी माता यशोदा को तुमने ऐसे कठोर शब्द क्यो कहे? प्रत्युत्तर मे बलभद्र कृष्ण को माता पिता आदि का सम्पूर्ण परिचय देते है।[४३] स्नान कर पुन. घर आते है और भोजन कर वस्त्रादि पहन मथुरा जाते है।[४४]

इस प्रकार हम देखते है कि त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र के अनुसार कालिय नाग की घटना जिस दिन घटित होती है उसी दिन श्रीकृष्ण मथुरा जाते है। हरिवंशपुराण के अनुसार वह घटना पहले होती है। कस की प्रेरणा से कमल के लिए कृष्ण के जाने की घटना भी त्रिषष्टिशलाकापुरुष मे नही है।

पद्मोत्तर और चंपक वध :

श्रीकृष्ण और बलभद्र दोनो ही भाई गोप बालको से घिरे हुए मथुरा नगरी के मुख्य द्वार पर पहुँचे। उस समय द्वार पर ही कस ने पद्मोत्तर और चम्पक नामक हाथी तैयार करवा रखे थे। महावतो को आज्ञा दे रखी थी कि नन्द के पुत्र कृष्ण और बलभद्र ज्यो ही प्रवेश करे त्यो ही उन्हे हाथी से कुचलवा कर मार डालना। महावत की प्रेरणा से पद्मोत्तर नामक हाथी श्रीकृष्ण की ओर लपका।

---

४२. हरिवंशपुराण ३६-१६ से १८, पृ० ४६१
४३ हरिवंशपुराण ३६।१९ से २५, पृ० ४६२
४४. वही० ३६।२६ से ३०, पृ० ४६२

श्रीकृष्ण ने उछलकर उसके दात पकडे, और दातो को खीचकर मुष्टि के प्रहार से उसे वही समाप्त कर दिया। चम्पक वलभद्र की ओर वढा तो वलभद्र ने भी उसी प्रकार उसे मार डाला। दोनो के अतुल वल को देखकर नगरवासी आश्चर्य चकित रह गये।[४५] नगरवासी एक दूसरे को वताने लगे कि अरिष्ट आदि वृपभ को मारने वाले और पद्मोत्तर व चम्पक हाथी को मारने वाले ये नन्द के पुत्र कृष्ण और वलभद्र है। दोनो भाई जहा मल्लो का अखाडा था वहा पहुचे और खाली आसन पर जाकर बैठ गये।[४६] बलभद्र ने सकेत मात्र से कृष्ण को सभी का परिचय दे दिया।[४७]

कंस वध :

कस की आज्ञा से प्रथम अनेक मल्ल परस्पर युद्ध करने लगे। एक दूसरे को पराजित करने के लिए अनेक दावपेच दिखलाते हुए जन-समूह का मनोरजन करने लगे। अन्त मे चाणूर मल्ल खडा हुआ। उसने सभी राजाओ को युद्ध के लिए ललकारा किन्तु कोई भी राजा उससे युद्ध करने को प्रस्तुत नही हुआ। चाणूर ने दुवारा कहा—क्या कोई भी मेरे साथ मल्ल युद्ध करने को तैयार नही है ? यह ललकार सुनते ही श्रीकृष्ण अखाडे मे उतर पडे। लोगो ने आवाज लगाई— कहा चाणूर और कहा दूधमु हा वच्चा ? लोग इस विषम युद्ध का विरोध करने लगे। किन्तु उसी समय कस गरजा— इन्हे यहा किसने वुलाया था। ये यहा आए ही क्यो ? अव तो यह कुश्ती होगी ही।[४८]

कृष्ण ने लोगो से कहा—आप घवराइये नही। देखिए, अभी

---

४५ (क) त्रिपष्टि० ८।५।२६६-२६६
(ख) भव-भावना २४२५ से २४२६, पृ० १६२
(ग) हरिवशपुराण ३६।३२-३५, पृ० ४६४

४६. भव-भावना गा० २४३१-२४३२

४७. (क) हरिवशपुराण ३६।३६ पृ० ४६४
(ख) त्रिपष्टि० ८।५।२७२

४८ (क) त्रिपष्टि० ८।५।२७४-२८३
(ख) भव-भावना २४३५-२४४२, पृ० १६३

इसकी भुजाओ का मद उतारता हूँ। इतने मे दूसरा मल्ल मुष्टिक भी अखाडे मे कूद पड़ा। तब उससे लडने के लिए वलराम अखाडे मे उतरे। दोनो मे भयकर मल्लयुद्ध हुआ। कृष्ण और बलराम ने क्रमश चाणूर और मुष्टिक को तृण के ढेर की तरह उछालकर एक तरफ फेक दिया। चाणूर उठा। उसने श्रीकृष्ण के उरुस्थल पर जोर से मुष्टि का प्रहार किया। मुष्टि के प्रहार से श्रीकृष्ण वेहोश हो गये।[४९] कृष्ण को वेहोश देखकर कस प्रसन्न हुआ। उसने आख से चाणूर को सकेत किया कि इसे मार डालो। वह श्रीकृष्ण को मारने के लिए उद्यत हुआ त्यो ही वलदेव ने उस पर ऐसा जोर का प्रहार किया कि चाणूर दूर जाकर गिर पड़ा। कुछ ही क्षणो मे श्रीकृष्ण पुन तैयार हो गये। उन्होने चाणूर को फिर से ललकारा। दोनो भुजाओ के बीच मे डालकर उसे ऐसा दबाया कि चाणूर को रक्त का वमन होने लगा। आखे फिर गई और कुछ ही क्षणो मे वह निर्जीव हो गया।[५०]

चाणूर को मरा हुआ देखकर कस चिल्ला उठा—इन अधम गोप बालको को मार दो। इनका पोषण करने वाले नन्द को भी समाप्त कर दो। उसका सर्वस्व लूटकर यहा ले आओ और जो नन्द का पक्ष ले उन्हे भी मार डालो।[५१]

कस की यह बात सुनते ही श्रीकृष्ण के नेत्र क्रोध से लाल सुर्ख हो गये। उनके रोम-रोम मे से आग बरसने लगी। वे वोले—अरे नराधम! चाणूर मर गया तथापि तू अपने आपको मरा हुआ नही समझता है? मुझे मारने से पहले तू अपने प्राणो की रक्षा कर। इतना कहकर और सिह की तरह उछलकर श्रीकृष्ण मच पर चढ

---

४९ (क) त्रिषष्टि० ८।५।२८४-२९५
(ख) भव-भावना २४४३-२४५६
(ग) हरिवशपुराण मे कृष्ण के वेहोश होने का वर्णन नही है।

५० (क) त्रिषष्टि० ८।५।२९६-३००
(ख) भव-भावना २४५७-२४६१

५१ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३०१-३०२
(ख) भव-भावना २४६२-२४६४

गये । केशो को पकडकर उसे जमीन पर पटक दिया । उसका मुकुट भूमि पर गिर पड़ा ! कृष्ण बोले—अरे दुष्ट ! तूने अपनी रक्षा के लिए व्यर्थ ही गर्भ-हत्याए की, पर याद रख अब तू भी बचने वाला नही है ।

उधर वलराम ने मुष्टिक को भी मार डाला था। कस हताश था।

कस की रक्षा के लिए उसके सैनिक हाथो मे शस्त्रास्त्र लेकर कृष्ण को मारने के लिए तैयार हुए कि बलराम ने मच के एक खभे को लेकर उन सभी को भगा दिया । उधर श्रीकृष्ण ने कस के मस्तिष्क पर पैर रखा और उसे मार दिया । जैसे दूध मे से मक्खी बाहर निकाल कर फेक दी जाती है वैसे ही उसे मण्डप मे से बाहर फेक दिया ।[५२] हरिवशपुराण के अनुसार कस स्वय तलवार लेकर कृष्ण को मारने आता है तब कृष्ण ने उसकी तलवार छीन ली, और बाल पकडकर पृथ्वी पर पछाडकर मार दिया ।[५३]

कस ने पहले से ही जरासंध के सैनिको को अपनी रक्षा के लिए बुला रक्खा था । जब उन्हे ज्ञात हुआ कि कस की यह स्थिति हो गई । तव वे कृष्ण और वलराम को मारने के लिए आये । उसी समय समुद्रविजय आदि दशार्ह युद्ध करने के लिए कृष्ण की ओर से मैदान मे कूद पडे । समुद्रविजय आदि को देखकर जरासध के सैनिक भाग गये ।[५४]

समुद्रविजयजी की आज्ञा से अनाधृष्टि बलराम और श्रीकृष्ण को रथ मे वैठाकर वसुदेव के घर पर लेकर आये । वसुदेव ने आधे

---

५२ (क) कृष्णोऽपि पाद शिरसि न्यस्य कस व्यपादयत् ।
केशै. कृष्ट्वाक्षिपद्रंगाद्बहिस्त दार्विवार्णव ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।३१३०

(ख) भव-भावना, २४६५-२४७७

५३ अभिपतदरिहस्तात्खड्गमाक्षिप्य केशे-
ष्वतिदृढमतिगृह्याहत्य भूमौ सरोपम् ॥
विहितपरुपपादाकर्पणस्त शिलाया ।
तदुचितमिति मत्वा स्फाल्य हत्वा जहास ॥
—हरिवशपुराण ३६।४५, पृ० ४६५

आसन पर बलराम को और गोद मे श्रीकृष्ण को बिठाया। प्यारे पुत्र के मिलन से वसुदेव के रोम-रोम मे प्रसन्नता छलक रही थी। वसुदेव के अन्य ज्येष्ठ भ्राताओ ने पूछा—भाई, ये दोनो बालक कौन है? वसुदेव ने अतिमुक्तकुमार की भविष्यवाणी आदि समग्र पूर्वकथा सुनादी।[५५]

यादवो ने कहा—अरे वसुदेव! आप स्वय महान् शक्तिसम्पन्न हैं, फिर आपके ही सामने आपके जनमते हुए बच्चों को कस ने मार दिया! यह सब आपने कैसे सहन किया।

वसुदेव—मै जन्म से ही सत्यव्रत का पालक रहा हू, उस व्रत की सुरक्षा के लिए मुझे यह सारा अत्याचार सहन करना पडा। देवकी के अत्याग्रह से मै नन्द की लडकी यहा लाया, और कृष्ण को नन्द के घर छोड आया।[५६]

सभी यादवो की सम्मति से उग्रसेन को कारागृह से मुक्त कर दिया गया तथा कस का अग्निसस्कार किया गया।[५७]

कस की पत्नी जीवयशा ने जब सुना कि उसके पति को कृष्ण ने मार डाला है तो वह आपे से बाहर हो गई। क्रोध से दात पीसने लगी और मु ह से बडबडाने लगी—"मै यादव कुल का नाश कर दू गी। मेरे पति की हत्या की गई है।" वह वहा से भागकर अपने पिता प्रतिवासुदेव जरासध के पास पहुँची। रोते और बिलखते हुए उसने

---

५४ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३१४-३१६
(ख) हरिवशपुराण ३६।४६-४७, पृ० ४६६
(ग) भव-भावना २४७८-२४७९

५५. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३१८-३२०
(ख) भव-भावना २४८०-२४८६

५६ वसुदेवोऽप्युवाचैवमाजन्म परिपालितम्।
सत्यव्रत त्रातुमह दु.कर्मेद विसोढवान्।
देवक्याश्चाग्रहेणाय कृष्ण प्रक्षिप्य गोकुले।
यमारक्षि नदसुता सचार्येमा वराकिकाम्॥
—त्रिषष्टि० ८।५।३२३-३२६

५७. त्रिषष्टि० ८।५।३२८-३२९

अपने पिता को सारी करुण-कहानी सुनाई। जरासध ने कहा—अरे जीवयशा! कस ने पहले ही गलती की। जब अतिमुक्त मुनि से उसे भविष्य मालूम हो गया था तब देवकी को ही समाप्त कर देना था। 'न वास रहता और न वासुरी वजती।' अब भी तू चिन्ता न कर। मैं तेरे शत्रु का विनाश कर दूगा।[५८]

सत्यभामा के साथ पाणिग्रहण

श्रीकृष्ण और वलदेव के कहने से समुद्रविजय जी ने उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया। उग्रसेन ने अपनी पुत्री सत्यभामा का पाणिग्रहण श्रीकृष्ण के साथ कर दिया।[५९] हरिवशपुराण के अनुसार विद्याधरो के राजा सुकेतु ने अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ कृष्ण का विवाह किया।[६०]

सोमक का आगमन

जीवयशा की प्रेरणा से जरासध ने सोमक नामक राजा को वुलाया। उसे सारी स्थिति समझाते हुए कहा कि तुम समुद्रविजय जी के पास जाकर कहो कि कस के शत्रु वलराम और श्रीकृष्ण को हमे सौप दो। नही सौपोगे तो तुम्हे जरासध का कोपभाजन वनना पड़ेगा।

सोमक ने जाकर समुद्रविजय जी को जरासध का सन्देश सुनाया।[६१]

उत्तर मे समुद्रविजय जी ने कहा—कस ने बलराम और कृष्ण के निरपराध भाइयो की हत्या की थी अत. भाइयो के वध के अपराधी कस को यदि इन्होने मारा तो इसमे कृष्ण और बलराम का क्या अपराध है? ये दोनो निर्दोष हैं।[६२]

---

५८. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३३५-३३८
(ख) हरिवशपुराण ३६।६५-६६
५९ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३३३-३४
(ख) भव-भावना
६० हरिवशपुराण ३६।५३-६१, पृ० ४६७-६८
६१ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३४०-३४३
(ख) भव-भावना २५००-२५०२

सोमक—स्वामी की आज्ञा का पालन करना आपका कर्त्तव्य है।

श्रीकृष्ण ने बीच मे ही गरज कर कहा—जरासध हमारा स्वामी नही है। आज तक हम उसकी आज्ञा स्नेह से मानते रहे, पर अव हम उसकी आज्ञा को नही मानेगे। वह भी एक प्रकार से कस का ही साथी है।[६३]

सोमक—समुद्रविजय! तुम्हारा यह लडका तो कुलागार है?

अनाधृष्टि ने वीच मे ही उसकी वात को काटते हुए कहा—अरे सोमक! हम तेरे अमर्यादित वचनो को कदापि सहन नही कर सकते। तू अहकार से फूल रहा है। पर हम तेरा मिथ्या अहंकार एक क्षण मे नष्ट कर देगे।

तिरस्कृत किया हुआ सोमक वहा से उलटे पैरो लौट गया।[६४]

●●

---

६२. त्रिषष्टि० ८।५।३४४-३४७

६३ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३५१-५२
(ख) भव-भावना २५११

६४. त्रिषष्टि० ८।५।३५७

द्वारिका में श्रीकृष्ण

- मथुरा से प्रस्थान
- कालकुमार की मृत्यु
- द्वारिका का निर्माण
- कुबेर द्वारा कृष्ण को उपहार भेंट
- रुक्मिणी
- अग्रमहिषिया
- सत्यभामा
- पद्मावती
- गौरी
- गाधारी
- लक्ष्मणा
- सुसीमा
- जाम्बवती
- रुक्मिणी
- राधा
- प्रद्युम्न
- प्रद्युम्न का वैदर्भी से विवाह

द्वारिका में श्रीकृष्ण

●

मथुरा से प्रस्थान

श्वेताम्बर जैन ग्रन्थो के अनुसार दूसरे दिन समुद्रविजयजी ने अपने सभी भाइयो को बुलाया और परस्पर मत्रणा की कि हमे अव क्या करना चाहिए ? जरासध से हमने विग्रह किया है, उसका परिणाम शीघ्र आने वाला है।

परम हितैषी क्रोष्टुकी निमित्तज्ञ को बुलाकर उन्होने अपने भविष्य के सम्बन्ध मे पूछा कि जरासध के साथ जो विग्रह प्रारभ हुआ है उसका परिणाम क्या आयेगा ?[1]

क्रोष्टुकी ने कहा—कुछ समय के पश्चात् ये महान् पराक्रमी वलराम और श्रीकृष्ण जरासध को मारकर तीन खण्ड के अधिपति होगे, पर यहाँ रहना आप सभी के लिए हितावह नही है। इस समय आप पश्चिम दिशा के समुद्र की ओर जाओ। वहा जाते ही आपके शत्रुओ का नाश होगा, मार्ग मे जाते-जाते जहा सत्यभामा दो पुत्रो को एक साथ जन्म दे, वही नगरी वसाकर रहना। वहा पर आपका कोई वाल भी वाका नही कर सकेगा।[2]

---

१. त्रिषष्टि० ८।५।३५८-३५९

२. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३६०-६२

(ख) भव-भावना २५२०-२५२४

क्रोष्टुकी के कहने से समुद्रविजय ने उग्रसेन सहित मथुरा और सौर्यपुर छोड़कर विन्ध्याचल की ओर प्रस्थान किया।

इधर सोम राजा ने जरासध को सारा वृत्तान्त सुनाया। कहा—यादव किसी भी प्रकार कृष्ण और बलराम को देगे नही। वे आपको चुनौती देते है, कहते है—आप हमारा क्या बिगाड़ सकते है? कस की तरह हम जरासध को भी यमधाम पहुँचा देगे।

कालकुमार की मृत्यु :

जरासध यादवो की उद्धतता को देखकर क्रोध से तिलमिला उठा। उसने मेघ-गभीर गर्जना करते हुए कहा—यादव मेरे सामने किस बाग की मूली है। मै उन्हे समाप्त कर दू गा। उसने उसी समय अपने पुत्र कालकुमार को विराट् सेना के साथ रवाना किया। कालकुमार ने प्रतिज्ञा ग्रहण की कि चाहे यादव अग्नि मे प्रवेश कर गये हो, या किसी पर्वत की गुफा मे छिप गये हो, कही पर भी क्यो न हो, मै उन्हे पकडकर मार दू गा।' कालकुमार यादवो का पीछा करता हुआ विन्ध्याचल की अटवी मे पहुँच गया, जहा से यादव जा रहे थे। कालकुमार को सन्निकट आया हुआ जानकर श्रीकृष्ण के रक्षक देवो ने एक द्वार वाले विशाल दुर्ग का निर्माण किया, और

टिप्पणी—हरिवशपुराण के अनुसार जीवयशा के द्वारा सूचना मिलते ही जरासध ने यादवो को मारने के लिए अपने काल-यवन नामक पुत्र को भेजा, उसके साथ यादवो ने सत्तरह बार युद्ध किया। अन्त मे अतुल मालावत पर्वत पर वह मर गया, उसके बाद जरासध ने अपने भाई अपराजित को भेजा, उसने यादवो के साथ तीन सौ छयालीस बार युद्ध किया। अन्त मे वह भी कृष्ण के बाणो से मारा गया। कृष्ण और बलभद्र आनन्द-पूर्वक मथुरा मे वास करते रहे। अपराजित के निधन के समाचार सुनकर जरासध युद्ध के लिए प्रस्थान करता है तब पाण्डव मथुरा छोडकर द्वारिका की ओर जाते है। देखो—हरिवशपुराण सर्ग ३६।६५-७५ और सर्ग ४०।१-२३

उसमे स्थान-स्थान पर चिताए जलती हुई दिखाई गई। एक वृद्धा रोती हुई वहा पर खडी थी। कालकुमार ने पूछा—यह क्या है ? वृद्धा ने आसू बहाते हुए कहा—कालकुमार के भय से बलराम, श्रीकृष्ण और दशार्ह सभी इसमे जलकर मर गये। मै भी अब इस चिता में जलकर मर जाऊगी।[3]

उस वुढिया से कालकुमार ने कहा—मैंने पिताजी व बहिन जीवयशा के सामने प्रतिज्ञा ग्रहण की है कि यदि वे अग्नि मे जल गये होगे तो भी मैं उसमे से निकाल दू गा, उन्हे नष्ट करू गा। मै सत्यप्रतिज्ञ हू, अत यादवो को मारने के लिए अग्नि मे प्रवेश करता हूँ। यह कहकर वह जलती हुई चिता मे कूद पडा।[4] सेनापति के अभाव मे सेना असहाय हो गई। वह उलटे पैरो लौटकर पुन जरासध के पास आयी। जरासध पुत्र के निधन के समाचार को सुनकर चिन्तातुर हो गया। सैनिको ने जरासध को यह भी वताया कि हमारे देखते ही देखते वह दुर्ग एव चिताए सभी विलीन हो गई।[5]

यादव दल ने आगे वढते हुए जब कालकुमार की वात सुनी तो वे वहुत ही प्रसन्न हुए। यादवो ने एक स्थान पर डेरा डाला। उस समय वहां पर अतिमुक्त नामक चारण मुनि आये। समुद्रविजय जी ने भक्तिभाव से मुनि को नमन किया और विनम्रतापूर्वक पूछा—भगवन् ! इस विपत्ति मे हमारा क्या होगा ?[6]

---

३ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३६७-३७६
(ख) भव-भावना २५२९-२५३५

४. त्रिषष्टि० ८।५।३७८-३८०
नोट—हरिवशपुराण के अनुसार स्वय जरासध ही युद्ध के लिए आता है पर इस प्रकार दृश्य देखकर शत्रु के नष्ट होने से उसके मन मे सन्तोप होता है और वह पुन. राजगृह लौट जाता है। देखिए—
—हरिवशपुराण ४०।२८-४३, पृ० ४६६-६७

५ (क) त्रिपष्टि० ८।५।३८२-३८४
(ख) भव-भावना २५३६

६ त्रिपष्टि० ८।५।३८६-३८७

मुनि ने कहा—राजन् ! तुम्हे किञ्चित् मात्र भी भयभीत होने की आवश्यकता नही है। तुम्हारे पुत्र अरिष्टनेमि बावीसवे तीर्थंकर है जो महान् पराक्रमी व भाग्यशाली है। बलराम और श्रीकृष्ण क्रमश: बलदेव और वासुदेव है। वे द्वारिका नगरी बसाएँगे, और जरासध का वध कर तीन खण्ड के अधिपति होगे। यह सुनकर सभी यादव प्रसन्न हुए। मुनि वहा से अन्यत्र चले गये।[७]

द्वारिका का निर्माण :

वहा से समुद्रविजय सौराष्ट्र मे आये। रैवतक गिरि की वायव्य दिशा मे यादवो ने अपनी छावनी डाली। वहा पर सत्यभामा के भानु और भामर दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो तेज से सम्पन्न थे। फिर कोष्टुकी के कहने से शुभ दिवस मे अष्टम भक्त तप किया। तप के प्रभाव से सुस्थित देव आया। उसने श्रीकृष्ण को पाञ्चजन्य शख, और बलराम को सुघोष नामक शख दिया और अन्य दिव्य रत्न, मालाए व वस्त्रादि अर्पित किये[८], फिर पूछा—आपने मुझे क्यो स्मरण किया है ?

श्रीकृष्ण—देव ! सुना है पहले वासुदेव की यहा पर द्वारिका नगरी थी, जिसे तुमने समुद्र मे डुबा दी है। अत मेरे लिए वैसी ही द्वारिका नगरी बसाओ। देव ने कहा—बहुत अच्छा।

देव ने इन्द्र से निवेदन किया, इन्द्र ने कुबेर को आदेश दिया, और वहा पर द्वारिका नगरी का निर्माण किया गया।[९] द्वारिका की अवस्थिति के सम्बन्ध मे हमने परिशिष्ट मे विस्तार से चर्चा की है।

---

७ (क) ऋषिर्बभाषे मा भैपीर्द्वाविंशो ह्येप तीर्थकृत्।
कुमारोऽरिष्टनेमिस्ते त्रैलोक्याद्वैतपौरुष: ॥
रामकृष्णौ बलविष्णू द्वारकास्थाविमौ पुन ।
जरासधवधादर्धभरतेशौ भविष्यत ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।३८८-३८९

(ख) भव-भावना २५५८

८ (क) त्रिषष्टि० ८।५।३९१-९५

(ख) भव-भावना २५६५

कुबेर द्वारा कृष्ण को उपहार भेंट :

कुबेर ने दो पीताम्बर वस्त्र, नक्षत्रमाला, हार, मुकुट, कौस्तुभ मणि, शार्ङ्ग धनुष, अक्षय बाण वाले तरकस, नन्दक नामक खड्ग, कौमुदी गदा, और गरुडध्वज रथ आदि श्रीकृष्ण को समर्पित किये। बलराम को वनमाला, मुसल, दो, नीले वस्त्र, तालध्वज रथ, अक्षय तरकस, धनुष और हल प्रदान किये।

श्रीकृष्ण के पूजनीय होने से दशार्हो को भी बहुमूल्य रत्नप्रदान किये। फिर वे सभी रथ मे बैठकर द्वारिका मे प्रविष्ट हुए।[१०]

रुक्मिणी :

द्वारिका मे श्रीकृष्ण आनन्द से रहने लगे। श्रीकृष्ण के राज्य मे प्रजा बहुत प्रसन्न थी। एक दिन नारद ऋषि द्वारिका मे आये। उनकी इच्छा हुई कि मैं श्रीकृष्ण का अन्त पुर देखू। कृष्ण की तरह कृष्ण की रानिया भी विनय व विवेक से सम्पन्न है या नही? नारद अन्त पुर मे गये, उस समय सत्यभामा शृङ्गारप्रसाधन मे लीन थी, दर्पण मे अपना प्रतिबिम्ब देख रही थी। उसे नारद ऋषि के आने तक का पता न चला। कृष्ण की अन्य रानियो ने नारद का सत्कार-सन्मान किया पर सत्यभामा नारद का सत्कार न कर सकी। नारद ने मन मे सोचा— रूप के गर्व से उन्मत्त बनी हुई सत्यभामा सोचती है कि मैं कृष्ण की पट्टरानी हूँ। इसका गर्व नष्ट होगा तभी

---

९ (क) उवाच कृष्णस्त देव या पूर्वं पूर्वशार्ङ्गिणाम्।
पूर्यत्र द्वारकेत्यासीत् पिहिता सा त्वयाभसा ॥
ममापि हि निवासाय तस्या स्थान प्रकाशय।
तथा कृत्वा सोऽपि देवो गत्वेन्द्राय व्यजिज्ञपत् ॥
शक्राज्ञया वैश्रवणश्चक्रे रत्नमयी पुरीम्।
द्वादशयोजनायामा नवयोजनविस्तृताम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।५

(ख) भव-भावना २५७१-२५९८

(ग) हरिवशपुराण ४१।१५ से ३२

१० (क) त्रिषष्टि० ८।५।४१९-२४

(ख) हरिवशपुराण ४१।३२-३७, पृ० ५०१

यह समझेगी कि नारद ऋषि की उपेक्षा करने का क्या फल होता है। ऐसा विचार कर नारद ऋषि अन्त:पुर से लौट गये।[११]

नारद ऋषि अन्य ग्राम-नगरो मे फिरते-फिरते कुण्डिनपुर पहुँचे। वहा भीष्मक राजा की पुत्री रुक्मिणी को देखा जो रूप मे अप्सरा की तरह थी। रुक्मिणी ने नारद ऋषि को नमस्कार किया। नारद ने आशीर्वाद देते हुए कहा—अर्ध भरत क्षेत्र के अधिपति श्रीकृष्ण तुम्हारे पति होगे ?[१२]

रुक्मिणी ने पूछा—ऋषिवर ! श्रीकृष्ण कौन है ?

नारद ने विस्तार के साथ श्रीकृष्ण के रूप, ऐश्वर्य और शौर्य का वर्णन करते हुए कहा—वे एक महान् शक्तिसम्पन्न पुरुष है, उनके जैसा वीर एव बलवान् अन्य कोई व्यक्ति नही है।

श्रीकृष्ण की प्रशसा सुनकर रुक्मिणी मन ही मन कृष्ण के प्रति अनुरक्त हुई और उसने प्रतिज्ञा की कि इस भव मे मै कृष्ण को ही अपना पति बनाऊगी।

नारद ऋषि वहा से अपने स्थान पर आये और उन्होने रुक्मिणी का एक सुन्दरतम रूप चित्रित किया। फिर वह चित्रपट लेकर नारद द्वारिका गये। अद्भुत चित्रपट को देखकर कृष्ण चित्रलिखित से रह गये। श्रीकृष्ण ने चित्र मे चित्रित सुन्दरी का परिचय पूछा। नारद ने रुक्मिणी का विस्तार से परिचय दिया। श्रीकृष्ण ने पत्र देकर एक दूत भेजा। पत्र पढकर रुक्मिणी के भाई रुक्मि ने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—मै अपनी बहिन ग्वाले को न देकर दमघोष के पुत्र शिशुपाल को दूगा।[१३]

---

११. (क) त्रिषष्टि० ८।६।७-९
(ख) भव-भावना २६३८-३९
(ग) हरिवशपुराण ४२।२४-२९

१२. (क) त्रिषष्टि० ८।६।१०-१३
(ख) भव-भावना २६४०-४२
(ग) हरिवशपुराण ४२।३०-४२, पृ० ५०७

१३ (क) त्रिषष्टि० ८।६।१४-२१
(ख) भव-भावना २६४३-४४
(ग) हरिवशपुराण ४२।४३-४८

रुक्मिणी की धात्री ने भी एक दिन प्रसगवश रुक्मिणी से कहा—जब तू बहुत ही छोटी थी उस समय अतिमुक्त मुनि, जो लब्धिधारी थे, यहा आये थे। हमारे पूछने पर उन्होने कहा था कि यह श्रीकृष्ण की पट्टरानी होगी।[१४] पर आज तुम्हारे भाई ने कृष्ण के दूत का अपमान किया है और दूत को लौटा दिया है?

रुक्मिणी ने पूछा—क्या कभी मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हुई है? धात्री ने कहा - "नही!"

रुक्मिणी की अभिलाषा जानकर उसकी धात्री (फुइबा) ने एक गुप्त दूत श्रीकृष्ण के पास भिजवाया। पत्र मे श्रीकृष्ण को लिखा 'माघ मास की शुक्ल अष्टमी को नाग पूजा के बहाने मै रुक्मिणी को लेकर नगर के बाहर उद्यान मे जाऊंगी। हे कृष्ण! तुम्हे रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो उस समय तुम वहां पर आ जाना, अन्यथा वह तो शिशुपाल के फदे में फस जाएगी।'[१५]

दूत ने वह सदेश श्रीकृष्ण को दिया। इधर रुक्मिणी के भाई ने रुक्मिणी से विवाह करने के लिए शिशुपाल को आमत्रित किया।

शिशुपाल सेना सहित वहा आ पहुँचा। श्रीकृष्ण और बलभद्र भी अपने-अपने रथ मे बैठकर पूर्वनिश्चित स्थान पर आये।

धात्री सखियो के साथ रुक्मिणी को लेकर नाग पूजा के बहाने उद्यान मे आयी। श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम धात्री का अभिवादन किया। फिर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से अपने रथ मे बैठने को कहा। धात्री के आदेश से वह श्रीकृष्ण के रथ मे बैठ गई।

जब श्रीकृष्ण कुछ दूर निकल गये तब धात्री व दासियाँ जोर से चिल्लाई कि रुक्मिणी को हरकर श्रीकृष्ण ले गये है। पकड़ो, रुक्मिणी को बचाओ।[१६]

---

१४. (क) त्रिषष्टि० ८।६।२४
(ख) हरिवशपुराण ४२।४९-५६

१५ (क) त्रिषष्टि० ८।६।२८-३०
(ख) हरिवशपुराण ४२।५७-६४
(ग) प्रद्युम्नचरित्र-महाकाव्यम् सर्ग २, श्लोक ७३

१६. (क) त्रिषष्टि० ८।६।३१-३९
(ख) हरिवशपुराण ४२।६५-७७

श्रीकृष्ण ने भी कुछ दूर जाकर पाचजन्य शख को और बलराम ने सुघोषा शख को फूका। उसके गभीर रव को सुनकर सभी लोग चकित हो गये।

रुक्मि और शिशुपाल विराट् सेना लेकर श्रीकृष्ण के पीछे दौडे। अपने पीछे सेना आती देखकर रुक्मिणी घबराई। वह बोली—मेरा भाई और शिशुपाल गजब के बहादुर है और अन्य बहुत से वीर भी उनके साथ आ रहे है। अब क्या होगा ?

रुक्मिणी को आश्वासन देने के लिए श्रीकृष्ण ने एक ही बाण से कमल पत्रो की तरह ताड वृक्षो की पक्ति का छेदन कर दिया और अपनी मुद्रिका मे रहे हुए हीरे को मसूर की दाल की तरह चूर दिया। श्रीकृष्ण की अद्भुत वीरता देखकर वह बहुत ही सन्तुष्ट हुई।

श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा—इस वधू को आप आगे ले जावे और मैं पीछे आने वाले रुक्मि आदि को सभाल लेता हूँ।[१७]

बलराम ने कहा - कृष्ण ! तुम जाओ। मैं अकेला ही रुक्मि आदि को यमलोक पहुँचा दूगा।

यह सुनकर रुक्मिणी के हृदय को गहरा आघात लगा। उसने प्रार्थना की कि मेरे भाई का वध न करे। श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर आगे चल दिये।[१८]

पीछे रहे बलराम ने शत्रु के सैन्य पर मुसल उठाकर मथनकर दिया और हल से सभी शत्रुओ को भगा दिया। युद्ध भूमि मे केवल रुक्मि रहा। बलराम ने बाणो की ऐसी वर्षा की कि उसका रथ

(ग) वसुदेवहिण्डी

(घ) प्रद्युम्न चरित्र सर्ग ३-४

१७. (क) त्रिषष्टि० ८।६।४०-४८

(ख) हरिवशपुराण ४२।७८-८६, पृ० ५१०

१८. नोट—हरिवशपुराण मे बलराम को छोडकर कृष्ण जाते नही है किन्तु वही पर रहकर युद्ध करते है—देखो—हरिवश० ४२।६०-६५, साथ ही शिशुपाल के वध का वर्णन किया है, पर वह त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे नही है।

तोड़ दिया, कवच को छेद दिया, घोडो को समाप्त कर दिया। अन्त मे उसकी दाढी मूछो को नौचकर कहा—तू मेरे लघुभ्राता की पत्नी का भाई है अत मै तुझे नही मारता। ऐसा कहकर उसे छोड़ दिया।[19] रुक्मि लज्जा के कारण कु डिलपुर नही लौटा, उसने वही भोजकट नगर बसाया और उसमे रहने लगा।[20]

श्रीकृष्ण द्वारिका लौटे। रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह किया[21] और सत्यभामा के सन्निकट का आवास उसे रहने के लिए दिया। रुक्मिणी द्वारिका के वैभव को देखकर मुग्ध हो गई। उसे कृष्ण ने पट्टरानी का गौरव प्रदान किया।

इस प्रकार सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती, गाधारी, ये आठो कृष्ण की पट्टरानियाँ हुई।[22]

अग्रमहिषियाँ·

जैन दृष्टि से कृष्ण की आठो अग्रमहिषियो का सक्षिप्त मे परिचय इस प्रकार है :—

(१) सत्यभामा

यह महाराजा उग्रसेन की पुत्री थी। जिस प्रकार शची इन्द्र को प्रिय है वैसे ही वह कृष्ण को प्रिय थी।[23]

---

१९ त्रिषष्टि० ८।६।५०-५७

२० एवमुक्तश्च मुक्तश्च ह्रिया नेयाय कु डिनम्।
रुक्म्यस्थात् किं तु तत्रैव न्यस्य भोजकट पुरम्॥

—त्रिषष्टि० ८।६।५८

२१. गाधर्वेण विवाहेन परिणीयाथ रुक्मिणीम्।
स्वच्छद रमयामास रजनी ता जनार्दन.॥

—त्रिषष्टि० ८।६।६४

२२ (क) त्रिषष्टि० ८।६।८५-१०६

(ख) कण्हस्स ण वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहओ ण अरिट्ठनेमिस्स अतिए मु डा भवेत्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइया सिद्धाओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणाओ। त जहा — पउमावई, य गोरी गधारी लक्खणा सुसीमा य जववई सच्चभामा रुप्पिणी कण्हअग्गमहिसीओ।—स्थानाङ्ग ८।७९३, पृ. २९०

(२) पद्मावती .

यह रिष्टपुर नगर के रुधिर राजा की देवी श्री की पुत्री थी।[२४] इसका रूप भी अत्यन्त सुन्दर था। पिता ने उसके लिए स्वयवर की योजना की। वह सजधज कर स्वय मे जा रही थी। उस युग मे अपहरण कर उसके साथ विवाह करना वीरता मानी जाती थी। श्रीकृष्ण की दृष्टि पद्मावती पर गिरी, और पद्मावती की श्रीकृष्ण पर, दोनो एक दूसरे पर मुग्ध हो गए। अत श्रीकृष्ण ने उसकी इच्छा से अपहरण किया, और पाचजन्य शख फूककर सभी को यह सूचना दी। स्वय पद्मावती के साथ द्वारिका आये। उसके बाद राजा रुधिर ने भी धन और दासिया भेजी।[२५]

(३) गौरी :

यह सिंध के वीतभय नगर के राजा मेरु की पत्नी चन्द्रावती की पुत्री थी,[२६] राजा मेरु ने दशार्हों को कहलाया कि वह अपनी पुत्री श्रीकृष्ण को अर्पित करना चाहता है, दशार्हो ने अभिचन्द्र को भेजा, उसने उनके साथ अपार धन एव गौरी को भेजी, गौरी का श्रीकृष्ण के साथ पाणिग्रहण हुआ।[२७]

(४) गांधारी :

यह गाधार जनपद के पुष्कलावती नगर के राजा नग्नजित की पुत्री थी। उसकी माता का नाम मरुमती था। उसके भाई का नाम विश्वसेन था। यह रूप मे ही नही, सगीत और चित्रकला मे भी पूर्ण निपुण थी।[२७] उसके साथ श्रीकृष्ण का पाणिग्रहण हुआ।[२९]

---

२३ कण्हस्स उग्गसेणस्स दुहिया सच्चभामा णाम सची विव सक्कस्स वहुमया।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७८, भा० १

२४. रिट्ठपुरे य रुहिरस्स रण्णो देवी सिरी, तीसे दुहिया पउमावती।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७८

२५. वही० पृ० ७८

२६ सिंधुविसए वीइभय नगर। तत्थ य मेरु राया, चदमती देवी, तीसे दुहिया गोरी।

—वसुदेवहिण्डी ७८

(५) लक्ष्मणा ·

यह सिंहलद्वीप के राजा हिरण्यलोम की पुत्री थी। उसकी माता का नाम सुकुमारा था और भाई का नाम द्रुमसेन था।[30] श्रीकृष्ण ने रूप की प्रशसा सुनकर अपना दूत सिंहलद्वीप भेजा। दूत ने जाकर सन्देश दिया कि लक्ष्मणा अत्यन्त रूपवती है।[31] वह दक्षिण समुद्र के किनारे स्नानादि के लिए अपने भाई के साथ एक महीने तक रुकेगी। श्रीकृष्ण और बलराम दोनो भाई वहा पर गये। द्रुमसेन ने प्रतिरोध किया, तो कृष्ण उसे मारकर लक्ष्मणा को लेकर द्वारिका आये। हिरण्यलोम राजा को ज्ञात होने पर उसने कहलाया कि मेरा पूर्व चिन्तित-मनोरथ पूर्ण हुआ है, मैं प्रसन्न हूँ अत विराट् सम्पत्ति प्रेषित कर रहा हूँ, व आपका अनुयायी हूँ।[32]

(६) सुसीमा .

यह अराक्षरी नगरी के राष्ट्रवर्धन राजा की पत्नी विनयवती की पुत्री थी। उसका भाई नमुची युवराज था। एक समय वह सौराष्ट्र के प्रभास स्थल पर अपने भाई के साथ स्नान करने के लिए

---

२७ वही० पृ० ७८

२८. गंधारजणवए पोक्खलावईनगरीए नग्गई नाम राया, देवी य मरुमती, तीमे वीसमेणो पुत्तो जुवराया, तस्स भगिणी गधारी रूववती रूवगए गधव्वे य परिणिट्ठिया।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७८

२९ वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३० सिंहलदीवे राया हिरण्णलोमो, तस्स देवी सुकुमाला नाम, तेसिं दुहिया लक्खणलया लक्खणा णाम, पुत्तो य तस्म रण्णो जुवराया दुमसेणो।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३१ दूओ य पेसिओ कण्हेण सिंहलदीव, मो आगतो कहेइ—देव! हिरण्णलोमस्स रण्णो दुहिया देवया विव रूवस्सिणी, सा तुम्ह जोग्गा।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३२ वही० पृ० ७९

आयी । श्रीकृष्ण को ये समाचार मिले, उसके भाई नमुची को युद्ध मे मार कर उसे द्वारवती लेकर आये ।[33]

(७) **जाम्ववती**

गगननन्दन मे जाम्ववान नामक विद्याधर राजा था । उसकी पत्नी श्रीमती थी । उसकी पुत्री जाम्ववती थी । उसका भाई दुष्प्रसह था ।[34] जाम्ववती भी रूप मे अप्सरा के समान थी । एक समय किसी चारण मुनि ने कहा यह कन्या अधभरतेश्वर की पत्नी होगी । जाम्ववान् उसके पति की अन्वेपणा करने के लिए गगा के किनारे पडाव डालकर रहा । जाम्ववती भी गगा मे स्नान करने के लिए वहा पर पुन पुन आया करती थी ।[35] श्रीकृष्ण को यह सूचना मिली । श्रीकृष्ण अपने भाई अनाधृष्टि के साथ वहा गये, और कन्या का अपहरण किया, यह सूचना जाम्ववान को मिलते ही वहा पर आया और अनाधृष्टि के साथ युद्ध करने लगा । अनाधृष्टि ने कहा—तुम्हे स्वय को चाहिए था कि वासुदेव श्रीकृष्ण को कन्या देते, किन्तु अपरहण करने पर तुम लडना चाहते हो यह तुम्हारे लिए उचित नही है ।[36]

जाम्बवान ने जव यह सुना तव वह शान्त हो गया । उसने कहा-चारण श्रमण के कथन को प्रमाणभूत मानता हुआ मै भी यही इच्छा करता था । मेरी भावना पूर्ण हो गई है, अत अव मैं तपोवन मे जाकर तप की आराधना करूगा । आप इसके भाई दुष्प्रसह की

---

३३ वसुदेव हिण्डी पृ० ७६ प्र० भाग

३४ गगणनदणे नयरे जववतो राया विज्जाहरो तस्स य भज्जा सिरि-मई, पुत्तो जुवराया दुप्परुहो नामा, धूया य से जववती ।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७६

३५ सा चारणसमणेण अद्धभरहाहिवभज्जा भविस्सइ त्ति आदिट्ठा । ततो सो जववतविज्जाहरराया 'त गवसिस्सामि' त्ति गगातीरे सन्निवेसे सन्निविट्ठो । सा य कुमारी अभिक्ख गगानदि मज्जिउं एइ सपरिवारा ।

—वसुदेवहिण्डो पृ० ७६

३६ वही० पृ० ७६

रक्षा करे। अज्ञान के कारण मेरे द्वारा किये गये अपराध को क्षमा करे।

उसके पश्चात् धृति नामक देवकन्या के समान जाम्बवती को लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका आये।

जाम्बवती का भाई दुष्प्रसहकुमार भी विराट् सम्पत्ति के साथ जाम्बवती की दासियो को लेकर द्वारिका आया। श्रीकृष्ण ने प्रेम से उसका स्वागत किया। जाम्बवती को पृथक् महल प्रदान किया।[37]

(८) **रुक्मिणी**.

विदर्भ जनपद के कुण्डिनपुर नगर का भेषक राजा था। रुक्मिणी उसकी लडकी थी। नारद ने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के अनुपम रूप के सम्बन्ध मे बताया।[38] श्रीकृष्ण वहा जाते है और उनके साथ विवाह करते हैं। पूर्व इस सम्बन्ध मे विस्तार से परिचय दिया गया है।

आगम साहित्य मे यो श्रीकृष्ण के सोलह हजार रानियो का भी उल्लेख मिलता है।[39] पर उनमे आठ प्रमुख थी। शेष रानियो के नाम और परिचय प्राप्त नही है।

वैदिक परम्परा के ग्रन्थो मे भी श्रीकृष्ण के सोलह हजार एक सौ एक स्त्रिया होने का वर्णन है।[40] किन्तु उनमे विष्णुपुराण के अनुसार रुक्मिणी के अतिरिक्त—१ कालिन्दी, २ मित्रविन्दा, ३ नग्नजित् की पुत्री सत्या, ४ जाम्बूवती ५ रोहिणी ६ मद्रराज की

---

३७ वसुदेवहिण्डी पृ० ८०

३८ वियब्भाजणवए कुडिणिपुर नाम नयर। तत्थ भेसगो राया, विज्जुमती देवी, तेमि पुत्तो रूप्पी कुमारो, रुप्पिणी य दुहिया। सा य वासुदेवस्स नारएण निवेदिता।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ८० प्र० भाग

३९. (क) अन्तगडदशाओ वर्ग १, अ० १
(ख) प्रश्नव्याकरण अधर्मद्वार

४० भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्येकोत्तरशतानि स्त्रीणामभवत्।

—विष्णुपुराण

पुत्री सुशीला ७ सत्राजित की कन्या सत्यभामा ८ लक्ष्मणा ये प्रमुख थी ।[४१]

महाभारत के अनुसार—रुक्मिणी, सत्यभामा, गाधारी, शैव्या, हैमवती, जाम्बुवती ये श्रीकृष्ण की मुख्य पत्निया थीं ।[४२]

हरिवंशपुराण के अनुसार लक्ष्मणा ही जालहासिनी है। इस दृष्टि से १ कालिन्दी, २ मित्रवृन्दा ३ सत्या, ४ जाम्ववान् की कन्या ५ रोहिणी ६ भाद्री सुशीला, ७ सत्राजित् की कन्या सत्यभामा ८ जालहासिनी लक्ष्मणा ९ शैव्या ।[४३]

श्रीकृष्ण की वहुपत्नियो के सम्बन्ध मे कृष्ण चरित्र मे वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने[४४] तथा कृष्णावतार मे कन्हैयालाल माणेकलाल

---

४१ (क) कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्रजिती तथा ।
देवी जाम्ववती चापि रोहिणी कामरूपिणी ।।
मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीतमण्डना ।
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी ।।
—विष्णुपुराण ५।२८

(ख) तासाञ्च रुक्मिणी सत्यभामा जाम्ववती ।
जालहासिनी-प्रमुखा अष्टौ पत्न्य प्रधाना ।।
—वही० ४।१५

४२. रुक्मिणी त्वथ गाधारी शैव्या हेमवतीत्यपि ।
देवी जाम्ववती चैव विविशुर्जातवेदसम् ।।
—मौसलपर्व ३, अ०

४३. महिषी सप्त कल्याणीस्ततोऽन्या मधुसूदन ।
उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेता कुलोद्गता ।
कालिंदी मित्रविंदा च सत्या नाग्रजिती तथा ।
सुता जाम्ववतश्चापि रोहिणी कामरूपिणीम् ।।
मद्रराजसुता चापि सुशीला भद्रलोचनाम् ।।
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा जालहासिनीम् ।
शैव्यस्य च सुता तन्वी रूपेणाप्सरसा समा ।।
—हरिवश पुराण १५ अ० ६७ श्लोक

४४ (क) कृष्णचरित्र हिन्दी पृ० २३० से २४५
(ख) कृष्ण चरित्र गुजराती अनुवाद पृ० १७९ १८८

मुशी ने "रुक्मिणी आने शैव्या विशे नोध"[४५] मे कुछ चर्चाएँ की है। जिज्ञासु पाठको को वहा देखना चाहिए।

जैन, वौद्ध और वैदिक साहित्य का पर्यवेक्षण करने से ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन युग मे बहुविवाह की प्रथाए थी अत श्रीकृष्ण के आठ से भी अधिक पत्निया हो उसमे बाधा जैसी वात नही है। हमारी दृष्टि से भी यही वात उचित लगती है।

राधा :

आगम व आगमेतर जैन साहित्य मे राधा का कही भी उल्लेख नही है। राधा कौन थी और उसका श्रीकृष्ण के साथ क्या सम्वन्ध था, आदि प्रश्नो के सम्वन्ध मे किञ्चित् मात्र भी चर्चा नही है।

वैदिक विद्वानो ने राधा के सम्वन्ध मे गभीर अन्वेषणा की है। राधा भक्त विद्वानो की मान्यता है कि राधा का नाम बहुत पुराना है। वेदो से लेकर अर्वाचीन साहित्य तक मे राधा का उल्लेख है। उनकी शोध का सक्षिप्त साराश इस प्रकार है—

ऋग्वेद मे राधा का नाम मिलता है।[४६] सामवेद[४७] और अथर्ववेद[४८] मे भी राधा शव्द आया है। वृहद्ब्रह्म सहिता मे राधा और कृष्ण मे कोई अन्तर नही माना गया है।[४९] जो कृष्ण है सोई राधा है जो राधा है सोई कृष्ण है। सनत्कुमार सहिता मे भी कृष्ण और राधा मे अभिन्नता स्थापित की गई है।[५०] कृष्णोपनिषद्[५१] व कठवल्ली[५२] उपनिषद्कार ने राधा के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

---

४५ कृष्णावतार भाग—२, परिशिष्ट पृ० ५६१-५६४

४६ (क) ऋग्वेद १।३०।५

(ख) ऋग्वेद ३।५१।१०

४७. सामवेद १६५, ७३७

४८ अथर्ववेद २०।४५।२

४९ य कृष्ण सापि राधा या राधा कृष्ण एव स.।

५०. राधाकृष्णेति सज्ञाढ्य राधिकारूप मगलम्।

५१. वामाङ्गमहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी।
सुन्दरी नागरी गौरी, कृष्णहृद्भृङ्गमजरी॥

५२. "यदापश्य पश्यन्ति रुक्मवर्ण कर्तारमीश पुरुष व्रह्मयोनिम्"।

राधिकोपनिषद[५३] मे राधिका की महिमा प्रतिपादित की गई है। पद्मपुराण[५४] मे राधा का उल्लेख है और उसका महत्त्व बताया गया है। शिवपुराणकार[५५] ने ब्रह्मा जी के द्वारा यह उद्घोषणा कराई है कि राधा साक्षात् गोलोक मे निवास करने वाली गुप्त स्नेह मे निबद्ध हुई कृष्ण की पत्नी होगी। नारदपुराण[५६] मे नारद ने राधिकानाथ कहकर कृष्ण की स्तुति की है। ब्रह्मवैवर्तपुराण[५७] मे राधा-कृष्ण की लीला का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। मत्स्य-पुराण[५८] एव ब्रह्माण्डपुराण[५९] मे भी राधा का उल्लेख हुआ है।

---

५३. राधिकोपनिषद्,

५४ देवी कृष्णमयी प्रोक्ता, राधिका परमदेवता।
सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ।।५३।
बहूना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्या न किंचन।
चिदचिल्लक्षण सर्व राधाकृष्णमय जगत् ।।५७।

—पद्मपुराण पातालखण्ड ५०।५३-५७

५५ कलावती सुता राधा साक्षात् गोलोकवासिनी।
गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति ।।४०।

—शिवपुराण, रुद्र सहिता २, पार्वती खण्ड ३ अ० २

५६ तवास्मि राधिकानाथ! कर्मणा मनसा गिरा।
कृष्ण कान्तेति चैवास्ति युवामेव गतिर्मम ।।

—नारदपुराण, पूर्वार्ध अ० ८२। श्लोक २६

५७. आविर्बभूव कन्यैका कृष्णास्य वामपार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभो. पदे ।।२५।
रासे सभूय गोलोके सा दधाव हरे पुर।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ।।२६।

—ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड अ० ५

५८. रुक्मिणी द्वारवत्या तु राधा वृन्दावने वने।

—आनन्दाश्रम स० १३-३८

५९ (क) राधा कृष्णात्मिका नित्य कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
(ख) जिह्वा राधा स्तुतो राधा नेत्रे राधा हृदिस्थिता।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया ।।

—ब्रह्माण्डपुराण

देवी भागवत[60] मे राधिका को श्रीकृष्ण के वामाङ्ग से उत्पन्न हुई वताया है। भविष्यपुराण[61] और आदिपुराण[62] मे भी राधा के सम्वन्ध मे वर्णन है। इनके अतिरिक्त भी राधा का वर्णन अनेक स्थलो पर हुआ है। राधा के विना कृष्ण का नाम ही आधा है।

श्री मद्भागवत महापुराण मे स्पष्ट रूप से राधा का उल्लेख कही नही मिलता है। श्रीकृष्ण का विशद चित्रण श्रीमद्भागवत मे हुआ है। उसमे राधा का वर्णन न होने से राधा की प्राचीनता के सम्वन्ध मे विद्वानो को सन्देह उत्पन्न होता है। यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वान् राधा को ईश्वी शताब्दी के वाद की कल्पना मानते हैं। डाक्टर हरवशलाल का अभिमत है कि यद्यपि पौराणिक पण्डित राधा का सम्वन्ध वेदो से लगाते है परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे कृष्ण की प्रेमिका राधा को वेदो तक घसीटना असगत ही प्रतीत होता है। गोपालकृष्ण की कथाओ से परिपूर्ण भागवत, हरिवश और विष्णुपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों मे राधा का अभाव अनेक प्रकार के सन्देहो को जन्म देता है।[63]

प० वलदेव उपाध्याय लिखते है 'मेरी दृष्टि मे 'राध.' तथा 'राधा' दोनो की उत्पत्ति "राध वृद्धौ" धातु से है, जिसमे 'आ' उपसर्ग जोड़ने पर आराध्यति धातुपद वनता है। फलत इन दोनो शव्दो का समान अर्थ है—आराधना, अर्चना, अर्चा। 'राधा' इस

---

६० (क) गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मी सरस्वती।
सावित्री च सृष्टि विधौ प्रकृतिः पचधास्मृता॥
—नवमस्कध अ० १ श्लोक १

(ख) देवीभागवत-९।१।४४-से ५०

(ग) देवी भागवत ९।५०।१०-११

६१. तदव्ययात्समुद्भूतोराधाकृष्ण. सनातन।
एकीभूत द्वयोरग राधाकृष्णो वुधे स्मृत.॥
—भविष्यपुराण १५६

६२ अथापरा राधिकाया सख्य. शश्वन्मनोरमा.।
विमला राधिका भृङ्गी निभृताऽभिमता परा॥
—आदिपुराण ४१ (वैदिक)

६३ सूर और उनका साहित्य—डा० हरवशलाल शर्मा पृ० २६५

प्रकार वैदिक राध या राधा का व्यक्तिकरण है। राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधना का प्रतीक है। 'आराधना की उदात्तता उसके प्रेम पूर्ण होने मे है। जिस आराधना या अर्चना मे विशुद्ध प्रेम नही झलकता, जो उदात्त प्रेम के साथ नही सम्पन्न की जाती, क्या वह कभी सच्ची आराधना कहलाने की अधिकारिणी होती है ? कभी नही। इस प्रकार राधा शब्द के साथ प्रेम के प्राचुर्य का, भक्ति की विपुलता का, भाव की महनीयता का सम्बन्ध कालान्तर मे जुडता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप मे साहित्य और धर्म मे प्रतिष्ठित हो गई।[६४]

जैन और वैदिक ग्रन्थो मे श्रीकृष्ण की मुख्य आठ पत्नियो के नाम आये है। उनमे कही भी राधा का नाम नही है। यदि राधा के साथ कृष्ण का गहरा सम्बन्ध होता तो पत्नी के रूप मे अवश्य ही उसका उल्लेख मिलता। हमारी अपनी दृष्टि से भी राधा की कल्पना वाद के कवियो ने की है।

प्रद्युम्न

एक समय अतिमुक्त मुनि रुक्मिणी के महल मे पधारे। उसी समय सत्यभामा भी वही पहुँच गयी। रुक्मिणी ने मुनिराज से पूछा—क्या कभी मातृत्व का गौरव मुझे भी प्राप्त होगा ?

मुनि विशिष्ट ज्ञानी थे। उन्होने कहा—हाँ, तुम्हारे श्रीकृष्ण जैसा पुत्र होगा।[६५] इतना कहकर मुनि वहा से चल दिये। सत्यभामा बोली—मुनि ने मुझे लक्ष्य करके भविष्यवाणी की है। रुक्मिणी ने उसका प्रतिवाद किया और कहा—कि मुझे कहा है। दोनो निर्णय करने के लिए श्रीकृष्ण के पास आयी। उस समय वहा दुर्योधन भी आया हुआ था। कृष्ण उससे वार्तालाप कर रहे थे। सत्यभामा ने

---

६४ भारतीय वाङ्मय मे श्री राधा—प० वलदेव उपाध्याय पृ० ३१

६५ रुक्मिणयाश्च गृहेऽन्येद्यु रतिमुक्तर्पिरागत.।
त दृष्ट्वा सत्यभामापि तत्रैवाशु समाययौ॥
रुक्मिण्याप्रच्छि स मुनि: किं मे स्यात्तनयो न वा।
भावी कृष्णसम पुत्रस्तवेत्युक्त्वा ययौ च स॥
—त्रिषष्टि० ८।६।११०-११

कहा—यदि मेरे पुत्र होगा तो हे दुर्योधन, वह तुम्हारा जामाता होगा। रुक्मिणी ने कहा—मेरा पुत्र तुम्हारा जामाता होगा।

दुर्योधन ने कहा—अच्छा! तुम दोनो मे से जिसके पुत्र होगा उसे मैं अपनी पुत्री दूंगा।

सत्यभामा ने कहा—अच्छा तो यह शर्त रही कि जिसका पुत्र प्रथम विवाह करे, उसके विवाह मे दूसरे को अपने शिर के केश देने होगे। रुक्मिणी ने यह शर्त स्वीकार करली—वलराम, कृष्ण और दुर्योधन इसके साक्षी नियुक्त किये गये।[६६]

वसुदेव हिण्डो के अनुसार रुक्मिणी सिंह का स्वप्न देखती है।[A] और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के अनुसार एक दिन रुक्मिणी ने स्वप्न देखा 'कि वह एक श्वेत वृषभ के ऊपर रहे हुए विमान पर वैठी है।' यह देखकर वह शीघ्र ही जागृत हो गई। उस समय एक महर्द्धिक देव महाशुक्र देवलोक से च्यवकर उसके उदर में आया। प्रात काल श्रीकृष्ण को स्वप्न की वात कही।[६७]

सत्यभामा को जव यह ज्ञात हुआ तो उसने भी एक कल्पित स्वप्न की बात कही। दोनो गर्भवती हुई। रुक्मिणी के गर्भ मे पुण्यवान् जीव आने से वह गूढ गर्भा थी, पर सत्यभामा के उदर मे

---

६६. (क) भामोवाच सुतो यस्या. प्रथम परिणेष्यति।
तद्विवाहेऽन्यया केशा देयास्तस्या. स्वका खलु॥
साक्षिण. प्रतिभुवश्च रामपादा जनार्दन।
दुर्योधनश्चेत्युदित्वा स्वीको द्वे अपि जग्मतु॥
—त्रिषष्टि० ८।६।११२-११७

(ख) कुछ परिवर्तन के साथ—हरिवंश मे भी यही वर्णन है—देखो हरिवंश—४३।१६-२८।

A रुप्पिणी कयाइ च सीह मुहे अइगच्छमाण सिमिणे पासित्ता कहेई,
—वसुदेवहिण्डी पृ० ८२ प्र० भा०

६७. (क) त्रिषष्टि० ८।६।११८
(ख) भव-भावना
(ग) हरिवंश पुराण ४२।२६-३०

साधारण जीव के आने से उसका उदर अभिवृद्धि को प्राप्त होने लगा। एक ही दिन दोनो के पुत्र हुए। रुक्मिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न रखा गया और सत्यभामा के पुत्र का नाम भानुक।[६८]

श्रीकृष्ण प्रद्युम्न कुमार को खिला रहे थे। उस समय रुक्मिणी के पूर्व भव का वैरी देव धूमकेतु वहा पर आया, और रुक्मिणी का रूप बनाकर कृष्ण के हाथ मे से प्रद्युम्न कुमार को लेकर चल दिया। वह देव उसे वैताढ्यगिरि पर लाया, और एक शिला पर उसे रखकर चला गया। उस समय कालसवर नामक एक विद्याधर अग्निज्वाल नगर से अपने नगर जा रहा था। उसने उस तेजस्वी बालक को देखा। सोचा—अरे, यहा पर किसने छोडा है इसे। वह उसे लेकर सीधा अपने घर आया, और अपनी पत्नी कनकमाला को पुत्र रूप मे अर्पित किया। नगर मे यह चर्चा फैलादी गई कि मेरी रानी गूढ गर्भा थी, उसने पुत्र का प्रसव किया है। पुत्रोत्सव उत्साह के साथ मनाया गया।

कुछ समय के पश्चात् रुक्मिणी ने आकर कृष्ण से पुत्र की याचना की। कृष्ण ने कहा—अभी तो तुम ले गई थी।

रुक्मिणी—नही पतिदेव ! मै तो नही ले गई, तब कृष्ण ने उसकी सर्वत्र तलाश की, पर प्रद्युम्न कही पर नही मिला। कृष्ण और रुक्मिणी अत्यन्त चिन्तातुर हो गये।[६९]

कुछ दिनो के पश्चात् नारद ऋषि वहा पर आये। नारद से श्रीकृष्ण ने पूछा—बतलाइये महाराज, हमारा पुत्र प्रद्युम्न कहा गया ? कौन उसे हरण करके ले गया ?

---

६८ (क) त्रिषष्टि० ८।६।१२७-१२९
(ख) भव-भावना २६४६

६९ वसुदेव हिण्डी के अनुसार रुक्मिणी के वहा कृष्ण देखने जाते है तभी कोई देव उसे हरण कर जाता है—
रुप्पिणी य पुण्णे पसवणसमए पसूया पुत्त। कयजायकम्मस्स य से वद्धा मुद्दा वासुदेवनामकिया, निवेदित च परिचारियाहिं कुमार-जम्म कण्हस्स। सो रयणदीविकादेसियमग्गो अइगतो रुप्पिणिभवण। चक्खुविसयपडिओ य से कुमारो देवेणे अक्खित्तो।
—वसुदेवहिण्डी पृ० ८३ पेढिया

नारद ने कहा - महाज्ञानी अतिमुक्तकुमार मुक्त हो गये है। आप चिन्ता न करे, मै आपके प्रश्न का उत्तर महाविदेह क्षेत्र मे विराजित सीमधर स्वामी से पूछकर कहूँगा।

नारद ऋषि सीधे सीमधर स्वामी के पास गये। उन्होने प्रश्न किया। उत्तर मे सीमधर स्वामी ने फरमाया—वह कालसवर नामक विद्याधर के घर मेघकूट नगर मे है और वहा पर वह सोलह वर्ष तक रहेगा। पूर्वबद्ध कर्म के कारण सोलह वर्ष का विरह रहेगा। भगवान् की वाणी को श्रवण कर नारद बहुत प्रसन्न हुए, और जहा प्रद्युम्न कुमार था वहा पहुँचे। रुक्मिणी की तरह ही प्रद्युम्नकुमार का रूप निहारकर नारद ऋषि मन ही मन प्रसन्न हुए। वहा से वे शीघ्र द्वारिका आये और कृष्ण व रुक्मिणी को सारी बात बताई।

कालसवर विद्याधर के वहा प्रद्युम्नकुमार बडे होने लगे। विद्याधर से सभी विद्याओ मे उसने निपुणता प्राप्त की। प्रद्युम्न के अतिशय सुन्दर रूप को निहार कर काल सवर विद्याधर की पत्नी कनकमाला उस पर मुग्ध हो गई। एक दिन एकान्त मे कुवर को लेजाकर कनकमाला ने कहा—अरे प्रद्युम्न ! अब तुम्हारी युवावस्था आ रही है, मैं तुम्हारे रूप पर मुग्ध हूँ, मै तुम्हारी जन्मदात्री माता नही हूँ। मैंने तो केवल पालन-पोपरा किया है अत मेरे साथ स्वेच्छा से आनन्दक्रीडा करो।

प्रद्युम्न—आपकी बात तो ठीक है, पर कालसवर विद्याधर और उनके पुत्र मेरे साथ युद्ध करेगे तो मै उनसे किस प्रकार जीत सकूँगा ?

कनकमाला—प्रद्युम्न ! तुम इस बात से क्यो डरते हो ? मेरे पास गौरी और प्रज्ञप्ति नामक दो महान् विद्याए है। जिनसे तुम सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त कर सकते हो। मैं तुम्हारे रूप पर मुग्ध हूँ, इसलिए ये विद्याए तुम्हे देती हूँ।

प्रद्युम्न ने वे दोनो विद्याए ग्रहण की और कुछ ही समय मे उन दोनो विद्याओ को सिद्ध कर लिया। उसने देखा, मधुर बोलने से मुझे दोनो महान् विद्याए मिल गई।

रानी कनकमाला ने कुछ दिनो के पश्चात् पुन स्वेच्छा पूर्वक क्रीडा करने की अभ्यर्थना की।

प्रार्थना के उत्तर मे प्रद्युम्न ने स्पष्ट कहा—माता! तुम्हारे मुंह से इस प्रकार के शब्द शोभा नही देते। प्रथम तो तुम मेरा लालन-पालन करने के कारण मेरी माता हो, फिर विद्यादान देकर भी माता हुई। दो दृष्टियो से तुम मेरी माता हो, फिर ऐसी अनुचित बात क्यो कहती हो?

कनकमाला ने प्रत्येक दृष्टि से प्रार्थना की पर कुंवर ने उसकी सभी प्रार्थनाए ठुकरा दी और वह वहा से चल दिया। कुंवर के जाने के पश्चात् कनकमाला ने त्रियाचरित्र कर अपने पुत्र और पति को बताया कि प्रद्युम्न ने मेरे शीलव्रत को खण्डित कर दिया है। रानी की यह बात सुनते ही कालसवर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने उसी समय अपने पुत्रो को साथ लेकर प्रद्युम्न पर हमला किया। पर प्रद्युम्न को कोई भी जीत न सका, सभी उससे पराजित हो गये। राजा ने रानी से विद्या मागी, पर वह दे न सकी क्योकि वह तो प्रद्युम्न को दे चुकी थी। राजा रानी के दुराचार को समझ गया। उसके बाद वह कुंवर से मिला, उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। इतने मे नारद ऋषि वहा पर पहुंच गये। प्रज्ञप्ति विद्या से उसने नारद ऋषि को पहचान लिया, अत कालसवर विद्याधर से आज्ञा लेकर वह सीधा नारद ऋषि के साथ द्वारिका जाने के लिए प्रस्थित हुआ।[७०]

नारद ऋषि के साथ प्रद्युम्नकुमार द्वारिका पहुंचा। मार्ग मे उसने नारद ऋषि से सारी बाते जान ली कि जब तुम गर्भ मे थे तब ही सत्यभामा और तुम्हारी माता रुक्मिणी के बीच शर्त हुई थी। प्रद्युम्न ने देखा—द्वारिका मे आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। समस्त द्वारिकावासी प्रसन्नता से फूले नही समा रहे है क्योकि श्रीकृष्ण के पुत्र और सत्यभामा के अगजात भामह का विवाह प्रसग है। पर रुक्मिणी की आखो से आसुओ की धारा छूट रही है। वह अपने

---

७०. (क) त्रिषष्टि० ८।६।१३० से ४०४
(ख) प्रद्युम्नचरित्र— ले० महासेनाचार्य
(ग) प्रद्युम्नचरित्र महाकाव्य-सर्ग-५-८ तक पृ० १०४
ले० रत्नचन्द्रगणी
(घ) प्रद्युम्नचरित्र-अनुवाद-चारित्र विजय पृ० १४५ तक

पुत्र प्रद्युम्न कुमार की अपलक प्रतीक्षा कर रही है। वह अब तक क्यो नही आया ! यदि सत्यभामा के पुत्र का विवाह प्रथम हो जायेगा तो शर्त के अनुसार मुझे अपने सिर के केश कटवाने पड़ेगे। मै पुत्र व पति के होते हुए भी कुरूप बन जाऊगी। वह चिन्तातुर बैठी ही थी कि उसी समय विद्या के बल से प्रद्युम्न कुमार ने एक लघु मुनि का रूप बनाया और रुक्मिणी के महल मे प्रवेश किया। कहा—अरी श्राविका! क्यो इतनी चिन्तामग्न है? मैं सोलह वर्ष का दीर्घ तपस्वी हूँ, मुझे आहारदान दे। रुक्मिणी ने मुनि का अभिवादन करते हुए कहा मुनिवर! मैने एक वर्ष का तप सुना है, पर आप सोलह वर्ष के तपस्वी है, यह जानकर आश्चर्य होता है। अस्तु, जो भी हो, परन्तु महाराज! इस समय सिंह केसरिया मोदक के अतिरिक्त कुछ भी खाद्य वस्तु तैयार नही है, और ये मोदक श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य को हजम नही होते है।

मुनि ने कहा—तुम चिन्ता न करो, तप के दिव्य प्रभाव से वे सभी हजम हो जायेगे।

रुक्मिणी ने मुनिराज को लड्डू दिये। मुनि ने वही बैठकर सारे लड्डू खा लिये।[७१]

उसी समय सत्यभामा की दासिया रुक्मिणी के केशो को काटने के लिए वहा पर आगई और बोली—महारानी, हमे सत्यभामा ने भेजा है।

प्रद्युम्न ने जो विद्या के बल से मुनि बना हुआ था, विद्या के प्रभाव से सत्यभामा और उसकी दासियो के ही केश काट दिये।

---

७१. वसुदेवहिण्डी मे मुनि खीर का भोजन मागते हैं उसमे मोदक वहराने का प्रसग नही है—सो वासुदेवसीहासणे उवविट्ठो। भणिओ य रुप्पिणीए—खुड्डग! एयमासण देवयापरिग्गहिय, मा ते को वि उवघातो भविस्सति अण्णम्मि आसणे णिसीय त्ति। सो भणइ—अम्ह तवस्सीण ण पभवति देवता। आणत्ता य चेडीओ देवीए—सिग्घ पायस साहेइ, मा किलम्मउ तवस्सी। पज्जुण्णेण य अग्गी थभिओ न तप्पती खीर।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ९५ प्र० भाग

वे सभी श्रीकृष्ण के पास पहुची, और कहा कि उस दिन की शर्त के अनुसार रुक्मिणी के बाल दिलाओ।

श्रीकृष्ण ने मजाक करते हुए कहा—तुम उसे मुण्डित बनाना चाहती थी पर स्वय ही मुण्डित क्यो हो गई ?

सत्यभामा के अत्याग्रह पर बलराम को सत्यभामा के साथ रुक्मिणी के बाल लेने के लिए श्रीकृष्ण ने भेजा, पर आगे देखा तो रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण स्वय बैठे हुए है। वे लज्जा से पुन लौट गये। पीछे लौटकर आने पर उन्हे श्रीकृष्ण से ज्ञात हुआ कि वह कोई मायावी था।

नारद ने रुक्मिणी को बताया कि यह मुनि नही, तेरा ही पुत्र प्रद्युम्न है। रुक्मिणी पुत्र को पाकर बहुत ही प्रसन्न हुई। नारद ने कहा—इसने भानुकुवर का विवाह जिस कन्या के साथ होने वाला है उसका अपहरण कर लिया है। इसी ने अन्य अनेक चमत्कार सत्यभामा आदि को दिखाये है।

प्रद्युम्न ने माता से कहा—जब तक मै अपने पिता श्रीकृष्ण को चमत्कार न दिखाऊ तब तक मुझे प्रकट नही होना है।

प्रद्युम्न ने शीघ्र ही अपनी माता रुक्मिणी को रथ मे बिठाकर बहुत ही तीव्रस्वर मे श्रीकृष्ण को चुनौती दी—मैं रुक्मिणी को हरण कर ले जारहा हूँ, यदि तुम मे शक्ति हो तो लेने के लिए आओ।

श्रीकृष्ण ने जब यह सुना तो वे पीछे दौडे। युद्ध हुआ। प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को शस्त्ररहित कर दिया। श्रीकृष्ण की सेना भी प्रद्युम्न के सामने टिक न सकी। उसी समय श्रीकृष्ण का दाक्षिणात्य नेत्र-स्फुरित हुआ और नारद ने आकर कहा—कृष्ण! जिसके साथ तुम युद्ध कर रहे हो वह देव या विद्याधर नही, अपितु तुम्हारा ही पुत्र प्रद्युम्न है। इसने तुम्हे बता दिया कि पिता से पुत्र सवाया है।

पिता-पुत्र का वह अपूर्व प्रेम-मिलन सभी के लिए आह्लाद-कर था।[७२]

दुर्योधन ने राजसभा मे आकर श्रीकृष्ण से निवेदन किया—हे स्वामी! मेरी और तुम्हारी दोनो की लाज जाती है। लग्न के

---

७२ त्रिषष्टि० ८।६।४८६-४७२

अवसर पर ही मेरी पुत्री और तुम्हारी पुत्रवधू को कोई अपहरण कर ले गया है ?

कृष्ण ने कहा—मैं क्या करूं—प्रद्युम्न का भी सोलह वर्ष तक विरह सहन किया है ? मै कोई सर्वज्ञ थोडे ही हूँ।

प्रद्युम्न ने कहा—आप आदेश दे तो मै प्रज्ञप्ति विद्या से उस कन्या को शीघ्र ही यहां ले आऊ। ऐसा कहकर उसने उसी समय कन्या उपस्थित की और भानु के साथ उसका पाणिग्रहण करवा दिया।[७३] प्रद्युम्न को कृष्ण ने अनेक राजकन्याए परणाई।[७४]

प्रद्युम्न का वैदर्भी से विवाह :

श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी जाम्ववती के शाव नामक महापराक्रमी पुत्र हुआ। वह प्रद्युम्न के समान वीर था। सत्यभामा के दूसरा पुत्र भानुककुमार हुआ, पर स्वभाव से वह कायर था।

एक दिन रुक्मिणी के अन्तर्मानस में विचार आया कि मेरे भाई रुक्मि की पुत्री वैदर्भी रूप मे अत्यन्त सुन्दर है। यदि उसके साथ मेरे पुत्र प्रद्युम्न का पाणिग्रहण हो तो कितना सुन्दर रहे। उस युग मे मामा की पुत्री के साथ विवाह करने की परम्परा थी, और उस विवाह को उचित माना जाता था। उसने एक दूत को अपने भाई के पास भेजा। रुक्मि ने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—'मैं अपनी पुत्री वैदर्भी को चाण्डाल को देना पसन्द करता हूँ पर कृष्ण वासुदेव के कुल मे देना योग्य नही समझता।'

जव यह समाचार दूत ने रुक्मिणी को कहा तो उसे वहुत ही पश्चात्ताप हुआ कि मैंने सन्देश भेजकर उचित नही किया। भाई के अपमान से रुक्मिणी का मुख म्लान हो गया। प्रद्युम्नकुमार ने

---

७३. त्रिपष्टि० ८।७।१—५

७४ (क) त्रिपष्टि० ८।७।६-७

(ख) कण्हेण वि अणिच्छतो वि पर पीइमुव्वहतेण विज्जाहर-धरणिगोयरपत्थिवकण्णाण सरिसजोव्वणगुणाण पाणि गाहिओ पासायगतो दोगुदुगदेवो इव भोए भुजमाणो निरुव्विग्गो विहरइ।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ९७

माता से पूछा—मा तुम क्यो मुरझा गई हो ? मुझे कारण बताओ, मैं तुम्हारी भावना पूर्ण करूगा। माता रुक्मिणी ने उसे सारी बात सुनादी।

प्रद्युम्न ने कहा—माता, आप चिन्ता न करे। मै आपकी इच्छा को पूर्ण करूगा। प्रद्युम्न शावकुमार को साथ लेकर भोजकट नगर गया। एक ने किन्नर का और दूसरे ने चाण्डाल का रूप धारण किया। सगीत कला के द्वारा नगर निवासियो के मन को उन्होने मुग्ध कर दिया। रुक्मि राजा ने जब उनके मधुर गायन की प्रशसा सुनी तब उन्हे अपने पास बुलाया। सगीत की सुमधुर स्वरलहरी पर वह भी झूम उठा। उस समय उसकी लडकी वैदर्भी भी वहा आगई और पिता की गोद मे बैठ गई। उसने भी उनका गायन सुना। गायन पूर्ण होने पर राजा रुक्मि ने उन्हे विराट् सम्पत्ति दी और पूछा आप कहा से आ रहे है ? उन्होने बताया कि हम स्वर्ग से द्वारिका आये, जहां वासुदेव श्रीकृष्ण राज्य कर रहे है। उसी समय वैदर्भी ने पूछा– कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का प्रद्युम्न नामक पुत्र है, क्या तुम उनको जानते हो ?

शाब ने कहा—जो रूप मे कामदेव के सदृश है, जो पृथ्वी का शृगार है ऐसे महापराक्रमी प्रद्युम्न को कौन नही जानता ?

यह सुन वैदर्भी के मानस मे प्रद्युम्न के प्रति प्रेम पैदा हुआ। उसी समय राजा का हाथी उन्मत्त होकर अपने स्थान को छोडकर भाग गया। वह नगर मे उपद्रव करने लगा। कोई भी महावत उसे वश मे न कर सका। उसने उपद्रव से तग आकर नगर मे यह उद्-घोषणा करवाई कि जो कोई भी हाथी को वश मे कर लेगा उसे राजा मनोवाञ्छित वस्तुए प्रदान करेगा। किसी ने भी उस उद्-घोषणा को स्वीकार नही किया, अन्त मे प्रद्युम्न और शाब ने उद्-घोषणा स्वीकार की। उन्होने उसी समय सगीत की सुमधुर लहरी से हाथी को वश मे कर लिया और उसी हाथी पर आरूढ होकर मस्ती मे झूमते हुए हस्तिशाला मे आये। हाथी वहा बाध दिया। राजा ने प्रसन्नता से दोनो को बुलाया और कहा—तुम्हे जो चाहिए सो मागलो।

उन्होने कहा—राजन् ! हमारे यहाँ भोजन बनाने वाला कोई नही है, अत आप अपनी पुत्री वैदर्भी को हमे देदे। वैदर्भी का नाम

सुनते ही राजा एकदम क्रुद्ध हुआ। उसने उसी समय उन्हे वाहर निकाल दिया। दोनो नगर के वाहर पहुंचे। शाब ने कहा—भाई! माता रुक्मिणी दु खी होती होगी अत विवाह का कार्य शीघ्र सपन्न कर हमे द्वारिका जाना चाहिए।

प्रद्युम्न अर्धरात्रि मे वैदर्भी के शयनगृह मे विद्यावल से पहुँचा। वैदर्भी को जगाकर उसके हाथ मे माता रुक्मिणी का पत्र दिया और कहा—मैं रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो मै तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहता हूँ। वैदर्भी की इच्छा से प्रद्युम्न ने उसी समय गाधर्वविवाह कर लिया। रात्रि भर वहा रह कर प्रात काल शीघ्र ही वह वहा से चल दिया। चलते समय उसने कहा—कोई तुमसे मेरा नाम पूछे तो वतलाना मत। मैंने मत्र शक्ति से तुम्हारे शरीर को मत्रित कर दिया है। कोई तुम्हे कष्ट नही दे सकता।

रात्रि भर जागरण के कारण प्रात काल वैदर्भी को गहरी निद्रा आगयी। प्रात काल धायमाता आयी और उसने वैदर्भी के हाथो मे ककण आदि विवाह चिह्न देखे तो चकित रह गई। वैदर्भी को जगाकर पूछने पर भी उसने कुछ भी उत्तर नही दिया। धाय माता ने जाकर रुक्मि राजा को सारी वात कह दी। रुक्मि राजा न भी पूछा, पर उत्तर न मिलने से उसे क्रोध आया। अनुचर को भेजकर प्रद्युम्न और शाव को जो चण्डाल के वेश मे थे, वुलाया और वैदर्भी को देते हुए कहा—इस कन्या को ग्रहण करो, और ऐसे स्थान पर चले जाओ जहा मैं तुम्हे वारह वर्ष तक भी न देख सकू।

प्रद्युम्न ने कहा—राजपुत्री! क्या तुम हमारे साथ चलना पसन्द करती हो?

राजपुत्री वैदर्भी ने स्वीकृति दी और वे वैदर्भी को लेकर चल दिये।

राजा रुक्मि राजसभा मे आया। उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ कि मै जोश मे होश को भूल गया और वैदर्भी को चण्डाल को सौंप दी।

राजा उदास मन से राजसभा मे वैठा। उसे रह रह कर अपने दुष्टकृत्य पर विचार आने लगा। उसी समय उसके कानो मे वाद्यो

की मधुर ध्वनि आयी। उसने सभासदो से पूछा—यह ध्वनि कहा से आ रही है। मगर किसी को उसका पता नही था। अनुचरो को भेजकर तलाश की गई, उन्होने आकर निवेदन किया—नगर के वाहर एक भव्य-भवन मे कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और शाव ठहरे हुए है। उनके साथ वैदर्भी भी है। राजा को समझने मे देर न लगी कि यह सारी करामात प्रद्युम्न की है। राजा ने अपने भागिनेय और जामाता प्रद्युम्न को बुलाया, और उत्सवपूर्वक वैदर्भी का प्रद्युम्न के साथ पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न किया। फिर वैदर्भी को लेकर प्रद्युम्न द्वारिका आया, माता रुक्मिणी अत्यधिक प्रसन्न हुई।[७५]

●●

---

७५ (क) त्रिषष्टि० ८।७।३८-८६

(ख) प्रद्युम्नचरितम्—महासेनाचार्य, सर्ग ८, ९ पृ० ८९-१७४

(ग) प्रद्युम्न चरित्र —रत्नचन्द्र गणी

(घ) वसुदेवहिण्डी—पृ० ९८-१००, मे प्रस्तुत कथा अन्य रूप से आयी है। विस्तार भय से उसे न लिखकर मूल ग्रन्थ अवलोकन की सूचना करता हूँ।

—लेखक

जरासंध का युद्ध

- जरासध का युद्ध के लिए प्रस्थान
- अरिष्टनेमि की स्वीकृति
- श्रीकृष्ण का द्वारिका से युद्ध के लिए प्रस्थान
- जरासध के साथ युद्ध
- जरासध की मृत्यु
- वासुदेव श्रीकृष्ण
- महाभारत मे जरासध-युद्ध का वर्णन
- समीक्षा

जरासंध का युद्ध

●

जरासध का युद्ध के लिए प्रस्थान ·

आचार्य हेमचन्द्र रचित त्रिपष्टिशलाकापुरुष चरित्र,[1] एव आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र रचित भव-भावना[2] व यति रत्नसुन्दर रचित अमम स्वामी चरित्र के अनुसार कितने ही व्यापारी व्यापारार्थ यवन द्वीप से समुद्र के रास्ते द्वारिका नगरी मे आये। द्वारिका के वैभव को देखकर वे चकित हो गये। रत्नकम्वल के अतिरिक्त वे जितनी भी वस्तुए लाये थे, सभी उन्होने द्वारिका मे बेच दी। रत्न-कम्बलो को लेकर वे राजगृह नगर पहुँचे। वे रत्नकम्वल उन्होने जीवयशा को वताई। जीवयशा को कम्वल पसन्द आए और उसने उन्हे आधी कीमत मे लेना चाहा। व्यापारियो ने मुँह मचकाते हुए कहा—यदि हमे इतने कम मूल्य मे देने होते तो द्वारिका मे ही क्यो न वेच देते, जहाँ पर इससे दुगुनी कीमत आ रही थी।

जीवयशा ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि द्वारिका नगरी कहाँ है? उसके राजा कौन है?

---

१. त्रिपष्टि ८।७।१३४-१४८।

२ भव-भावना गा २६५९-२६६५, पृ० १७६-१७७।

व्यापारी—द्वारिका समुद्र के किनारे है और वहाँ पर वसुदेव के पुत्र श्री कृष्ण राज्य कर रहे है। उनके भाई बलराम है। नगरी क्या है, स्वर्ग की अलकापुरी है।

यह सुनते ही जीवयशा चौकी। उसके आश्चर्य का पार न रहा। क्या मेरे पति कस को मारनेवाला श्रीकृष्ण अभीतक जीवित है? वह मरा नही है? वह रोने लगी तो जरासध ने कहा—पुत्री रो मत! मै अभी जाता हूँ और यादव कुल का समूल नाश कर देता हूँ। यह आश्वासन देकर और विराट् सेना लेकर जरासध युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ। अपशकुन होने पर भी वह आगे से आगे बढता रहा।

---

३. विभिन्न ग्रन्थो मे प्रस्तुत वर्णन प्रकारान्तर से आया है, जो सक्षेप मे इस प्रकार है—

उत्तरपुराण के अनुसार यह कथा इस प्रकार है—

कुछ व्यापारी जलमार्ग से व्यापार करते हुए भूल से द्वारवती नगरी पहुँचे, वहा की विभूति को निहार कर वे आश्चर्यचकित हुए, उन्होने द्वारवती नगरी से बहुत से श्रेष्ठ रत्न खरीदे। और उन्होने वे रत्न राजगृह नगरी मे जरासध को अर्पित किये, बहुमूल्य-रत्नो को देखकर जरासध ने चकित होकर पूछा—कहा से लाये? उन्होने द्वारवती का विस्तार से वर्णन किया?

—उत्तरपुराण—७१।५२-६४ पृ० ३७८-९।

हरिवशपुराण के अनुसार जरासध राजा के पास अमूल्य मणिराशियो के विक्रयार्थ एक वणिक पहुँचा। —५०, १-४।

शुभचन्द्राचार्य प्रणीत पाण्डव-पुराण मे एक समय किसी विद्वान् पुरुप ने राजगृह नगर पहुँच कर जरासध राजा को उत्तम रत्न अर्पित किये। राजा के पूछने पर उसने बताया कि मैं द्वारिकापुरी से आया हूँ। वहा भगवान् नेमिनाथ के साथ कृष्ण राज्य करते है। इस प्रकार उसके कथन से द्वारिका मे यादवो के स्थित होने के समाचार को जानकरके जरासध को उन पर बहुत ही क्रोध हुआ। वह उनके ऊपर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा।

—पाण्डवपुराणम् १९।८।११, पृ० ३९०।

अरिष्टनेमि की स्वीकृति .

शुभचन्द्राचार्य ने पाण्डव-पुराण मे लिखा है—जरासध विराट् सेना लेकर युद्ध के लिए आ रहा है, नारद से यह समाचार जानकर श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार से अपनी विजय के सम्वन्ध मे पूछा। नेमीश्वर ने मन्दहास्यपूर्वक 'ओम्' कहकर इस युद्ध मे प्राप्त होने वाली विजय की सूचना दी। श्री कृष्ण युद्ध के लिए समुद्यत हो गये।[४] किन्तु प्रस्तुत वर्णन, त्रिपष्टिशलाकापुरुप चरित्र, भव-भावना, हरिवश पुराण, उत्तर पुराण आदि अन्य ग्रन्थो मे नही है। श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार तो नेमिनाथ उस समय गृहस्थाश्रम मे थे, वे उस युद्ध मे साथ रहे हैं, अत उनके द्वारा स्वीकृति देना सभव हो सकता है, क्योकि वे गृहस्थाश्रम मे तीन ज्ञान के धारक थे। वे यह भी जानते थे कि प्रतिवासुदेव के साथ वासुदेव का युद्ध अनिवार्य रूप से होता ही है। प्रतिवासुदेव पराजित होते है और वासुदेव की विजय होती है।

श्री कृष्ण का द्वारिका से युद्ध के लिए प्रस्थान ·

श्रीकृष्ण भी बलराम, अरिष्टनेमि, व अपने अन्य परिजनो के साथ द्वारिका से युद्ध के लिए प्रस्थित हुए।[५] उन्होने द्वारिका से पैंतालीस योजन दूर सेनपल्ली मे पडाव डाला।[६] उससमय विद्याधर आदि आये और उन्होने समुद्र विजय अदि से प्रार्थना की कि हम आपके साथ

---

४. निर्हेतुसमरप्रीतो माधव नारदोऽब्रवीत्।
जरासधमहाक्षोभ वैरिविध्वसकारकम्॥
मुरारिरपि नेमीशमभ्येत्य पुरत. स्थित.।
अप्राक्षीत्क्षिप्रमात्मीय जय शत्रुक्षयोद्भवम्॥
नेमिर्नत्रामराधीशो विष्णुमोमित्यभापत।
स्मितार्द्रं. स्वजय ज्ञात्वा योद्धु विष्णुः समुद्ययौ॥

—पाण्डव पुराणम् १९।१२-१४, पृ० ३९०-३९१

५ त्रिपष्टि० ८।७।१५७-१९५

६ पचचत्वारिशत तु योजनानि निजात् पुरात्।
गत्वा तस्थौ सेनपल्या ग्रामे सग्रामकोविद॥

—त्रिपष्टि० ८।७।१९६

मिलना चाहते है, भविष्य में हम आपके नेतृत्व मे रहेगे। यद्यपि आपके कुल मे श्री कृष्ण जैसे बलिष्ट महापुरुष हैं जो अकेले ही जरासध को जीतने मे समर्थ है और भगवान् अरिष्टनेमि भी आपके कुल मे है। यद्यपि आपको किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नही है, किन्तु जरासध की सहायता मे कुछ बलवान् खेचर-विद्याधर आने वाले है अत उन्हे रोकने के लिए वसुदेव के नेतृत्व मे प्रद्युम्न व शाम्बकुमार आदि को हमारे साथ भेजिए, जिससे उनमे से एक भी यहाँ तक न आसके। यह सुनकर समुद्रविजय ने वैसा ही किया।[७] अरिष्टनेमि ने उस समय अपनी भुजा पर जन्मस्नात्र के समय देवताओ ने जो अस्त्रवारिणी औषधि बाँधी थी वह वसुदेव को दी।[८]

जरासंध के साथ युद्ध

उस समय मगधपति जरासध को उसके मत्री हसक ने निवेदन किया—हे राजन्! पूर्व मे कस ने बिना विचारे कार्य किया जिसका कटु परिणाम हम लोगो को भोगना पडा है। श्रीकृष्ण की सेना मे स्वय कृष्ण के अतिरिक्त नेमिनाथ, बलराम, दशार्ह, व पाण्डव आदि महान् योद्धा है, पर हमारी सेना मे आपके अतिरिक्त कौन वीर है जो उन वीरो से जूझ सके? अत हम मन्त्रियो की नम्र प्रार्थना है कि कृष्ण के साथ युद्ध न किया जाय।[९]

जरासध ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा—ज्ञात होता है कि कृष्ण ने तुझे रिश्वत दी है। इसी कारण तू ऐसा बोल रहा है।[१०]

हसक व अन्य मन्त्रियो के समझाने पर भी जरासध न समझ सका। उसने अपने सैन्य को चक्र-व्यूह रचने का आदेश दिया।[११]

श्रीकृष्ण ने गरुडव्यूह की रचना की।[१२] भ्रातृस्नेह से उत्प्रेरित होकर अरिष्टनेमि युद्ध स्थल पर साथ मे आये है, यह जानकर

---

७. त्रिषष्टि० ८। ७। १९७-२०५

८. त्रिषष्टि० ८। ७। २०६

९. त्रिषष्टि० ८। ७। २०७-२२५

१०. त्रिषष्टि० ८। ७। २२६

११ त्रिषष्टि० ८। ७। २२७-२३२-२४१

१२. त्रिषष्टि० ८। ७ २४२-२६०

शकेन्द्र ने मातली नामक सारथी के साथ अपना रथ उनके लिए भेजा।[13] दोनो ओर से भयकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनो ओर के सैनिक अपनी वीरता दिखलाने लगे। बाणो की वर्षा होने लगी। जरासध के पराक्रमी योद्धाओ ने जब वीरता दिखलायी तो यादव भी पीछे न रहे। उन्होने भी जरासध की सेना को तितर-बितर कर दिया। जब जरासध की सेना भागने लगी तब स्वय जरासध युद्ध के मैदान मे आया, और उसने समुद्रविजय जी के कई पुत्रो को मार दिया। उस समय उसका रूप साक्षात् काल के समान था। यादव सेना इधर उधर भागने लगी। तब बलराम ने जरासध के अट्ठाइस पुत्रो को मार दिया। यह देख जरासध ने बलराम पर गदा का प्रहार किया। जिससे रक्त का वमन करते हुए बलराम भूमि पर गिर पडे। उस समय यादव सेना मे हाहाकार मच गया। पुन जरासध बलराम पर प्रहार करने को आ रहा था कि वीर अर्जुन ने जरासध को बीच मे ही रोक लिया। इस बीच श्री कृष्ण ने जरासध के अन्य उनहत्तर (६९) पुत्रो को भी मार डाला। अपने पुत्रो को दनादन मारते हुए देखकर जरासध कृष्ण पर लपका। उस समय चारो ओर यह आवाज फैल गई कि 'कृष्ण मर गये है।' यह सुनते ही मातली सारथी ने अरिष्टनेमि से नम्र निवेदन किया—प्रभु! आपके सामने जरासध की क्या हिम्मत है, स्वामी! यदि आपने इस समय जरा भी उपेक्षा की तो यह यादव कुल नष्ट हो जाएगा। यद्यपि आप सावद्य कर्म से विमुख है, तथापि लीला बताये बिना इस समय गति नही है। यह सुनते ही अरिष्टनेमि ने कोप किये बिना ही पौरदर नामक शख बजाया। शखनाद को सुनते ही यादव सेना स्थिर हो गई[14] और शत्रु सेना क्षोभ को प्राप्त हुई। फिर अरिष्टनेमि के सकेत से मातली सारथी ने उस रथ को युद्ध के मैदान मे घुमाया। अरिष्टनेमि ने

---

१३ भ्रातृस्नेहाद्युयुत्सु च शक्रो विज्ञाय नेमिनम्।
प्रैषीद्रथ मातलिना जैत्रशस्त्राचित निजम्॥
—त्रिषष्टि ८।७ २६०-६१

१४ त्रिषष्टि ८।७ ४२०-४२६

हजारों बाणो की वृष्टि की। उन बाणो की वृष्टि ने किसी के रथ, किसी के मुकुट, किसी की ध्वजा छेद दी, किन्तु किसी भी शत्रु की शक्ति अरिष्टनेमि के सामने युद्ध करने की नही हुई। प्रतिवासुदेव को वासुदेव ही नष्ट करता है, यह एक मर्यादा थी। अत अरिष्ट-नेमि ने जरासध को मारा नही।[१५] अपितु जरासध के सैनिक दल को कुछ समय तक रोक दिया। तब तक बलदेव और श्रीकृष्ण स्वस्थ होगये। यादव सेना भी पुन लडने को तैयार होगई।

जरासध ने पुन युद्ध के मैदान मे आते ही कृष्ण से कहा—अरे कृष्ण! तू कपट मूर्ति है। आज दिन तक तू कपट से जीवित रहा है, पर आज मैं तुझे छोड़नेवाला नही हूँ। तूने कपट से ही कंस को मारा है, कपट से ही कालकुमार को मारा है। तूने अस्त्र-विद्या का तो कभी अभ्यास ही नही किया है। पर आज तेरी माया का अन्त लाऊँगा और मेरी पुत्री जीवयशा की प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा।[१६]

कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा– अरे जरासध! तू इस प्रकार वृथा अहकार के वचन किसलिए बोलता है? वाक्‌चातुर्य न दिखाकर शक्ति दिखा। मैं शस्त्रविद्या भले नही सीखा तथापि तुम्हारी पुत्री जीवयशा की अग्नि प्रवेश की प्रतिज्ञा को मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।"

जरासंध की मृत्यु

फिर दोनो युद्ध के मैदान मे ऐसे कूदे कि देखने वाले अवाक् रह गये। उनकी आँखे ठगी सी रह गई। धनुष की टकार से आकाश गूंजने लगा। पर्वत भी मानो कापने लगे। जरासध बाणो की वर्षा करने लगा पर श्रीकृष्ण उन सभी बाणो का भेदन छेदन करने

---

१५ प्रतिविष्णुर्विष्णुनैव वध्य इत्यनुपालयन्।
स्वामी त्रैलोक्यनाथोऽपि जरासध जघान न॥

—त्रिषष्टि ८।७।४३२

१६ तव प्राणै सहैवाद्य माया पर्यंतयाम्यरे।
एषोऽद्य जीवयशस प्रतिज्ञा पूरयामि च॥

—त्रिषष्टि ८।७।४३६-४३८

लगे। जब जरासध के पास सभी अन्यान्य शस्त्र और अस्त्र समाप्त हो गये तब उसने अन्तिम शस्त्र के रूप मे चक्र शस्त्र को हाथ लगाया। उसे आकाश मे घुमाकर ज्यो ही श्रीकृष्ण पर चक्र का प्रहार किया कि एक क्षण के लिए दर्शक स्तम्भित हो गये। किन्तु चक्र श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उन्हे बिना कष्ट दिये उनके पास अवस्थित हो गया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने हाथ मे ले लिया। उसी समय 'नौवा वासुदेव उत्पन्न हो गया है' ऐसी उद्-घोषणा हुई।[१७]

श्री कृष्ण ने दया लाकर जरासध से कहा—अरे मूर्ख ! क्या यह भी मेरी माया है। अभी भी तू जीवित घर चला जा, मेरी आज्ञा का पालन कर और व्यर्थ के श्रम को छोडकर अपनी सम्पत्ति भोग। वृद्ध अवस्था आने पर भी जीवित रह।

जरासध ने कहा—कृष्ण ! यह चक्र मेरे सामने कुछ भी नही है। मैंने इसके साथ अनेक वार क्रीडा की है, यह तो लघु पौधे की तरह उखाड कर फेका जा सकता है। तू चाहे तो चक्र को फेक सकता है। फिर श्री कृष्ण ने वह चक्र छोड़ा। पुण्य की प्रवलता से दूसरो के शस्त्र भी स्वय के बन जाते है। चक्र ने जाकर जरासध का मस्तिष्क छेदन कर दिया। जरासध मरकर चतुर्थ नरक मे गया। श्री कृष्ण का सर्वत्र जय जयकार होने लगा।[१८]

वासुदेव श्रीकृष्ण :

जरासध की मृत्यु होगई, यह जानकर श्रीकृष्ण के जो शत्रु राजा थे, जिनका निरोध अरिष्टनेमि ने कर रखा था, उनको अरिष्टनेमि

---

१७ (क) जाते सर्वास्त्रवैफल्ये वैलक्ष्यामर्षपूरित ।
चक्र सस्मार दुर्वारमन्यास्त्रैर्मगधेश्वरः ॥
"नवमो वासुदेवोऽयमुत्पन्न इति घोषिण. ।
गधाबुकुसुमवृष्टि कृष्णे व्योम्नोऽमुचत्सुरा ॥
—त्रिषष्टि ८ । ७ । ४४६-४५७

(ख) हरिवश पुराण ५२ । ६७ । ६०१ ।

१८ (क) त्रिषष्टि ८ । ७ । ४५३-४५७

(ख) हरिवश पुराण ५२ । ८३-८४, पृ० ६०२

ने मुक्त कर दिया। वे सभी राजा अरिष्टनेमि के चरणारविन्दो मे आकर प्रार्थना करने लगे—भगवन् ! आपने हमे उसी समय जीत लिया। अकेले वासुदेव ही प्रतिवासुदेव को हनन करने में समर्थ है फिर उनकी सहायता के लिए आप जैसे लोकोत्तर पुरुप हों तो कहना ही क्या है ? भवितव्यता से जो कुछ भी हुआ है उसके लिए हम हृदय से क्षमाप्रार्थी है, हम आपकी शरण मे आये है।[१९]

सभी राजाओ को साथ लेकर अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के पास आये। श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि का हृदय से स्वागत किया, और दोनो परस्पर प्रेमपूर्वक मिले। अरिष्टनेमि के कहने से तथा समुद्रविजयजी की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने उन राजाओ का तथा जरासंध के बचे हुए पुत्रो का सत्कार किया।[२०] जरासध के पुत्र सहदेव को मगध देश के चतुर्थ भाग का राजा बनाया।[२१] समुद्रविजयजी के पुत्र महानेमि को शौर्यपुर का राज्य दिया। हिरण्यनाभ के पुत्र रुक्मनाभ को कौशल देश का राज्य दिया।[२२] उग्रसेन के 'धर' नामक पुत्र को मथुरा का राज्य दिया।[२३] अरिष्टनेमि की आज्ञा से मातली नामक सारथी भी रथ को लेकर शक्रेन्द्र के पास चला गया। अन्य राजागण भी अपनी छावनी मे चले गये।[२४]

दूसरे दिन समुद्रविजय और कृष्ण वासुदेव, प्रद्युम्न, शाम्बकुमार सहित वसुदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे विद्याधरो पर

---

१९. त्रिषष्टि ८ । ८ । १-४

२०. त्रिषष्टि ८ । ८ । ५-७

२१ (क) त्रिषष्टि ८ । ८ । ८

(ख) हरिवश पुराण—५३ । ४४ । ६०७

२२ त्रिषष्टि ८ । ८ । ६

२३. त्रिषष्टि ८ । ८ । १०

२४. (क) त्रिषष्टि ८ । ८ । ११

(ख) गतो मातलिरापृच्छ्य सेवेय स्वामिनोऽन्तिकम् ।
यादवाः शिविरस्थान निज जग्मुः सपार्थिवाः ।।
—हरिवशपुराण ५२ । ६१ । ६०३

विजय पताका फहरा कर वहा आये। जरासध के पुत्र सहदेव ने जरासध का अग्निसस्कार किया। जीवयशा ने अपने पिता की मृत्यु जानकर अग्नि मे प्रवेश कर अपने जीवन को समाप्त किया।[२५] यादवो ने उसका उत्सव मनाया। उस स्थान का नाम सिनपल्ली के स्थान पर आनन्दपुर रखा।[२६]

श्रीकृष्ण ने कुछ समय मे तीन खण्ड की साधना की और सर्वत्र विजय वैजयन्ती लहरा कर द्वारिका आये। वहा पर आनन्दपूर्वक रहकर तीन खण्ड का राज्य करने लगे।[२७]

महाभारत में जरासंध युद्ध वर्णन ·

जैन साहित्य मे जैसा जरासध युद्ध का वर्णन मिलता है, वैसा महाभारत मे नही है। वह विल्कुल ही पृथक् ढग का है। वह वर्णन इस प्रकार है—

महाभारत के अनुसार भी जरासध एक महान् पराक्रमी सम्राट् था। उसका एकच्छत्र साम्राज्य था। जब कृष्ण ने कस को मार डाला और जरासध की कन्या विधवा हो गई तब श्रीकृष्ण के साथ जरासध की शत्रुता हो गई। जरासध ने वैर का वदला लेने के लिए अपनी राजधानी से ही एक बड़ी भारी गदा निन्यानवे बार घुमाकर जोर से फेकी। वह गदा निन्यानवे योजन दूर मथुरा के पास गिरी।

---

२५ पत्यु पितुश्च सहार सकुलस्यापि वीक्ष्य सा।
स्वजीवित जीवयशा जहौ ज्वलनसाधनात् ॥२६॥

२६ (क) चुस्कुन्दिरे यथानन्द यदवस्तज्जनार्दनः।
तत्रानन्दपुर चक्रे सिनपल्लीपदे पुरम् ॥२७॥
—त्रिपष्टि ८। ८।

(ख) आनन्द ननृतुर्यत्र यादवा मागधे हते।
आनन्दपुरमित्यासीत्तत्र जैनालयाकुलम् ॥
—हरिवशपुराण ५३। ३०। ६०६

२७ (क) त्रिषष्टि ८। ८। २८

(ख) हरिवशपुराण ५३। ४१-४२। पृ० ६०६

उस समय श्री कृष्ण मथुरा मे ही थे, पर वह गदा उनकी कुछ भी हानि न कर सकी।[२८]

जरासघ के हस और डिम्भक नामक सेनापति बड़े बहादुर थे, अत यादवो ने उनके साथ युद्ध करना अच्छा नही समझा।[२९] जव वे यमुना मे डूवकर मर गये तव श्रीकृष्ण ने विचारा कि जरासघ को युद्ध मे मारना कठिन ही नही, कठिनतर है अत उसे द्वन्द्व युद्ध मे ही हराया व मारा जाय।[३०] इसलिए श्रीकृष्ण भीमसेन व अर्जुन के साथ ब्राह्मणो के वेश मे मगध की ओर चल दिये। वे जरासघ के वहाँ पर पहुँचे। उन्हे देखते ही जरासघ आसन से उठकर खड़ा हुआ। उनका आदर सत्कार कर कुशल प्रश्न पूछे। भीमसेन और अर्जुन मौन रहे। बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने कहा—राजन! ये इस समय मौनी है इसीलिए नही बोलेगे। आधी रात्रि के पश्चात् ये आपसे वातचीत करेगे।[३१]

तीनो वीरो को यज्ञशाला मे ठहराकर जरासघ अपने रनवास मे चला गया। अर्धरात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह फिर उनके पास आया। उनके अपूर्व वेश को देखकर जरासघ को आश्चर्य हुआ। ब्रह्मचारियो की वेशभूषा से विरुद्ध तीनो की वेशभूषा को देखकर जरासघ ने कहा—हे स्नातक ब्राह्मणो! मै अच्छी तरह जानता हूँ कि स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण गृहस्थाश्रम मे जाने से पहले न तो कभी माला पहनते हैं और न चन्दन आदि लगाते हैं। तुम अपने को ब्राह्मण वता चुके हो, पर मुझे तुम मे क्षत्रियो के भाव दीख पडते है। तुम्हारे चेहरे पर क्षत्रियो का तेज साफ झलक रहा है। सत्य कहो तुम कौन हो?[३२]

श्रीकृष्ण ने अपना परिचय दिया ओर साथ ही भीम व अर्जुन का भी। अपने आने का प्रयोजन वतलाते हुए उन्होने कहा—तुमने

---

२८ महाभारत, सभापर्व, अ० १९, श्लोक १९-२५

२९ महाभारत, सभापर्व, अ० १९ श्लोक २७-२८

३०. वही, सभापर्व, अ० २० श्लोक १-२

३१ वही, सभापर्व, अ० २१ श्लोक ३०-३४

३२. महाभारत, सभापर्व, अ० २१, श्लोक ३५-४८

वलपूर्वक वहुत से राजाओ को हराकर, बलिदान की इच्छा, से अपने यहाँ कैद कर रखा है। ऐसा अति कुटिल दोप करके भी तुम अपने को निर्दोप समझ रहे हो। कौन पुरुष, विना किसी अपराध के अपने सजातीय भाइयो की हत्या करना चाहेगा ? फिर तुम तो नृपति हो। क्या समझ कर उन राजाओ को पकडकर महादेव के आगे उनका वलिदान करना चाहते हो ? हम लोग धर्म का आचरण करने वाले और धर्म की रक्षा करने मे समर्थ है। इस कारण यदि हम तुम्हारे इस क्रूर कार्य मे हस्तक्षेप न करे तो हमे भी तुम्हारे किए पाप का भागी वनना पडेगा। हमने कभी और कही मनुष्य वलि होते नही देखी है, न सुनी ही है। फिर तुम मनुष्यो के वलिदान से क्यो देवता को सन्तुष्ट करना चाहते हो ? हे जरासध ! तुम क्षत्रिय होकर पशुओ की जगह क्षत्रियो की वलि देना चाहते हो ! तुम्हारे सिवाय कौन मूढ ऐसा करने का विचार करेगा ? तुम्हे उन कर्मो का फल अवश्य भोगना पडेगा। तुम अपनी जाति का विनाश करते हो और हम लोग पीडितो की सहायता करते है।[33]

---

३३ त्वया चोपहृता राजन् ! क्षत्रिया लोकवासिन
तदाग क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम्।
राजा राज्ञ कथ साधूंन्हिस्यान्नृपतिसत्तम !
तद्राज्ञ सनिगृह्य त्व रुद्रायोपहिजीर्षसि ॥
अस्मास्तदेनोपगच्छेत्कृत वार्हद्रथ ! त्वया।
वय हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिण ॥
मनुष्याणा समालम्भो न च दृष्ट कदाचन।
स कथ मानुषैर्देव यष्टुमिच्छसि शकरम् ॥
सवर्णो हि सवर्णाना पशुसज्ञा करिष्यसि।
कोऽन्य एव यथा हि त्व जरासध ! वृथामति ॥
यस्या यस्यामवस्थाया यद्यत्कर्म करोति य।
तस्या तस्यामवस्थाया तत्फल समवाप्नुयात् ॥
ते त्वा ज्ञातिक्षयकर वयमार्तानुसारिण।
ज्ञातिवृद्धिनिमित्तार्थं विनिहन्तुमिहाऽऽगता ॥
— महाभारत, सभापर्व, अ० २२, श्लो० ८ से १४

हे मगधराज ! या तो तुम उन राजाओ को छोड़ दो, या फिर हमारे साथ युद्ध करो ।[३४]

जरासध ने कृष्ण से कहा—जिन राजाओ को मैं अपने वाहुवल से हरा चुका हू उन्ही को मैने यहाँ वलिदान के लिए कैद कर रखा है । हारे हुए राजाओ के अतिरिक्त यहा कोई कैद नही है । इस पृथ्वी पर ऐसा कौन वीर है, जो मेरे साथ युद्ध कर सके । मैने जिन राजाओ को कैद कर रखा है उन्हे तुमसे डरकर कैसे छोड सकता हूँ ? मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने को तैयार हूँ ।[३५]

कृष्ण ने जरासध से पूछा—हम तीन से से किसके साथ युद्ध करना चाहते हो ?[३६]

जरासध ने भीमसेन को पसद किया ।[३७] दोनो का परस्पर युद्ध चलने लगा । वे वाहुपाश, उरोहस्त, पूर्णकुम्भ, अतिक्रान्त मर्यादा, पृष्टभग, सम्पूर्णमूर्च्छा, तृणपीड, पूर्णयोग, मुष्टिक आदि विचित्र युद्ध करके अपना बल और कौशल दिखलाने लगे । दोनो ही वीर युद्ध-कला मे सुशिक्षित और वल मे भी वरावर थे ।[३८]

उन दोनो का युद्ध कार्तिककृष्णा प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर चतुर्दशी की रात्रि तक चलता रहा । जरासध थक गया था, वह युद्ध कुछ समय के लिए वद करना चाहता था ।[३९] तब श्रीकृष्ण ने भीम से कहा—हे कुन्तीनन्दन ! थका हुआ शत्रु पीड़ा नही दे सकता और वडी सुगमता से मारा जा सकता है । इसलिए इस समय तुम इससे बरावर युद्ध करो । श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने से भीम अधिक उत्तेजित हुए उन्होने झपटकर बड़े वेग से उस पर हमला किया ।[४०] फिर वह उसे ऊपर उठा कर वेग से घुमाने लगा । सौ वार ऊपर

---

३४ महाभारत वही श्लो० २६

३५ महाभारत, सभापर्व, अ० २२, श्लो० २७-३०

३६ वही, अ० २३, श्लो० २

३७ वही, अ० २३, श्लो० ४

३८ वही, अ० २३ श्लो० ५-२०

३९ वही, अ० २३ श्लो० २५-३०

४० महाभारत, सभापर्व, अ० २३, श्लो० ३१-३५

उठाकर भीमसेन ने जरासध को पृथ्वी पर पटका और घुटना मारकर उसकी पीठ की हड्डी तोड़ डाली। फिर गरजते हुए भीमसेन ने उसे पृथ्वी पर खूब रगड चुकने के पश्चात् बीच से उसकी टाँगे चीर डाली।[४१]

तत्पश्चात् तीनो वीर जरासध के पताका युक्त रथ मे बैठकर वहाँ पहुँचे जहाँ जरासध ने राजाओ को कैद कर रखा था। उनको बन्धन से मुक्त कर श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन उन राजाओ के साथ गिरिव्रज से वाहर निकले।[४२]

श्री कृष्ण ने जरासध के लड़के सहदेव को मगध देश की राजगद्दी देकर राज्याभिषेक कर दिया।[४३] श्रीकृष्ण वहाँ से लौटकर इन्द्रप्रस्थ चले आये।

समीक्षा

महाभारत के अनुसार जरासध वध कौरवो और पाण्डवो के युद्ध से पहले हुआ। कौरव-पाण्डव युद्ध के समय जरासध विद्यमान नही था।[४४]

महाभारत के प्रस्तुत प्रसग मे श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ब्राह्मण स्नातक का वेश धारण करके जरासध के पास जाते है, पर यह समझ मे नही आता कि उनके गुप्त वेश धारण करने का क्या प्रयोजन था ?

दूसरी बात, जरासध की राजसभा मे भीमसेन और अर्जुन मौन हो जाते है। तब श्रीकृष्ण कहते है कि इन लोगो ने मौनव्रत ग्रहण कर रखा है, एतदर्थ ये अभी आपसे वार्तालाप नही करेगे। आधी रात के पश्चात् ये बोलेगे। फिर आधी रात मे जरासध उनके पास आता है।

इस कथन मे भी एक प्रकार का कला-कौशल दिखलाया गया है, पर यह स्पष्ट है कि यह कला-कौशल महापुरुष के योग्य नही

---

४१. वही, सभापर्व २४, श्लो० ५-६

४२ वही, सभापर्व २४, श्लो० १०-१३

४३ वही, श्लो० ४०-४३

४४ महाभारत देखिए—

था। महाभारत का पर्यवेक्षण करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि कृष्ण का उद्देश्य जरासध पर आधी रात मे हमला कर उसका वध कर देने का नही था। उन्होने ऐसा किया भी नही। युद्ध उस रात्रि मे नही, किन्तु दूसरे दिन चालू होता है। बाबू बकिमचन्द्र ने अपने कृष्ण चरित्र मे इस सम्बन्ध मे काफी ऊहापोह किया और वे अन्त मे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रस्तुत प्रसग महाभारत मे बाद मे प्रक्षिप्त किया गया है या लेखक की असावधानी से यह भूल हो गई है।[४५]

●●

४५. श्रीकृष्णचरित्र—बाबू बकिमचन्द्र, पृ० २२७-२२९ गुजराती अनुवाद।

द्रौपदी का स्वयंवर और अपहरण

●

- द्रौपदी के स्वयवर मे श्रीकृष्ण
- द्रौपदी का अपहरण
- द्रौपदी का उद्धार
- शख-शब्द का मिलाप
- पाण्डवो का निर्वासन
- पाण्डु मथुरा की स्थापना

द्रौपदी का स्वयंवर और अपहरण

●

द्रौपदी के स्वयंवर में श्रीकृष्ण :

सतीशिरोमणि द्रौपदी पाञ्चाल जनपद के अधिपति द्रुपद राजा की पुत्री थी। उसकी माता का नाम चूलनी था।[1] उसका रूप सुन्दर ही नही, सुन्दरतम था। ज्यो-ज्यो युवावस्था आती गई त्यो-त्यो रूप भी निखरता गया। एक दिन स्नान आदि से निवृत्त होकर, वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर वह अपने पिता द्रुपद राजा को नमस्कार करने गई। पिता ने वडे प्यार से उसे अपनी गोद मे बिठाया। उस दिन द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य को निहार कर राजा आश्चर्य चकित रह गया। उसने उसे स्नेह-स्निग्ध शब्दो मे सम्बोधित करते हुए कहा—पुत्री! यदि मैं किसी राजा या युवराज को तुझे भार्या के रूप मे अर्पित करू तो सभव है तू सन्तुष्ट हो या न भी हो। इससे मेरे अन्तर्मानस मे जीवन पर्यन्त सन्ताप बना रह सकता है अतः श्रेयस्कर यही है कि मै स्वयवर की रचना करू और

---

१ (क) पचालेसु जणवएसु कपिल्लपुरे नाम नगरे होत्था' तत्थण दुवए नाम राया 'तस्स ण चुल्लणी देवी।

—ज्ञातासूत्र० अ० १६

(ख) त्रिपष्टि० ८।१०

तू स्वेच्छा से जिस राजा या युवराज का वरण करे वही तेरा पति हो।

इसके पश्चात् राजा द्रुपद ने अपने नगर कपिलपुर मे स्वयवर के लिए भिन्न-भिन्न देशो के राजाओ को आमन्त्रित किया। उन्होने सर्वप्रथम निमत्रण कृष्ण वासुदेव और उनके दशार्ह आदि राजपरिवार को दिया।[२]

दूत द्वारा स्वयवर मे उपस्थित होने के निमत्रण को जानकर कृष्ण ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और आदेश दिया कि सुधर्मा सभा मे जाकर सामुदायिक भेरी बजाओ। दूत ने महोद्घोष से भेरी बजायी। भेरी की ध्वनि को श्रवण करते ही समुद्रविजय प्रमुख दश दशार्ह यावत् महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवर्ग स्नानकर विभूषित हो, वैभव, ऋद्धि व सत्कार के साथ कोई घोडे पर बैठकर, कोई पैदल, श्रीकृष्ण वासुदेव के पास आये।

कृष्ण ने कौटुम्बिक पुरुषों को आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार करने का आदेश दिया। स्वय स्नानादि से निवृत्त हो, वस्त्रालकार से विभूषित हो, समस्त परिवार के साथ पाञ्चाल जनपद के काम्पिल्य-नगर की सीमा पर पहुँचे। स्थान-स्थान पर अनेकानेक सहस्र नृप उपस्थित हुए। राजा द्रुपद ने कृष्ण वासुदेव आदि सभी राजाओ का कपिलपुर से बाहर जा अर्घ्य और पाद्य से सत्कार सन्मान किया। सभी अपने अपने लिए नियत आवास मे उतरे। द्रुपद के कौटुम्बिक पुरुषो ने अशनादि से उनकी अभ्यर्थना की।[३]

काम्पिल्य नगर के बाहर गगा महानदी के सन्निकट एक विशाल स्वयवर-मण्डप बनाया गया, स्वयवर मे रखे हुए आसनो पर राजाओ

---

२ (क) ज्ञातासूत्र अ० १६

(ख) पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग ४

३ तए ण दुवए राया वासुदेवपामुक्खाण बहूण रायसहस्साण आगम जाणेत्ता पत्तेय पत्तेय हत्थिखध जाव परिवुडे अग्घ च पज्ज च गहाय सव्विड्ढीए कपिल्लपुराओ निग्गच्छइ जेणेव ते वासुदेव पामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ सक्कारेइ, सम्माणेइ···

—ज्ञातासूत्र १६

के नाम अकित कर दिये गये। स्वयंवर के दिन कृष्ण आदि सभी राजा अपने-अपने आसनो पर आसीन हुए। राजा द्रुपद ने पुन· सभी अतिथियो का स्वागत किया और श्रीकृष्ण वासुदेव के पास खडे होकर श्वेत चवर ढोरने लगे। द्रौपदी पूर्वभव मे निदानकृत थी अत. उसने पाँच पाण्डवो के गले मे माला डाली और बोली—मैंने पाँच पाण्डवो का वरण किया है। कृष्ण वासुदेव प्रमुख सभी राजाओ ने महान् शब्द से उद्‌घोष किया—नृपवर ! कन्या द्रौपदी ने पाण्डवो का वरण किया, सो अच्छा किया। इसके पश्चात् राजा द्रुपद ने पाँचो पाण्डवो के साथ द्रौपदी का पाणिग्रहण कर दिया।[४] राजा पाण्डु के आमत्रण पर कृष्ण वासुदेव प्रमुख राजागण हस्तिनापुर पहुँचे। सभी पाण्डव तथा द्रौपदी देवी के कल्याण महोत्सव मे सम्मिलित हुए।

प्रस्तुत प्रसग मे श्रीकृष्ण वासुदेव को सभी राजाओ का प्रमुख बताया गया है। प्रथम दूत राजा द्रुपद ने उन्ही के पास भेजा था। राजा द्रुपद श्रीकृष्ण वासुदेव के ऊपर चवर ढोरने लगा, आदि बाते सिद्ध करती है कि श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व महान् था। वे अपने समय के एक विशिष्ट राजा थे।

वैदिक परम्परा के ग्रन्थो के अनुसार स्वयवर मे राधावेध[५] की कसौटी रखी गई थी। वीर अर्जुन ने वह राधावेध किया जिससे द्रौपदी ने अर्जुन के गले मे वरमाला डाली। माता गाधारी को यह

---

४ "पुव्वकयनियाणेण चोइज्जमाणी चोइज्जमाणी जेणेव पचपडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते पच पडवे तेण दसद्धवण्णेण कुसुमदामेण आवेढियपरिवेढिय करेइ, करित्ता एव वयासी—एए ण मए पच पडवा वरिया।"

—ज्ञाता धर्मकथा, अ० १६, पृ० ४८७

५ पाण्डवचरित्र मे देवप्रभसूरि ने भी राधावेध का उल्लेख किया है, अर्जुन ने राधावेध किया, द्रौपदी के मन मे पाँचो पाडवो के प्रति राग जागृत हुआ, उसने अर्जुन के गले मे माला डाली, पर माला पाँचो के गले मे दीखने लगी। सभी विचार मे पड गए। उसी समय चारणश्रमण आये और उन्होने पूर्वभव का कथन किया और द्रौपदी ने पाचो का वरण किया—सर्ग० ४, पृ० १०५-१२२

बात ज्ञात नही थी। अर्जुन ने माता गांधारी से कहा—माता ! मै एक वस्तु लेकर आया हूँ। माता गाधारी ने सहज रूप से कह दिया अच्छा, तुम पाँचो भाई बाँट कर लेलो। माता की आज्ञा का पालन करने के लिए पाँचो भाइयो के साथ द्रौपदी का पाणिग्रहण हुआ।

द्रौपदी का अपहरण :

एक दिन पाण्डुराज पाँच पाण्डवो, कुन्ती देवी, द्रौपदी देवी और अन्त पुर के अन्य परिजनो से सवृत सिंहासनासीन थे। उस समय कच्छुल्ल नारद जो बाहर से भद्र व विनीत प्रकृति के लगते थे, पर अन्तरग से कलुषितहृदय वाले थे[६], घूमते-घामते हस्तिनापुर नगर मे आये और शीघ्र गति से पाण्डुराज के भवन मे प्रविष्ट हुए।

नारद ऋषि को आते देखकर पाण्डु राजा ने पाँच पाण्डवो व कुन्ती देवी सहित आसन से उठकर, सात-आठ कदम सन्मुख जाकर तीन बार आदक्षिरणा-प्रदक्षिणा कर वन्दन व नमस्कार किया, और योग्य आसन पर बैठने के लिए आमन्त्रित किया।

नारदऋषि ने आसन भूमि पर पानी के छीटे दिये, दर्भ बिछाया, उस पर आसन डाला तथा शान्ति से बैठे। उन्होने पाण्डुराज से राज्य के सम्बन्ध मे तथा अन्य अनेक समाचार पूछे।

पाण्डुराज, कुन्ती देवी, और पाँच पाण्डवो ने नारद ऋषि का सत्कार-सन्मान किया पर द्रौपदी ने नारद को असयत, अविरत, अप्रतिहत प्रत्याख्यात-पापकर्मा जानकर उनका आदर-सत्कार नही किया, और न उनकी पर्युपासना ही की।[७]

नारद मन ही मन सोचने लगे—द्रौपदी अपने रूप-लावण्य के कारण और पाँचो पाण्डवो को पतिरूप मे पाकर गर्विष्ठा हो गई है,

---

६ इम च ण कच्छुल्लणारए दसणेण इअभद्दए विणीए अतो अतो य कलुसहिए।

—ज्ञाताधर्म अ० १६, पृ० ४६१

७ (क) तए ण सा दोवई देवी कच्छुल्लनारय असजय अविरय अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्म ति कट्टु नो आढाइ नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, नो पज्जुवासइ।

—ज्ञाताधर्म अ० १६, पृ० ४६४

इसी कारण यह मेरा आदर नही कर रही है। इसका अप्रिय करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।[८]

इस प्रकार विचार कर वे वहाँ से चल दिये। आकाश मार्ग से उड़ते हुए धातकीखण्ड द्वीप के भरतक्षेत्र की अमरकका नगरी मे पहुँचे। वहाँ का राजा पद्मनाभ था, जो उस समय अपनी सातसौ रानियो के साथ अन्त.पुर मे बैठा था। नारद सीधे उसके पास पहुँचे। राजा पद्मनाभ ने उनका आदर-सत्कार किया। नारद ने भी उनके कुशल समाचार पूछे।

राजा पद्मनाभ अपनी रानियो को असाधारण एव अनुपम सौन्दर्यशालिनी मानता था। उसने नारद से पूछा—हे देवानुप्रिय! आप अनेक ग्रामो नगरो यावत् घरो मे प्रवेश करते है। मेरी रानियो का जैसा परिवार है, क्या आपने ऐसा परिवार अन्यत्र कही देखा है?[९]

नारद, पद्मनाभ की बात सुनकर खिल-खिलाकर हँस पडे। बोले—पद्मनाभ! तू कूपमण्डूक सदृश है। हे देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे हस्तिनापुर नगर है। वहाँ द्रुपदराजा की पुत्री चूलनी देवी की आत्मजा, पाण्डुराजा की पुत्रवधू, और पाँच पाण्डवो की पत्नी द्रौपदी देवी है। वह रूप लावण्य में उत्कृष्ट है। तेरा यह

(ख) त्रिषष्टि० ८।१०।२

(ग) हरिवश पुराण के अनुसार द्रौपदी आभूषण धारण करने मे व्यस्त थी अत· उसने नारद की ओर देखा नही।

—देखिए ५४।५, पृ० ६०६

८ (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० १६

(ख) भाविनी दुःखभागेषा कथ न्विति विचिन्तयन्।
निर्ययौ तद्गृहात् क्रुद्धो विरुद्धो नारदो मुनि.॥

—त्रिषष्टि० ८।१०।३

(ग) हरिवशपुराण ५४।६-७

९ (क) त्रिषष्टि० ८।१०।५-६

(ख) हरिवशपुराण ५४।८-६

रानीसमूह उसके छेदे हुए अंगूठे के सौवें हिस्से की बराबरी करने के योग्य भी नही है।

नारद ऋषि राजा पद्मनाभ की अनुमति लेकर वहाँ से चल दिये।

नारद के मु ह से द्रौपदी की प्रशसा सुनकर पद्मनाभ द्रौपदी के प्रति आसक्त हो गया। उसने अपने इष्टदेव का स्मरण किया। देव के उपस्थित होने पर राजा ने द्रौपदी को ले आने का अनुरोध किया। देव, सोई हुई दौपदी देवी को उठाकर राजा पद्मनाभ की अशोक वाटिका मे ले आया। निद्राभग होने पर नवीन वातावरण और स्थान देखकर द्रौपदी विमूढ-सी हो गई। उसी समय पद्मनाभ ने आकर कहा—हे देवानुप्रिये ! तुम मन मे सकल्प-विकल्प न करो। किसी भी प्रकार की चिन्ता न करो और मेरे साथ आनन्दपूर्वक विपुल काम भोगो को भोगती हुई रहो।"

द्रौपदी आये हुए सकट की गभीरता को समझ गई। उसने कौशल से काम लेने का निश्चय करके कहा—देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की द्वारवती नगरी मे मेरे पति के भाई कृष्ण वासुदेव रहते है। यदि वे छहमास के अन्दर मेरे उद्धार के लिए नही आयेगे तो मैं आप देवानुप्रिय जैसा कहेगे वैसा ही करू गी। आपकी आज्ञा, उपाय, वचन तथा निर्देशन के अनुसार चलू गी।[१०]

राजा पद्मनाभ ने द्रौपदो की वात मान ली और उसे कन्याओ के अन्त पुर मे रखा। द्रौपदी निरन्तर षष्ठ-षष्ठ आयबिल तप कर्म से अपनी आत्मा को भावित करती हुई रहने लगी।

---

१०. (क) तए ण सा दोवई देवी पउमणाभ एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! जबुद्दीवेदोवेभारहेवासे वारवइए नयरीए कण्हे णाम वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, त जइ ण से **छण्हं मासाण** मम कूव नो हव्वमागच्छइ। —ज्ञातासूत्र १६

(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (८।१०।२०) और हरिवश मे १ माह का उल्लेख है—न भोक्ष्ये **मासपर्यन्तेऽप्यहं** पतिं विना कृता।

(ग) **मासस्याभ्यन्तरे** भूप यदीह स्वजना मम।
नागच्छन्ति तदा त्व मे कुरुष्व यदभीप्सितम्॥
—हरिवशपुराण ५४।३६

पाण्डुराज जब किसी भी प्रकार द्रौपदी का पता न लगा सके, तब उन्होने कुन्ती देवी को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रिये ! तुम शीघ्र ही द्वारवती नगरी जाओ, और कृष्ण वासुदेव से स्वय द्रौपदी की गवेषणा करने के लिए अभ्यर्थना करो।"

कुन्ती देवी श्रेष्ठ हस्ती पर आरूढ़ होकर जहॉ सौराष्ट्र जनपद था, जहाँ द्वारवती नगरी थी, जहॉ श्रेष्ठ उद्यान था, वहाँ पहुँची। वहाँ हाथी से नीचे उतर कर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर बोली—देवानुप्रियो ! तुम द्वारवती नगरी मे प्रवेश करो और श्रीकृष्ण वासुदेव से हाथ जोडकर कहो—स्वामी ! आपके पिता की बहन—बुआ कुन्ती देवी हस्तिनापुर से शीघ्र ही यहॉ आयी है और आपका दर्शन करना चाहती है।[११]

कौटुम्बिक पुरुषो से कुन्ती देवी के आगमन की बात सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हस्ती पर आरूढ हुए, और सेना लेकर द्वारवती के मध्य मे होकर जहाँ पर कुन्तीदेवी थी वहॉ पर आये। उन्होने हाथी से उतरकर कुन्ती के चरण ग्रहण किये, फिर कुन्तीदेवी के साथ हाथी पर आरूढ हो अपने राजभवन आये।

भोजन के पश्चात् कुन्ती देवी से श्रीकृष्ण ने उनके आने का कारण पूछा। कुन्ती बोली—'पुत्र युधिष्ठिर द्रौपदीदेवी के साथ सुखपूर्वक सो रहा था। जागने पर द्रोपदी दिखलाई नही दी। न मालूम किस देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर या गन्धर्व ने उसका अपहरण किया है। पुत्र ! मेरी यही अन्तरेच्छा है कि तुम स्वय द्रौपदी देवी की मार्गणा-गवेषणा करो। अन्यथा उसका पता लगना असम्भव है।"

यह सुन कृष्ण बोले—आप चिन्ता न करे। मै द्रौपदीदेवी का पता लगाऊँगा। उसकी श्रुति, क्षुति, प्रवृत्ति का पता लगते ही पाताल से, भवन से, अर्द्ध भारत के किसी भी स्थल से उसे स्वय अपने हाथो से ले आऊँगा। इस प्रकार कृष्ण वासुदेव ने कुन्ती देवी को आश्वासन दिया, उनका सत्कार-सन्मान किया और यथासमय उन्हे विदा किया।

उसके पश्चात् कृष्ण ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और आदेश देते हुए कहा—देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही द्वारवती नगरी के छोटे-

---

११. ज्ञातासूत्र १६ के आधार से

बडे सभी मार्गों में उच्च स्वर से यह उद्घोषणा करो—युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजभवन में आकाशतल पर सुखपूर्वक सो रहे थे। उनके पास से किसी ने सोई हुई द्रोपदी का अपहरण किया है। जो द्रोपदी का पता लगा देगा उसे श्रीकृष्ण वासुदेव विपुल अर्थदान देंगे।

कौटुम्बिक पुरुषो ने वैसा ही किया पर द्रौपदी का कहीं पर भी पता न लगा।

द्रौपदी का उद्धार

एक दिन श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी रानियो के साथ बैठे हुए थे। इतने मे कच्छुल नारद वहाँ पर आये। श्रीकृष्ण ने उनसे प्रश्न किया —ऋषिवर! आप अनेक ग्रामो, नगरो यावत् घरो में जाते हैं, क्या आपने कही द्रौपदी की भी वात सुनी है?

नारद ने उत्तर देते हुए कहा—मैं एक बार धातकीखण्ड की पूर्व दिशा मे दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र मे अमरकका राजधानी गया था। वहाँ पर राजा पद्मनाभ के राजभवन मे द्रौपदी जैसी एक नारी देखी है।

कृष्ण ने मजाक करते हुए कहा—"लगता है यह आप देवानुप्रिय की ही करतूत है?" नारद सुनी-अनसुनी कर चल दिये।

कृष्ण ने दूत को बुलाकर कहा—तुम हस्तिनापुर जाकर पाण्डुराजा से यह प्रार्थना करो कि द्रौपदी का पता लग गया है। पाँचो पाण्डव चतुरंगिणी सेना से सपरिवृत हो पूर्व दिशा के वैतालिक समुद्र के किनारे मेरी प्रतीक्षा करते हुए उपस्थित रहे।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने सन्नाहिका भेरी बजवायी। उसका शब्द श्रवण करते ही समुद्रविजय आदि दश दशार्ह, यावत् छप्पन हजार बलवान योद्धागण तैयार हुए। वे अपने-अपने आयुधो को लेकर कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, सवार हो सुभटो के साथ श्री कृष्ण की सुधर्मा सभा मे कृष्ण वासुदेव के निकट आये। जय-विजय के शब्दो से उनकी स्तुति की।

श्रीकृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ हुए। कोरट फूलो की माला वाला छत्र धारण किया। उन पर श्वेत चँवर डुलाया जाने लगा। इस प्रकार घोडे, हाथियो, भटो, सुभटो के परिवार से सुपरिवृत हो श्रीकृष्ण द्वारवती नगरी के मध्य मे होकर जहाँ पूर्व दिशा का

वैतालिक समुद्र था वहाँ पहुँचे और पाण्डवों से मिले। वही छावनी डाली।

श्रीकृष्ण ने चतुरगिणी सेना को विसर्जित किया। अष्टम तप कर सुस्थित देव को बुलाया और उसे अमरकका राजधानी जाकर द्रौपदी देवी की अन्वेषणा का प्रयोजन बताया।

सुस्थित देव ने कहा—देवानुप्रिय! जिस प्रकार राजा पद्मनाभ ने पूर्व सागतिक देव द्वारा उसका अपहरण किया, उसी प्रकार चाहो तो मैं भी द्रौपदी देवी को धातकीखण्ड द्वीप की अमरकका राजधानी से उठाकर हस्तिनापुर मे रख दूँ। अथवा चाहो तो उस पद्मनाभ को उसके पुर, बल, वाहन सहित लवण समुद्र मे डुबा दूँ।

कृष्ण—तुम सहरण न करो, हम छहो के रथो को लवणसमुद्र मे जाने का मार्ग दो। सुस्थित देव ने कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार कह सुस्थित देव ने समुद्र के बीच जाने के लिए रास्ता दिया। कृष्ण पाँच पाण्डवो के साथ छह रथो मे बैठकर लवणसमुद्र के मध्य मे होते हुए आगे बढे और जहाँ अमरकका नगरी का उद्यान था वहाँ पर जाकर रथो को ठहराया।

फिर श्रीकृष्ण ने दारूक सारथी को कहा—जाओ अमरकका नगरी मे प्रवेश करो। राजा पद्मनाभ के पास जाकर दाये पैर से उसके पादपीठ को ठुकराना और भाले के अग्रभाग से उसे यह लेख देना। नेत्रो को लाल कर, रुष्ट, क्रुद्ध कुपित और प्रचण्ड होकर इस प्रकार कहना 'हे पद्मनाभ! अप्रार्थित (मौत) की प्रार्थना करने वाले! दुरन्त और प्रान्त लक्षण वाले! हीनपुण्य चतुर्दशी को जन्मे! श्री, ह्री और बुद्धि से रहित! आज तू जीवित नही रह सकता। क्या तुझे यह ज्ञात नही कि तूने कृष्ण वासुदेव की बहन द्रौपदी का अपहरण किया है? तथापि यदि तू जीवित रहना चाहता है तो द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव के हाथ सौप दे। अन्यथा युद्ध के लिए तैयार होकर बाहर निकल। स्वय कृष्ण वासुदेव और पाँचो पाण्डव द्रौपदी के त्राण के लिए आये हुए है।[१२]

---

१२ एव वदह—ह भो पउमाणाहा! अपत्थियपत्थिया! दुरतपतलक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसा! सिरिहिरिधीपरिवज्जिया! अज्ज ण भवसि, कि ण तुम ण याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणि दोवइ देविं इह हव्व आणमाणे? त एयमवि गए पच्चप्पिणाहि ण तुम दोवई

कृष्ण की आज्ञा से दारुक सारथी राजा पद्मनाभ के पास पहुँचा और हाथ जोडकर उसे जय विजय के शब्दों से मागलिक देता हुआ बोला—स्वामी यह मेरी निजी विनय-प्रतिपत्ति है। अन्य अब मेरे स्वामी के मुह से निकली हुई आज्ञप्ति है। इस प्रकार कहकर दारुक ने कृष्ण की आज्ञा के अनुसार उनका सन्देश राजा पद्मनाभ को सुनाया।

पद्मनाभ सुनते ही क्रोध से रक्त नेत्र वाला हो गया और भृकुटि चढाकर दारुक से बोला—मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी नही दूँगा। जाकर कह दो कि मैं स्वय युद्ध के लिए सज्जित होकर आ रहा हूँ।

उसके बाद उसने दारुक का बिना सत्कार किये उसे अपद्वार (पिछले द्वार) से बाहर निकाल दिया। दारुक ने घटित घटनाएँ श्रीकृष्ण से निवेदन की।

राजा पद्मनाभ शस्त्रो से सुसज्जित हो, चतुरगिणी सेना के साथ कृष्ण वासुदेव की ओर रवाना हुआ।

पद्मनाभ को निहार कर श्रीकृष्ण ने पाण्डवो से कहा—तुम युद्ध करोगे या मै स्वय करूँ ?

पाण्डवो ने निवेदन किया—स्वामी ! हम युद्ध करेगे, आप दूर रहकर हमारे युद्ध को देखे।

तदनन्तर पाँचो पाण्डव कवच पहनकर शस्त्रो से सुसज्जित होकर, रथ पर आरूढ हुए और जहा पर राजा पद्मनाभ था वहाँ पर आये। आकर—'आज हम है या पद्मनाभ राजा है'[13] ऐसा कहकर पाण्डव पद्मनाभ के साथ युद्ध करने लगे।

देविं कण्हस्स वासुदेवस्स, अहवा ण जुद्धसज्जे णिग्गच्छाहि, एस ण कण्हे वासुदेवे पचहिं पडवेहिं अप्पछट्ठे दोवई देवीए कूव हव्वमागए।

—ज्ञाताधर्म कथा १६

१३ तए ण पच पडवे सन्नद्धजाव पहरणा रहे दुरूहति दुरूहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता एव वयासी 'अम्हे पउमणाभे वा राया' त्ति कट्टु पउमनाभेण सद्धि सपलग्गा यावि होत्था ॥

—ज्ञाताधर्म कथा अ० १६, पृ० ५११

राजा पद्मनाभ ने पाँचो पाण्डवों पर शस्त्रो का प्रहार किया। उनके अहकार को नष्ट कर दिया। ध्वजादि चिह्नो को नीचे गिरा दिया। और इधर-उधर भगा दिया।

पाँचों पाण्डव शत्रु की सैन्य-शक्ति को सहन करने में असमर्थ हो गये। वे सभी भागकर कृष्ण वासुदेव के पास पहुँचे।

कृष्ण वासुदेव ने पूछा—पाण्डवो! तुमने पद्मनाभ को क्या कहकर युद्ध प्रारभ किया था? पाण्डवो ने कहा—स्वामी! हमने कहा— या तो हम ही रहेगे या राजा पद्मनाभ ?'

कृष्ण—देवानुप्रियो! तुम यह कहकर युद्ध प्रारभ करते कि—'हम राजा है, पद्मनाभ नही' तो तुम्हारी ऐसी गति नही होती। अच्छा लो, 'मै राजा हूँ, पद्मनाभ नही' ऐसी प्रतिज्ञा कर मैं युद्ध करता हूँ। मेरी विजय निश्चित है। तुम लोग दूर रहकर देखो।[१४]

उसके वाद कृष्ण वासुदेव रथ पर आरूढ होकर राजा पद्मनाभ के सामने गये। स्वय के सैन्य को आनन्दित करने वाले और शत्रु की सेना को क्षुब्ध करने वाले पाँचजन्य शख को ग्रहण कर उसे मुख-वायु से पूरित किया। शख के शब्द से राजा पद्मनाभ के सैन्य का तृतीय भाग हत हो गया।

उसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने सारग नामक धनुष को हाथ मे लिया, उस पर प्रत्यचा चढा भयकर टकार किया। धनुप के शब्द से शत्रु-सैन्य का दूसरा एक तिहाई भाग हत, मथित हो भाग निकला।

सेना का मात्र एक तिहाई भाग शेप रह जाने से राजा पद्मनाभ सामर्थ्य, वल, वीर्य, पराक्रम, पुरुषार्थ से रहित हो गया। अपने को असमर्थ जानकर वह अत्यन्त शीघ्रता से अमरकका राजधानी की ओर वढा। नगर मे प्रवेश कर उसने दरवाजे वद करवा दिये।

कृष्ण वासुदेव पीछा करते हुए अमरकका आये। रथ को खड़ा किया। रथ से नीचे उतरकर वैक्रियलब्धि से एक विशाल नरसिंह के रूप को विकुर्वित किया और वे महाशब्द के साथ पृथ्वीपर पद-

---

१४. राजाहमेव नो पद्म इत्युदित्वा जनार्दनः।
युधि चचाल दध्मौ च पाचजन्य महास्वनम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।५१

प्रहार करने लगे। अमरकका नगरी के प्राकार, गोपुर, अट्टालिकाएँ चरिया, तोरण, आदि सभी भूमिसात् होने लगे। उसके श्रेष्ठ महल और श्रीगृह चारो ओर से ध्वस्त हो धराशायी हो गये।[१५]

राजा पद्मनाभ का कलेजा कापने लगा। वह भयभीत बना हुआ, द्रौपदी के पास गया और उसके चरणो मे गिर पडा।

द्रौपदी ने कहा—क्या तुम यह जान गये कि कृष्ण वासुदेव जैसे उत्तम पुरुष का अप्रिय करके मुझे यहां लाने का क्या परिणाम है? अस्तु, अब भी शीघ्र जाओ, स्नानकर, गीले वस्त्र पहन, वस्त्र का एक पल्ला खुला छोड, अन्त:पुर की रानियो के साथ श्रेष्ठ रत्नो की भेट ले और मुझे आगे रखकर कृष्ण वासुदेव को हाथ जोड़ उनके चरणो मे झुककर उनकी शरण ग्रहण करो।

पद्मनाभ द्रौपदी के कथनानुसार कृष्ण वासुदेव का शरणागत हुआ। दोनो हाथ जोडकर पैरो पर गिर पड़ा और निवेदन करने लगा—'हे देवानुप्रिय! मै आपके अपार पराक्रम को देख चुका। मै आपसे क्षमा याचना करता हूँ। मुझे क्षमा करे, मैं पुन ऐसा कार्य कभी नही करूगा।' ऐसा कह उसने द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव को सौप दिया।

कृष्ण बोले—हे अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले पद्मनाभ! तू मेरी बहिन द्रौपदी को यहाँ लाया है तथापि अब तुझे मुझसे भयभीत होने की आवश्यकता नही है।

कृष्ण द्रौपदी को साथ ले, रथ पर आसीन हो, जहा पर पाँचो पाण्डव थे वहाँ गये और अपने हाथो से पाण्डवो को द्रौपदी सौंपी।[१६]

---

१५. समुद्घातेन जज्ञे च नरसिंहवपुर्हरि।
क्रुद्धोऽन्तक इव व्यात्ताननदष्ट्राभयकर॥
नर्दन्नत्यूर्जित सोऽथ विदधे पाददर्दरम्।
चकपे वसुधा तेन हृदयेन सह द्विपाम्॥
प्राकाराग्राणि बभ्रसु पेतुर्देवकुलान्यापि।
कुट्टिमानि व्यशीर्यन्त शार्ङ्गिण पाददर्दरै॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।५६-५८

शंख-शब्द का मिलाप :

राजा पद्मनाभ से युद्ध प्रारभ करते समय श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शख पूरित किया था। उसकी ध्वनि धातकीखण्ड द्वीप के चम्पा-नगरी के पूर्ण भद्र उद्यान मे, अर्हत् मुनिसुव्रत के पावन-प्रवचन को श्रवण करते हुए कपिल नामक वासुदेव ने सुनी। शख-शब्द को श्रवण करते ही कपिल वासुदेव के मन मे विचार हुआ "क्या यह मानलू कि धातकीखण्डद्वीप के भरतक्षेत्र मे दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है, जिसके शख का यह शब्द मेरे ही मुख से पूरित शख के शब्द की भाँति विलास पा रहा है? क्या यह किसी अन्य वासुदेव का शखनाद नही है?"[१७]

अर्हत् मुनिसुव्रत ने कपिल के मन का समाधान करते हुए कहा—कपिल वासुदेव! तुम्हारे अन्तर्मानस मे इस प्रकार विचार उद्‌वुद्ध हुए हैं। 'क्या मैं यह मानू कि भरतक्षेत्र मे दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है, जिसका यह शख शब्द सुनाई दे रहा है, क्या यह सत्य है?

कपिल वासुदेव—हाँ भगवन्! आपने जो कहा वह ठीक है।

अर्हत्मुनि सुव्रत ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—निश्चयत न कभी भूतकाल मे ऐसा हुआ है न वर्तमान मे हो रहा है और न भविष्य मे होगा ही कि एक ही युग मे, एक ही समय मे, दो अरिहत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव, दो वासुदेव हुए हो, होते हो, या होगे।" यह

---

१६ (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० १६

(ख) क्षम्यता देवि रक्षास्मादन्तकादिव शार्ङ्गिण।
इति जल्पन् ययौ पद्मः शरण द्रुपदात्मजाम्॥
साप्यूचे मा पुरस्कृत्य स्त्रीवेश विरचय्य च।
प्रयाहि शरण कृष्ण तथा जीवसि नान्यथा॥

—त्रिषष्टि० ८।१०।६०-६३

(ग) पाण्डवचरित्र सर्ग १७, पृ० ५३७-५४६

(घ) हरिवशपुराण ५४।४२-५१, पृ० ६१२

१७. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० १६

(ख) त्रिषष्टि० ८।१०।६५-६६

वताकर उन्होने द्रौपदी के अपहरण व उद्धार की कहानी सुनाते हुए कहा—'कृष्ण वासुदेव ने राजा पद्मनाभ के साथ युद्ध करते समय जो शख फूका उसी का शब्द तू ने सुना है। वह तुम्हारे मुख से पूरित शख-शब्द के समान इष्ट और कान्त था, तथा उसी तरह विलास पा रहा था।"

यह सुनते ही कपिल वासुदेव उठे और भगवान् को वन्दन-नमस्कार कर वोले—भगवन् मैं जाता हूँ उस उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव को देखू गा।

अर्हत् मुनिसुव्रत ने फरमाया—देवानुप्रिय! यह न कभी हुआ है, न होता है और न होगा ही कि एक अर्हत् दूसरे अर्हत् को देखे, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती को देखे, एक वलदेव दूसरे वलदेव को देखे, या एक वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखे। तथापि तुम लवणसमुद्र के बीचोवीच जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेतपीत ध्वजा का अग्र भाग देख सकोगे।"

कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत को पुन वन्दन नमस्कार किया और हस्ती पर आरूढ हो, शीघ्रातिशीघ्र वेलाकूल पहुचे। उन्होने भगवान् के कहे अनुसार कृष्ण वासुदेव की श्वेतपीत ध्वजा के अग्रभाग को देखा और बोले—"यह मेरे समान उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव है जो लवणसमुद्र के वीचोवीच मे होकर जा रहे है। ऐसा कहकर उन्होने उसी समय पाञ्चजन्य शख को हाथ मे ले मुख को वायु से पूरित किया।

कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शख शब्द को सुना। उन्होने भी अपने पाचजन्य शख को मुह की हवा से पूरित कर बजाया। इस प्रकार दोनो वासुदेवो के शख शब्द का मिलाप हुआ।[१८] जो जैन परम्परा मे एक आश्चर्य जनक घटना मानी गयी है।

उसके पश्चात् कपिल वासुदेव अमरकका नगरी पहुँचे। उन्होने पद्मनाभ का भर्त्सना की। उसे निर्वासित कर उसके स्थान पर उसके पुत्र को राज्य दिया।[१९]

---

१८ त्रिषष्टि० ८।१०।६८-७३

१९ (क) त्रिषष्टि० ८।१०।७४-७५

(ख) पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग १७

पाण्डवों का निर्वासन

द्रौपदी के उद्धार के पश्चात् श्रीकृष्ण और पाँचो पाण्डव रथो पर आरूढ हो लवण समुद्र के मध्य मे होते हुए जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की ओर आगे बढ़े। जब गगामहानदी के समीप पहुचे तब श्रीकृष्ण ने पाण्डवो से कहा—तुम लोग गगानदी को पार करो, मैं इस वीच लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिलकर आता हूँ।

पाँचो पाण्डवो ने एक लघु नौका की अन्वेषणा की और उसमे वैठ महानदी गगा को पार किया। गगा से उतरने के बाद उन्होने आपस मे वार्तालाप किया कि कृष्ण वासुदेव भुजा से गगा महानदी को पार करने मे समर्थ है या नही, यह देखना चाहिए। ऐसा सोचकर उन्होने नौका को छिपा दिया और श्रीकृष्ण वासुदेव की राह देखने लगे।[२०]

कृष्ण सुस्थित देव से मिलकर गगा महानदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होने नौका तलाश की, पर नौका दिखलाई नही दी। श्रीकृष्ण ने अपने एक हाथ मे घोडे और सारथी सहित रथ को ग्रहण किया और दूसरे हाथ से गगा महानदी को पार करने लगे। जब वे गगा महानदी के मध्यभाग मे पहुँचे तो थक गये। उन्हे थका हुआ देखकर गगा देवी ने जल का स्थल (स्ताद्य) वना दिया। श्रीकृष्ण ने वहाँ एक मुहूर्त विश्राम किया, फिर गंगा महानदी को भुजा से पारकर जहा पाण्डव थे वहाँ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने कहा—देवानुप्रियो! तुम वडे बलवान् हो, क्योकि तुमने गगा महानदी को भुजाओ से पार किया। जान पडता है कि तुमने जानबूझ कर ही राजा पद्मनाभ को पराजित नही किया था।[२१]

---

२० (क) द्रक्ष्यामोऽद्य वल विष्णोर्नौरत्रैव विधार्यताम्।
विना नाव कथ गगाश्रोतोऽसावुत्तरिष्यति॥
एव ते कृतसकेता निलीयास्थुर्नदीतटे।
इतश्च कृतकृत्य मन् कृष्णोऽप्यागात्सरिद्वराम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।७७-८०

(ख) ज्ञातासूत्र अ० १६

२१ (क) त्रिषष्टि० ८।१०।८१-८४

(ख) पाण्डव चरित्र सर्ग १७

सही बात बतलाते हुए पाण्डवो ने कहा—'हमने गंगा महानदी को एक छोटी नौका के सहारे पार किया है। आपके सामर्थ्य को देखने के लिए ही उस नौका को छिपा दिया और आपकी राह देखते रहे।[22]

यह सुनते ही कृष्ण ने लाल नेत्र करते हुए कहा—जब मैंने दो लाख योजन विस्तृत लवण समुद्र को पारकर, पद्मनाभ को मथित किया, उसकी सेना को भगा दिया। अमरकका को ध्वस्तकर द्रौपदी को अपने हाथो से प्राप्त किया, तब तुम लोगो ने मेरे पराक्रम के माहात्म्य को नही देखा? अब मेरा माहात्म्य देखोगे? ऐसा कहकर लोहदण्ड से पाण्डवो के रथो को उन्होने चूर-चूर कर दिया और उसी समय पाण्डवो को निर्वासन की आज्ञा दे दी। वहाँ पर रथ-मर्दन नामक कोट बस गया।[23]

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अपने स्कधावार मे पहुँचे, और अपनी सेना से मिलकर आनन्दपूर्वक द्वारिका लौटे।[24]

पाण्डु मथुरा की स्थापना :

निर्वासन की आज्ञा के पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर पहुँचे, पर उनके चेहरे पर प्रसन्नता का अभाव था। सभी के चेहरे मुरझाए हुए थे। वहाँ पहुँचने पर उन्होने सारी बातें पाण्डुराजा से निवेदन की। पाण्डुराजा ने कहा—पुत्रो! 'तुमने श्रीकृष्ण वासुदेव का अप्रिय कर बहुत बुरा किया है।'

उसके बाद पाण्डुराजा ने कुन्ती देवी को बुलाकर कहा—तुम द्वारवती नगरी जाओ और श्रीकृष्ण वासुदेव से प्रार्थना करो कि—

---

२२ (क) त्रिषष्टि० ८।१०।८५
(ख) ज्ञातासूत्र अ० १६

२३ कृष्णोऽप्युवाच कुपितो मदोजो ज्ञास्यथाधुना।
न ज्ञातमब्धितरणेऽमरकङ्काजयेऽपि च॥
इत्युक्त्वा लोहदडेन रथास्तेपा ममर्द स।
अभूच्च पत्तन तत्र नामतो रथमर्दनम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।८६-८७

२४ त्रिषष्टि० ८।१०।८८

'देवानुप्रिय ! तुमने पाँचो पाण्डवो को निर्वासन की आज्ञा दी है। तुम दक्षिणार्द्ध भरत के स्वामी हो। अत. तुम्ही आज्ञा दो कि पाण्डव किस दिशा-विदिशा मे जाये ?'[२५]

कुन्ती देवी उसी समय हाथी पर आरूढ हो द्वारवती नगरी पहुँची। श्रीकृष्ण ने पहले की तरह ही उनका स्वागत किया और आने का कारण पूछा। कुन्ती ने पाण्डुराजा का सन्देश कहा।

कृष्ण बोले वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती प्रभृति उत्तम पुरुष अमोघ वचन होते है, अतः पाँचो पाण्डव दक्षिण दिशा के बेलातट पर जाए और वहाँ पाण्डुमथुरा नामकी नगरी बसा कर मेरे अदृष्ट सेवक के रूप मे रहे।" ऐसा कहकर उन्होंने कुन्ती को आदर के साथ विदा किया।

कुन्ती ने हस्तिनापुर आकर श्रीकृष्ण का आदेश पाण्डुराजा को कहा।

पाण्डुराजा ने पाँचो पाण्डवो को बुलाया और पाण्डु मथुरा नगरी बसा, वही पर रहने की आज्ञा दी।

पाँचो पाण्डव बल, वाहन, हाथी घोड़ो सहित हस्तिनापुर से प्रस्थित हुए और दक्षिण दिशा के वेलातट पर पहुच कर पाण्डु मथुरा नगरी बसाकर सुखपूर्वक रहने लगे।[२६]

●●

---

२५. (क) ज्ञाताधर्मकथा अ० १६, १३२, पृ० ४८-४६
(ख) पाडवा स्वपुर गत्वा तत् कुन्त्या आचचक्षिरे।
कुन्त्यपि द्वारकां गत्वा वासुदेवमभाषत ॥
त्वया निर्वासिता कुत्र तिष्ठन्तु मम सूनव ।
अस्मिन् भरतवर्षार्द्धे न सा भूर्भवतो न या ॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।८६-६२

२६ पाडव चरित्र सर्ग १७

महाभारत का युद्ध

●

- पाण्डवो की द्यूत मे पराजय
- कृष्ण का दूत भेजना
- सजय का आगमन
- कृष्ण का शान्तिदूत बनकर जाना
- कृष्ण का पुण्य-प्रकोप
- सारथी बनूँगा
- महाभारत मे
- कृष्ण युद्ध के प्रेरक नही
- कर्ण को समझाना
- दुर्योधन की दुर्बुद्धि
- दूषित अन्न नही खाऊँगा
- धृतराष्ट्र को समझाना
- क्या महाभारत का युद्ध ही जरासध का युद्ध है?
- महाभारत का युद्ध और उसका दुष्परिणाम

महाभारत का युद्ध

पाण्डवों की द्यूत में पराजय :

देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित्र के अनुसार युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँचो पण्डु राजा के पुत्र होने से पाण्डव के नाम से प्रसिद्ध थे। पाण्डवो की माता कुन्ती थी, जो वासुदेव श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव की सहोदरा बहिन थी। पाण्डवो के साथ श्रीकृष्ण का पारिवारिक सम्वन्ध होने से सहज अनुराग था। पाण्डव हस्तिनापुर के अधिपति थे[1]।

पण्डुराजा के लघुभ्राता धृतराष्ट्र थे। उनके दुर्योधन, दु.शासन आदि सौ पुत्र हुए। वे 'कौरव' नाम से विश्रुत थे। दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ का अधिनायक था। युधिष्ठिर और दुर्योधन के स्वभाव मे दिन रात का अन्तर था। युधिष्ठिर नम्र, सरल, और मधुर प्रकृति के धनी थे तो दुर्योधन मायावी, ईर्ष्यालु और क्रोधी था। पाण्डवो के विराट् वैभव को देखकर दुर्योधन ईर्ष्या से जलता रहता था। उसने उनके वैभव को हस्तगत करने की इच्छा से युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ बुलाया, और उनके साथ छल से द्यूत खेल उन्हे पराजित करके उनका वैभव छीन लिया। यहाँ तक कि दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन पाण्डवो की

---

१. पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि।

पत्नी द्रौपदी को पकडकर भरी सभा मे लाया। द्रौपदी को दुर्योधन ने अपनी जघा पर बैठने के लिए कहा और दु शासन उसके दुकूल को खीचकर उसे नग्न करने का प्रयास करने लगा। जितने भी राजागण सभा मे बैठे थे वे मौन रहकर यह अत्याचार देखते रहे। उस समय भीम ने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की, कि मै दुर्योधन की जघा को चीरूँगा और दु'शासन की बाहु का भेदन करूगा। युधिष्ठिर सत्यप्रतिज्ञ थे अत. वे धर्मराज के नाम से भी विश्रुत थे। द्यूत मे पराजित होने से बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पाण्डवो ने स्वीकार किया। दुर्योधन इस अवधि मे भी पाण्डवो को मारने के अनेक उपाय करता रहा। पाण्डवो ने वनवास और अज्ञातवास मे अनेक कष्ट सहन किये। चौदहवे वर्ष मे वे विराट् नगर मे प्रकट हुए। श्रीकृष्ण को ज्ञात होने पर वे पाण्डवो को द्वारिका लाने के लिए विराट् नगर जाते है। श्रीकृष्ण के प्रेम भरे आग्रह को सन्मान देकर पाण्डव द्वारिका आते है। द्वारिका निवासी माता कुन्ती के साथ पाण्डवों का व द्रौपदी का भव्य स्वागत करते हैं।[२] श्रीकृष्ण के पूछने पर पाण्डवो ने बताया कि दुर्योधन ने हमारे साथ कितने अमानुषिक व्यवहार किये है। हमारा वध करने के लिए कितने-कितने उपक्रम किये है। दुर्योधन के भयकर अत्याचार को सुनकर श्रीकृष्ण का खून खौल उठा। उन्होने उसी समय चतुर, बुद्धिमान एव भाषणकला मे दक्ष द्रुपद राजा के पुरोहित को सन्देश देकर दुर्योधन के पास हस्तिनापुर भेजा।[3]

कृष्ण का दूत भेजना :

दूत हस्तिनापुर पहुँचा। उस समय दुर्योधन राजसभा मे द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, भीष्मपितामह, शल्य, जयद्रथ, कृपाचार्य, कृतवर्मा, भगदत्त, कर्ण, विकर्ण, सुशर्मा, शकुनि, भूरिश्रवा, चेदिराज,

---

२ महाभारत के अनुसार आरण्यवास मे कुन्ती साथ नही गई, पर जैन-ग्रन्थो के अनुसार गई थी।

३ महाभारत के अनुसार कृष्ण के सकेत से राजा द्रुपद अपना दूत कौरवो की सभा मे भेजता है—देखो महाभारत—उद्योगपर्व अ० २० वा, सचित्र महाभारत पृ० ३२९५।

दुःशासन आदि वीरो के साथ बैठा हुआ था। दूत ने नमस्कार कर कहा – श्रीकृष्ण ने अत्यन्त स्नेह से निम्न समाचार आपको कहने के लिए मुझे यहा पर भेजा है—"आप लोगो के समक्ष युधिष्ठिर ने बारह वर्ष का वनवास और तेरहवे का अज्ञातवास स्वीकार किया था। अवधिपूर्ण होने पर अव वे प्रकट हुए है। विराट् राजा ने अपनी लड़की उत्तरा का पाणिग्रहण अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ किया। उस अवसर पर मै वहा पर गया। मैंने अनुभव किया कि पाण्डवो का तुम्हारे प्रति गहरा अनुराग है। वे तुम्हारे विरह से व्यथित, है किन्तु तुम लोगो को किसी भी प्रकार का कष्ट अनुभव न हो, एतदर्थ वे सीधे हस्तिनापुर नही आये। अब धर्मराज की सत्यप्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है। वे मेरे साथ द्वारिका आये है, अतः दुर्योधन! मेरा नम्र अनुरोध है कि तुम अपने भाइयो को स्नेह से हस्तिनापुर बुलालो। मैं नही चाहता कि भाइयो मे बिना कारण विरोध रहे। सम्पत्ति और अधिकार के कारण भाइयो मे वैमनस्य होना उचित नही है। यदि तुम न भी बुलाओगे तो भी धर्मराज के लघुभ्राता उनको हस्तिनापुर लाएगे और अपनी भुजा के सामर्थ्य से तुम्हारे भाग की भी भूमि को प्राप्त करेगे। सभव है, युद्ध के मैदान मे तुम्हारी भी मृत्यु हो जाय, या तुम्हे भी पाण्डवो की तरह एक जगल से दूसरे जगल मे भटकना पडे। अत ऐसी स्थिति आने से पूर्व ही विवेक से कार्य किया जाय जिससे पश्चात्ताप न करना पडे। यदि तुम यह समझते हो कि पाण्डव असहाय है तो यह भ्रम है। जहां धर्म है वहा विजय निश्चित है, अत मेरी बात पर गहराई से चिन्तन करना।"

दूत के सन्देश को सुनकर दुर्योधन अपने आपे से बाहर होगया। उसने कहा—"दूत! तुम्हारी वाणी तो बैर के समान है—प्रारम्भ मे मधुर, अन्त मे कठोर। मैं नही समझता कि मेरे प्रबल पराक्रम के सामने कृष्ण का क्या सामर्थ्य है? और पाण्डव किस बाग की मूली हैं? सूर्य के चमचमाते प्रकाश के सामने चॉद और अन्य ग्रह नि सत्व है, वैसे ही मेरे सामने कृष्ण और पाण्डव है। लोग कहते है कि युद्ध-भूमि मे श्रीकृष्ण सिह की तरह जूझते है पर मेरे तीक्ष्ण बाणो से विंधकर वे शृगालवत् हो जायेगे। मेरे बाणो से वे इस प्रकार

घायल हो जायेगे कि पक्षिगण और कुत्ते उनको नोच-नोचकर खा जाए गे ।"

दूत ने दुर्योधन की बात को बीच मे ही काटते हुए कहा—"दुर्योधन ! तू निरर्थक मिथ्या अहकार कर रहा है। तू कृष्ण रूपी सूर्य के सामने जुगनू की तरह है। क्या तुझे श्रीकृष्ण के सामर्थ्य का पता नही है, जिसने अरिष्टासुर, केशी, चाणूर और कस आदि अनेक महान् योद्धाओ को समाप्त किया है ? कृष्ण की तो वात ही जाने दो, क्या पाण्डव भी वीरता मे कम है ? अरे ! धर्मराज तो धर्म के साक्षात् अवतार है। भीम का महान् वल किससे अज्ञात है जिसने अपने बाहुवल से हेडव किर्म्मीर, वक, और कीचकादि अनेको का हनन किया है ? वीर अर्जुन का तो कहना ही क्या है, जिसने तेरी पत्नी भानुमती को रोती-चिल्लाती देखकर युधिष्ठिर की आज्ञा से तुझे चित्रागद विद्याधर के शिकजे से मुक्त किया था। जिस समय तू विराट् राजा की गायो को चुरा रहा था उस समय उसने तेरे वस्त्र, और अस्त्र छीन लिये थे। उस समय बता तेरा अतुल वल कहा गया था ? स्मरण रखना, नकुल और सहदेव भी कम वलवान् नही है।"

दुर्योधन का धैर्य ध्वस्त होगया। वह चिल्ला उठा—"अरे दूत ! अवध्य होने से मै तुझे छोड देता हूँ। नही तो यह तलवार तेरे टुकडे-टुकडे कर देती। मै चुनौती देता हूँ कि पाण्डवो मे और श्रीकृष्ण मे यदि शक्ति है तो वे अपनी शक्ति कुरुक्षेत्र के मैदान मे वताएँ। मैं उनके साथ युद्ध करने को प्रस्तुत हूँ।"

दूत ने लौटकर श्रीकृष्ण से निवेदन किया—"भगवन् ! जगल मे भयकर आग लगी हो, सारा वन प्रान्त उस आग से धू-धूकर सुलग रहा हो तो क्या एक घडा पानी उस विराट् आग को बुझा सकता है ? नही ! वैसे ही दुर्योधन को आपका मधुर उपदेश निरर्थक लगा, क्योकि सभी राजा और अभिभावको ने उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर रखी है। उसने उनको अपने वश मे कर रखा है। इस कारण वह आपको तथा पाण्डवो को तृण-तुल्य मानता है। वे राजा भी आख मूदकर उसके लिए प्राण देने को तैयार है। मुझे आश्चर्य तो इस वात का है कि भीष्मपितामह जैसे महान् व्यक्ति भी यह न कह सके कि पाण्डवो को उनके अधिकार की भूमि देनी चाहिए। यद्यपि

भीष्मपितामह का पाण्डवो पर स्नेह है पर इस समय वे दुर्योधन के ऐसे वशवर्ती हो चुके है कि उसका ही जय-जयकार चाहते है। दुर्योधन पाण्डवो को भूमि देना नही चाहता। वह युद्ध करने को उद्यत है। उसने युद्ध के लिए सेना तैयार कर रखी है और युद्ध के लिए आपको चुनौती दी है। यदि आप युद्ध भूमि मे जीतकर भूमि लेना चाहे तो मिल सकती है अन्यथा संभव नही है।"

कृष्ण ने दूत से कहा—"द्विजश्रेष्ठ! मै तो पहले ही जानता था कि यह कार्य विना दण्ड के सभव नही है, तथापि लोकापवाद के भय से मैने आपको उसके पास प्रेषित किया था।"

संजय का आगमन :

दूसरे ही दिन धृतराष्ट्र की ओर से सारथी सजय दूत बनकर श्रीकृष्ण की राजसभा मे आया।[४] उसने धृतराष्ट्र का सन्देश धर्मराज को सुनाते हुए कहा—धर्मराज! वस्तुत तुम धर्म के साक्षात् अवतार ही हो। मैने विविध प्रकार से दुर्योधन को समझाया पर वह समझता नही है। तुम जानते हो कि दुष्ट और शिष्ट मे यही अन्तर है कि दुष्ट धर्म को छोड़कर लोभ को अपनाता है और शिष्ट धर्म के लिए लोभ छोड देता है। वह अपने भाइयो की घात करने की अपेक्षा भयकर जगलो मे भटकते रहना, भीख मागकर खा लेना और भूखे पड़े रहना अच्छा समझता है। वह पहले अपने भाइयो को महत्त्व देता है। यह नही कहा जा सकता कि युद्ध मे कौन विजय को वरण करेगा? कभी-कभी दुर्बल व्यक्ति भी युद्ध मे जीत जाता है और बलवान् भी हार जाता है। सम्पत्ति नाशवान् है, वह आज है कल नही, अत धर्मराज, तुम्हे गहराई से विचार करना है कि कौन-सा कार्य उचित है? और कौन-सा नही?

धर्मराज ने मुस्कराते हुए कहा—पिता धृतराष्ट्र ने धर्म क्या है, न्याय क्या है, शिष्ट के क्या कर्तव्य हैं, आदि बाते गभीर

---

४ महाभारत के अनुसार सजय दूत बनकर पाण्डवो के पास जाता है। उसमे धृतराष्ट्र सजय को जो सन्देश देते हैं उसमे धृतराष्ट्र का आन्तरिक प्रेम पाण्डवो के प्रति झलक रहा है—देखो महाभारत—उद्योगपर्व अ० २२ वा।

चिंतन-मनन के पश्चात् कही है। पर वे भूल गये है। उन्होने यह नही बताया कि अन्याय का प्रतीकार कैसे करना चाहिए ? एक ओर से शाति धारण की जाय और दूसरी ओर से अन्याय-अत्याचार का क्रम चालू ही रहे, यह कहा का न्याय है ?[५]

कृष्ण का शान्ति दूत बनकर जाना .

दूत चला गया। श्रीकृष्ण के अन्तर्मानस मे शान्ति नही थी। उनका विचार-मथन चल रहा था। वे चाहते थे कि किसी प्रकार कौरव और पाण्डवो मे युद्ध न हो। वे आपस मे ही समझ जाये, अतएव उन्होने अन्त मे यही निश्चय किया कि मुझे स्वय जाकर एकबार दुर्योधन को समझाना चाहिए ! अपने कुछ अग रक्षको को लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका से सीधे हस्तिनापुर आये। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का स्वागत किया। उन्हे राजमहल मे ले गया। रत्न-सिहासन पर बैठाया। उनके आसपास धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, दु शासन, आदि बैठ गये। धृतराष्ट्र के पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा—आपकी ओर से सजय दूत बनकर द्वारिका आया था। मेरा ऐसा अनुमान है कि वह धर्मराज के सामने सधि का प्रस्ताव रखना चाहता था, पर वह रख न सका। यदि वह रखता भी तो पाडव उसे स्वीकार नही करते। वह यद्ध के प्रस्ताव को लेकर हस्तिनापुर लौट आया। उसके पश्चात् धर्मराज ने मुझे सारी बात बताई। मुझे लगा कि युद्ध होने पर तुम्हारे कुल का प्रलय हो जायेगा, एतदर्थ मैं पाण्डवो से पूछे बिना ही स्वेच्छा से दूत-कार्य करने के लिए यहा आया हूँ। यदि तुम्हे मेरे प्रति विश्वास हो, तुम मुझे अपना परम हितैषी समझते हो तो मेरी बात को ध्यान से सुनो। दुर्योधन ! यदि तुम पाण्डवो को राज्य का थोडा-सा भी भाग नही दोगे तो पाण्डव तुम्हारे प्राणो का अपहरण करके भी सम्पूर्ण राज्य ले लेगे। कदाचित् तुम पाण्डवो को पराजित कर सम्पूर्ण पृथ्वी का भी राज्य प्राप्तकर

---

५ महाभारत मे भी सजय को युधिष्ठिर स्पष्ट सुनाते हैं, सजय के द्वारा सन्धि के प्रस्ताव पर वे स्पष्ट कहते है कि मैं सधि करने को तैयार हूँ यदि दुर्योधन मेरा इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दे तो—

देखो उद्योग पर्व, अ० २६, श्लो० १-२६ तक

लोगे तो भी इसमे कुछ कल्याण नही है, क्योकि बिना स्वजनो के सम्पत्ति किस काम की ? यह निश्चित है कि युद्ध मे पाण्डव पराजित होने वाले नही है तथापि तुम्हारे द्वारा किया गया कुलसंहार वीरता का प्रतीक नही होगा। पाण्डव एक-एक से बढ़कर वीर है। शत्रुओ के समुदाय को नष्ट करने मे साक्षात् यम के समान है। अत तुम्हारे लिए यही श्रेयस्कर है कि तुम पाण्डवो से सन्धि करलो।

दुर्योधन ! तुम्हे पाण्डवो के समान वीर भाई कहा मिलने वाले है ? मिथ्या अहकार को छोडो और युद्ध के अनिष्ट भीषण फल का विचार करो। पाँच पाडवो के लिए पाँच गाँव दे दोगे तो भी मैं उन्हे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूंगा—भीम के लिए कुशस्थल, अर्जुन के लिए वृषस्थल, नकुल के लिए माकदी, सहदेव के लिए वारुणावतार और धर्मराज के लिए इनके अतिरिक्त उनके योग्य कोई भी गाँव देदो।[६] इतना अल्प देने पर भी पाण्डव मेरे कहने से सन्धि कर लेगे। साधु प्रकृति के व्यक्ति कुल क्षय को देखकर अल्प वस्तु में भी सन्तोष करते है। यदि इतना भी तुम स्वीकार न करोगे तो पाण्डव तुम्हारे कुल को नष्ट कर देगे।

इतना वक्तव्य देने के पश्चात् श्रीकृष्ण शान्त हुए। तब कर्ण की ओर देखकर दुर्योधन ने कहा—'पाण्डवो को कुछ भी नही देना है।' फिर दुर्योधन श्रीकृष्ण की ओर मुडा और बोला—अय कृष्ण ! तुम जितना बल पाण्डवो मे मानते हो उतना बल उनमे नही है। मैंने आज तक उनको जीवन-दान दिया है, किन्तु वे अपनी शक्ति के अभिमान मे आकर एक भी गाँव को लेने की बात करेगे तो गाँव की बात तो दूर रही· पर उनके प्राण भी नही बच पायेगे। पाण्डव अपना बाहुबल ही देखना चाहते हैं तो तुम्हारे साथ वे जल्दी से जल्दी कुरुक्षेत्र के मैदान मे आये। वहाँ उन्हे युद्ध का चमत्कार दिखलाया जायगा।[७]

इतना कहकर दुर्योधन कर्ण के साथ सभा के बाहर गया। कर्ण से कहा—श्रीकृष्ण को इसी समय बधन-बद्ध कर लिया जाय जिससे शत्रुओ का बल कम हो जायेगा। श्रीकृष्ण को बधन मे

---

६ पाण्डव चरित्र—देवप्रभसूरि अनुवाद पृ० ३४६।

७, पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि

वाधने का विचार कर वह पुन सभा भवन मे आकर बैठा। सत्यकी के द्वारा सकेत पाकर श्रीकृष्ण को सारा रहस्य ज्ञात हो गया। उन्होने अपने नेत्र लाल करते हुए कहा—'क्या कभी शृगालो ने सिंह को बाधा है? तुम मुझे बधन मे बाधना चाहते हो, तुम लोग वस्तुत दुरात्मा हो। उपकार करने वाले का भी अपकार करना चाहते हो!' इतना कहकर वे उठ खडे हुए।[८]

कृष्ण का पुण्य प्रकोप :

श्रीकृष्ण के पुण्य-प्रकोप को देखकर भीष्मपितामह आदि भी घबरा गये। दुर्योधन की मूर्खता का वे मन ही मन विचार करने लगे। श्रीकृष्ण को शान्त करने के लिए वे भी उनके पीछे-पीछे चले। भीष्म पितामह ने वाणी मे मिश्री घोलते हुए कहा—कृष्ण! विद्युत् से तपा हुआ मेघ जैसे शीतल पानी की ही वृष्टि करता है वैसे ही दुष्टो के द्वारा सन्ताप देने पर भी महान् पुरुष क्रोध नही करते। जैसे शृगाल के शब्द और नृत्य को देखकर सिंह कभी खेद को प्राप्त नही होता, वैसे ही दुष्ट व्यक्तियो के भाषण से महान् आत्माए खिन्न नही होती। एतदर्थ दुर्योधन के दुर्व्यवहार पर तुम क्रोध न करना। किसी भी समय चाँद आग नही उगलता, वैसे ही तुम भी आग न उगलना। मै समझता हू तुम अकेले ही युद्ध-क्षेत्र मे कौरव दल का सहार करने मे समर्थ हो। कितना भी मदोन्मत्त हाथी क्यो न हो, वह सिंह के सामने टिक नही सकता, वैसे ही तुम्हारे सामने कौरव टिक नही सकते। पर यह जो युद्ध होने जा रहा है वह कौरवो और पाण्डवो के बीच मे है। यह भाइयो का युद्ध है। अत मैं चाहता हूँ कि कृष्ण! तुम इस युद्ध मे भाग न लो। पाण्डव स्वय ही युद्ध करने मे समर्थ है। मुझे विश्वास है कि तुम मेरी बात मानोगे।

सारथी बनूंगा :

भीष्म पितामह की बात सुनकर श्रीकृष्ण एक क्षण विचार कर बोले—पितामह! आपकी बात मुझे माननी ही चाहिए किन्तु निवेदन है कि इस समय पाण्डव मेरे आश्रित है, और वे मेरे

---

८ पाण्डव चरित्र—देवप्रभ पृ० ३४७-४८।

नेतृत्व मे रहकर ही युद्ध करना चाहते है, अतः मुझे उनको सहयोग देना होगा। मै उनको वचन भी दे चुका हूँ। तथापि आपका बहुमान रखने के लिए मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि युद्ध के क्षेत्र मे, मै स्वय धनुष-बाण नही उठाऊगा, परन्तु अर्जुन का सारथी बनूँगा। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह को नमस्कार किया। वे कर्ण के साथ आगे चले गये।[९]

महाभारत में .

प्रस्तुत प्रसग महाभारत मे अन्य रूप से आया है। वह इस प्रकार है —

युद्ध मे श्रीकृष्ण की सहायता लेने के लिए दुर्योधन और अर्जुन दोनो उनके महल मे पहुँचे। उस समय कृष्ण सोये हुए थे। दुर्योधन उनके सिरहाने एक मूल्यवान् आसन पर जा बैठे और अर्जुन कृष्ण के पावो की ओर बैठे।

जागते ही श्रीकृष्ण ने पहले अपने सामने बैठे हुए अर्जुन को देखा, उसके बाद दुर्योधन को।[१०] कृष्ण ने दोनो का स्वागत किया और आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने कहा—युद्ध मे आप हमे सहायता दीजिए। हम दोनो आपके समान सम्बन्धी है तथापि मैं आपके पास पहले आया हू। सज्जनो का नियम है कि जो पहले आता है उसका पक्ष लिया जाता है।

कृष्ण ने कहा—यह सत्य है कि आप पहले आये है किन्तु मैंने पहले अर्जुन को देखा है इसलिए मै उसकी भी सहायता करूगा। मैं अपनी ओर से दो प्रकार की सहायता का प्रस्ताव करता हूँ—एक ओर मेरी नारायणी सेना है जो युद्ध करेगी, दूसरी ओर युद्ध न करने का प्रण करके निहत्था मै रहूँगा।[११] अर्जुन छोटा है अतः जो चाहे, पहले वह पसद कर ले।

---

९ पाण्डव चरित्र पृ० ३४८।

१० प्रतिवुद्ध सवार्ष्णेयो ददर्शाऽग्रे किरीटिनम्।
स तयो स्वागत कृत्वा, यथावत्प्रति पूज्य तौ॥
—महाभारत उद्योग पर्व, अ० ७, श्लोक १०

निहत्थे और युद्ध से विमुख रहने की बात सुनकर भी अर्जुन ने उन्ही को माग लिया ।[१२]

दुर्योधन ने प्रसन्न होकर नारायणी सेना माग ली। कृष्ण की विराट् सेना को पाकर और कृष्ण को युद्ध से विमुख जानकर दुर्योधन को बहुत सन्तोष हुआ ।[१३]

श्रीकृष्ण ने एक वार अर्जुन से पूछा—तुमने मुझे युद्ध से विमुख जानकर भी क्या समझकर अपने पक्ष मे लिया ?[१४] उत्तर मे अर्जुन ने कहा—मैं अकेला ही युद्ध मे यशस्वी बनना चाहता हूँ, अत. आप

---

११ तव पूर्वाभिगमनात्पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात् ।
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन ! ॥
प्रवारण तु वालाना पूर्वं कार्यमिति श्रुति ।
तस्मात्प्रवारण पूर्वमर्ह पार्थो धनजय ॥
मत्सहननतुल्याना गोपानामर्बुद महत् ।
नारायणा इति ख्याता. सर्वे सग्रामयोधिन: ॥
ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिका ।
अयुध्यमान सग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकत. ॥
आभ्यामन्यतर पार्थ ! यत्ते हृद्यतर मतम् ।
तद् वृणीता भवानग्रे प्रवार्यस्त्व हि धर्मत. ॥

—महाभारत, उद्योग पर्व, अ० ७, श्लोक १८-२०

१२ एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुतीपुत्रो धनजय ।
अयुध्यमान सग्रामे वरयामास केशवम् ॥

—वही श्लोक २१

१३ दुर्योधनस्तु तत्सैन्य सर्वमावरयत्तदा ।
सहस्राणा सहस्र तु योधाना प्राप्य भारत ॥
कृष्ण चाऽपहृत ज्ञात्वा सप्राप परमा मुदम् ।
दुर्योधनस्तु तत्सैन्य सर्वमादाय पार्थिव: ॥

—महाभारत, उद्योग पर्व अ० ७, श्लो० २३-२४
प्रकाशक—महावीर प्रिंटिंग प्रेस लाहौर

१४. महाभारत, उद्योग पर्व अ० ७, श्लोक ३४-३५

मेरे सारथी बने[१५], श्रीकृष्ण ने कहा—मै इस युद्ध मे सारथी बनकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा ।[१६]

कृष्ण युद्ध के प्रेरक नहीं :

उद्योग पर्व के इस प्रकरण से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की दुर्योधन और अर्जुन के प्रति समान दृष्टि थी। न उनका पाण्डवो के प्रति गहरा राग था और न कौरवो के प्रति गहरा द्वेष ही। उन्होने जो विरोध किया था वह राग और द्वेष के कारण नही, अपितु न्याय और अन्याय के कारण था। वे यो पक्षपात से मुक्त थे।

दूसरी बात, श्रीकृष्ण एक अद्वितीय योद्धा थे। उनके शरीर मे अपार बल था किन्तु युद्ध मे लोगो को अपार हानि होती है, निरपराध प्राणियो की भी हिंसा होती है, एतदर्थ ही उन्हे युद्ध पसन्द नही था। महाभारत का युद्ध न हो, इसके लिए उन्होने काफी श्रम भी किया था पर जब उन्हे सफलता नही मिली तो सोचा कि अब मुझे एक पक्ष की सहायता करनी पडेगी। तब उन्होने स्वय हथियार ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ली। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी भी वीर ने यह आदर्श उपस्थित नही किया। भीष्म पितामह जैसी महान् विभूति भी ऐसा न कर सकी। तथापि आश्चर्य इस बात का है कि लोग उन्हे महाभारत युद्ध का प्रेरक मानते है। वे युद्ध के कराने वाले नही, रोकने वाले थे।

नि:शस्त्र श्रीकृष्ण को लेकर उनसे क्या लाभ उठाना। यह प्रश्न वीर अर्जुन के सामने उपस्थित हुआ। अर्जुन ने अपना रथ चलाने का कार्य श्रीकृष्ण को सौपा। रथ चलाने का कार्य क्षत्रियो की दृष्टि से निम्नकोटि का कार्य था। क्षत्रिय लोग यह कार्य करना अनुचित मानते थे। जब कर्ण ने मद्रराज को अपना सारथी बनने के लिए कहा तब उसने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा था किन्तु श्रीकृष्ण ने सोचा—यह कार्य करना श्रेयस्कर है, पर युद्ध करना अनुचित है।

---

१५. महाभारत, उद्योगपर्व श्लोक ३६-३७

१६. वही, श्लोक ३८

कर्ण को समझाना

श्री कृष्ण ने कर्ण से कहा[१७]—कर्ण ! तुम गुणो के आकर हो। इस पृथ्वी पर एक से एक वढकर वीर है पर तुम्हारे सदृश वीर कोई नही है। पर्वत तो अनेक है, पर सुमेरु तो एक ही है। जैसे वहुमूल्य हीरा सोने की अगूठी मे ही शोभा देता है पीतल की अगूठी मे नही, वैसे ही कर्ण, तुम पाण्डवो के साथ शोभा देते हो, कौरवो के साथ नही। दुर्योधन का साथ देने से तुम कुलक्षय के कारण वनोगे ! मेरी समझ से ऐसे दुष्ट व्यक्ति के साथ तुम्हे मित्रता नही करनी चाहिए थी। तुमने यह भूल की है। कोई व्यक्ति सर्प का चाहे कितना भी पोषण करे पर सर्प पोषण करने वाले को ही काटता है। वैसे दुराचारी मित्र भी उपकार करने वाले मित्र को ही कष्ट देता है।

यदि पिता दुरात्मा है, तो पुत्र का कर्तव्य है कि ऐसे पिता को छोड दे, जैसे राहु से ग्रसित होने पर किरणें सूर्य का त्याग कर देती है।

जब नदी अमर्यादित होकर वहती है तव वह अपने किनारे पर शोभा वढाने वाले वृक्षो को ही नष्ट कर देती है। वैसे ही दुराचारी भी अपने रक्षको को नष्ट कर देते है।

दुर्जन की सगति कृष्ण पक्ष के चाँद की तरह है। कृष्ण पक्ष की सगति करने से चन्द्र किरणे घटने लगती हैं, उसका प्रकाश मन्द होने लगता है। यहाँ तक कि एक दिन उसका प्रकाश पूर्ण रूप से लुप्त हो जाता है, किन्तु सज्जन की सगति शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह है, जो प्रतिदिन उसके प्रकाश की अभिवृद्धि करता है और एक दिन उसे पूर्ण प्रकाशित कर देता है।

---

१७ श्री पाण्डव चरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग-११

महाभारत मे भी प्रस्तुत कथानक कुछ शब्दो के हेरफेर के साथ चित्रित किया है, पर भाव यही है।

सोऽसि कर्ण तथाजात पाण्डो पुत्रोऽसि धर्मत.।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणमेहि राजा भविष्यसि।
पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णय.।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥

महाभारत—उद्योग० अ० १४०, श्लोक ९-१०

सूर्य के प्रकाश में काच भी हीरे की तरह चमक उठता है वैसे ही सज्जन के सहवास से जीवन चमक उठता है।

पूर्व दिशा के पवन के साथ मित्रता करने पर बादल अभिवृद्धि को प्राप्त होते है और दक्षिण दिशा के पवन के साथ मित्रता करने पर नष्ट हो जाते है। वैसे ही सज्जन और दुर्जन की सगति है। युधिष्ठिर के साथ मित्रता करने पर तेरे यश की अभिवृद्धि होगी, पर दुर्योधन का साथ करने पर तेरा गौरव मिट्टी मे मिल जायेगा।

कृष्ण ने कर्ण को जरा अपने निकट खीचते हुए कहा—कर्ण ! मैं तुम्हे एक अत्यन्त गोपनीय बात बताता हूं, जो मुझे स्वय कुन्ती ने कही है। वास्तव मे तू राधा का पुत्र नही, किन्तु कुन्ती का पुत्र है। पाण्डवो का सहोदर है। तेरा लालन-पालन राधा ने किया एतदर्थ तू राधेय कहलाता है, पर वस्तुत तेरी माता कुन्ती है। पाडवो के साथ यदि तू मैत्री करता है तो जो भी राज्य पाण्डवो को प्राप्त होगा उसमे तेरा अधिकार मुख्य रहेगा क्योकि तू पाण्डवो मे सबसे बड़ा है। मै तुझे पाडवो मे मुख्य अधिकारी बनाऊ गा।

कर्ण ने कहा—कृष्ण ! आपका कथन सत्य है। मैने दुर्योधन के साथ मित्रता की, वह उचित नही ! किन्तु जब सूतपुत्र समझकर लोग मेरी अवज्ञा करते थे उस समय उस अवज्ञा को मिटाने के लिए दुर्योधन ने मुझे राज्य दिया। उस समय मैने दुर्योधन से कहा था—"दुर्योधन ! मै तुम्हारा जन्मभर मित्र रहूँगा। आज से ये मेरे प्राण तुम अपने ही समझना। मै तुम्हारी प्रत्येक आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करू गा। अत: कृष्ण ! अब मै दुर्योधन को छोडकर धर्मराज से मैत्री करके विश्वासघाती नही बन सकता। मुझे अपने वचन का पालन करना होगा। आप मेरी माता कुन्ती से यह नम्र निवेदन करे कि मैं आपके चार पुत्रो का प्राण हरण नही करू गा। मेरा मन बाल्य-अवस्था से ही अर्जुन को जीतना चाहता है और युद्ध मे भी उसे ही मारना चाहता है। युद्ध के मैदान मे यदि मैं मर गया तो अर्जुन जीवित रहेगा और अर्जुन मर गया तो मै जीवित रहूँगा। इस प्रकार माता कुन्ती के पाँचो पुत्र जीवित रहेगे।[१८]

---

१८. महाभारत के अनुसार माता कुन्ती स्वय कर्ण को यह समझाने जाती है कि तू मेरा ही पुत्र है, अत. पाण्डवो के साथ मिल जा, किन्तु

सत्यप्रतिज्ञ कर्ण की बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। उसके पश्चात् वे पाण्डुराजा से मिले और सीधे द्वारिका चले आये। हस्तिनापुर मे दुर्योधन आदि से जो बाते हुई थी, वह विस्तार से पाण्डवो को कही। पाण्डव बहुत ही प्रसन्न हुए और युद्ध की तैयारी करने लगे।

दुर्योधन की दुर्बुद्धि :

महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण सन्धि के लिए हस्तिनापुर जाने से पूर्व पाण्डवो से विचार विमर्श करते है।[१९] द्रौपदी भी कृष्ण को

कर्ण कहता है कि इस समय मैं नही मिल सकता। आपका मेरे पास आना, और अनुरोध करना वृथा न होगा। मैं सग्राम मे एक अर्जुन को छोडकर आपके अन्य चार पुत्रो—युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव का वध नही करूँगा। मैं प्रतिज्ञा ग्रहण करता हूँ कि सग्राम मे युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को मारने का अवसर पाकर भी उन्हे छोड दूगा। मैं युधिष्ठिर की सेना मे एक अर्जुन से ही मरने-मारने वाला सग्राम करूगा। अर्जुन को मार लेने मे ही मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। अथवा अर्जुन यदि मुझे मार सके तो मुझे अपार यश और स्वर्ग प्राप्त होगा। हे यशस्विनी! आपके पाच पुत्र कभी नष्ट न होगे। मैंने अर्जुन को मारा तो भी और अर्जुन ने मुझे मारा तो भी पाच पाण्डव रहेगे ही।

देखिए व्यास के शब्दो मे—

न च तेऽय समारम्भो मयि मोघो भविष्यति।
वध्यान्विषह्यान्सग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान्॥
युधिष्ठिर न भीम च यमौ चैवाऽर्जुनादृते।
अर्जुनेन सम युद्धमपि यौधिष्ठिरे वले॥
अर्जुन हि निहत्याऽऽजौ सम्प्राप्त स्यात्फल मया।
यशसा चापि युज्येय निहत. सव्यसाचिना॥
न ते जातु न शिष्यन्ति पुत्रा पञ्च यशस्विनि।
निरर्जुना सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि॥

महाभारत—उद्योग० अ० १४६—श्लोक २० से २३

अपनी करुण-कहानी सुनाती है। अपने बिखरे हुए केशो को हाथ मे लेकर आँखो से अश्रु बहाती हुई कहती है—हे कृष्ण ! शत्रु जब सन्धि की इच्छा प्रकट करे तब तुम कर्तव्य निश्चित करते समय दुःशासन के हाथो से खीचे गये मेरे इन बालो का स्मरण रखना।[20]

सभी को सान्त्वना देकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए प्रस्थित हुए। धृतराष्ट्र आदि ने कृष्ण के आगमन का सवाद सुना तो उनके मन मे विचार हुआ कि कृष्ण का भव्य स्वागत किया जाय। पर दुर्योधन के मन मे और ही विचार चक्कर लगा रहे थे। उसने कहा—मैंने इस समय बहुत बड़ा काम विचारा है। पाण्डवों के सबसे बड़े सहायक श्री कृष्ण हैं। वे जब यहा आएँगे तब उन्हे पकड़कर कैद कर लूँगा। फिर पाण्डव यादव और सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल के राजा सहज ही मेरे अधीन हो जायेगे।[21]

श्री कृष्ण को कैद करने की बात सुनकर दुर्योधन की दुर्बुद्धि पर भीष्मपितामह को बहुत ही क्रोध आया और वे वहा से उठकर चल दिये।[22]

दूषित अन्न नहीं खाऊंगा :

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचे। कौरवो ने उनका स्वागत किया पर उस स्वागत मे अन्तर का प्रेम नही था, यह बात श्री कृष्ण से

---

१९. देखिए महाभारत—उद्योगपर्व ७२ से ९२ तक।
किन्तु जैन पाण्डवचरित्र देवप्रभसूरि मे ऐसा वर्णन नही है।

२०. पद्माक्षी पुंडरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्ण वचनमब्रवीत् ॥
अय ते पुंडरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृत·।
स्मर्तव्य. सर्वकार्येपु परेषा सधिमिच्छता ॥
—महाभारत उद्योगपर्व अ० ८२, श्लोक ३५-३६

२१ इद तु सुमहत्कार्यं श्रृणु मे यत्समर्थितम्।
परायण पाण्डवाना नियच्छामि जनार्दनम् ॥
तस्मिन्वद्धे भविष्यन्ति वृष्णय.पृथिवी तथा।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥
—महाभारत, उद्योगपर्व, अ० ८८, श्लोक १३-१४

छिपी न रह सकी। जब दुर्योधन ने उनको भोजन के लिए निमन्त्रण दिया तब श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए दुर्योधन की ओर देखकर कहा—"हे कौरव! मै काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ, कपट या लोभ वश होकर धर्म को नही त्याग सकता। लोग यो तो प्रीति से और विपत्तिग्रस्त होकर दूसरे का अन्न खाते है। पर तुमने प्रीति से मुझे भोजन का निमन्त्रण नही दिया है और न मुझ पर कोई आपत्ति आई है। फिर मै तुम्हारे यहाँ क्यो भोजन करू?[२३] मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम किसी दुष्ट विचार से भोजन के लिए अनुरोध कर रहे हो इसलिए मै तुम्हारे दूषित अन्न को न खाऊँगा। मै केवल विदुर जी का अन्न ग्रहण करना ही उचित और श्रेयस्कर समझता हूँ।[२४]

धृतराष्ट्र को समझाना :

दूसरे दिन श्रीकृष्ण कौरवो की सभा मे गये। धृतराष्ट्र की ओर देखकर उन्होने कहा—हे भरतकुल दीपक! मै इस उद्देश्य से आपके पास आया हूँ कि पाण्डवो और कौरवो मे परस्पर सन्धि हो जाय और वीर पुरुषो का विनाश न हो।[२५] आपको और कोई हितोपदेश देने की मुझे इच्छा नही है, क्योकि जानने योग्य सभी बाते आप

---

२२ महाभारत उद्योग पर्व, अ० ८८ श्लोक १६ से २३, पृ० ३६०८-३६०६, सचित्र महाभारत।

२३ नाऽहं कामान्न सरम्भान्न द्वेषान्नाऽर्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्म जह्या कथञ्चन॥
सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यनि वा पुन।
न च सम्प्रीयसे राजन्न चैवाऽऽपद्गता वयम्॥
वही—उद्योगपर्व, अ० २६ श्लोक २४-२५

२४ सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्न दुष्टाभिसहितम्।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मति॥
वही, उद्योगपर्व अ० २६ श्लोक ३२

२५. कुरूणा पाण्डवाना च शम स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागत॥
—वही० उद्योगपर्व अ० ६५, श्लोक ३

जानते हैं।[26] आप कुरुकुल के प्रधान नेता और शासक है। आपके रहते आपसे छिपाकर और आपको जताकर भी कौरव लोग असत्य और कपट का व्यवहार कर रहे है। आपके पुत्र दुर्योधन आदि अत्यन्त अशिष्ट हैं। वे राज्य-लोभ के वश होकर प्राचीन मर्यादा को तोड़ते है—धर्म और अर्थ पर दृष्टि न रखकर पाण्डवो के साथ क्रूरता और वेईमानी का वर्ताव कर रहे है। इसी कारण इस समय कुरुकुल के ऊपर विपत्ति के बादल मडरा रहे है। यदि आप इस परिस्थित को न सभालेगे तो निश्चय ही युद्ध की अग्नि मे पृथ्वी के असख्य मनुष्यो का सर्वनाश हो जायेगा। हे राजेन्द्र ! आप चाहे तो सहज ही यह आपत्ति टल सकती है।[27]

हे राजेन्द्र ! आपकी आज्ञा मानना आपके पुत्रो का कर्तव्य है। आपकी आज्ञा मे चलने से उनका परम कल्याण होगा।[28]

हे नरराज ! विशेष उद्योग व यत्न करके भी आप पाण्डवो को हरा नही सकते, किन्तु पाण्डव यदि आपके रक्षक हो जायेगे तो देवगण सहित भी आपका सामना न कर सकेंगे। राजाओ की तो वात ही नही।[29]

हे राजेन्द्र ! सग्राम का फल केवल महाक्षय है। देखिए, कौरवो और पाण्डवो मे से यदि कोई पक्ष नष्ट हुआ तो आपकी ही हानि होगी। आपको शोक भी होगा।[30] समर मे पाण्डवो और कौरवो का विनाश होने से क्या आपकी प्रशसा होगी ? पाण्डव मरे या कौरव मरे तो क्या आपको सुख मिलेगा ?[31] पाँचो पाण्डव शूर युद्धनिपुण और आपके आत्मीय है। इसलिए आप इस होने वाले अनर्थ से दोनो पक्षो की रक्षा कीजिए। ऐसा उपाय कीजिए जिससे शूर और रथी पाण्डव और कौरव एक दूसरे के हाथ से मरते हुए न दीख पड़े।[32] और पाण्डवो के प्रति आपका जैसा सद्भाव पहले था वैसा ही फिर

२६ वही० श्लोक ४
२७. वही० श्लोक ८-१२
२८. वही० श्लोक १४
२९. वही० श्लोक १८
३०. वही० श्लोक २८
३१. वही० श्लोक २९
३२ वही० श्लोक ३१
३३. वही० श्लोक ३७

हो जाये।[33] पाण्डवो के पिता बाल्यावस्था मे ही मर गये थे[34] तभी से वे पुत्र की तरह आपके यहाँ पले है। इसलिए आप उन्हे और अपने पुत्रो को एकसा समझकर दोनो की रक्षा कीजिए।[35] पाण्डव सन्धि और युद्ध दोनो के लिए तैयार है। अब आप लोगो को जो अच्छा लगे वह कीजिए।[36]

कुछ देर रुककर फिर कृष्ण ने दुर्योधन से कहा—दुर्योधन! सन्धि हो जाने पर पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर तुम्ही को युवराज बनायेगे और धृतराष्ट्र महाराजा बने रहेगे। इस कारण गले लगने आ रही राजलक्ष्मी को विमुख मत करो। पाण्डवो को आधा राज्य देकर आप भी विशाल ऐश्वर्य प्राप्त करो। मेरा अन्तिम कथन यही है कि हितैषियो की बात मानकर पाण्डवो से सन्धि कर लेने मे ही तुम्हारे आत्मीय प्रसन्न होगे।[37]

दुर्योधन को भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य ने भी समझाया पर वह न समझा। उसने कहा—मेरे जीते जी पाण्डव राज्य प्राप्त नही कर सकते। यहा तक कि सुई की नोक भर भी पृथ्वी, मै युद्ध के बिना पाण्डवो को नही दे सकता।[38]

दुर्मति दुर्योधन दु शासन, शकुनि और कर्ण ने आपस मे सम्मति करके यह निश्चय किया कि राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह से मिलकर चतुर कृष्ण हमे पकडने की इच्छा कर रहे है। इसलिए

---

३४ जैन ग्रन्थो के अनुसार पाण्डुराजा का देहान्त नही हुआ, वे महाभारत के युद्ध के समय उपस्थित थे। देखो—श्री देवप्रभसूरि रचित पाण्डव चरित्र सर्ग—११ वा।

३५ बाला विहीना. पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिता।
तान्पालय यथान्याय पुत्राश्च भरतर्षभ॥
—महाभारत, वही० ३८

३६ महाभारत उद्योग पर्व, अ० ९५, श्लोक ६२

३७ महाभारत उद्योग पर्व, अ० १२४ श्लोक ‑० से ६२

३८ यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विद्ध्येदग्रेण केशव!।
तावदप्यपरित्याज्य भूमेर्न पाण्डवान्प्रति॥
—महाभारत उद्योग पर्व, अ० १२७, श्लोक २५

हम पहले ही, इन्द्र ने जैसे वलि राजा को पकड लिया था, वैसे बल पूर्वक पुरुषसिंह कृष्ण को कैद करले। कृष्ण के पकडे जाने पर पाण्डव लोग, जिसके दात तोड़ दिये गये हो उस सर्प की तरह, विल्कुल उत्साह-हीन और किंकर्तव्यविमूढ हो जायेंगे।[३९]

महावुद्धिमान् और इशारो के जानने मे प्रवीण सात्यकि ने उन लोगो का यह दुष्ट विचार जान लिया।[४०] उन्होने पहले पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण से फिर राजा धृतराष्ट्र और विदुर से दुर्योधन के इस दुष्ट विचार का हाल कहा।[४१] सभी ने दुर्योधन के मूर्खतापूर्ण कृत्य की भर्त्सना की।[४२] कृष्ण ने उस समय अपना चमत्कार बतलाकर सभी को चमत्कृत किया।[४३] फिर वे वहा से रवाना हो गये।

महाभारत मे अन्त मे आधे राज्य के स्थान पर पाँच गाव पाडवो को देने का भी उल्लेख आया है।[४४]

क्या महाभारत का युद्ध ही जरासंध का युद्ध है ?

महाभारत का युद्ध कौरवो और पाण्डवो का युद्ध था। उस युद्ध मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथी का कार्य किया किन्तु स्वय ने युद्ध नही किया।[४५]

आचार्य शीलाङ्क ने महाभारत का उल्लेख नही किया, 'चउप्पन्न महापुरिस चरिय'[४६] में, कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र मे,[४७] आचार्य मलधारी हेमचन्द्र ने भव-भावना

---

३९. महाभारत उद्योग पर्व, अ० १३० श्लोक ३ से ६

४०. वही० श्लोक ९ ४१ वही० श्लोक १२-१३

४२. वही० श्लोक १४ से ५३

४३ वही० अ० १३१, श्लोक ४-२२

४४ सर्वं भवतु ते राज्य पञ्चग्रामान्विसर्जय।
अवश्य भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ! ॥
—महाभारत उद्योग० अ० १५०, श्लोक १७

४५ पाण्डव चरित्र, देवप्रभसूरी, अनुवाद सर्ग १२, पृ० ३८०

४६ अ० ४९-५०-५१, पृ० १८७-१९०

४७ पर्व ८

४८. भव-भावना

मे[४८] तथा अन्य कितने ही जैन ग्रन्थो मे भी महाभारत के युद्ध का वर्णन नही है। कितने ही लेखको ने जरासध के साथ हुए युद्ध एव महाभारत युद्ध को एक मानकर ही वर्णन कर दिया है।

देवप्रभसूरि के पाण्डव चरित्र के अनुसार कौरवो और पाण्डवो का युद्ध जरासध के युद्ध से पूर्व हुआ था। कौरव-पाण्डव-युद्ध मे जरासध दुर्योधन के पक्ष मे आया था, किन्तु उसने लडाई मे भाग नहीं लिया था। कौरव-पाण्डवो का युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान मे हुआ था,[४९] और जरासध के साथ कृष्ण का युद्ध द्वारिका से पैतालीस योजन दूर सेनपल्ली मे हुआ था।[५०] वे दोनो युद्ध पृथक्-पृथक् थे।

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने हरिवशपुराण मे[५१] तथा दिगम्वर आचार्य शुभचन्द्र ने पाण्डवपुराण मे[५२] जरासध के युद्ध को और कौरव-पाण्डवो के युद्ध को एक माना है। जरासध का वह युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान मे हुआ बताया गया है।[५३] उसी युद्ध मे श्रीकृष्ण जरासध को मारते है।[५४]

---

४९ पाण्डव चरित्र सर्ग १३, पृ० ३९१

५० (क) पचचत्वारिंशत तु योजनानि निजात् पुरात्।
गत्वा तस्थौ सेनपल्या ग्रामे सग्रामकोविद:॥

—त्रिषष्टि० ८।७।१९६

(ख) कइवयपयाणएहिं च पत्तो सरस्सतीए तीराए सिणवल्लिया-हिहाण गाभति। तत्थ य समथलसमरजोग्गभूमिभागम्मि आवासिओ समुद्दविजओ त्ति।

—चउप्पन्नमहापुरिसचरिय पृ० १८६

५१ हरिवशपुराण सर्ग ५०, पृ० ५८७

५२. देखिए पर्व १९-२०, पृ० ३९०-४४५

५३ जरासन्धोऽत्र सप्राप्त· सैन्यसागररुद्धदिक्।
कुरुक्षेत्र महाक्षत्रप्रधानप्रधनोचितम्॥
पूर्वमभ्येत्य तत्रैव केशवोऽपरसागर.।
तस्थावापूर्यमाण सत् वाहिनीनिवहैर्निजै·॥

—हरिवशपुराण ५०।६५-६६, पृ० ५८७

५४. हरिवशपुराण ५२।८३-८४, पृ० ६०२

महाभारत के अनुसार जरासध का युद्ध कौरव-पाण्डवों के युद्ध से पहले हुआ था।[५५]

हमारी अपनी दृष्टि से भी महाभारत और जरासध का युद्ध पृथक् पृथक् है।

महाभारत युद्ध और उसका दुष्परिणाम :

पाण्डवो को अपने स्वत्व की रक्षा और न्यायोचित अधिकार की प्राप्ति के लिए युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा नही रहा। युद्ध की घोषणा हुई। एक पारिवारिक राजवश का झगडा, व्यापक बन गया कि उसने देशव्यापी महायुद्ध का रूप धारण कर लिया।

महाभारत का यह भयकर संग्राम वैदिक परम्परा की दृष्टि से १८ दिनो तक चला, किन्तु उस युग की समुन्नत युद्ध कला और अत्यन्त परिष्कृत अस्त्र-शस्त्रो के कारण उस अल्पकाल मे ही इतना भीषण सहार हुआ कि उसकी तुलना करना कठिन है। दोनो पक्षो के बहुसख्यक राजा गण अपनी-अपनी विराट् सेना के साथ उस महा विनाश की बलि-वेदी पर जूझ मरे थे। श्रीकृष्ण के अपूर्व बुद्धि बल और अद्भुत रण-कौशल से शक्तिशाली कौरव पराजित हुए और पाण्डवो की विजय हुई। पर यह विजय बहुत महगी रही। उस युद्ध का भयानक परिणाम समस्त भारतवर्ष को भोगना पडा। उस काल तक देश ने ज्ञान-विज्ञान की जो उन्नति की थी और जो अभूतपूर्व भौतिक समृद्धि प्राप्त की थी वह सब उस महायुद्ध की भीषण ज्वाला मे जलकर भस्म हो गई। उस समय देश अवनति के ऐसे गहरे गर्त मे गिर गया कि जिसका चिरकाल तक उद्धार नही हो सका।[५६]

गीता का उपदेश .

उस युद्ध का विस्तृत वर्णन महाभारत, पाण्डवचरित्र, आदि ग्रन्थो मे किया गया है। उस युद्ध मे श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने। महान् योद्धा और वीर भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, अभिमन्यु,

---

५५ देखिए—महाभारत सभापर्व के अन्तर्गत जरासध पर्व

५६. देखिए व्रज का सास्कृतिक इतिहास

दुर्योधन, और दु शासन आदि अनेक वीरो का उस युद्ध मे सहार हुआ।

वैदिक मान्यता के अनुसार उस युद्ध मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। गीता वैदिक परम्परा का एक अद्‌भुत ग्रन्थ है। सन्त ज्ञानेश्वर ने कहा है—गीता विवेक रूपी वृक्षों का अपूर्व बगीचा है। वह नवरस रूपी अमृत से भरा समुद्र है। लोकमान्य तिलक ने लिखा—गीता हमारे धर्मग्रन्थो मे एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। महर्षि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर का अभिमत है कि—गीता वह तैलजन्य दीपक है जो अनन्तकाल तक हमारे ज्ञानमन्दिर को प्रकाशित करता रहेगा। वकिमचन्द्र का मानना है कि—गीता को धर्म का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानने का यही कारण है कि उसमे ज्ञान, कर्म, और भक्ति—तीनो योगो की न्याययुक्त व्याख्या है। महात्मा गाधी गीता को माता व सद्‌गुरु रूप मे मानते थे।

जैन ग्रंथो मे कुरुक्षेत्र मे गीतोपदेश की कोई चर्चा नही मिलती। कुछ समीक्षको का मत है कि गीता का उपदेश वास्तव मे कुरुक्षेत्र मे युद्ध के समय का उपदेश नही है, किन्तु युद्ध का रूपक बनाकर वह भारतीय जीवन दृष्टि का एक महत्वपूर्ण विश्लेपण किया गया है।

कुछ भी हो, गीता भारतीय चितन एव जीवन दर्शन की एक अमूल्य मणि है, इसमे कोई दो मत नही हो सकते।

◆

जीवन के विविध प्रसंग

जीवन के विविध प्रसंग

१ | चमत्कारी भेरी

एक समय इन्द्र ने श्रीकृष्ण की प्रशसा करते हुए कहा—श्रीकृष्ण कभी किसी के दुर्गुण नही देखते। और न किसी व्यक्ति के साथ नीच युद्ध करते हैं।

एक देव को इन्द्र के इस कथन पर विश्वास नही हुआ। वह सीधा द्वारिका मे आया। उस समय श्रीकृष्ण रथ में बैठकर वन-विहार को जा रहे थे। रास्ते मे देव ने एक मृत कुतिया का रूप बनाया। उसके शरीर मे कीडे कुलबुला रहे थे। दुर्गन्ध से सिर फट रहा था। लोग उसे दूर से ही देखकर नाक-भौ सिकोड कर आगे बढ रहे थे। श्रीकृष्ण ने उसे देखा। सारथी से बोले - देखो न, इस कुतिया के दात मोती की तरह चमक रहे है। इसके दात कितने सुन्दर दिखलाई दे रहे हैं। कृष्ण आगे बढ गये। देव ने देखा वस्तुत श्रीकृष्ण गुणानुरागी है।

तत्पश्चात् देव ने एक तस्कर का रूप बनाया और वह श्रीकृष्ण के अश्व रत्न को लेकर भागा। उसे छीनने के लिए सेना ने पीछा किया, पर चोर ने सेना को भगा दिया। तब श्रीकृष्ण पहुँचे। बोले—अरे चोर, मेरे घोडे को लेकर कहा जा रहा है? यदि प्राण की रक्षा चाहता है तो घोड़े को छोड दे।

चोर ने कहा—मुझे युद्ध मे जीतकर तुम अपना घोड़ा ले कते हो।

कृष्ण—मैं रथ मे बैठा हूँ, तू भी रथ मे बैठकर युद्ध कर।

चोर—मुझे रथ की आवश्यकता नही, मै तो तुम्हारे साथ पूति-द्ध करना चाहता हूँ।

कृष्ण—मै नीच युद्ध नही करता, तू मेरा घोड़ा ले जा सकता है।

ज्योही श्रीकृष्ण की यह बात सुनी, देव प्रसन्न हो उठा। उसने पना रूप प्रकट कर कहा—कृष्ण! वस्तुत तुम परीक्षा मे उत्तीर्ण ए हो। मै तुम पर प्रसन्न हूँ। देवदर्शन व्यर्थ न हो, इसलिए बोलो या चाहते हो?

कृष्ण ने कहा—देव! मुझे अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता ही है, पर इन दिनो मे द्वारिकावासी रोग से सत्रस्त है अत ऐसा कोई उपाय बताओ, जिससे रोग का उपशमन हो जाए।

देव ने एक दिव्य भेरी देते हुए कहा—इस भेरी को छह-छह मास से बजाइयेगा, जिससे पूर्व रोग नष्ट हो जायेगा और भविष्य मे छह माह तक कोई रोग न होगा। देव अपने स्थान चला गया।

श्रीकृष्ण ने ज्योही भेरी को बजाया, त्यो ही उसके शब्द के प्रभाव से द्वारिकावासी रोगमुक्त हो गये।

एक श्रेष्ठी ने भेरी की महिमा सुनी। वह दाह-ज्वर से सत्रस्त था। वह द्वारिका आया। पर पहले ही भेरी बज चुकी थी। लोगो ने कहा—छह माह तक अब उसकी प्रतीक्षा करनी होगी। सेठ सीधा ही भेरी-रक्षक के पास पहुँचा। एक लाख दीनार उसके हाथ में थमाते हुए कहा, जरा भेरी का टुकडा ही दे दो। पहले तो भेरी रक्षक इन्कार होता रहा, पर पैसे के लोभ से वह पिघल गया। उसने जरा सा टुकडा काटकर उसे दे दिया। ज्योही धनिक ने उसे घोट कर पिया त्योही वह रोगमुक्त हो गया। भेरी रक्षक ने उसकी जगह चन्दन की लकडी लगा दी। इस प्रकार धन के लोभ से वह भेरी को काट-काट कर देने लगा। एक दिन सम्पूर्ण भेरी ही चन्दन की हो गई।

छह माह के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उसे बजाने का आदेश दिया और वह बजाई गई तो उसका शब्द ही नही हुआ। कृष्ण ने उसे

देखा, सारा रहस्य उन्हे ज्ञात हो गया। रिश्वतखोर भेरी रक्षक को श्रीकृष्ण ने प्राण दण्ड दिया, और अष्टम तप कर पुनः देव से वह चमत्कारी भेरी प्राप्त की।[1]

●

२ | आत्मप्रशंसा

महाभारत का युद्ध चल रहा था। वीर अर्जुन के धनुष की टकार चारो ओर गूज रही थी। अपने पौरुष के अभिमान मे वीर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की कि जो मेरे गाण्डीव धनुष का अपमान करेगा, उसे मै जीवित न छोड़ूगा।

उधर युधिष्ठिर और कर्ण में भयकर युद्ध चल रहा था। युधिष्ठिर चारो ओर से शत्रुओ से घिर गये। कर्ण उनको एक ही वाण मे परलोक पहुँचा सकता था, पर उसने अपनी उदारता बतलाते हुए कहा—युधिष्ठिर! मैं आज तुम्हे परलोक पहुँचा देता, किन्तु मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि कुन्ती के पुत्रो मे से अर्जुन के अतिरिक्त किसी को भी नही मारुगा। वह प्रतिज्ञा ही आज मुझे तुम्हे मारने से रोक रही है। जाओ मै तुम्हे प्राण दान देता हूँ।

युधिष्ठिर लज्जा से पीछे लौटे। अर्जुन कौरव-सेना मे प्रलय का दृश्य उपस्थित कर अत्यधिक प्रसन्न हो रहा था। युधिष्ठिर ने जब अर्जुन को देखा तव अपने हृदय की अपार वेदना को व्यक्त करते हुए कहा—अर्जुन! धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव को, जिसके होते हुए भी कर्ण ने मेरा घोर अपमान किया है।

गाण्डीव को धिक्कार की बात सुनते ही अर्जुन का खून खौलने लगा। वह क्रोध से लाल हो गया। उसे भान ही न रहा कि मैं अपने पितृतुल्य बडे भाई के सामने हूँ। उसके दिल और दिमाग मे एक ही बात घूम रही थी—मेरे गाण्डीव का अपमान! कोई भी क्यो न

---

१ (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व ८, सर्ग १०
(ख) आवश्यक चूर्णि
(ग) नन्दीसूत्र वृत्ति मलयगिरि

हो, उसके अपमान का बदला लिये बिना नही रह सकता। मै अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करू गा! बडे भाई के अपमान करने वाले का वदला बाद मे लू गा, पहले तो गाण्डीव का अपमान करने वाले को समझता हूँ। वह गाण्डीव की प्रत्यचा पर वाण चढाकर युधिष्ठिर के सामने खडा हो गया।

वातावरण अत्यन्त विषम हो गया। अर्जुन का भयकर क्रोध महान् अनर्थ कर देगा। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा—अर्जुन, धन्यवाद! तुम महान् क्षत्रिय हो, युधिष्ठिर का वध कर तुम्हे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी चाहिए। पर खेद है, कि तुम्हे मालूम नही कि बडो का वध कैसे किया जाता है।

अर्जुन के हाथ रुक गये। वह कुछ सोचने लगा कि तभी कृष्ण ने कहा—अपने से बडो का वध शस्त्र से नही, अपमान से किया जाता है। तुम युधिष्ठिर को अपमान जनक शब्द कहकर उनका वध कर सकते हो।

क्रोध के आवेग मे अर्जुन ने युधिष्ठिर को गालियाँ देनी प्रारभ की। वह मुह से अनर्गल बाते सुनाता रहा किन्तु कुछ समय मे जब उसके अह का नशा उतरा तो मन ग्लानि से भर गया, और अर्जुन के मन मे इतनी ग्लानि हुई कि वह आत्मदाह करने को प्रस्तुत हो गया।

उसने कहा—धर्मशास्त्रो का विधान है कि अपने गुरुजनो की हत्या करने वाला व्यक्ति अपने को जीवित ही अग्नि मे होम दे। तभी वह पाप से मुक्त हो सकता है। एतदर्थ बडे भाई का अपमान करने के कारण मैं अब अग्निस्नान करू गा। यह कह वह अग्निस्नान के लिए चलने लगा।

पुन स्थिति विकट हो गई। श्रीकृष्ण ने टूटते हुए सूत्र को फिर से सभाला—'अर्जुन! तुमने अपने बडे भाई का अपमान कर महान् पाप किया है। इसका प्रायश्चित्त तुम्हे आत्म-हत्या करके करना होगा, पर आत्महत्या किसे कहते है यह तुम जानते हो?

अर्जुन, कृष्ण की ओर टकटकी लगाता हुआ देखता रहा। श्रीकृष्ण ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—शस्त्र से शरीर के टुकडे-टुकडे कर देना, पानी मे डूबकर मर जाना, अग्नि मे जलकर अपने शरीर को

नष्ट कर देना, ये सारे आत्म हत्या के तरीके नही है। आत्म हत्या का सबसे उत्कृष्ट तरीका है, अपने ही मुह से अपनी प्रशसा करना। अर्जुन ! तुम अपने मुह से अपनी प्रशसा करो, बस, तुम्हारी आत्म-हत्या हो गई।

श्रीकृष्ण के मुह से गुरुजनो के वध और आत्म हत्या का अर्थ और विश्लेषण सुनकर सभी विस्मित हो गए।

●

३ | वशीकरण मंत्र :

एक समय श्रीकृष्ण पाण्डवो के साथ द्वारिका जा रहे थे। रथ द्रुतगति से आगे बढ रहे थे। श्रीकृष्ण की अग्रमहिषी सत्यभामा और पाण्डवो की पत्नी द्रौपदी दोनो एक रथ मे बैठी थी। सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा—बहिन ! मुझे आश्चर्य है कि तू अपने पाँचो पतियो को इतना अधिक प्रसन्न कैसे रखती है ? तेरे पास कौनसा वशीकरण मत्र है कि सभी तुझ पर मुग्ध रहते है ! मेरे तो एक ही पति है और उन्हे भी मै प्रसन्न नही रख पाती।

द्रौपदी ने कहा—बहिन सत्यभामा ! वस्तुत. तुम बहुत भोली हो। मैं तुम्हे वशीकरण मत्र बताती हूँ। वह यह है—प्रियतम के चरणो मे मन, वचन और कर्म से अर्पित हो जाना। जो उन्हे पसन्द हो वही कार्य करना, उनके भोजन करने के पश्चात् भोजन करना, उनके सोने के पश्चात् सोना, वे जो भी बात कहे आदर से उसे सुनना, और भेद भाव न रखना, प्रत्येक बात का उत्तर मधुर वाणी से देना ! इससे बढकर दूसरा वशीकरण मत्र नही है।[२]

●

---

२. (क) पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि
   (ख) महाभारत

४ | द्रौपदी की परीक्षा :

कहा जाता है एक समय द्रौपदी कही जा रही थी। रास्ते मे एक नदी आयी। राजा कर्ण सूर्य की उपासना मे तल्लीन थे। उनके तेजस्वी चेहरे को देखकर द्रौपदी के मन मे विचार आया—यह भी पाण्डवो के भाई है, यदि साथ ही रहते तो जैसे पाँच पति हैं वैसे छठे पति इनको भी बना लेती। द्रौपदी के मन मे विचार आया और चला गया। द्रौपदी अपने महलो मे लौट आयी।

किसी भी प्रकार द्रौपदी के मन का यह विचार श्रीकृष्ण को ज्ञात हो गया। उन्होने सोचा द्रौपदी ने भूल की है और उस भूल का प्रायश्चित्त करना चाहिए, नही तो यह छोटी भूल विराट् रूप ले सकती है।

यह सोचकर श्रीकृष्ण द्रौपदी और पाँचो पाण्डवो को लेकर जगल मे पहुँचे, वहा पर एक सुन्दर बगीचा आया। बगीचे मे प्रवेश करने के पूर्व श्रीकृष्ण ने सबसे कह दिया कि कोई भी इसमे से एक भी फल और फूल न तोडे। सभी ने कृष्ण की आज्ञा स्वीकार कर उपवन मे प्रवेश किया।

उपवन का सौन्दर्य अवलोकन करते हुए सभी आगे बढ रहे थे। भीम सभी से पीछे थे। उनकी दृष्टि आम के वृक्ष पर गई। अति सुन्दर सरस आमो को देखकर उनसे रहा नही गया और उन्होने एक आम तोड़ लिया। उसे खाने की ज्योही तैयारी करने लगे त्यो ही कृष्ण ने कहा—भीम यह क्या कर रहे हो ! तुमने मेरे आदेश की अवहेलना की है।

भीम तो कृष्ण को सामने देखकर घबरा गया। उसने नम्रता से कहा—मुझसे भूल हो गई है।

कृष्ण—भीम ! भूल कहने से कार्य नही चलेगा, जरा अपने मुह से बोलो—इस चोरी के अतिरिक्त मैंने कभी भी अपने जीवन मे चोरी न की हो तो हे फल ! वृक्ष से चिपक जा।

कृष्ण के कहने से ज्योही भीम ने फल को कहा—फल ऊपर उठा, वृक्ष के लगने लगा, त्योही कृष्ण ने उसे बीच मे ही पकड लिया। नकुल, सहदेव, अर्जुन और धर्मराज की भी इसी प्रकार परीक्षा

ली गई। पाण्डव परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गए। अव नम्वर द्रौपदी का था।

श्रीकृष्ण ने कहा—द्रौपदी! तुम तो सती हो, जरा मुह से बोलो पाँच पाण्डवों के अतिरिक्त किसी भी परपुरुष की इच्छा मन मे न की हो तो, अय आम्रफल! पुन. वृक्ष पर लग जाओ।

द्रौपदी ने कहा—पर आम का फल वृक्ष पर लगने के वजाय, पृथ्वी पर गिर पडा। सभी आश्चर्य चकित हो गए।

द्रौपदी के आँखो से आँसू बहने लगे। कृष्ण ने कहा—द्रौपदी! घवराओ मत! स्मरण करो उस दिन नदी के प्रसग को। कर्ण को देखकर तुम्हारे मन मे क्या विचार हुए थे। तुम्हारे मन में मलिनता आयी थी न?

द्रौपदी ने उस क्षणिक विचार के लिए पश्चात्ताप किया। इसके अतिरिक्त यदि मेरे मन मे कभी भी मलिन विचार न आये हो तो फल वृक्ष के लग जा। फल यह कहते ही वृक्ष के लग गया।[3] कृष्ण ने आलोचना करवा कर द्रौपदी के जीवन को शुद्ध कर दिया।

●

५ | आत्मा की शुद्धि :

वैदिक ग्रन्थो मे एक प्रसग है—कि एक बार युधिष्ठिर अपने चारो भाइयो सहित श्रीकृष्ण के पास आये। श्रीकृष्ण ने उनके आने का कारण पूछा।

युधिष्ठिर बडे व्यथित थे, उन्होने कहा—नटवर! युद्ध मे लाखो व्यक्तियो का सहार हुआ है, एतदर्थ मेरा मन बड़ा दुखी है, हम चाहते है कि कुछ दिन तीर्थ स्थानो मे जाए और अपने जीवन को पाप से मुक्त करे।

श्रीकृष्ण सोचने लगे कि युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त करने के लिए बाहर भटकना चाहते है। उस समय उन्होने

---

३ जवाहर किरणावली उदाहरण माला

उनके निर्णय को उपदेश से वदलना उचित नही समझा उन्हे शिक्षा देने के लिए उन्होने एक उपाय खोज निकाला।

श्रीकृष्ण महल मे जाकर एक तूम्बी लेकर आए और उसे युधिष्ठिर को देते हुए कहा—धर्मराज ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मैं भी तुम्हारे साथ चलता किन्तु इतना व्यस्त हूँ कि समय नही है। आप मेरी ओर से यह तूम्बी ले जाए और तीर्थों के पवित्र पानी मे अपने साथ इसको भी स्नान करा दे।

युधिष्ठिर ने सहर्ष स्वीकृति दी और तूम्बी लेकर वे वहा से रवाना हो गए। तीर्थयात्रा कर वे लौटे, तथा तूम्बी लाकर उन्होने श्रीकृष्ण के हाथ मे थमा दी। और कहा—प्रत्येक तीर्थ मे इसे स्नान कराया है। हमने एक वार स्नान किया तो तूम्बी को अनेक वार स्नान कराया।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को धन्यवाद दिया, और उसी समय तूम्बी को पिसवा कर उसका चूर्ण वनवाया और उस चूर्ण को अपने हाथों से सभी सभासदो को और पाण्डवो को दिया और कहा—यह तूम्बी समस्त तीर्थों मे स्नानकर आयी है अत यह परम पवित्र होगई है।

सभी व्यक्तियो ने तूम्बी का चूर्ण सिर पर लगाकर मुह मे डाल लिया, पर चूर्ण इतना कटु था कि सभी थू-थू करने लगे। कृष्ण ने वनावटी आश्चर्य दिखाते हुए कहा—क्या इतने तीर्थों मे स्नान करके भी यह तूम्बी मीठी नही हुई ? फिर आत्मा पर लगे हुए पाप तीर्थ यात्रा करने से किस प्रकार धुल सके होगे ? उन्होने मुस्कराते हुए युधिष्ठिर को कहा—पाण्डुपुत्र ! अपनी जिस आत्मा रूपी नदी मे सयम रूप जल, सत्य रूप प्रवाह, दयारूप तरगे, और शील रूपी कगार है उसी मे अवगाहन करो। वाह्य नदियो के जल से कभी भी अन्तरात्मा शुद्ध और पवित्र नही हो सकता।[४]

युधिष्ठिर आदि को अपनी भूल ज्ञात हो गई, उन्हे द्रव्य तीर्थ यात्रा की निरर्थकता भी मालूम हो गई।

---

४ आत्मानदी सयमतोयपूर्णा ।
सत्यावहा शीलतटादयोर्मि. ।
तत्राभिषेक कुरु पाण्डुपुत्र !
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥

६ | श्रीकृष्ण और पिशाच

एक समय श्रीकृष्ण, वलदेव, सत्यकि और दारुक, ये चारो मिलकर वन-विहार को गये। भयकर अरण्य मे ही सूर्य अस्त हो जाने से चारो एक वट वृक्ष के नीचे ठहर गए। चारो ने विचार किया—यह विकट वन है। हम सभी थके हुए है अत. नीद सभी को गहरी आयेगी। पर किसी प्रकार का उपद्रव न हो, एतदर्थ एक-एक प्रहर तक प्रत्येक व्यक्ति जागता रहे। सभी ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

दारुक ने निवेदन किया—प्रथम प्रहर मेरा है। आप सभी आनन्द से सो जाइए, मै पहरा दू गा। दारुक पहरे पर खड़ा हो गया। कृष्ण आदि सो गए। इतने में एक पिशाच आया। उसने कहा—दारुक! मैं भूखा हूँ, वहुत दिनो से भोजन नही मिला है। तुम्हारे साथी जो सोये हुए है मैं इन्हे खाना चाहता हूँ।

दारुक ने गर्जते हुए कहा—अरे पिशाच! मेरे रहते मेरे साथियो को खाना कथमपि सभव नही है। तुझमे शक्ति है तो युद्ध के लिए तैयार हो जा। उसने दारुक के चेलेज को स्वीकार किया। दोनो मे युद्ध होने लगा। दारुक का ज्यो-ज्यो क्रोध बढता गया त्यो-त्यो पिशाच का वल भी वढता गया। दारुक थक गया पर पिशाच को जीत न सका।

द्वितीय प्रहर मे सत्यकि उठा। वह भी दारुक की तरह उससे लड़ता रहा। अपने साथियो की प्राण-रक्षा के लिए जी-जान से प्रयत्न करता रहा। पर पिशाच को परास्त न कर सका।

तृतीय प्रहर मे वलदेव की भी यही स्थिति रही।

चतुर्थ प्रहर हुआ। कृष्ण उठे। पहरे पर एक वीर सैनिक की तरह खडे हो गये। इतने मे सामने पिशाच दिखलाई दिया। कृष्ण ने पूछा—तुम कौन हो और यहा क्यों आये हो?

पिशाच ने कहा—मै तुम्हारे साथियो को खाने के लिए आया हूँ, कई दिनो से भूखा हूँ, आज भाग्य से बहुत बढ़िया भोजन मिल गया है।

श्रीकृष्ण ने उसे ललकारते हुए कहा—मेरे जीते-जी तुम्हारी इच्छा पूर्ण न होगी। श्रीकृष्ण बडे दक्ष थे। वे मानव और पिशाच

के बल को अच्छी तरह जानते थे। पिशाच युद्ध करने के लिए आगे बढा। श्रीकृष्ण शान्त भाव से खडे रहे। उन्होने कहा – तू पहलवान है, बहादुर है, गजब का योद्धा है। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण मुस्कराते रहे। उनकी मधुर मुस्कान से पिशाच की शक्ति क्षीण हो रही थी। वह देखते ही देखते भूमि पर लुढक पडा। उसने कहा—कृष्ण, मै तुम्हारा दास हूँ।

उषा की सुनहरी किरणे मुस्कराई। दारुक सत्यक, और बलदेव तीनो उठे, पर तीनो का शरीर लहूलुहान था। सबके सब घायल से थे।

श्रीकृष्ण ने पूछा – साथियो, क्या बात है ? यह अवस्था कैसे ?

तीनो ने एक स्वर से कहा—बात क्या है ? रात्रि मे पिशाच से डटकर युद्ध किया। यदि युद्ध न करते तो बच नही सकते थे।

श्रीकृष्ण ने हसते हुए कहा – साथियो ! युद्ध तो मैने भी किया था, पर मै घायल नही हुआ, पिशाच घायल हो गया। देखो न, वह भूमि पर रेंग रहा है। तुमने पिशाच से युद्ध किया, पर तुम्हे युद्ध की कला का ज्ञान नही था। वह उछल-कूद मचाता रहा, और मै शान्त भाव से खडा रहा, उसकी प्रशसा करता रहा। क्षमा एक ऐसा अचूक शस्त्र है जिससे शत्रु की शक्ति नष्ट हो जाती है। मैने इसी अमोघ शस्त्र का प्रयोग किया।[5]

७ | शिशुपाल वध

गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण मे शिशुपाल वध की कथा इस प्रकार है—

कौशल के राजा भेषज थे। उनकी पत्नी का नाम मद्री था। उनके तीन नेत्र वाला शिशुपाल पुत्र हुआ।[6] तीन नेत्रो को निहार कर उन्होने किसी निमित्तज्ञानी से पूछा। निमित्तवेत्ता ने कहा—जिसे देखने से इसका तीसरा नेत्र नष्ट हो जायेगा, यह उसी के द्वारा

---

५ उत्तराध्ययन अध्ययन २, गा० ३१ की टीका

६ रुग्मिण्यथ पुर कौसलाख्यया भूपते. सुत ।
भेपजस्याभवन्मद्रया शिशुपालस्त्रिलोचन· ॥
—उत्तरपुराण ७१।३४२, पृ० ३९८

मारा जायगा।[७] किसी दिन राजा भेषज, रानी मद्री शिशुपाल और अन्य लोग श्री कृष्ण के दर्शन के लिए द्वारावती नगरी गये। वहा पर श्रीकृष्ण को देखते ही शिशुपाल का तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया। यह देख मद्री को निमित्तज्ञानी का कथन स्मरण आया। उसने श्रीकृष्ण से याचना की—पूज्य ! मुझे पुत्र भिक्षा दीजिए।[८]

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—हे अम्ब ! जब तक यह सौ अपराध नही करेगा तब तक मै इसे नहीं मारू गा।' इस प्रकार कृष्ण से वरदान प्राप्त कर मद्री अपने नगर को चली गई।[९] शिशुपाल का तेज धीरे-धीरे सूर्य की तरह बढने लगा। वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझने लगा। सिह के समान श्रीकृष्ण के ऊपर भी आक्रमण कर उन्हे अपनी इच्छानुसार चलाने की इच्छा करने लगा।[१०] इस प्रकार अहकारी, समस्त ससार मे फैलने वाले यश से उपलक्षित और अपनी आयु को समर्पण करने वाले उस शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के सौ अपराध कर डाले।[११] वह अपने आपको सबसे श्रेष्ठ समझता था। श्रीकृष्ण को भी ललकार कर उनकी लक्ष्मी छीनने को उद्यम करता था। इसी बीच रुक्मिणी का पिता रुक्मिणी को शिशुपाल को देने तैयार हुआ। युद्ध की चाह करने वाले नारद ने जब यह बात सुनी तो उसने श्रीकृष्ण को यह समाचार सुनाया। श्रीकृष्ण ने छह प्रकार की सेना के साथ जाकर उस बलवान् शिशुपाल को मारा और रुक्मिणी देवी के साथ विवाह किया।[१२]

---

७. उत्तरपुराण ७१।३४३-३४४, ८ वही० ७१।३४७

९ शतापराधपर्यन्तमन्तरेणाम्ब मद्भयम् ।
नास्यास्तीति हरेर्लब्धवरासौ स्वा पुरीमगात् ॥
—उत्तरपुराण ७१।१४८

१० वही० ७१।३४९-३५१, पृ० ३९८

११ दर्पिणा यशसा विश्वसर्पिणा स्वायुरर्पिणा ।
शत तेनापराधाना व्यधायि मधुविद्विप. ॥
—वही० ७१।३५२

१२. वही० ७१।३५३-३५८ तक देखे ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि के अनुसार जरासध के युद्ध के समय शिशुपाल का वध हुआ है, रुक्मिणी के विवाह के समय नही।[१३]

महाभारत के अनुसार राजसूय यज्ञ करने वाले पाण्डवो ने प्रथम श्रीकृष्ण की अर्चना की। श्रीकृष्ण की अर्चना को देखकर शिशुपाल अत्यन्त रुष्ट हुआ, अनर्गल प्रलाप करने लगा, शिशुपाल की उद्दण्डता को देखकर भीम को बहुत ही क्रोध आया। उसके नेत्र लाल हो गये। वह शिशुपाल को मारने दौडा, किन्तु भीष्मपितामह ने उसे रोक दिया। शिशुपाल कहने लगा कि आप इसे छोड दे, मैं इसे अभी समाप्त कर दू गा। तब भीष्मपितामह ने शिशुपाल की जन्म कहानी सुनाते हुए कहा—जब यह जन्मा था, तव गधे की तरह चिल्लाने लगा। माता-पिता डर गये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारा कुछ भी नुकमान नही करेगा, इसकी मृत्यु उससे होगी जिसकी गोद मे जाने से इस बालक के दो हाथ और एक आख गायब हो जायेगी। यह सूचना सर्वत्र प्रसारित हो गई। एक दिन श्रीकृष्ण अपनी फूफी से, जो शिशुपाल की माता है, मिलने गये। शिशुपाल को ज्योही श्रीकृष्ण की गोद मे बिठाया त्योही इसके दो हाथ और एक आख गायब हो गई। माता ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। कृष्ण ने कहा—तुम्हारा पुत्र मार डालने योग्य अपराध करेगा तो भी मै सौ अपराधो तक क्षमा करू गा।[१४] इसीलिए यह तुम्हे युद्ध के लिए ललकार रहा है। फिर शिशुपाल ने कृष्ण को ललकारा। जब उसके सौ अपराध पूरे हो गये तब श्रीकृष्ण ने क्रोधकर चक्र को छोडा, जिससे शिशुपाल का सिर कट कर पृथ्वी पर गिर पडा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया।[१५]

●●

---

१३ त्रिषष्टि० ८।७।४००-४०४

१४ अपराधशत क्षाम्य मया ह्यस्य पितृष्वस ।
पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्व शोके मनः कृथा ॥
—महाभारत, सभापर्व, अ० ४३ श्लोक २४

१५ महाभारत, सभापर्व, अ० ४५ श्लोक २४-२६

जीवन की सांध्य-वेला

- जराकुमार का जगल मे गमन
- द्वैपायन ऋषि को मारना
- कृष्ण की उद्घोषणा
- भगवान् की भविष्यवाणी
- द्वारिका-दहन
- श्रीकृष्ण का द्वारिका से प्रस्थान
- हस्तिकल्प मे अच्छदक के साथ युद्ध
- कौशाम्बी के वन मे
- जराकुमार का बाण लगना
- श्रीकृष्ण के जीवन के कुछ तिथि-सवत्
- कृष्ण का अन्तिम काल और यादवो की दुर्दशा
- वैदिक दृष्टि से द्वारिका का अन्त
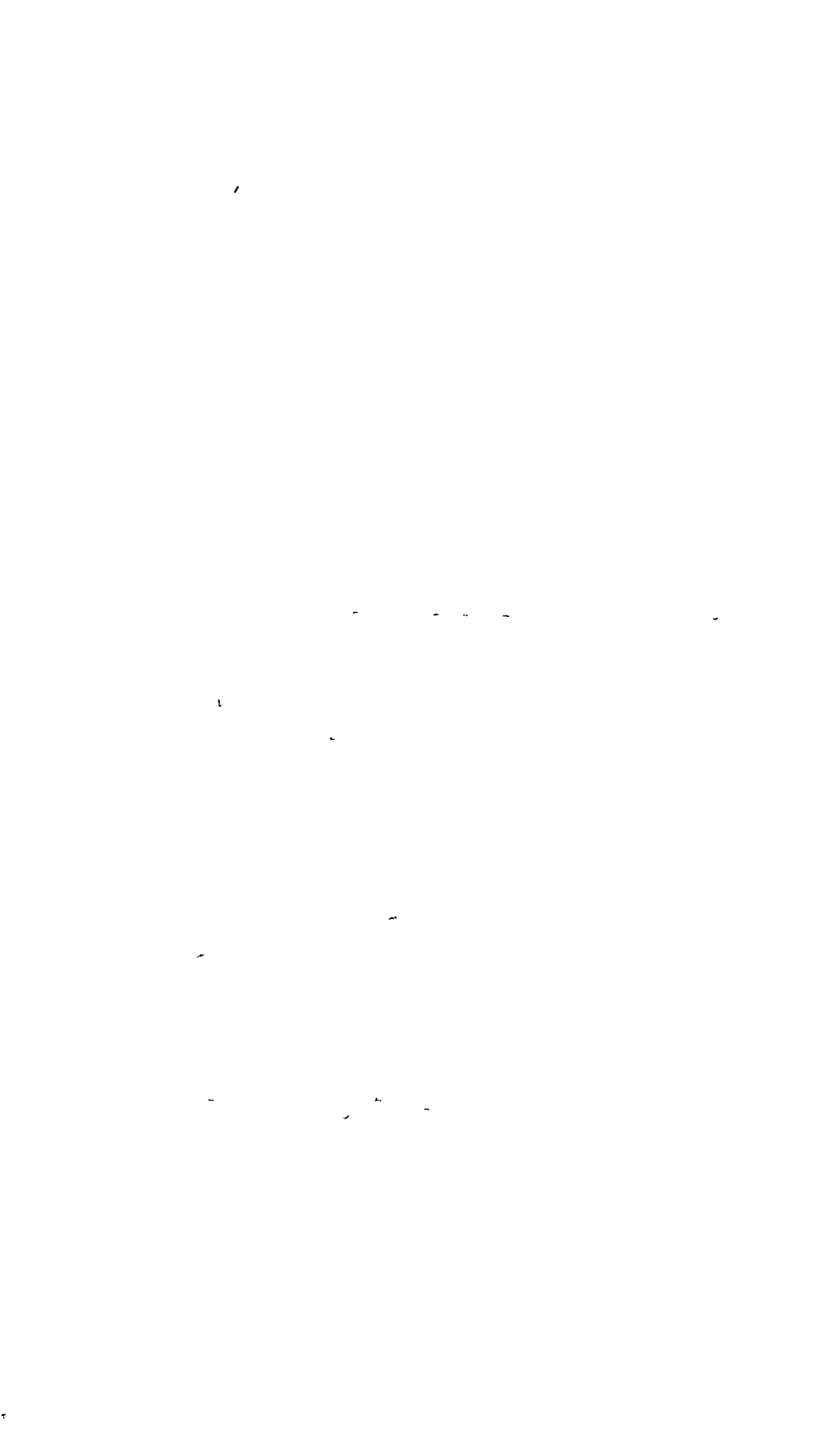
जीवन की सांध्य-वेला

जराकुमार का जंगल में गमन :

हम पहले लिख चुके है कि एक समय श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से प्रश्न किया—भगवन्! इस द्वारिका नगरी का, यादवो का और मेरा किस रूप से विनाश होगा, क्या स्वत. ही नष्ट होगे, या किसी अन्य कारण से ?[1]

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—द्वारिका नगरी के बाहर ब्रह्मचर्य को पालने वाला, इन्द्रिय विजेता, द्वैपायन नामक ऋषि रहता है। उसका यादवों पर गहरा स्नेह है। उस ऋषि को किसी समय शाम्ब आदि यादवकुमार मदिरा से पागल होकर मारेंगे जिससे क्रुद्ध होकर द्वैपायन यादवो के साथ द्वारिका को जलाकर नष्ट कर देगा और जराकुमार के हाथ से तुम्हारा निधन होगा।[2]

---

१. (क) त्रिषष्टि० ८।११।१-२,
(ख) भव-भावना, गा० ३७८१-८५,
(ग) हरिवशपुराण ६१।१७-२१

२ (क) त्रिषष्टि० ८।११।३ से ६
(ख) भव-भावना, ३७८६-३७९२
(ग) हरिवशपुराण० ६१।२३-२४

भगवान् की यह भविष्यवाणी सुनकर यादवगण विचारने लगे कि जराकुमार वस्तुतः कुलाङ्गार है। यादवो को अपनी ओर देखने पर जराकुमार सोचने लगा—मै वसुदेव का पुत्र हू, क्या मै अपने भाई की हत्या करू गा ? नही, भगवान् की भविष्यवाणी को मिथ्या करने के लिए उसी समय वह भगवान् को नमस्कार कर धनुष बाण लेकर चल दिया और जगल मे जाकर रहने लगा।[3]

द्वैपायन ऋषि को मारना

द्वैपायन ऋषि ने भी जनश्रुति से भगवान् की भविष्यवाणी सुनी। यादवो की और द्वारिका की रक्षा के लिए वह भी एकान्त जगल मे चला गया।[४]

श्रीकृष्ण यादवो सहित द्वारिका मे आये। मदिरा के कारण भयकर अनर्थ होगा, यह सोचकर उन्होने मदिरापान का पूर्ण निषेध कर दिया। श्रीकृष्ण के आदेश से पूर्व तैयार की हुई मदिरा कदम्ववन के मध्य मे कादम्बरी नामक गुफा के पास अनेक शिलाकुण्डो मे डाल दी गई।[५]

जिन शिला कुण्डो मे मदिरा डाली गई थी, वहा पर नाना प्रकार के वृक्ष थे, उनके सुगन्धित पुष्पो के कारण वह मदिरा पहले से भी अधिक स्वादिष्ट हो गई। एक समय वैशाख महीने मे शाम्ब कुमार का एक अनुचर घूमता हुआ वहा पहुँच गया। उसे तीव्र प्यास लगी हुई थी। उसने एक कुण्ड मे से मदिरा पी, वह उसे बहुत ही स्वादिष्ट लगी। वह एक वर्तन मे उस मदिरा का लेकर शाम्बकुमार के पास गया। शाम्बकुमार उस मदिरा को पीकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने धीरे से अनुचर से पूछा—यह सर्वोत्तम मदिरा तुम्हे कहा पर प्राप्त हुई ?[६]

---

३. (क) त्रिषष्टि० ८।११।७ से १०
(ख) हरिवशपुराण ६१।३० से ३२

४ द्वैपायनोऽपि तच्छ्रुत्वा लोकश्रुत्या प्रभोर्वचः।
द्वारकाया यदूना च रक्षार्थं वनवास्यभूत्॥

५ त्रिपष्टि० ८।११।१२-१३

६ (क) त्रिषष्टि० ८।११।१९-२२

अनुचर ने वह स्थान बताया। दूसरे दिन शाम्बकुमार यादव कुमारो के साथ कादम्बरी गुफा के पास आया। सभी ने प्रसन्नता से खूब मदिरा का पान किया। इधर उधर घूमते हुए उन्होने उसी पर्वत पर ध्यान-मुद्रा मे अवस्थित द्वैपायन ऋषि को देखा। ऋषि को देखते ही वह कहने लगे—यही वह ऋषि है जो द्वारिका का विनाश करेगा। यदि इसे ही मार दिया जाय तो द्वारिका का नाश नही होगा। ऐसा सोचकर सभी यादवकुमार उस पर टूट पड़े, ढेले पत्थर व लकडियो से तथा मुष्ठियो से उस पर प्रहार करने लगे। द्वैपायन ऋषि भूमि पर गिर पडा। यादवकुमार मरा हुआ जानकर द्वारिका लौट आये।[७]

कृष्ण की उद्घोषणा :

श्रीकृष्ण को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्हे अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। कहा— इन कुमारो ने तो कुल सहार का कार्य कर दिया! बलराम को साथ लेकर श्रीकृष्ण द्वैपायन ऋषि के पास गये। अत्यन्त अनुनय विनय के साथ निवेदन किया—ऋषिवर! अज्ञानी बालको ने मदिरा के नशे मे बेभान होकर आपका घोर अपराध किया है, उसे क्षमा करो। आपके जैसे विशिष्ट ज्ञानी और तपस्वियो को क्रोध करना उचित नही है।[८]

द्वैपायन ने कहा—कृष्ण! जब तुम्हारे पुत्रो ने मुझे मारा उसी समय मैने यह निदान किया कि 'सम्पूर्ण द्वारिका को जलाऊगा' पर तुम्हारी नम्र प्रार्थना पर प्रसन्न होकर तुम्हे छोड दूगा। श्रीकृष्ण सशोक द्वारिका आये। जन-जन की जिह्वा पर द्वैपायन के निदान की वार्ता फैल गई।[९]

---

७ (क) त्रिपष्टि० ८।११।२३-३०

(ख) हरिवश पुराण के अनुसार द्वैपायन भ्रान्तिवश बारहवे वर्ष मे ही वहा आ गया था, और उनको यादव कुमारो ने मारा, और मरने के पश्चात् देव बनकर उसने उपद्रव किया। त्रिपष्टिशलाका पुरुषचरित्र के अनुसार द्वैपायन को मारा, फिर वह मरकर देव बना किन्तु बारह वर्ष तक तप की साधना चलने से वह कुछ भी उपद्रव नही कर सका।

८, त्रिपष्टि० ८।११।३० से ३५

दूसरे दिन श्रीकृष्ण ने द्वारिका मे घोषणा करवायी कि द्वारिका का विनाश होने वाला है, अत. द्वारिका निवासी अधिक से अधिक धार्मिक कार्य मे रत रहे।[१०]

भगवान् की भविष्यवाणी·

कुछ दिनो के पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका के रैवताचल पर समवसृत हुए। श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन के लिए गए। भगवान् का उपदेश सुनकर अनेको व्यक्तियो ने दीक्षा ग्रहण की। श्रीकृष्ण ने प्रभु से पूछा—भगवन्! द्वारिका का विनाश कब होगा?

प्रभु ने फरमाया—द्वैपायन ऋषि आज से बारहवे वर्ष द्वारिका का दहन करेगा।[११]

द्वैपायन मृत्यु प्राप्त कर अग्निकुमार देव हुआ। पूर्व वैर को स्मरण कर वह शीघ्र ही द्वारिका मे आया, किन्तु द्वारिका निवासी आयबिल, उपवास, बेले, तेले आदि तप की आराधना करते थे। तप व धार्मिक क्रिया के प्रभाव से वह देव कुछ भी विघ्न उपस्थित नही कर सका। जब बारहवा वर्ष आया तब भावी की प्रबलता से द्वारिकावासियो ने सोचा अपनी तप-जप की साधना से द्वैपायन भ्रष्ट होकर चला गया है। हम सभी सकुशल जीवित रह गये है अत अब हमे स्वेच्छा से आनन्दपूर्वक क्रीडा करनी चाहिए, ऐसा विचार कर वे मद्यपान तथा मासाहार आदि करने लगे।[१२]

---

९. त्रिषष्टि० ८ ११।३६ से ४१

१०. अघोषयद्वितीयेऽह्नि नगर्यामिति शार्ङ्गभृत्।
विशेषाद्धर्मनिरतास्तिष्ठतात पर जना.॥
—त्रिषष्टि० ८।'१।४२

११. आचख्यौ कृष्णपृष्टश्च सर्वज्ञो भगवानिदम्।
द्वैपायनो द्वादशेऽब्दे धक्ष्यति द्वारिकामिमाम्॥
—त्रिषष्टि० ८।११।४७

१२ (क) रन्तु प्रवृत्तास्ते स्वैर मद्यपा मासखादिन·।
लेभेऽवकाश छिद्रज्ञस्तदा द्वैपायनोऽपि हि॥
—त्रिषष्टि० ८।११।६१

द्वारिका दहन :

द्वैपायन इसी प्रतीक्षा मे था। वह उसी समय यमराज की तरह विविध उत्पात करने लगा। उसने अगारो की वृष्टि की। श्रीकृष्ण के सभी अस्त्र-शस्त्र जलकर नष्ट होगए। द्वैपायन देव विद्रूप रूप बनाकर द्वारिका मे घूमने लगा। उसने सवर्त वायु का प्रयोग किया, जिससे चारो ओर के जगलो मे से काष्ठ और घास आकर द्वारिका मे एकत्रित होगया। प्रलयकारी अग्नि प्रज्वलित हुई। जो लोग द्वारिका को छोडकर भागने लगे, उन सभी को द्वैपायन पकड-पकड़ कर लाता और उस अग्नि मे होम देता। बालक से लेकर वृद्ध तक कोई एक कदम भी इधर-उधर नही जा सकता था।[१३]

उस समय श्रीकृष्ण और बलदेव ने जलती हुई द्वारिका से बाहर निकालने के लिए वसुदेव, देवकी और रोहिणी को रथ मे बिठाया किन्तु जिस प्रकार कोई मत्रवादी सर्प को स्तम्भित कर देता है वैसे ही द्वैपायन देव ने अश्वो को स्तम्भित कर दिया। वे एक कदम भी आगे न बढ सके। श्रीकृष्ण ने घोड़ो को वही पर छोड़ा और स्वय रथ को खीचने लगे। रथ टूट गया।[१४] 'हे राम! हे कृष्ण!' हमे बचाओ इस प्रकार माता-पिता की करुण पुकार सुनकर श्रीकृष्ण और बलराम रथ को किसी प्रकार द्वारिका के दरवाजे तक ले आये। उसी समय नगर के द्वार बन्द हो गये। बलभद्र ने लात मार कर नगर के दरवाजे को तोड दिया। रथ

(ख) भव-भावना, पृ० २५२, २५३

१३. (क) त्रिषष्टि० ८।११।६२-७२
(ख) हरिवश पुराण ६१।७४-७८

१४ (क) त्रिषष्टि० ८।११।७४-७६

नोट—हरिवशपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारिका का कोट तोड कर समुद्र के प्रवाह से उस अग्नि को बुझाने लगे, बलदेव समुद्र के जल को हल से खीचने लगे तो भी अग्नि शान्त नही हुई। देखो—हरिवशपुराण ६१।८०-८१, पृ० ७६०

(ख) हरिवशपुराण ६१।८२-८४

जमीन मे घुस गया। वलराम और कृष्ण ने वहुत प्रयत्न किया पर वह वाहर नही निकल सका। उसी समय द्वैपायन देव आया और वोला—अरे, तुम दोनो क्यों निरर्थक श्रम कर रहे हो ? मैंने पूर्व ही कहा था कि तुम दोनो को छोडकर कोई भी तीसरा व्यक्ति वाहर नही निकल सकेगा। तुम्हे ज्ञात होना चाहिए मैंने इस कार्य के लिए अपना महान् तप वेचा है।[१५]

यह सुनकर वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने कहा—'पुत्रो ! अव तुम चले जाओ, तुम दो जीवित हो तो सभी यादव जीवित है। तुमने हमे वचाने के लिए वहुत श्रम किया किन्तु हम वडे अभागे है अव हमे अपने कर्म का फल भोगना पडेगा।' ऐसा कहने पर भी वलराम और श्रीकृष्ण ने अपना प्रयत्न छोडा नही। वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने भगवान् अरिष्टनेमि की शरण को ग्रहण कर चारो प्रकार के आहार का त्याग कर सथारा किया, नमस्कार महामत्र का जाप करने लगे। उसी समय द्वैपायन देव ने अग्नि की वर्षा की और तीनो आयुपूर्ण कर स्वर्ग मे गए।[१६]

श्रीकृष्ण का द्वारिका से प्रस्थान

निराश और विवश वलराम तथा श्रीकृष्ण द्वारिका से वाहर निकल कर जीर्णोद्यान मे खडे रह कर द्वारिका को जलती हुई देखने लगे।[१७] उन्हे अत्यन्त दु:ख हुआ। अन्त मे श्रीकृष्ण ने कहा—भाई ! अव मैं यह दृश्य नही देख सकता। हमे अन्यत्र चलना चाहिए। पर प्रश्न यह है कि वहुत से राजा हमारे विरोधी हो गए हैं। ऐसी स्थिति मे हमे कहा चलना चाहिए ?[१८]

---

१५. (क) अहो पुरापि युवयोराख्यात यद्यु वा विना।
न मोक्ष कस्यचिदिह विक्रीत हि तपो मया॥
—त्रिषष्टि० ८।११।८०

(ख) हरिवशपुराण ६१।८६

१६ त्रिषष्टि० ८।११।८१-८८

१७. रामकृष्णौ वहि· पुर्या जीर्णोद्यानेऽथ जग्मतु।
दह्यमाना पुरी तत्र स्थितौ द्वावप्यपश्यताम्॥
—त्रिषष्टि० ८।११।८९

वलराम ने सुझाव दिया—पाण्डव हमारे हार्दिक स्नेही है। हमने समय समय पर उनके उपकार भी किये है, अतः वही पर चलना उचित होगा।

कृष्ण—भाई! तुम्हारा कहना सत्य है पर पहले मैंने उनको निष्कासित किया था, अब वहा कैसे चला जाय ?

वलभद्र—कृष्ण! तुम किसी भी प्रकार का विचार न करो, वे हमारा हार्दिक स्वागत करेगे।

वलभद्र की बात स्वीकार कर श्रीकृष्ण बलराम के साथ द्वारिका से पाण्डु मथुरा जाने के लिए नैऋत्य दिशा की ओर चल दिये।[19]

जिस समय द्वारिका नगरी जल रही थी, उस समय बलराम का पुत्र कुब्जवारक, जो चरम शरीरी था, महल की छत पर खडा होकर कहने लगा—'इस समय मैं भगवान् अरिष्टनेमि का व्रतधारी शिष्य हूँ। मुझे प्रभु ने चरम शरीरी और मोक्षगामी कहा है। यदि भगवान् के वचन सत्य है तो मै इस अग्नि मे किस प्रकार जल सकता हूँ ? उसी समय जृभक देव उसे उठाकर भगवान् अरिष्टनेमि के समक्ष शरण मे ले गये। वहाँ पर उसने दीक्षा ली।[20]

छह महीने तक द्वारिका जलती रही। कहा—जाता है कि उसमे साठ कुल कोटि, और बहत्तर कुल कोटि यादव जलकर भस्म होगए। उसके बाद समुद्र मे तूफान आया और द्वारिका उसमे डूब गई।[21]

---

१८ यथा नाल पुरी त्रातु तथा न द्रष्टुमुत्सहे।
आर्य ब्रूहि क्व गच्छावो विरुद्ध सर्वमावयो ॥

—त्रिषष्टि० ८।११।९५

१९ अनेकधा सत्कृतास्ते कृतज्ञा. पाण्डुसूनव।
पूजामेव करिष्यन्ति भ्रातर्विमृशमान्यथा ॥
इत्युक्त सीरिणा शार्ङ्गी प्राचलत्पूर्वदक्षिणाम्।
उद्दिश्य पाडवपुरी ता पाण्डुमथुराभिधाम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।११।९९-१००

२० त्रिपष्टि० ८।११।१०१-१०४

२१ पष्टिर्द्वासप्ततिश्चापि निर्दग्धा. कुलकोटयः।
पण्मास्येव पुरी दग्धा प्लाविता चाब्धिना तत. ॥

—त्रिषष्टि० ८।११।१०६

हस्तिकल्प में अच्छंदक के साथ युद्ध

श्रीकृष्ण द्वारिका से चलकर हस्तिकल्प नगर के पास आये। उस समय हस्तिकल्प नगर मे धृतराष्ट्र का पुत्र अच्छदक राज्य करता था। महाभारत के युद्ध मे कौरव दल का सहार हुआ तब श्रीकृष्ण पाण्डव के पक्ष मे थे अत वह श्रीकृष्ण का विरोधी था। श्रीकृष्ण को उस समय क्षुधा सताने लगी। उन्होने वलभद्र को कहा—आप नगर मे जाकर भोजन लाइए। नगर मे जाने पर किसी प्रकार का कोई भी उपद्रव हो जाय तो आप सिहनाद करना, मैं शीघ्र ही चला आऊँगा।[२२]

वलभद्र भोजन लेने के लिए हस्तिकल्प नगर मे गए। वलभद्र के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर लोग सोचने लगे—यह कौन महापुरुष है? तभी उन्हे ख्याल आया कि द्वारिका जल गई है, संभवतः यह वलभद्र हो। वलभद्र ने अपनी नामाङ्कित मुद्रिका देकर हलवाई के वहाँ से भोजन लिया, वे भोजन लेकर नगर से निकलने लगे। तभी राजा नगर के दरवाजे वन्द करवा कर सेना के साथ वलभद्र को मारने के लिए आया। वलदेव शत्रु सैन्य से घिर गये। उन्होने उसी समय भोजन को एक तरफ रख कर सिहनाद किया। सिहनाद को सुनते ही श्रीकृष्ण दौड़ते हुए आये नगर का दरवाजा वन्द था। श्रीकृष्ण ने पैर से उस पर प्रहार किया, दरवाजा नीचे गिर पड़ा। नगर मे आकर वे शत्रु दल पर टूट पड़े। शत्रु सेना पराजित हो गई। अच्छदक श्रीकृष्ण के चरणो मे गिरा। श्रीकृष्ण ने उसे फटकारते हुए कहा—अरे मूर्ख! हमारी भुजा का वल कही चला नही गया है। यह जानकर भी तूने यह मूर्खता क्यो की! जा, अव भी तू अपने राज्य मे सुख पूर्वक रह। हम तेरे अपराध को क्षमा करते हैं।

कौशाम्वी के वन में

वे नगर से वाहर निकल आये। उद्यान मे जाकर उन्होने भोजन किया। और वहा से दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। चलते-चलते कौशाम्वी नगरी के वन मे आये।[२३]

---

२२. त्रिपष्टि० ८।११।१०७-१०९,

२३ त्रिपष्टि० ८।११।११९-१२२

जराकुमार का बाण लगना :

उस समय श्रीकृष्ण को प्यास लगी। बलराम ने कहा—भाई। वृक्ष के नीचे आनन्द से बैठो। मै अभी पानी लेकर आता हूँ। बलभद्र पानी के लिए गए। श्रीकृष्ण एक पैर दूसरे पैर पर रखकर लेट गए। उन्हे थकावट के कारण नीद आ गई। उस समय व्याघ्र चर्म को धारण किया हुआ, जराकुमार हाथ मै धनुष लेकर वहा आया। कृष्ण को सोया देखकर मृग के भ्रम से उसने श्रीकृष्ण के चरण मे तीक्ष्ण बाण मारा। बाण लगते ही श्रीकृष्ण उठ बैठे। उन्होने उसी समय आवाज दी—किसने मुझे बाण मारा है ? आज दिन तक बिना नाम गोत्र बताए किसी ने प्रहार नही किया, बतलाओ तुम कौन हो।[२४]

इस प्रकार ललकार सुनते ही जराकुमार वृक्ष की ओट मे खड़ा रह कर बोला—हरिवश रूपी सागर मे चन्द्र के समान दसवे दशार्ह वसुदेव मेरे पिता है, जरादेवो मेरी माता है। वलराम और श्रीकृष्ण मेरे भाई है। भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी को सुनकर श्रीकृष्ण की रक्षा करने हेतु मै इस जगल मे आया हूँ। इस जगल में रहते मुझे बारह वर्प हो गए है। आज तक मैंने इस वन मे किसी मानव को नही देखा। बताओ तुम कौन हो ?[२५]

श्रीकृष्ण—बन्धुवर ! यहा आओ, मै तुम्हारा भाई श्रीकृष्ण हूँ। तुम्हारा बारह वर्ष का प्रवास निरर्थक गया।' यह सुनते ही जराकुमार मूर्छित होकर गिर पडा। सुध आने पर वह पश्चात्ताप करने लगा ! क्या भगवान् अरिष्टनेमि की वाणी सत्य हो गई ! क्या द्वारिका का दहन हो गया ! मुझे धिक्कार कि मैंने भाई को बाण मारा।[२६]

---

२४. त्रिपष्टि० ८।११ १२३-१३२

२५ जराकुमारो नाम्नाहमनुजो रामकृष्णयो ।
कृष्णरक्षार्थमत्रागा श्रुत्वा श्रीनेमिनो वच. ॥
अब्दानि द्वादशा भूवन्नद्येह वसतो मम ।
मानुप चेह नाद्राक्ष कस्त्वमेव ब्रवीषि भो ॥
—त्रिषष्टि० ८।११।१३४-३५

२६ त्रिषष्टि० ८।११।१३६-१४७

श्रीकृष्ण ने कहा—भाई! शोक न करो। जो होगया है उसे कोई टाल नही सकता। यादवो मे एक तुम्ही अवशेष हो अत चिरकाल तक जीओ। जब तक बलराम नही आते है तब तक तुम यहाॅ से चले जाओ। बलराम तुम्हे देखेगे तो जीवित नही छोडे गे। तुम यहाँ से शीघ्र ही पाण्डवो के पास जाना। उन्हे मेरा यह कौस्तुभ रत्न देना और द्वारिका की तथा मेरी स्थिति कहना। मैने उन्हे पूर्व देश से निष्कासित किया था, अत उन्हे कहना कि मुझे क्षमा प्रदान करे। कृष्ण के आदेश से जराकुमार श्रीकृष्ण के पैर मे से बाण निकालकर तथा कौस्तुभ रत्न लेकर चल दिया।[२७]

जराकुमार के जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण के पैर मे अपार वेदना हुई। उन्होने पूर्वाभिमुख होकर अंजलि जोडकर कहा—"मै पच-परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ, भगवान् अरिष्टनेमि को नमस्कार करता हूँ। प्रद्युम्न आदिकुमार और रुक्मिणी आदि धन्य है जिन्होने सयम मार्ग स्वीकार किया है।'

इस प्रकार श्रीकृष्ण कुछ समय तक विचार करते रहे फिर उनके मन मे जोश आया और उन्होने एक हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया।[२८]

श्रीकृष्ण वासुदेव सोलह वर्ष तक कुमार अवस्था मे रहे। छप्पन वर्ष माण्डलिक अवस्था मे रहे और नौ सौ अट्ठाईस वर्ष अर्धचक्री अवस्था मे रहे, इस प्रकार उनका कुल आयुष्य एक हजार वर्ष का हुआ।[२९]

---

२७ पदानुसारी रामस्त्वा यथा प्राप्नोति न द्रुतम्।
मद्वाचा क्षमये सर्वान् पाडवानपरानपि ॥
मयैश्वर्यजुषा पूर्वं क्लेशितान् प्रेषणादिभि ।
एव पुन. पुन कृष्णेनोक्त सोऽपि तथैव हि।
कृष्ण पादाच्छर कृष्ट्वा जगामोपात्तकौस्तुभः ॥
—त्रिषष्टि० ८।११।१५१-१५३

२८. त्रिषष्टि० ८।११।१५४-१६४

२९ कौमारान्त. षोडशाब्दानि विष्णो षट्पञ्चाशन्मडलित्वे जये तु।
वर्षाण्यष्टाथो नवागु शतानि विंशान्युच्चैरर्धचक्रित्वकाले ॥
—त्रिषष्टि० ८।११-१६५

आचार्य जिनसेन के अनुसार कृष्ण नारायण की कुल अवस्था एक हजार वर्ष की थी। उसमें सोलह वर्ष कुमार अवस्था मे, छप्पन वर्ष माण्डलिक अवस्था मे, आठ वर्ष दिग्विजय मे, और नौ सौ बीस वर्ष राज-अवस्था मे व्यतीत हुए।[30]

श्रीकृष्ण के जीवन के कुछ तिथि-संवत्

वैदिक ग्रन्थ महाभारत और पुराणो मे कुछ इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते है जिनसे श्रीकृष्ण के जीवन-सम्बन्धी कितने ही तिथि-सवत् निश्चित किये जा सकते है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने महाभारत का अनुसधान कर जिन तिथियो का निश्चय किया है, उनका उल्लेख उनकी मराठी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चरित्र' मे किया गया है। उसे आधार मानकर महाभारत और पुराणो मे वर्णित श्रीकृष्ण के जीवन की कतिपय घटनाओ के तिथि-सवत् यहाँ पर दिये जा रहे है :—

(१) मथुरा में जन्म और गोकुल को प्रस्थान—सवत् ३१२८ विक्रम पूर्व की भाद्रपद कृष्णाष्टमी वृषभलग्न, रोहिणी नक्षत्र, हर्षण योग, अर्धरात्रि।[31]

(२) गोकुल से वृन्दावन को प्रस्थान—आयु ४ वर्ष स० ३१२४, विक्रम पूर्व

(३) कालिय नाग का दमन —आयु ८ वर्ष सं० ३१२० वि० पूर्व

(४) गोवर्धन-धारण —आयु १० ,, ,, ३११८ ,, ,,

(५) रास-लीला का आयोजन —आयु ११ ,, ,, ३११७ ,, ,,

---

३०. कुमारकाल कृष्णस्य षोडशाब्दानि षट्युता।
पञ्चाशन्मण्डलेशत्वं विजयोऽष्टाब्दक स्फुटम्॥
शतानि नव विंशत्या कृष्णराजस्य सम्मितिः।
—हरिवशपुराण० ६०।५३२-५३३, पृ० ७५९

३१ (क) भाद्रे वुधे कृष्ण पक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे।
कर्णेऽष्टम्यामर्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये॥
अधकारावृते काले देवक्या शौरिमन्दिरे।
आविरासीद्धरि- साक्षादरण्यामग्वेऽग्निवत्॥
—गर्गसहिता—१, ११-२३-२४

(६) वृन्दावन से मथुरा को
प्रस्थान और कस का वध—आयु १२ वर्ष स० ३११६ वि० पूर्व
फाल्गुन शुक्ल १४

(७) मथुरा मे यज्ञोपवीत और
सादीपनि के गुरुकुल को
प्रस्थान —आयु १२ ,, ,, ३११६ ,, ,,

(८) जरासध का मथुरा पर
आक्रमण —आयु १३ ,, ,, ३११५ ,, ,,

(ख) सूरदास ने इन्ही तिथि-वार आदि का उल्लेख करते हुए ग्रहो का फलादेश इस प्रकार लिखा है—

(नन्द जू) आदि जोतिपी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयो।
लगन सोधि सब जोतिष गनि कै, चाहत तुमहिं सुनायौ ॥
सवत सरस विभावन, भादौ, आठै तिथि बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्ध निसि, हर्षन जोग उदार ॥
वृप है लग्न उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहै।
चौथे सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहै ॥
पचऐ बुध कन्या कौ जौ है पुत्रनि बहुत बढ़े है।
ठछऐ सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिं पैहै ॥
ऊँच नीच जुवती बहु करि है सतऐ राहु परे है।

—सूरसागर (ना० प्र० सभा०) पद स० ७०४

(ग) कल्याण के कृष्णाक पृ० ४७८ पर श्री लज्जाराम मेहता के लेख मे सूरदास के एक अन्य पद के आधार पर जन्मकुडली भी है।

(घ) श्रीकृष्ण की जन्मकुडली पद्‌माकरकवि के पौत्र दतिया निवासी श्री गदाधर भट्टकृत है, जो 'देशबधु' वर्ष २, अक १-२ पृ० ६४ मे प्रकाशित हुई है। तीसरी जन्मकुण्डली कर्णाटक निवासी श्री वी० एच० वडेर कृत है, जो कल्याण के कृष्णाङ्क मे प्रकाशित है।

(ङ) विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर के प्रो० आप्टे ने केतकी मत से गणना कर उक्त तिथि वार आदि की भी पुष्टि की है।

(९) मथुरा का राजकीय
जीवन और जरासंध से
१७ बार युद्ध —आयु १३ से ३० स० ३०१५—३०९८ वि० पूर्व

(१०) द्वारिका को प्रस्थान और
रुक्मिणी से विवाह —आयु ३१ वर्ष स० ३०९७ वि० पूर्व

(११) द्रौपदीस्वयंवर और
पांडवो से मिलन —आयु ४३ ,, ,, ३०८५ ,, ,,

(१२) अर्जुन-सुभद्रा विवाह —आयु ६५ ,, ,, ३०६३ ,, ,,

(१३) अभिमन्यु-जन्म —आयु ६७ ,, ,, ३०६१ ,, ,,

(१४) युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ—आयु ६८ ,, ,, ३०६० ,, ,,

(१५) महाभारत का युद्ध —आयु ८३ ,, ,, ३०४५ ,, ,,
की मार्गशीर्ष शुक्ल १४

(१६) कलियुग का आरम्भ
और परीक्षित का जन्म —आयु ८४ वर्ष स० ३०४४ वि० पूर्व
की चैत्र शुक्ला १

(१७) श्रीकृष्ण का तिरोधान
और द्वारिका का अन्त—आयु १२० वर्ष[1] स० ३००८ वि० पूर्व

(१८) परीक्षित का राज-तिलक
और पाण्डवो का हिमालय प्रस्थान —स० ३००७ वि० पूर्व

कृष्ण का अन्तिम काल और यादवों की दुर्दशा .

वैदिक परम्परा की दृष्टि से महाभारत के अनन्तर युधिष्ठिर को राज्यासीन कर कृष्ण द्वारिका चले गये। उस महायुद्ध का कुफल द्वारिका को भी भोगना पडा था। वहाँ के अनेक वीर, और गुणी पुरुषो की उस युद्ध मे मृत्यु हो चुकी थी। जो यादव द्वारिका में रहे थे उनमे से अधिकाश दुर्व्यसनी और अनाचारी थे। कृष्ण

१ वैदिक दृष्टि से श्रीकृष्ण १२० वर्ष की अवस्था मे परमधाम को गये। महाभारत के अनुसार उस समय उनके पिता वसुदेव जीवित थे। श्रीकृष्ण वसुदेव के ८ वे पुत्र थे। यदि कृष्ण जन्म के समय वसुदेव की आयु ४० मानी जाय, तो श्रीकृष्ण के तिरोधान के समय वसुदेव की आयु १६० वर्ष होती है।
—व्रज का सास्कृतिक इतिहास, द्वि-खण्ड पृ० ३१, प्रभुदयाल मीतल

और बलराम भी वृद्ध हो चुके थे। द्वारिका के मदान्ध यादवो पर उनका प्रभाव भी कम हो गया था वहा के समुद्र और रैवत पर्वत के मध्य मे अवस्थित प्रभास क्षेत्र मे पिडारक नामक स्थान था, जहा पर स्नान और आमोद-प्रमोद के लिए यादवगण प्राय. जाया करते थे। एक बार वहा विशाल उत्सव का आयोजन था, जिसमे समस्त द्वारिकावासी सामूहिक रूप से उपस्थित हुए थे। वहाँ पर सबने स्नान-क्रीडा आमोद-प्रमोद और नृत्य गान किया। फिर मदिरा पान करने के कारण सभी लोग परस्पर वाद-विवाद, लड़ाई-झगड़ा करने लगे।[32] दुर्दैव से वे उस समय ऐसे मदान्ध हो गए कि आपस मे ही लड़कर मर गये। इस प्रकार कौरव-पाण्डवो के गृह-युद्ध मे से जो यादव बच रहे थे वे प्रभास क्षेत्र के उस गृह-कलह मे समाप्त हो गए।[33] वहा से बचकर आने वालो मे कृष्ण, बलराम, दारुक सारथी आदि थे तथा द्वारिका मे उग्रसेन, वसुदेव, कुछ स्त्रियाँ और बाल-बच्चे थे। प्रभास क्षेत्र की उस विनाश-लीला के उपरात वे बहुत दु खी हुए और उन्होने शरीर छोड दिया। ऐसे भी उल्लेख प्राप्त होते है कि वे क्षुब्ध होकर समुद्र यात्रा को चले गए थे, जहा से वे पुन लौटकर नही आये[34] और न उनका समाचार ही मिला। कृष्ण दारुक के साथ द्वारिका आये। वहा पहुँचने पर दारुक को रथ लेकर हस्तिनापुर जाने का आदेश दिया और समाचार कहे कि द्वारिका की यह स्थिति हुई है, अत अर्जुन तत्काल यहा आवे, और यदुवशियो मे बचे हुए वृद्धजनो एव स्त्री-बच्चो को अपने साथ ले जाय।[35]

श्रीमद्भागवत के अनुसार बलरामजी की परम पद प्राप्ति को देखकर श्रीकृष्ण एक पीपल की छाया मे पृथ्वी पर शान्त भाव से मौन होकर बैठ गए।[36] उस समय उनका चेहरा चमक रहा था।

---

३२ श्रीमद्भागवत, ११ स्कन्ध, अ० ३०, श्लोक १०-१४।

३३. वही० श्लोक १५-से २५

३४ राम समुद्रवेलाया योगमास्थाय पौरुषम्।
तत्याज लोक मानुष्य सयोज्यात्यानमात्मनि॥

—वही० श्लोक २६

३५ देखो व्रज का सास्कृतिक इतिहास—

उस समय वे अपना अरुण कमल सदृश वाम चरण दाहिनी जघा पर रखकर विराजमान थे। उस समय जरा नामक व्याध ने जिसने (मछली के पेट से प्राप्त हुए) मूसल के बने हुए टुकडे से अपने बाण की गासी बनाई थी। मृग के मुख के सदृश आकार वाले श्रीकृष्ण के चरण को दूर से ही मृग समझकर उसी बाण से वेध दिया।[३७]

पास आने पर श्रीकृष्ण को देखकर उनके चरणो मे गिर पड़ा,[३८] "हे मधुसूदन! मुझ पापी से अनजान मे अपराध हो गया है। हे उत्तम श्लोक! हे अनघ! मै आपका अपराधी हूँ, कृपा करके क्षमा करे।"

कृष्ण ने कहा—अरे जरा! तू डर मत, खडा हो, अब तू मेरी आज्ञा से पुण्यवानो को प्राप्त स्वर्ग को जा।[३९] श्रीकृष्ण का आदेश पाकर वह व्याध स्वर्ग चला गया।[४०] उसके पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणचिन्हो को खोजता हुआ सारथि दारुक वहाँ आया,[४१] सारथि के देखते ही देखते गरुडचिन्ह वाला वह रथ घोडो सहित आकाश मे उड़ गया और उसके पीछे दिव्य आयुध भी चले गये। यह देख सारथि विस्मित हुआ।[४२] श्रीकृष्ण ने कहा—हे सूत! अब तुम द्वारिकापुरी को जाओ और हमारे बन्धु-बान्धवो को, यादवो के पार-

---

३६. रामनिर्याणमालोक्य, भगवान् देवकीसुत:।
निपसाद धरोपस्थे तूष्णी मासाद्य पिप्पलम्॥
बिभ्रच्चतुर्भुज रूप भ्राजिष्णु प्रभया स्वया।
दिशो वितिमिरा कुर्वन्विधूम इव पावक.॥
—श्रीमद्भागवत ११।३०।२७-२८

३७. मुसलावशेषाय खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा।
मृगास्याकार तच्चरण विव्याध मृगशकया॥
—श्रीमद्भागवत ११।३०।३३

३८. श्रीमद्भागवत ११।३०।३४

३९. श्रीमद्भागवत ११।३०।३९

४० ,, ,, १३।३०।४०

४१ ,, ,, ११।३०।४१ से ४३

स्परिक विध्वस, वलराम जी की परमगति और मेरी दशा का वृत्तात सुनाओ। अब तुम लोगो को अपने वन्धु-बाधवो सहित द्वारिका मे नही रहना चाहिए क्योकि मेरी त्यागी हुई उस यदुपुरी को समुद्र डुबो देगा। सभी लोग अपने अपने धन कुटुम्ब को लेकर अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ चले जाये।[43] फिर श्रीकृष्ण का देहोत्सर्ग हो गया।

वैदिक दृष्टि से द्वारिका का अन्त

वैदिक परम्परा की दृष्टि से जब अर्जुन ने द्वारिका का दुख-दायी समाचार सुना तो वह अत्यन्त मर्माहत हुआ, और दुःखी मन से तत्काल द्वारिका की ओर चल दिया। वहाँ जाने पर उसने द्वारिका के स्त्री बच्चो को और वृद्ध जनो को करुण-क्रन्दन करते देखा। उस समय उग्रसेन और वसुदेव भी अपने शरीर को छोडकर परलोक प्रस्थान कर चुके थे और उनकी वृद्ध रानिया भी उनके साथ अग्नि मे जल गई थी। कृष्ण और वलराम पहले ही तिरोधान हो चुके थे। प्रभास क्षेत्र मे मृत्यु प्राप्त यादवो की पत्निया भी काफी सख्या मे सती हो चुकी थी।

उस महाविनाश के पश्चात् द्वारिका मे जो यदुवशी शेष थे उनमे भी वृद्ध, वालक और स्त्रिया ही मुख्य थी। उनमे कृष्ण के दिवगत पौत्र अनिरुद्ध का वालक पुत्र वज्र भी था। उन सभी के सरक्षण का भार अर्जुन पर आ पडा। अत वे सभी को लेकर हस्तिनापुर की ओर चल दिये। द्वारिका निर्जन और सूनी हो गई। वहा एक भयकर तूफान आया, जिसने उस सुन्दर महानगरी को समुद्र के गर्भ मे विलीन कर दिया।[44] इस प्रकार यादवो की प्रवल शक्ति के साथ द्वारिका का भी अन्त हो गया।

---

४२ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छन ।
खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षत ॥
तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ।
तेनातिविस्मितात्मान सूतमाह जनार्दन ॥
—श्री मद्भागवत ११।३०।४४-४५

४३ श्रीमद्भागवत ११।३०।४६-४८

४४. श्रीमद्भागवत ११।३१।२३

जब अर्जुन यदुवंशियो के स्त्री बच्चो को लेकर हस्तिनापुर की ओर जा रहा था, तब मार्ग मे पचनद प्रदेश के आभीरो ने उन पर अकस्मात् आक्रमण किया। उस समय अर्जुन इतना शोक-सतप्त और हतसज्ञक था कि गाडीव के रहते हुए भी वह उन जगली लुटेरो का सफलता पूर्वक सामना नही कर सका। फलत. वे यादवो की सपत्ति और स्त्रियो को लूटकर ले गए। शेष को अर्जुन ने दक्षिण पजाब और इन्द्रप्रस्थ में बसा दिया।[४५]

---

४५ ब्रज का सास्कृतिक इतिहास—

उपसंहार

•

पिछले पृष्ठो मे यदुवश कौस्तुभ भगवान् अरिष्टनेमि और यदुनाथ श्रीकृष्ण के जीवन से सबध रखने वाली, विविध धर्म परम्पराओ के साहित्य मे उपलब्ध सामग्री का सकलन किया गया है और साथ ही आवश्यकतानुसार उस पर ऊहापोह भी किया गया है। ये दोनो महापुरुप भारतीय जनता मे अत्यधिक प्रिय रहे है और उनके सबध मे इतना अधिक साहित्य लिखा गया है कि उस सबका दोहन कर सकना किसी भी लेखक के लिए कठिन है, तथापि प्रस्तुत ग्रथ मे जो कुछ लिखा गया है, मैं समझता हूँ कि उससे उक्त दोनो महापुरुपो के व्यक्तित्व को भली भाति समझा जा सकता है।

तीर्थकर अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण दोनो समकालिक ही नही, एक वशोद्भव और भाई-भाई है। दोनो अपने समय के महान् व्यक्ति हैं, मगर दोनो के जीवन की दिशाएँ भिन्न-भिन्न है। एक धर्मवीर है तो दूसरे कर्मवीर। एक निवृत्तिपरायण है, दूसरे प्रवृत्तिपरायण है। यद्यपि यह सत्य है कि जीवन, चाहे व्यक्ति का हो, समाज का हो अथवा राष्ट्र का, प्रवृत्ति-निवृत्तिमय ही होता है। एकान्त प्रवृत्ति अथवा एकान्त निवृत्ति के लिए कही भी अवकाश नही है और वह संभव भी नही है। तथापि हम देखते है कि किसी के जीवन मे प्रवृत्ति की मुख्यता होती है और वह प्रवृत्ति के द्वारा लौकिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है, जबकि अन्य महापुरुष निवृत्ति को प्रधान बनाकर आध्यात्मिक विकास के सोपानो पर आरूढ होता है। ऐसा होने पर भी दोनो के जीवन मे दोनो तत्व निहित रहते हैं।

इस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि निवृत्ति प्रधान लोकोत्तर महा-पुरुष थे। उनके जीवन के प्रभात काल को देखने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी अन्तरात्मा जागतिक आकर्पणो से ऊपर,

वहुत ऊपर, उठी हुई थी। ससार के भोग-विलास, जो मानव-मन को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते है और जिनसे छुटकारा पाने के लिए कठोर आत्मसयम और आत्मदमन का आश्रय लेना पडता है, फिर भी पूरी तरह जीते नही जाते, वे भगवान् अरिष्टनेमि की आत्मा को आकृष्ट नही कर सके थे। इन्द्रिय विषयो का सेवन और उसी मे जीवन को समाप्त कर देना उन्हे निरी मूढता प्रतीत होती थी। नारी-शक्ति से वे कभी पराजित नही हुए। ललनाओ का लास्य, उनके हाव-भाव और विलास उनके विरक्तिमय अन्तस्तल को स्पर्श तक नही कर सके। श्रीकृष्ण की रानिया अपने देवर नेमिनाथ के चित्त मे नारी के प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रकार की शृ गारमय चेष्टाएँ करती है। उन्हे देखकर और ससारी जीवो की मोहदशा का विचार करके नेमिनाथ के मुख पर हल्का-सा स्मित उत्पन्न होता है। रानिया उसे देखकर अपने प्रयास की सफलता का अनुमान करती है। नेमिनाथ का हृदय अणुमात्र भी विचलित नही होता।

भगवान् अरिष्टनेमि के युग का गम्भीरतापूर्वक पर्यालोचन करने पर छिपा नही रहता कि उस समय से क्षत्रियो में मासभक्षण और मदिरापान की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा मे बढ गई थी। उनके विवाह के अवसर पर पशुओ का एकत्र किया जाना और मदिरोन्मत्त यदुकुमारो की करतूत के फलस्वरूप द्वारिका का दहन होना-इस तथ्य को उजागर करते है। हिंसा की इस पैशाचिक प्रवृत्ति की ओर जनसामान्य का ध्यान आकर्षित करने के लिए और क्षत्रियो को मासभक्षण से विरत करने के लिए श्री अरिष्टनेमि ने जो पद्धति अपनाई, वह अद्भुत और असाधारण थी। विवाह किये बिना लौट जाना मानो समग्र क्षत्रिय जाति के पापो का प्रायश्चित्त था। उसका बिजली का सा प्रभाव दूर-दूर तक और वहुत गहरा हुआ। एक सुप्रतिष्ठित महान् राजकुमार का दूल्हा वन कर जाना और ऐन मौके पर विवाह किए बिना लौट जाना, क्या साधारण घटना थी? भगवान् अरिष्टनेमि का वह-वड़े से बड़ा त्याग था और उस त्याग ने एक वार सारे समाज को पूरी तरह झकझोर दिया। समाज के हित के लिए आत्मबलिदान का ऐसा दूसरा कोई उदाहरण मिलना

कठिन है। इस आत्मोत्सर्ग ने अभक्ष्य भक्षण करने वाले और अपने क्षणिक सुख के लिए दूसरों के जीवन के साथ खिलवाड करने वाले व्यक्तियों की आंखें खोल दी, उन्हें आत्मालोचन के लिए विवश कर दिया और उन्हें अपने कर्तव्य एवं दायित्व का स्मरण करा दिया। इस प्रकार परम्परागत अहिंसा के शिथिल एवं विस्मृत बने सस्कारों को पुन पुष्ट, जागृत और सजीव कर दिया और अहिंसा की सकीर्ण बनी परिधि को विशालता प्रदान की—पशुओ और पक्षियों को भी अहिंसा की परिधि मे समाहित कर दिया। जगत् के लिए भगवान् का यह उद्बोधन एक अपूर्व वरदान था और वह आज तक भी भुलाया नही जा सका है।

सर्वसाधारण मे फैली हुई किसी बुराई को अपना पाप मानकर, उसके प्रतीकार के लिए कठोर से कठोर प्रायश्चित्त करना और ऐसा करके सर्वसाधारण के हृदय मे परिवर्तन लाना एक ऐसी अमोघ विधि है जो अरिष्टनेमि के जमाने मे सफल हुई और राष्ट्रपिता गांधी के समय मे भी कारगर सिद्ध हुई। इस दृष्टि से भी भगवान् अरिष्टनेमि जगत् के लिए सदैव स्मरणीय है, आदर्श है और उनके जीवन से युग-युग से प्राणी जन प्रेरणा लेते रहेंगे।

दीक्षित होने के पश्चात् तो वे पूर्ण अहिंसा के ही प्रतीक बन जाते है और अपनी उत्कृष्ट साधना द्वारा कैवल्य प्राप्त करके, ससार को मोक्षमार्ग प्रदर्शित करके शाश्वत सिद्धि प्राप्त करते है।

समुद्र श्रीकृष्ण का कार्यक्षेत्र भिन्न है। अरिष्टनेमि आध्यात्मिक जगत् के सूर्य है तो श्रीकृष्ण को राजनीति-क्षेत्र का सूर्य कहा जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों का आकलन करने से विदित होता है कि श्रीकृष्ण के समय मे राजकीय स्थिति बडी बेढगी थी। [illegible] सामाजिक दायित्व को विस्मृत [illegible] के अत्याचार [illegible] अपने बल पराक्रम के अभि- [illegible] के विचार को तिलाजलि दे [illegible] प्रजा मे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

रिपुमदमर्दन श्रीकृष्ण कार्यक्षेत्र मे कूदते है, अपने अनुपम साहस, असाधारण विक्रम, विलक्षण बुद्धिकौशल एव अतुल राजनीति-पटुता के बल कर आसुरी शक्तियो का दमन करते है। उनके प्रयासो से स्वत सिद्ध हो जाता है कि अन्याय सदैव न्याय पर विजयी नही रह सकता। अन्त में तो न्याय की ही विजय होती है और न्याय-नीति की प्रतिष्ठा मे ही विश्वशान्ति का मूल निहित है।

श्रीकृष्ण लोक-धर्म के सस्थापक है। इसी धर्म की नीव पर अध्यात्मधर्म का महल निर्मित होता है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण का स्थान भारतीय सस्कृति के इतिहास में अद्वितीय कहा जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र मे उनका चमकता हुआ विशिष्ट व्यक्तित्व अगर आज भी श्रद्धास्पद बना हुआ है तो यह स्वाभाविक है। उनके व्यक्तित्व मे एकागिता नही, सर्वागीणता है। इसी व्यक्तित्व के कारण वैदिक परम्परा के अनुसार वे ईश्वर के पूर्णावतार कहलाए। जैन-साहित्य मे भी उनकी महिमा का विस्तार से वर्णन हुआ और उन्हे भावी तीर्थंकर का सर्वोच्च पद प्रदान किया गया।

श्रीकृष्ण अपने युग मे भी असाधारण पुरुष माने जाते थे। तात्कालिक राजाओ मे तथा जनसाधारण में उनका बहुत मान था। उन्हे जो महत्ता और गरिमा अपने जीवन मे प्राप्त हुई उससे सहज ही उनके चरित्र की उज्ज्वलता का अनुमान किया जा सकता है। भारतवर्ष मे सदैव सदाचार को महत्त्व दिया गया है। सत्ता और विद्वत्ता की भी प्रतिष्ठा है पर सदाचार की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। सदाचार विहीन मनुष्य कितना ही विद्वान् अथवा सत्तासपन्न क्यो न हो, हमारे देश मे शिष्टसमुदाय द्वारा मान्य नही होता।

हमे खेद के साथ यह उल्लेख करना पडता है कि ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण एव स्कदपुराण आदि मे श्रीकृष्ण की गोपिकाओ के साथ कथित लीलाओ-क्रीडाओ का जो वर्णन किया गया है उसका श्रीकृष्ण के उज्ज्वल जीवन के साथ कोई सामजस्य नही है। किस गूढ उद्देश्य से वह वर्णन किया गया है, समझ मे नही आता। हमारा निश्चित मत है कि ऐसे सब वर्णन पीछे के है और श्रीकृष्ण जैसे महान् पुरुष के जीवन-चरित्र की ओट मे अपने स्वैराचार का पोषण करने के लिए वे पुराणो मे सम्मिलित कर दिए गए है। पश्चाद्वर्त्ती अनेक

कवियो ने उनका अन्धानुकरण किया है। विपयलोलुपता के कारण मनुष्य कितना नीचे गिर जाता है और किस प्रकार अपने आराध्य देवो के भी पावन चरित को निम्न स्तर पर ला सकता है, यह उन वर्णनो से स्पष्ट हो जाता है।

अपनी इसी धारणा के कारण हमने प्रस्तुत ग्रन्थ मे कृष्णचरित का निदर्शन कराते हुए उक्त पुराणो के असत् अंशो को स्थान नही दिया है। उनसे कृष्ण के उदात्त जीवन की महिमा वढती नही, कम होती है। इस सम्वन्ध मे जिन प्रवुद्ध पाठको को विशेष जिज्ञासा हो, वे ब्रह्मवैवर्त्तपुराण (कृष्ण जन्म, खड ४ अध्याय २८), स्कंदपुराण (स्कद १०, अ० २९—२६), विष्णु पुराण (अश ५) आदि स्वय देख सकते है।

जैन-साहित्य मे कृष्ण को लाछित करने वाले ऐसे उल्लेख नही पाए जाते। वे अपने युग के एक विशिष्ट व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व वडा विलक्षण वैविध्यपूर्ण तथा अलौकिक था। उनकी वीरता, नीतिज्ञता एव वुद्धिमत्ता से सभी प्रभावित थे। वे प्रभावशाली जननेता, अपूर्व धार्मिक विद्वान् और महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता थे। उन्होने भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे क्रान्ति कर अपने कुशल नेतृत्व का परिचय दिया और एक अत्यन्त समृद्धिशाली सभ्यता तथा समुन्नत सस्कृति का प्रादुर्भाव किया।

●●

परिशिष्ट

- भौगोलिक परिचय
- हरिवश
- वश-परिचय
- पारिभाषिक शब्द-कोप
- पुस्तक मे प्रयुक्त ग्रन्थ सूची
- लेखक की कृतिया

भौगोलिक परिचय

- जम्बूद्वीप
- भरतक्षेत्र
- सौराष्ट्र
- रैवतक
- द्वारिका
- अङ्ग
- बग
- लाट
- मगध
- कलिंग
- कुरुजागल
- शूरसेन
- हस्तिनापुर
- चेदि
- पल्लव
- भद्दिलपुर
- पाचाल
- मत्स्य
- कापिल्य
- हत्थकप्प
- मथुरा
- यमुनानदी
- व्रज

परिशिष्ट १

भौगोलिक परिचय

●

प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनेक देशो, नगरो पर्वतो व नदियो का उल्लेख हुआ है। भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण के युग मे जिन देशो व नगरो के नाम थे आज उनके नामो मे अत्यधिक परिवर्तन हो चुका है। उस समय वे समृद्ध थे तो आज वे खण्डहर मात्र रह गये है, और कितने ही पूर्ण रूप से नष्ट भी हो चुके है। कितने ही नगर आदि पुराने ही नामो से आज भी विख्यात है। कितने ही नगरो के सम्बन्ध मे पुरातत्त्ववेत्ताओ ने काफी खोज की है। हम यहा पर प्रमुख-प्रमुख स्थलो का सक्षेप मे वर्णन कर रहे है।

जम्बूद्वीप .

जैनागमो की दृष्टि से इस विशाल भूमण्डल के मध्य मे जम्बूद्वीप है।[1] इसका विस्तार एक लक्ष योजन है और यह सबसे लघु है। इसके चारो ओर लवणसमुद्र है। लवणसमुद्र के चारो ओर धातकी खण्डद्वीप है। इसी प्रकार आगे भी एक द्वीप और एक समुद्र है और उन सब द्वीपो और समुद्रो की सख्या असख्यात है।[2] अन्तिम समुद्र का नाम स्वयभूरमण समुद्र है।[3] जम्बूद्वीप से दूना विस्तार वाला

---

१. लोकप्रकाश सर्ग १५ श्लोक ६ २ वही० श्लोक १८

३ वही० श्लोक २६

भरतक्षेत्र की सीमा में उत्तर मे चूलहिमवत नामक पर्वत से पूर्व मे गगा और पश्चिम मे सिन्धु नामक नदिया वहती है। भरतक्षेत्र के मध्य भाग मे ५० योजन विस्तारवाला वैताढ्य पर्वत है।[२३] जिसके पूर्व और पश्चिम मे लवणसमुद्र है। इस वैताढ्य से भरत क्षेत्र दो भागो मे विभक्त हो गया है[२४] जिन्हे उत्तर भरत और दक्षिण भरत कहते है। जो गगा और सिन्धु नदिया चूलहिमवतपर्वत से निकलती है वे वैताढ्य पर्वत मे से होकर लवणसमुद्र मे गिरती है। इस प्रकार इन नदियो के कारण, उत्तर भरत खण्ड तीन भागो मे और दक्षिण भरत खण्ड भी तीन भागो मे विभक्त होता है।[२५] इन छह खण्डो मे उत्तरार्द्ध के तीन खण्ड अनार्य कहे जाते है। दक्षिण के अगल-बगल के खण्डो मे भी अनार्य रहते है। जो मध्यखण्ड है उसमे २५।। देश आर्य माने गये है।[२६] उत्तरार्द्ध भरत उत्तर से दक्षिण तक २३८ योजन ३ कला है और दक्षिणार्द्ध भरत भी २३८ योजन ३ कला है।

जिनसेन के अनुसार भरत क्षेत्र मे सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिग, अङ्ग, बङ्ग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पचाल, मालव दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजागल करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाटक, कोशल, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक, और केकय आदि देशों की रचना मानी गई है।[२७]

बौद्ध साहित्य मे अग, मगध, काशी, कौशल, वज्ज, मल्ल, चेति,

---

२१ लोकप्रकाश सर्ग १६ श्लोक ३०-३१

२२ लोकप्रकाश सर्ग १६, श्लोक ३३-३४

२३. वही० १६।४८

२४ वही० १६।३५

२५ वही० १६।३६

२६ (क) वही० १६, श्लोक ४४

(ख) बृहत्कल्पभाष्य १, ३२६३ वृत्ति, तथा १, ३२७५-३२८९

२७ आदिपुराण १६।१५२-१५६

वत्स, कुरु, पचाल मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ती, गधार, और कम्बोज इन सोलह जनपदो के नाम मिलते है।[२८]

सौराष्ट्र :

जैन साहित्य मे साढ़े पच्चीस आर्य देशो का वर्णन है। उनमे सौराष्ट्र का भी नाम है।[२९]

सौराष्ट्र के नामकरण के सम्बन्ध मे विद्वानो में विभिन्न मत भेद है। किसी ने सूर्यराष्ट्र, किसी ने सुराष्ट्र, किसी ने सौराष्ट्र और किसी ने सुरराष्ट्र कहा है। एक मान्यता के अनुसार सुरा नामक जाति के निवास के कारण यह प्रदेश सुराराष्ट्र-सौराष्ट्र कहलाता है। पर प्राचीन ग्रन्थो मे उसका शुद्ध व स्पष्ट नाम सौराष्ट्र है।[30]

रामायण,[31] महाभारत[32] और जैनग्रन्थो मे सौराष्ट्र का उल्लेख है।[33] ईस्वी पूर्व छट्ठी शताब्दी मे हुए आचार्य पाणिनीय ने[34] व सूत्रकार बौद्धायन ने,[35] चौथी सदी मे हुए कौटिल्य ने[36]

---

२८ अगुत्तरनिकाय, पालिटैक्स्ट सोसायटी सस्करण. जिल्द १, पृ० २१३, जिल्द ४, पृ० २५२

२९. (क) वृहत्कल्पभाष्य वृत्ति १।३२६३
(ख) प्रज्ञापना १।६६, पृ० १७३
(ग) प्रवचन सारोद्धार पृ० ४४६

३० (क) दरवार अनकचन्द्र भायावालानो लेख
(ख सौराष्ट्र नो इतिहास, ले० शभुप्रसाद हरप्रसाद देसाई, पृ० १

३१ "सौराष्ट्रन्सह वालहीकान् भद्राभीहास्तथैव च"
—रामायण किष्किधा काण्ड ४२।६

३२ महाभारत

३३ वृहत्कल्प, भाग ३, पृ० ९१२-९१४

३४ सौराष्ट्री का नारी, 'कुन्ति सुराष्ट्रा', चिन्तिसुराष्ट्रा।
—कार्तकोजनपदादचश्च-का गणपाठ ६।३।३७

३५, वौद्धायन सूत्र १-१-२९ ऋग्वेद मे (१०।६१।८) दक्षिणापथ का उल्लेख है। उस समय आर्य दक्षिण तक पहुंचे थे, एतदर्थ सौराष्ट्र को दक्षिण मे गिना है।

३६. कौटिल्य अर्थशास्त्र

लवणसमुद्र है और लवणसमुद्र से दुगुना विस्तृत धातकीखण्ड है। इस प्रकार द्वीप और समुद्र एक दूसरे से दूने होते चले गये हैं।[४]

इसमें शाश्वत जम्बूवृक्ष होने के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा।[५] जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु नामक पर्वत है[६] जो एक लाख योजन ऊचा है।[७]

जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है।[८] इसकी परिधि ३,१६,२२७ योजन, ३ कोस १२८ धनुष, १३½ अगुल, ५ यव और १ यूका है।[९] इसका क्षेत्रफल ७, ९०, ५६, ९४, १५० योजन, १॥। कोस, १५ धनुष और २॥ हाथ है।[१०]

श्रीमद्भागवत मे सात द्वीपो का वर्णन है। उसमे जम्बूद्वीप प्रथम है।[११]

बौद्ध दृष्टि से चार महाद्वीप है, उन चारो के केन्द्र मे सुमेरु है। सुमेरु के पूर्व मे पुब्व विदेह[१२] पश्चिम मे अपरगोयान, अथवा अपर गोदान[१३] उत्तर मे उत्तर कुरु[१४] और दक्षिण मे जम्बूद्वीप है।[१५]

---

४. वही० २८

५ वही० १५।३१-३२

६ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार ४ सू० १०३, पत्र ३५९-३६०

७ वही० ४।११३, पत्र ३५९।२

८ (क) समवायाङ्ग सूत्र १२४, पत्र २०७।२, प्र० जैन धर्म प्रचारक सभा भावनगर

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार १।१०।६७

(ग) हरिवंशपुराण ५।४-५

९ (क) लोक प्रकाश १५।३४-३५

(ख) हरिवशपुराण ५।४-५

१० (क) लोक प्रकाश १५।३६-३७

(ख) हरिवशपुराण ५।६-७

११ श्रीमद्भागवत प्र० खण्ड, स्कध ५, अ० १, पृ० ५४६

१२ डिक्सनेरी ऑव पाली प्रासर नेम्स, खण्ड २, पृ० २३६

१३ वही० खण्ड १, पृ० ११७

१४ वही० खण्ड १, पृ० ३५५

१५. वही० खण्ड १, पृ० ९४१

बौद्ध परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप दस हजार योजन बड़ा है।[१६] इसमे चार हजार योजन जल से भरा होने के कारण समुद्र कहा जाता है और तीन हजार योजन मे मानव रहते है। शेष तीन हजार योजन मे चौरासी हजार कूटो (चोटियो) से सुशोभित, चारो ओर बहती ५०० नदियो से विचित्र, ५०० योजन ऊचा हिमवान पर्वत है।[१७]

उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट है कि जिसे हम भारत के नाम से जानते है वही बौद्धो मे जम्बूद्वीप के नाम से विख्यात है।[१८]

भरतक्षेत्र .

जम्बूद्वीप का दक्षिणी छोर का भूखण्ड भरतक्षेत्र के नाम से विश्रुत है। यह अर्धचन्द्राकार है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार इसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा मे लवण समुद्र है।[१९] उत्तर दिशा मे चूलहिमवत पर्वत है।[२०] उत्तर से दक्षिण तक भरतक्षेत्र की लम्बाई ५२६ योजन ६ कला है और पूर्व से पश्चिम की लम्बाई १४४७१ योजन और कुछ कम ६ कला है।[२१] इसका क्षेत्रफल ५३,८०,६८१ योजन, १७ कला और १७ विकला है।[२२]

---

१६ वही० खण्ड १, पृ० ६४१

१७ वही० खण्ड २, पृ० १३२५-१३२६

१८. (क) इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स आव बुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म पृ० १, विमलचरण लॉ लिखित,

(ख) जातक प्रथम खण्ड, पृ० २८२, ईशानचन्द्र घोष

(ग) भारतीय इतिहास की रूपरेखा भा० १, पृ० ४, लेखक—जयचन्द्र विद्यालकार

(घ) पाली इंग्लिश डिक्शनरी पृ० ११२, टी० डब्ल्यू रीस डेविस तथा विलियम स्टेड

(ङ) सुत्तनिपात की भूमिका—धर्मरक्षित पृ० १

(च) जातक—मानचित्र भदन्त आनन्द कौशल्यायन

१९ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सटीक, वक्षस्कार १, सूत्र १०, पृ० ६५।२

२० वही० १।१०।६५-२

सौराष्ट्र का उल्लेख किया है। तथा देवलस्मृति में[३७] तथा जातककथा में भी सौराष्ट्र का वर्णन है।[३८]

महाक्षत्रप रुद्रदामा के १३० ई० सन् और १५० के बीच उत्कीर्ण जूनागढ के पर्वतीय लेख मे सौराष्ट्र का उल्लेख है।[३९]

ई० सन् १५० एवं ई० सन् १६१ के मध्य मे टोलेमी नामक परदेशी प्रवासी ने लिखा है रुद्रदामन के महाराज्य मे सौराष्ट्र का अधिकारी पहल्लव सुविख्यात था।[४०]

अेरीयन नामक विदेशी लेखक ई० सन् पूर्व तृतीय सदी मे लिखता है कि सौराष्ट्र मे जनतत्र था। ई० सन् पूर्व १४८ मे मीनाण्डर ने भारत मे जो राज्य जीत लिये उनमे साराओस्टोस—वा सौराष्ट्र भी था।[४१]

सौराष्ट्र की गणना महाराष्ट्र आध्र, कुडुक्क के साथ की गई है[४२] जहाँ सम्प्रति ने अपने अनुचरो को भेजकर जैन धर्म का प्रचार किया था।[४३] कालकाचार्य पारसकूल (ईरान) से ९६ शाहो को लेकर आये थे, इसलिए इस देश को ९६ मडलो मे विभक्त कर दिया गया है।[४४] सुराष्ट्र व्यापार का बडा केन्द्र था, व्यापारी दूर-दूर से यहां पर आया करते थे।[४५]

रैवतक

पार्जिटर रैवतक की पहचान काठियावाड के पश्चिम भाग मे वरदा की पहाडी से करते है।[४६] ज्ञातासूत्र के अनुसार द्वारिका के

---

३७ सिन्धु सौवीर सौराष्ट्र

३८ बावेरु जातक मे सौराष्ट्र के जलयात्री बेबीलोन गये थे, वहा उनसे पूछा—कहा से आ रहे हो ? उन्होने उत्तर मे कहा—'जहा से सूर्य उदय होता है उस सौराष्ट्र से आ रहे है।'

३९ सौराष्ट्र नो इतिहास—ले० शभुप्रसाद हरप्रसाद देसाई पृ० २, प्र० सोरठ शिक्षण अने सस्कृति सघ, जूनागढ

४०. टोलेमी—अेन्श्यन्ट इण्डिया अेज डीस्क्राईब्ड बाई टोलेमी मेकेक्रिन्डल

४१ अेरीयन—चिनोक आवृत्ति

४२ दरबार श्री अनकचन्द्र भायावालानो लेख

४३ बृहत्कल्पभाष्य १।३२८९

उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था।[४७] अन्तकृत्दशा में भी यही वर्णन है।[४८] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के अनुसार द्वारिका के समीप पूर्व मे रैवतक गिरि, दक्षिण मे माल्यवान शैल, पश्चिम मे सौमनस पर्वत और उत्तर मे गधमादन गिरि है।[४९] महाभारत की दृष्टि से रैवतक कुशस्थली के सन्निकट था।[५०] वैदिक हरिवशपुराण के अनुसार यादव मथुरा छोडकर सिन्धु मे गये और समुद्र किनारे रैवतक पर्वत से न अतिदूर और न अधिक निकट द्वारका बसाई।[५१] आगम साहित्य मे रैवतक पर्वत का सर्वथा स्वाभाविक वर्णन मिलता है।[५२]

भगवान् अरिष्टनेमि अभिनिष्क्रमण के लिए निकले, वे देव और मनुष्यो से परिवृत शिविका-रत्न मे आरूढ हुए और रैवतक पर्वत पर अवस्थित हुए।[५३] राजीमती भी संयम लेकर द्वारिका से रैवतक पर्वत पर जा रही थी। बीच मे वह वर्षा से भीग गई और कपड़े सुखाने के लिए वही एक गुफा मे ठहरी,[५४] जिसकी पहचान आज भी

---

४४. वही० १।६४३

४५. दशवैकालिक चूर्णि पृ० ४०

४६. हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र जिल्द ४, पृ० ७६४-६५

४७ ज्ञाताधर्म कथा १।५, सू० ५८

४८ अन्तकृतदशाग

४९ तस्या पुरो रैवतकोऽपाच्यामासीत्तु माल्यवान्।
सौमनसोऽद्रि प्रतीच्यामुदीच्या गधमादन ॥
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५ श्लोक ४१८

५० कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभिताम्।
—महाभारत सभापर्व, अ० १४, श्लोक ५०

५१. हरिवशपुराण २।५५

५२ ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

५३ देव-मणुस्स-परिवुडो, सीयारयण तओ समारूढो।
निक्खमिय वारगाओ, रेवयम्मि ट्ठिओ भगव ॥
—उत्तराध्ययन २२।२२

५४ गिरिं रेवयय जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा।
वासन्ते अन्धयारमि अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥

राजीमती गुफा से की जाती है।[५५] रैवतक पर्वत सौराष्ट्र मे आज भी विद्यमान है। सभव है प्राचीन द्वारिका इसी की तलहटी मे वसी हो।

रैवतक पर्वत का नाम ऊर्जयन्त भी है।[५६] रुद्रदाम और स्कंधगुप्त के गिरनार-शिला लेखो मे इसका उल्लेख है। यहा पर एक नन्दन वन था, जिसमे सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। यह पर्वत अनेक पक्षियो एव लताओ से सुशोभित था। यहा पर पानी के झरने भी वहा करते थे[५७] और प्रतिवर्ष हजारो लोग सखडि (भोज, जीमनवार) करने के लिए एकत्रित होते थे। यहा भगवान् अरिष्टनेमि ने निर्वाण प्राप्त किया था।[५८]

दिगम्बर परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत की चन्द्रगुफा मे आचार्य धरसेन ने तप किया था, और यही पर भूतवलि और पुष्पदन्त आचार्यो ने अवशिष्ट श्रुतज्ञान को लिपिबद्ध करने का आदेश दिया था।[५९]

महाभारत मे पाण्डवो और यादवो का रैवतक पर युद्ध होने का वर्णन आया है।[६०]

जैन ग्रन्थो मे रैवतक, उज्जयत, उज्ज्वल, गिरिणाल, और गिरनार आदि नाम इस पर्वत के आये है। महाभारत मे भी इस पर्वत का दूसरा नाम उज्जयत आया है।[६१]

---

५५ विविध तीर्थकल्प ३।१६

५६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४७२

५७ वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति १।२६२२

५८. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३०७

(ख) कल्पसूत्र ६।१७४, पृ० १८२

(ग) ज्ञातृधर्म कथा ५, पृ० ६८

(घ) अन्तकृतदशा ५, पृ० २८

(ङ) उत्तराध्ययन टीका २२, पृ० २८०

५६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४७३

६० आदिपुराण मे भारत पृ० १०६

६१ भ० महावीर नी धर्मकथाओ पृ० २१६, प० वेचरदासजी

द्वारका (द्वारवती)

भारत की प्राचीन प्रसिद्ध नगरियो मे द्वारका का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। श्रमण और वैदिक दोनो ही सस्कृतियो के वाङ्मय मे द्वारिका की विस्तार से चर्चा है।

द्वारिका की अवस्थिति के सम्बन्ध मे विज्ञों की विविध मान्यताए हैं।

(१) रायस डेविड्स ने कम्बोज को द्वारका की राजधानी लिखा है।[६२]

(२) पेतवत्थु मे द्वारका को कम्बोज का एक नगर माना है।[६३] डाक्टर मलशेखर ने प्रस्तुत कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है संभव है यह कम्बोज ही 'कसभोज' हो, जो कि अधकवृष्णि के दस पुत्रो का देश था।[६४]

(३) डा० मोतीचन्द्र कम्बोज को पामीर प्रदेश मानते है और द्वारका को वदरवशा से उत्तर मे अवस्थित 'दरवाज' नामक नगर कहते है।[६५]

(४) घट जातक का अभिमत है कि द्वारका के एक ओर विराट् समुद्र अठखेलिया कर रहा था तो दूसरी ओर गगनचुम्बी पर्वत था।[६६] डा० मलशेखर का भी यही अभिमत रहा है।[६७]

(५) उपाध्याय भरतसिह के मन्तव्यानुसार द्वारका सौराष्ट्र का एक नगर था। सम्प्रति द्वारका कस्वे से आगे वीस मील की दूरी पर

---

६२ Buddhist India P. 28
Kamboja was the adjoining Country in the extreme North-west, with Dvaraka as its Capital.

६३. पेतवत्थु भाग २, पृ० ९

६४ दि डिक्शनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स, भाग १, पृ० ११२६

६५ ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनॉमिक स्टडीज इन दी महाभारत, पृष्ठ ३२-४०

६६. जातक (चतुर्थ खण्ड) पृ० २८४

६७. दि डिक्शनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स भाग १, पृ० ११२५

६८. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ० ४८७

कच्छ की खाडी मे एक छोटा-सा टापू है। वहा एक दूसरी द्वारका है जो 'बेट द्वारका' कही जाती है। माना जाता है कि यहां पर श्रीकृष्ण परिभ्रमणार्थ आते थे। द्वारका और बेट द्वारका दोनो ही स्थलो मे राधा, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के मन्दिर है।[६८]

(६) बॉम्बे गेजेटीअर मे कितने ही विद्वानो ने द्वारका की अवस्थिति पजाब मे मानने की सभावना की है।[६९]

(७) डॉ० अनन्तसदाशिव अल्तेकर ने लिखा है—प्राचीन द्वारका समुद्र मे डूब गई, अत द्वारका की अवस्थिति का निर्णय करना सशयास्पद है।[७०]

(८) पुराणो के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि महाराजा रैवत ने समुद्र के मध्य कुशस्थली नगरी बसाई थी। वह आनर्त जनपद मे थी। वही कुशस्थली श्रीकृष्ण के समय द्वारका या 'द्वारवती' के नाम से पहचानी जाने लगी।[७१]

(९) ज्ञाताधर्मकथा व अन्तगडदसाओ के अनुसार द्वारका सौराष्ट्र मे थी।[७२] वह पूर्व-पश्चिम मे बारह योजन लम्बी, और उत्तर-दक्षिण मे नव योजन विस्तीर्ण थी। वह स्वय कुबेर द्वारा निर्मित, सोने के प्राकार वाली थी, जिस पर पाच वर्णों के नाना मणियो से सुसज्जित कपिशीर्षक—कगूरे थे। वह बड़ी सुरम्य, अलकापुरी—तुल्य और प्रत्यक्ष देवलोक– सदृश थी। वह प्रासादिक, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप थी। उसके उत्तर पूर्व मे रैवतक नामक पर्वत था। उसके पास समस्त ऋतुओ मे फल-फूलो से लदा रहने वाला नन्दनवन नामक सुरम्य उद्यान था। उस उद्यान मे सुरप्रिय यक्षायतन था। उस द्वारका मे श्रीकृष्ण वासुदेव अपने सम्पूर्ण राज-परिवार के साथ रहते थे।[७३]

---

६९. बॉम्बे गेजेटीअर भाग १ पार्ट १, पृ० ११ का टिप्पण १
७० इण्डियन एन्टिक्वेरी, सन् १९२५, सप्लिमेण्ट पृ० २५
७१ वायुपुराण ६।२७
७२ (क) ज्ञाताधर्म कथा १।१६, सूत्र १२३
　　(ख) अन्तगडदशाओ
७३. ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

वृहत्कल्प के अनुसार द्वारका के चारो ओर पत्थर का प्राकार था।[७४]

वण्हिदसाओ मे भी यही द्वारका का वर्णन मिलता है।[७५]

आचार्य हेमचन्द्र ने द्वारका का वर्णन करते हुए लिखा है—वह बारह योजन आयाम वाली और नव योजन विस्तृत थी। वह रत्नमयी थी। उसके आसपास १८ हाथ ऊंचा, ६ हाथ भूमिगत और १२ हाथ चौडा सब ओर से खाई से घिरा हुआ किला था। चारो दिशाओं मे अनेक प्रासाद और किले थे। राम-कृष्ण के प्रासाद के पास प्रभासा नामक सभा थी। उसके समीप पूर्व मे रैवतक गिरि, दक्षिण मे माल्यवान शैल, पश्चिम मे सौमनस पर्वत और उत्तर में गंधमादन गिरि थे।[७६]

आचार्य हेमचन्द्र,[७७] आचार्य शीलाङ्क,[७८] देवप्रभसूरि,[७९] आचार्य जिनसेन,[८०] आचार्य गुणभद्र[८१] आदि श्वेताम्वर व दिगम्बर ग्रन्थ-

---

७४. वृहत्कल्प भाग २, पृ० २५१

७५. वण्हिदशाओ

७६. शक्राज्ञया वैश्रवणश्चक्रे रत्नमयी पुरीम्।
द्वादशयोजनायाम नवयोजनविस्तृताम् ॥३९९।
तुंगमष्टादशहस्तान्नवहस्ताश्च भूगतम्।
विस्तीर्णं द्वादशहस्ताश्चक्रे वप्र सुखातिकम् ॥४००।
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५, पृ० ९२

७७. त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५, पृ० ९२

७८. चउप्पन्नमहापुरिस चरिय पृ०

७९. पाण्डव चरित्र

८० सद्यो द्वारवती चक्रे कुवेरः परमां पुरीम्।
नगरी द्वादशायामा, नवयोजनविस्तृति।
वज्रप्राकार-वलया, समुद्र-परिखावृता ॥
—हरिवशपुराण ४१।१८-१९

८१ अश्वाकृतिधर देव समारुह्य पयोनिधेः।
गच्छतस्तेऽभवेन्मध्ये, पुर द्वादशयोजनम् ॥ २०।
इत्युक्तो नैगमाख्येन स्वरेण मधुसूदनः।

कारो ने तथा वैदिक हरिवशपुराण,[८२] विष्णुपुराण[८३] और श्रीमद्-भागवत[८४] आदि मे द्वारका को समुद्र के किनारे माना है और कितने ही ग्रन्थकारो ने समुद्र से वारह योजन धरती लेकर द्वारका का निर्माण किया वताया है। सुस्थित देव को श्रीकृष्ण ने कहा—"हे देव! पूर्व के वासुदेव की द्वारका नामक जो नगरी यहा थी वह तुम ने जल मे डुवा दी है, एतदर्थ मेरे निवास के लिए उसी नगरी का स्थान मुझे बताओ।[A] इससे स्पष्ट है कि द्वारका के पास समुद्र था। कृष्ण के पूर्व जो द्वारका थी वह समुद्र मे डूवी हुई थी उसी स्थान पर श्रीकृष्ण के लिए द्वारका का निर्माण किया गया था। सभव है द्वारका के एक ओर समुद्र हो और दूसरी ओर रैवनक आदि पर्वत हो।

महाभारत मे श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के वारे मे युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोडकर हम कुशस्थली नामक नगरी मे आये जो रैवतक पर्वत से उपशोभित थी। वहा दुर्गम दुर्ग का निर्माण किया, अधिक द्वारो वाली होने के कारण द्वारवती अथवा द्वारका कहलाई।[८५]

चक्रे तथैव निश्चित्य सति पुण्ये न क सखा ॥ ८१ ।
द्वेधा भेदमयाद् वार्धि र्भयादिव हरे रयात् ॥
—उत्तरपुराण ७१।२०-२३, पृ० ३७६

८२ हरिवशपुराण २।५४

८३ विष्णुपुराण ५।२३।१३

८४ इति समन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादश-योजनम्।
अन्त समुद्रे नगर कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥
—श्रीमद्भागवत १०, अ० ५०।५०

A ता जह पुव्विं दिन्न ठाण नयरीए आइमचउण्ह।
तुमए तिविट्ठपमुहाण वासुदेवाण सिंधुतडे ॥
—भव-भावना २५८७

८५ कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभिताम्।
ततो निवेशं तस्या च कृतवन्तो वय नृप ! ॥ ५०।
तथैव दुर्ग-संस्कार देवैरपि दुरासदम्।
स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयु किमु वृष्णि महारथा. ॥ ५१ ॥

महाभारत जन पर्व की टीका मे नीलकठ ने कुशावर्त का अर्थ द्वारका किया है।[८६]

व्रज का सास्कृतिक इतिहास मे प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है[८७]—शूरसेन जनपद से यादवो के आ जाने के कारण द्वारका के उस छोटे से राज्य की वड़ी उन्नति हुई थी। वहा पर दुर्भेद्य दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और उसे अधक-वृष्णि सघ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप मे सगठित किया गया। भारत के समुद्री तट का वह सुदृढ़ राज्य विदेशी अनार्यों के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी भी बन गया था। गुजराती भाषा मे 'द्वार' का अर्थ बदरगाह है। इस प्रकार द्वारका या द्वारवती का अर्थ हुआ 'बदरगाहो की नगरी।' उन बदरगाहो से यादवो ने सुदूर—समुद्र की यात्रा कर विपुल सम्पत्ति अर्जित की थी। ... हरिवश २-५८-६७) मे लिखा है—द्वारिका मे निर्धन, भाग्यहीन, निर्वल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नही था।[८८]

श्वेताम्बर तेरापथी जैन समाज के विद्वान् मुनि रूपचन्द्रजी ने 'जैन साहित्य मे द्वारका'[८९] शीर्षक नामक लेख मे लिखा है—'घट जातक के उल्लेख को छोडकर आगम साहित्य तथा महाभारत मे द्वारका का रैवतक पर्वत के सन्निकट होने का अवश्य उल्लेख है, किन्तु समुद्र का बिल्कुल नही। यदि वह समुद्र के किनारे होती तो उसके उल्लेख न होने का हम कोई भी कारण नही मान सकते। घट जातक के अपर्याप्त उल्लेख को हम इन महत्वपूर्ण और स्पष्ट प्रमाणो के सामने अधिक महत्व नही दे सकते। दूसरे मे द्वारका के

मथुरा सपरित्यज्य गता द्वारवती पुरीम् ॥ ६७ ।

—महाभारत सभापर्व, अ० १४

८६. (क) महाभारत जन पर्व अ० १६० श्लोक ५०

(ख) अतीत का अनावरण, पृ० १६३

८७ द्वितीय खण्ड व्रज का इतिहास पृ० ४७

८८. हरिवशपुराण २।५८।६५

८९. जैन दर्शन और सस्कृति परिषद् शोधपत्र, द्वितीय अधिवेशन सन् १९६६, पृ० २१४

पास समुद्र न होने का हमे एक और आगमिक प्रमाण मिलता है। जब श्रीकृष्ण को यह पता चलता है कि लवण समुद्र के पार धातकी खण्ड मे अमरकका के नरेश पद्मनाभ द्वारा द्रौपदी का अपहरण कर लिया गया है तब वह पाचो पाण्डवो से कहते है कि तुम लोग अपनी सेना सहित पूर्व-वेताली पर मेरी प्रतीक्षा करो, मैं अपनी सेना सहित तुमसे वहा मिलूगा। पूर्व निश्चयानुसार श्रीकृष्ण पाण्डवो से वही पर पूर्व वेताली मे मिलते है और वहा से लवणसमुद्र पार कर अमरकका पहुँचते हैं। यदि द्वारका समुद्र किनारे ही होती, तो उन्हे द्वारका छोड पूर्व-वेताली से समुद्र पार करने की कोई जरूरत नही होती।"

जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य मे अनेक स्थलो पर द्वारका के सन्निकट समुद्र का उल्लेख हुआ है जिसका वर्णन हम पूर्व कर चुके है ऐसी स्थिति मे मुनिश्री का प्रस्तुत कथन युक्ति-युक्त प्रतीत नही होता, रहा प्रश्न अमरकका गमन का, सभव है इसके पीछे कुछ अन्य कारण रहा हुआ हो। इस कारण से ही द्वारका को समुद्र के किनारे नही मानना तर्क सगत नही है।

अङ्ग :

अग एक प्राचीन जनपद था। भागलपुर से मुगेर तक फैले हुए भूभाग का नाम अग देश है।[९०] प्रस्तुत देश की राजधानी चम्पापुरी थी जो भागलपुर से पश्चिम मे दो मील पर अवस्थित थी। कर्निघम ने भागलपुर से २४ मील दूर पर पत्थरघाटा पहाडी के सन्निकट चम्पानगर या चम्पापुरी की अवस्थिति मानी है। यह गगातट पर स्थित है। प्राचीन युग मे चम्पा अत्यधिक सुन्दर और समृद्ध नगर था। वह व्यापार का केन्द्र था और दूर-दूर से व्यापारी व्यापारार्थ वहा पर आया करते थे।[९१] जातको से ज्ञात होता है कि बुद्ध के पूर्व राज्य सत्ता के लिए मगध और अग मे सघर्ष होता था।[९२] बुद्ध के

---

९० (क) एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया पृ० ५४६

(ख) नन्दलाल दे-ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया पृ० ७

(ग) स्मिथ-अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, चतुर्थ सस्करण पृ० ३२

समय अंग मगध का ही एक हिस्सा था। राजा श्रेणिक अग और मगध दोनो का ही स्वामी था। त्रिपिटक साहित्य मे अग और मगध को साथ रखकर 'अग मगधा' द्वन्द्व समास के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।[९३] चम्पेय जातक के अभिमतानुसार चम्पानदी अग और मगध दोनो का विभाजन करती थी, जिसके पूर्व और पश्चिम मे दोनो जनपद बसे हुए थे। अंग जनपद की पूर्वी सीमा राजप्रासादो की पहाड़िया, उत्तरी सीमा कौसी नदी और दक्षिण मे उसका समुद्र तक विस्तार था। पार्जिटर ने पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग को भी अंग जनपद के अन्तर्गत माना है।[९४]

'सुमगल विलासिनी' मे बताया है कि अग जनपद में अग (अगा) नामक लोग रहा करते थे, अतः उनके नाम पर प्रस्तुत जनपद का नाम अग हुआ। अंग लोगो ने अपने शारीरिक सौन्दर्य के कारण यह नाम पाया था। फिर यह नाम प्रदेश विशेष के लिए रूढ हो गया।[९५]

महाभारत के अनुसार अग नामक राजा के नाम पर जनपद का नाम अग पडा।[९६]

रामायण के मन्तव्यानुसार महादेव के क्रोध से भयभीत होकर मदन वहा पर भागकर आया और वह अपने अग को छोड़कर वहा अनग हुआ था। मदन के अग का त्याग होने से यह प्रदेश अग कहलाया।[९७]

---

९१ (क) औपपातिक सूत्र १
(ख) ज्ञातृधर्म कथा ८, पृ०
(ग) उत्तराध्ययन सूत्र २१, २

९२ जातक, पालिटैक्स-सोसायटी, जिल्द ४, पृ० ४५४, जिल्द ५ वी पृ० ३१६, जिल्द छट्ठी पृ० २७१

९३ (क) दीघनिकाय ३।५,
(ख) मज्झिमनिकाय २।३।७
(ग) थेरीगाथा—वम्बई विश्वविद्यालय सस्करण गा० ११०

९४. जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बगाल, सन् १८९७, पृ० ९५

९५ सुमगलविलासिनी, प्रथम जिल्द पृ० ७२९

९६ महाभारत—गीताप्रेस सस्करण १।१०४।५३-५४

९७. रामायण—गीताप्रेस सस्करण १।२३।१४

जैन साहित्य मे अगलोक का उल्लेख सिहल (श्री लका), वव्वर, किरात, यवनद्वीप आरबक, रोमक, अलसन्द (एलेक्जेण्ड्रिया) और कच्छ के साथ आता है।[९८] जैन ग्रन्थो मे अग देश और चम्पा के साथ अनेक कथाओ का सम्बन्ध आता है। भगवान् अरिष्टनेमि ने अग देश में विचरण किया था। भगवान् महावीर का तो वह मुख्य विहार स्थल था ही।

बंग :

बग की गणना प्राचीन जनपदो मे की गई है। वह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। जल और स्थल दोनो ही मार्गो से वहा माल आता-जाता था। यह जनपद-अग के पूर्व और सुह्म के उत्तर-पूर्व मे स्थित था। बौद्ध ग्रन्थ महावंश मे बग जनपद के अधिपति सिहबाहु राजा का वर्णन है, जिसके पुत्र विजय ने लका मे जाकर प्रथम राज्य स्थापित किया था।[९९] 'मिलिन्दपण्हो' मे बग का उल्लेख है। वहा नाविको का नावे लेकर व्यापारार्थ जाना दिखाया गया है।[१००] 'दीपवस'[१०१] और 'महावस'[१०२] मे वर्धमाननगर का वर्णन है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री का मन्तव्य है कि वह आधुनिक बगाल के वर्द्धमान नगर से मिलाया जा सकता है।[१०३] बग को पूर्वी बगाल माना जा सकता है। आदि पुराण के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने बग जनपद को अपने अधीन किया था।[१०४] विशेष परिचय के लिए लेखक का भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ का परिशिष्ट देखिए।[१०५]

---

९८. (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ५२, पृ० २१६
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १९१

९९. महावस—(हिन्दी अनुवाद) ६।१, १६, २०, ३१

१००. मिलिन्दपञ्हो (बम्बई वि० वि० सस्करण) जि० १, पृ० १५४

१०१. दीपवस पृ० ८२

१०२. महावस (हिन्दी अनुवाद) १५।९२

१०३. आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत—पृ० ६५

१०४ आदिपुराण २९।४७, १६।१५२

१०५. पृ० २००

लाट :

लाट देश की अवस्थिति अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ के उत्तर मे बताई गई है। विज्ञो का अभिमत है कि इस जनपद मे गुजरात और खानदेश सम्मिलित थे। माही और महोबा के निचले भाग लाट देश मे सम्मिलित थे। वर्तमान भडौच, बड़ौदा, अहमदाबाद एव खेड़ा के जिले लाट देश के अन्तर्गत थे।[१०६]

भृगुकच्छ (भडोच) लाट देश की शोभा माना गया है। व्यापार का यह मुख्य केन्द्र था। आचार्य वज्रभूति का भी यहा विहार हुआ था।[१०७] यहा पर मामा की लडकी से विवाह को अनुचित नही माना जाता था किन्तु मौसी की लड़की से विवाह करना ठीक नही समझते थे।[१०८] वर्षाऋतु मे गिरियज्ञ[१०९] नामक महोत्सव व श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन इन्द्रमह महोत्सव[११०] मनाया जाता था। भृगुकच्छ और उज्जयिनी के बीच पच्चीस योजन का अन्तर था।[१११] इस प्रकार लाट देश का उल्लेख जैन ग्रन्थो मे हुआ है किन्तु उसकी पृथक् रूप से गणना आर्य देशो मे नही की गई है।

मगध :

जैन वाङ्मय मे मगध का वर्णन अनेक स्थलो पर हुआ है। प्रस्तुत जनपद की सीमा उत्तर मे गगा, दक्षिण में शोण नदी, पूर्व मे अंग और उत्तर मे गहन जगलो तक फैली हुई थी। इस प्रकार दक्षिण बिहार मगध जनपद के नाम से विश्रुत था। इसकी राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी। महाभारत मे इसका नाम कीटक भी आया है। वायुपुराण के अनुसार राजगृह कीटक था। शक्तिसंगम तत्र में कालेश्वर-कालभैरव-वाराणसी से तप्तकुड-सीताकुण्ड, मुगेर तक मगध देश माना है।[११२] इस तत्र के अभिमतानुसार मगध का दक्षिणी

---

१०६. आदि पुराण मे भारत पृ० ६५

१०७ व्यवहारभाष्य ३।५८

१०८. निशीथ चूर्णि पीठिका १२६

१०९ बृहत्कल्पभाष्य १।२८५५

११० निशीथचूर्णी १९।६०६५, पृ० २२६

१११ आवश्यकचूर्णी २, पृ० १६०

भाग कीकट[११३] और उत्तरीय भाग मगध है। प्राचीन मगध का विस्तार पश्चिम मे कर्मनाशा नदी और दक्षिण में दमूद नदी के मूल स्रोत तक है। हुयानत्सग के अनुसार मगध जनपद की परिधि मण्डलाकार रूप मे ८३३ मील थी। इसके उत्तर मे गगा, पश्चिम मे वाराणसी, पूर्व मे हिरण्यपर्वत और दक्षिण मे सिहभूमि थी। आचार्य बुद्धघोष ने मगध जनपद का नामकरण बतलाते हुए लिखा है—'बहुधा पपचानी'—अनेक प्रकार की किवदन्तिया प्रचलित है। एक किंवदन्ती मे बताया गया है कि जब राजा चेतिय असत्य भाषण के कारण पृथ्वी मे प्रविष्ट होने लगा, तब उसके सन्निकट जो व्यक्ति खड़े थे उन्होने कहा—'मा गध पविस' पृथ्वी मे प्रवेश न करो। दूसरी किंवदन्ती के अनुसार राजा चेतिय धरती में प्रवेश कर गया तो जो लोग पृथ्वी खोद रहे थे, उन्होंने देखा। तब वह बोला—'मा गध करोथ'। इन अनुश्रुतियो का तथ्य यही है कि मगधा नामक क्षत्रियो की यह निवास भूमि थी, अत. यह मगध के नाम से विश्रुत थी।[११४]

महाकवि अर्हद्दास ने मगध का सजीव चित्र उपस्थित किया है। उसने मगध को जम्बूद्वीप का भूषण माना है। यहा के पर्वत वृक्षावलियों से सुशोभित थे। कल-कल छल-छल नदियो की मधुर झकार सुनाई देती थी। सघन वृक्षावली होने से धूप सताती नही थी। सदा धान्य की खेती होती थी। इक्षु, तिल, तीसी गुड, कोदो मूंग, गेहूँ एव उड़द आदि अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते थे। मगध धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि सभी दृष्टियो से सम्पन्न था। वहा के निवासी तत्त्व चर्चा, स्वाध्याय आदि मे तल्लीन रहते थे।[११५]

---

११२. कालेश्वर समारभ्य तप्तकुण्डान्तक शिवे।
मगधाख्यो महादेशो यात्राया न हि दुष्यति ॥
—शक्तितत्र ३।७।१०

११३ दक्षिणोत्तरक्रमेणैव क्रमात्कीकटमागधौ।
—वही० ३।७।११

११४ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, साहित्य सम्मेलन प्रयाग सस्करण पृ० ३६१

११५ मुनि सुव्रत काव्य, अर्हद्दास रचित, १।२२, २३ व ३३

मगध ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में जैन और बौद्ध श्रमणों को प्रवृत्तियो का मुख्य केन्द्र था। ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी से पाचवी शताब्दी तक यह कला-कौशल आदि की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध था। नीतिनिपुण चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना व वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण भी मगध मे ही किया था। वहा के कुशल-शासकों ने स्थान-स्थान पर मार्ग निर्माण कराया था और जावा, वालि प्रभृति द्वीपो मे जहाजो के वेड़े भेजकर इन द्वीपो को वसाया था।[११६]

जैन और बौद्ध ग्रन्थो मे मगध की परिगणना सोलह जनपदो मे की गई है।[११७] मगध, प्रभास और वरदाम ये भारत के प्रमुख स्थल थे जो पूर्व, पश्चिम और दक्षिण मे अवस्थित थे। भरत चक्रवर्ती का राज्याभिषेक वहाँ के जल से किया गया था।[११८] अन्य देश-वासियो की अपेक्षा मगधवासियो को अधिक बुद्धिमान् माना गया है। वे सकेत मात्र से समझ लेते थे, जवकि कौशलवासी उसे देखकर, पाँचालवासी उसे आधा सुनकर और दक्षिण देशवासी पूरा सुनकर ही उसे समझ पाते थे।[११९]

साम्प्रदायिक विद्वेष से प्रेरित होकर ब्राह्मणो ने मगध को 'पाप भूमि' कहा है, वहा जाने का भी उन्होने निषेध किया है। प्राचीन तीर्थमाला मे अठारहवी सदी के किसी जैन यात्री ने प्रस्तुत मान्यता

---

११६. देखिए जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४६०

११७. अग, वग, मलय, मालवय, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पाढ, लाढ, वज्जि, मोलि (मल्ल) कासी, कोसल, अवाह, सभुत्तर।

—व्याख्याप्रज्ञप्ति १५

तुलना कीजिए—अग, मगध, कासी, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेति, वश, कुरु, पचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवति, गधार और कवोज।

—अगुत्तरनिकाय १।३, पृ० १९७

११८ (क) स्थानाङ्ग ३।१४२

(ख) आवश्यक चूर्णी पृ० १८६

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति भाष्य दीपिका ११० पृ० ९३ अ०

पर व्यग करते हुए लिखा—अत्यन्त आश्चर्य है कि काशी मे कौआ भी मर जाये तो वह सीधा मोक्ष जाता है किन्तु यदि कोई मानव मगध मे मृत्यु को प्राप्त हो तो उसे गधे की योनि मे जन्म लेना पडेगा।[१२०]

मगधदेश का प्रमुख नगर होने से राजगृह को मगधपुर भी कहा जाता था।[१२१] भगवान् मुनिसुव्रत का जन्म भी मगध मे ही हुआ था।[१२२] महाभारत के युग मे मगध के सम्राट् प्रतिवासुदेव जरासघ थे।

बुद्धिस्ट इण्डिया के अनुसार—मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिले के अन्तर्गत फैला हुआ था। उसके उत्तर मे गगा नदी, पश्चिम मे सोन नदी, दक्षिण मे विन्ध्याचल पर्वत का भाग और पूर्व मे चम्पानदो थी।[१२३]

इसका विस्तार तीन सौ योजन (२३०० मील) था और इसमे अस्सी हजार गाव थे।[१२४]

वसुदेवहिण्डी के अनुसार मगधनरेश और कलिग नरेश के वीच मनमुटाव चलता रहता था।[१२५]

---

११९. व्यवहारभाष्य १०।१९२
तुलना करो—
बुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्य दक्षिणापथे।
पैशुन्य पश्चिमे देशे, पौरुष्य चोत्तरापथे॥
—गिलगित मैनुस्क्रिप्ट ऑव द विनयपिटक इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, १९३८ पृ० ४१९

१२०. कासी वासी काग मुउइ मुगति लहइ।
मगध मुओ नर खर हुई है॥
—प्राचीन तीर्थमाला, सग्रह भाग १ पृ० ४

१२१. जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४६१

१२२ मुनि सुव्रत काव्य-अर्हद्दासरचित, श्री जैन सिद्धान्तभवन आरा सन् १९३६ ई० १।२२, २३, व ३३

१२३ वुद्धिस्ट इण्डिया पृ० २४

१२४ वही० पृ० २४

१२५ वसुदेवहिण्डी पृ० ६१-६४

कलिंग :

कलिंग जनपद उत्तर मे उडीसा से लेकर दक्षिण मे आन्ध्र या गोदावरी के मुहाने तक विस्तृत था। काव्यमीमासा मे राजशेखर ने दक्षिण और पूर्व के सम्मिलित भूप्रदेश को कलिग कहा है।[१२६] अष्टाध्यायी मे पाणिनि ने भी कलिग जनपद का उल्लेख किया है।[१२७] बौद्ध साहित्य मे कलिग की राजधानी दन्तपुर बताई है। दन्तपुरी को जगन्नाथ पुरी के साथ मिलाया जा सकता है। कुम्भकार-जातक मे कलिंग देश के राजा का नाम करण्ड आया है और उसे विदेहराज निमि का समकालिक कहा है। कलिगबोधि जातक के अनुसार कलिंग देश के राजकुमार ने मद्र देश के राजा की लड़की से विवाह किया था। कलिग और वग देश के राजाओ के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होते थे।[१२८] कलिंग की राजधानी कचनपुर (भुवनेश्वर) थी।[१२९] ओघनिर्युक्ति के अनुसार यह जनपद एक व्यापारिक केन्द्र था, और यहा के व्यापारी व्यापारार्थ लका आदि तक जाया करते थे।[१३०]

खारवेल के समय कलिंग जनपद अत्यन्त समृद्ध था। खारवेल ने एक वृहत् जैन सम्मेलन भी बुलाया था जिसमे भारतवर्ष में विचरण करते हुए जैन यति, तपस्वी, ऋपि और विद्वान् एकत्रित हुए थे।[१३१] नौवी, दशमी शताव्दी मे कलिग मे बौद्ध और वैदिक प्रभाव व्याप्त हो गया था। विशेष परिचय के लिए भगवान पार्श्व देखे।[१३२]

---

१२६. काव्य मीमासा, अध्याय १७, देशविभाग पृ० २२६ तथा परिशिष्ट २, पृ० २८२

१२७ अष्टाध्यायी ४।१।१७०

१२८ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ० ४६४-४६५

१२९ वसुदेवहिण्डी, पृ० १११

१३० ओघनिर्युक्ति टीका ११९

१३१. (सु) कति समणासुविहितान (नु १) च सतद्दिसान (नु) जातिन तपसि इसिन सघियन (नु १) अरहतनिसीदिया समीपे पभारे वराकर समुथपिताहि अनेक योजनाहि ताहि प० सि० ओ सिलाहि सिंह पथरानिसि· · फुडाय निसयानि।

—खरवेल शिलालेख प० १५

कुरुजांगल :

थानेश्वर, हिसार अथवा सरस्वती-यमुना-गगा के मध्य का प्रदेश कुरुजागल कहलाता था। गगा-यमुना के बीच मेरठ कमिश्नरी का भूभाग कुरु जनपद था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। वस्तुत कुरु जनपद और कुरुजागल एक दूसरे से मिले हुए थे।[१३३]

शूरसेन

शूरसेन जनपद की अवस्थिति मथुरा के आसपास थी। मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, आगरा आदि इस जनपद मे सम्मिलित थे। महाभारत के अनुसार दक्षिण दिग्विजय के समय सहदेव ने इन्द्रप्रस्थ से चलकर सबसे पहले शूरसेनवासियो पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की थी।[१३४] वे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे सम्मिलित हुए थे।[१३५] जैनदृष्टि से शूरसेनदेश की प्रसिद्ध नगरी मथुरा थी।[१३६] ग्रीक इतिहासकारो ने भी शूरसेन देश और उसकी मथुरा नगरी का वर्णन किया है।[१३७] शक्तिसगमतन्त्र मे शूरसेन का विस्तार उत्तर पूर्व मे मगध और पश्चिम मे विन्ध्य तक बताया है।

हस्तिनापुर :

हस्तिनापुर कुरुजांगल जनपद की राजधानी था। भगवान् ऋषभदेव को हस्तिनापुर के अधिपति श्रेयास ने ही सर्वप्रथम आहार दान दिया था।[१३८] महाभारत के अनुसार सुहोत्र के पुत्र राजा हस्ती ने इस नगर को बसाया था, अत इसका नाम हस्तिनापुर पड़ा।[१३९] महाभारतकाल मे कौरवो की राजधानी भी हस्तिनापुर मे ही

---

१३२ भगवान पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन

१३३. आदिपुराण मे भारत पृ० ५४

१३४ महाभारत, सभापर्व ३१।१-२

१३५ महाभारत, सभापर्व ५३।१३

१३६ आदिपुराण मे भारत पृ० ६९

१३७ एथनिक सेटिलमेन्ट इन् एन्शियन्ट इण्डिया पृ० २३

१३८ ऋषभदेव : एक परिशीलन पृ० १०१-१०५

१३९ महाभारत, आदिपर्व ९५।३४।२४३

थी।[१४०] अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को यहा का राजा वनाया गया था।[१४१]

विविधतीर्थकल्प के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र कुरु थे, और उनके पुत्र हस्ती थे, उन्होने हस्तिनापुर वसाया था।[१४२] इस नगर मे विष्णुकुमार मुनि ने वलि द्वारा हवन किए जाने वाले सात सौ मुनियो की रक्षा की थी। सनत्कुमार, महापद्म, सुभौम, और परशुराम का जन्म इसी नगर में हुआ था। इसी नगर के कार्तिक सेठ ने मुनिसुव्रत स्वामी के पास सयम लिया था और सौधर्मेन्द्र पद प्राप्त किया था।[१४३] शान्तिनाथ, कुथुनाथ और अरनाथ इन तीनो तीर्थकरो और चक्रवर्तियो की जन्मभूमि होने का गौरव भी हस्तिनापुर को ही है। पौराणिक दृष्टि से इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा है। वसुदेवहिण्डी मे इसे ब्रह्मस्थल कहा गया है।[१४४] हस्तिनापुर का दूसरा नाम गजपुर और नागपुर भी था। वर्तमान मे हस्तिनापुर गगा के दक्षिण तट पर, मेरठ से वावीस मील दूर पर उत्तर पश्चिम कोण मे तथा दिल्ली से ५६ मील दक्षिण-पूर्व खण्डहरो के रूप मे वर्तमान है।

पाली-साहित्य मे इसका नाम 'हस्थिपुर' या हत्थिनीपुर आता है। किन्तु उसके समीप गगा होने का कोई उल्लेख नही मिलता। रामायण, महाभारत आदि पुराणो मे इसकी अवस्थिति गगा के पास वताई गई है।[१४५]

चेदि :

चेदि जनपद वत्स जनपद के दक्षिण मे, यमुना नदी के सन्निकट अवस्थित था। इसके पूर्व मे काशी, दक्षिण मे विन्ध्यपर्वत, पश्चिम

---

१४० वही० आदिपर्व १००।१२।२४४

१४१. वही० महभारत प्र० १।८।२४५

१४२ कुरुर्नरिंदस्स पुत्तो हत्थी नाम राया हुत्था। तेण हत्थिणाउर निवेसिअ।

— विविध तीर्थकल्प, सिंघी जैन ग्रन्थमाला प्र० स०
हस्तिनापुर कल्प पृष्ठ २७

१४३. जयवाणी पृ० ३८७-३९६

मे अवन्ती और उत्तर-पश्चिम मे मत्स्य व सूरसेन जनपद थे। मध्यप्रदेश का कुछ भाग और बुन्देलखण्ड का कुछ हिस्सा इस जनपद के अन्तर्गत आता है। विभिन्न कालो मे इसकी सीमा परिवर्तित होती रही है। चेतीयजातक के अनुसार इस जनपद की राजधानी सोत्थिवती नगरी थी। नन्दलाल देने का कथन है कि सोत्थिवती नगरी ही महाभारत की शुक्तिमती नगरी थी।[१४६] पार्जिटर इस जनपद को बादा के समीप बतलाते है।[१४७] डा० रायचौधरी का भी यही मत है।[१४८] बौद्ध साहित्य मे चेदि राष्ट्र का विस्तार से निरुपण है और इसके प्रसिद्ध नगरो का भी कथन है। चेदि जनपद से काशी जनपद जाने का एक मार्ग था, वह भयकर अरण्य मे से होकर जाता था और मार्ग मे तस्करो का भी भय रहता था।[४९] शिशुपाल 'चेदि' जनपद का सम्राट् था।[१५०] आचार्य जिनसेन ने चेदि राज्य की समृद्धि का वर्णन किया है।[१५१] चदेरी नगरी का समीपस्थ प्रदेश 'चेदि' जनपद कहलाता था। 'शुक्तिमतीया' जैन श्रमणो की एक शाखा भी रही है।[१५२]

पल्लव :

दक्षिण भारत के कुछ भाग पर पल्लव वश का शासन पाचवी शताब्दी से नौवी शताब्दी तक रहा है। काची पल्लव वश की

---

१४४. वसुदेव हिण्डी पृ० १६५

१४५ भ० पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० १९३

१४६ ज्योग्रैफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया पृष्ठ १९६

१४७ (क) पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया पृ० १२९
(ख) स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विरीज पृ० ११४

१४८. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया पृ० १२९

१४९ (क) बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ० ४२७
(ख) अगुत्तरनिकाय ३, जिल्द पृ० ३५५

१५० शिशुपाल वध महाकाव्य, सर्ग २।१५-१६-१७

१५१. आदिपुराण २९।५५

१५२. कल्पसूत्र सूत्र २०९ पृ० २९२, देवेन्द्रमुनि सम्पादित

राजधानी थी। काची के चारो ओर का प्रदेश पल्लव जनपद कहा जाता था। आचार्य जिनसेन ने पल्लव को स्वतत्र जनपद माना है।[१५३] राजशेखर की काव्यमीमासा से भी पल्लव स्वतंत्र जनपद था, ऐसा सिद्ध होता है।[१५४] काची के समीपवर्ती प्रदेश को डा० नेमिचन्द्र शास्त्री भी स्वतत्र जनपद मानते है।[१५५]

भद्दिलपुर

भद्दिलपुर मलयदेश की राजधानी था। इसकी परिगणना अतिशय क्षेत्रो मे की गई है। मुनि कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार पटना से दक्षिण मे लगभग एक सौ मील और गया से नैऋत्य-दक्षिण मे अट्ठाईस मील की दूरी पर गया जिले मे अवस्थित हटवरिया और दन्तारा गावो के पास प्राचीन भद्दिलनगरी थी, जो पिछले समय मे भद्दिलपुर नाम से जैनो का एक पवित्र तीर्थ रहा है।[१५६]

आवश्यक सूत्र के निर्देशानुसार श्रमण भगवान् महावीर ने एक चातुर्मास भद्दिलपुर मे किया था।

डा० जगदीशचन्द्र जैन का मन्तव्य है कि हजारीबाग जिले मे भदिया नामक जो गाव है, वही भद्दिलपुर था। यह स्थान हटरगज से छह मील के फासले पर कुलुहा पहाडी के पास है।[१५७]

पांचाल :

(पचाल) पाचाल प्राचीन काल मे एक समृद्धिशाली जनपद था। यह इन्द्रप्रस्थ से तीस योजन दूर कुरुक्षेत्र के पश्चिम और उत्तर मे अवस्थित था। पचाल जनपद दो भागो मे विभक्त था, १ उत्तर पचाल और दक्षिण पचाल। पाणिनि के अनुसार—पाचाल जनपद तीन विभागो मे विभक्त था—(१) पूर्वपाचाल, (२) अपर पाचाल

---

१५३ आदिपुराण १६।१५५

१५४ काव्य मीमासा १७, अध्याय, देशविभाग, तथा परिशिष्ट २, पृ० २६

१५५. आदिपुराण मे भारत पृ० ६०

१५६ श्रमण भगवान महावीर पृ० ३८०

१५७ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४७७

और (३) दक्षिण पाचाल ।[१५८] महाभारत के अनुसार गगानदी पाचाल को दक्षिण और उत्तर मे विभक्त करती थी। एटा और फर्रुखाबाद के जिले दक्षिण पाचाल के अन्तर्गत आते थे। यह भी ज्ञात होता है कि उत्तर पाचाल के भी पूर्व और अपर ये दो विभाग थे। दोनो को रामगगा विभक्त करती थी। अहिच्छत्रा उत्तरी पाचाल तथा काम्पिल्य दक्षिणी पाचाल की राजधानी थी।[१५९]

कापिल्यपुर गगा के किनारे पर अवस्थित था।[१६०] यही पर द्रौपदी का स्वयवर रचा गया था। इन्द्र महोत्सव भी यहा उल्लास के साथ मनाया जाता था।

माकदी दक्षिण पाचाल की दूसरी राजधानी थी। यह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। समराइच्चकहा मे हरिभद्रसूरि ने इस नगरी का वर्णन किया है।[१६१]

कान्यकुब्ज (कन्नौज) दक्षिण पाचाल में पूर्व की ओर अवस्थित था। इसे इन्द्रपुर, गाधिपुर, महोदय और कुशस्थल[१६२] आदि नामो से भी पहचाना जाता था। सातवी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी तक कान्यकुब्ज उत्तर भारत के साम्राज्य का केन्द्र था। चीनी यात्री हुएनसाग के समय सम्राट् हर्षवर्धन वहा के राजा थे। उस समय वह नगर शूरसेन के अन्तर्गत था।

द्विमुख, जो प्रत्येक बुद्ध था, पाञ्चाल का प्रभावशाली राजा था।[१६३] प्रभावकचरित्र के अनुसार पाञ्चाल और लाटदेश कभी एक शासन के अधीन भी रहे है।[१६४]

बौद्ध साहित्य मे पाञ्चाल का उल्लेख सोलह महाजनपदो मे

---

१५८ पाणिनी व्याकरण ७।३।१३

१५९. स्टडीज इन दि ज्योग्रेफि ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया पृष्ठ ९२

१६० औपपातिक सूत्र ३९

१६१ समराइच्चकहा—अध्याय ६

१६२ अभिधानचिन्तामणि ४।३९-४०

१६३ उत्तराध्ययन—सुखबोधा पत्र १३५-१३६

१६४. प्रभावक चरित पृ० २४

किया गया है।[१६५] किन्तु जैन साहित्य मे वर्णित सोलह जनपदो मे पाञ्चाल का उल्लेख नही है।

कनिघम के अभिमतानुसार आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आस-पास के जिले पाञ्चाल राज्य की सीमा के अन्तर्गत आते है।[१६६]

मत्स्य :

मत्स्य (अलवर के सन्निकट का प्रदेश) जनपद का उल्लेख जैन ग्रन्थो के अतिरिक्त महाभारत मे भी आता है।

वैराट या विराटनगर (वैराट्, जयपुर के पास) मत्स्य की राजधानी था। मत्स्य के राजा विराट् की राजधानी होने से यह विराट या वैराट कहा जाता था। पाडवो ने एक वर्ष तक यहा गुप्तवास किया था। यहा के लोग वीरता की दृष्टि से विश्रुत थे। बौद्ध मठो के ध्वसावशेष भी यहां उपलब्ध हुए है। वैराट जयपुर से बयालीस मील पर है।

कांपिल्य ·

कापिल्य को कपिला भी कहते है। यहा पर तेरहवे तीर्थकर विमलनाथ का जन्म, राज्याभिषेक और दीक्षा आदि प्रसग हुए हैं। जिनप्रभसूरि ने कपिलपुर कल्प में लिखा है—जम्बूद्वीप मे, दक्षिण भरत खण्ड मे, पूर्व दिशा मे, पाचाल नामक देश मे कपिल नामक नगर गगा के किनारे अवस्थित है। अठारवी शताब्दी के जैन यात्रियो ने कपिला की यात्रा करते हुए लिखा है—

जी हो, अयोध्या थी पश्चिम दिशे,
जी हो कपिलपुर छे दाय।
जी हो, विमलजन्मभूमि जाण जो,
जी हो पिटियारी वहि जाय॥

इसमे कपिलपुर नगरी अयोध्या से पश्चिम दिशा मे होने का सूचन किया है। प० बेचरदासजी का अभिमत है—'फर्रुखाबाद

---

१६५ अगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० २१३

१६६ दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया पृ० ४१२, ७०५

जिले मे आये हुए कायमगज से उत्तर पश्चिम मे छह मील के ऊपर कपिला हो, ऐसा लगता है।[१६७] उपरोक्त पद्य मे पटियारी का उल्लेख हुआ है। कपिला से उत्तर पश्चिम मे १६ माइल पर पटियाली गाव है। महाभारत मे गगा के किनारे अवस्थित माकदी के पास द्रुपद का नगर बताया गया है।

हत्थकप्प

यह ग्राम शत्रुजय के सन्निकट होना चाहिए, क्योकि पाण्डवो ने हत्थकप्प मे सुना कि भगवान् अरिष्टनेमि उज्जयत पर्वत पर निर्वाण प्राप्त हुए है। यह सुन पाण्डव हत्थकप्प से निकल शत्रुञ्जय की तरफ गये। इस समय सौराष्ट्र मे तलाजा के पास मे हाथप नाम का गाव है, जो शत्रुञ्जय मे विशेष दूर नही है। यह हाथप ही हत्थकप्प होना चाहिए। भाषा व नाम की दृष्टि से भी अधिक साम्य है। गुप्तवशीय प्रथम धरसेन के वलभी के दानपत्र मे (ई० स० ५८८) हस्तवप्र इलाके का उल्लेख हुआ है। इस शिलालेख के अनुवाद मे हस्तवप्र को वर्तमान का हाथप माना गया है।[१६८] हत्थकप्प और हस्तवप्र इन दोनो शब्दो का अपभ्रंश रूप हाथप हो सकता है।

देवविजय जी ने पाडव चरित्र मे हत्थिकप्प के स्थान पर हस्तिकल्प दिया है और उसे रैवतक से बारह योजन दूर बताया है।

मथुरा

जिनसेनाचार्यकृत महापुराण मे लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव के आदेश से इन्द्र ने इस भूतल पर जिन ५२ देशो का निर्माण किया था, उनमे एक शूरसेन देश भी था, जिसकी राजधानी मथुरा थी।[१६९]

सातवे तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ और तेईसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का विहार भी मथुरा मे हुआ था।[१७०] तीर्थंकर महावीर भी मथुरा पधारे थे। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के तप और निर्वाण की

---

१६७ भगवान् महावीर नी धर्मकथाओ—टिप्पण पृ० २३६

१६८ इण्डियन ऐन्टीकवेरी वो० ६, पा० ६

१६९ महापुराण पर्व १६, श्लोक १५५

१७०. विविध तीर्थकल्प मे मथुरापुरी कल्प—जिनप्रभसूरि

भूमि होने से भी मथुरा का महत्त्व रहा है। मथुरा कई तीर्थकरो की विहार भूमि, विविध मुनियो की तपोभूमि, एव अनेक महापुरुषो की निर्वाण भूमि है।

जैनागमो की प्रसिद्ध तीन वाचनाओ मे से एक वाचना मथुरा में ही सम्पन्न हुई थी जो माथुरीवाचना कहलाती है। मथुरा के ककाली टीला की खुदाई मे जैनपरम्परा से सबध रखने वाली अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है, जिससे सिद्ध होता है कि मथुरा के साथ जैन-इतिहास का गहरा सबध रहा है।

बौद्धधर्म के सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय की मान्यता है कि इस भूतल के मानवसमाज ने सर्वसम्मति से अपना जो राजा निर्वाचित किया था, वह 'महासम्मत' कहलाता था। उसने मथुरा के निकटवर्ती भूभाग मे अपना प्रथम राज्य स्थापित किया था, इसीलिए 'विनय पिटक' मे मथुरा को इस भू-तल का आदिराज्य कहा गया है।[१७१]

'अगुत्तरनिकाय' मे १६ महाजनपदो का नामोल्लेख है। उनमे पहला नाम शूरसेन जनपद का है।

हुएनसाग ने तत्कालीन मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली (८३३ मील के लगभग) वताया है। उसकी सीमाओ के सम्बन्ध मे श्री कनिंघम का अनुमान है कि वह पश्चिम में भरतपुर और धौलपुर तक, पूर्व मे जिझौती (प्राचीन बुन्देलखण्ड राज्य) तक तथा दक्षिण में ग्वालियर तक होगी। इस प्रकार उस समय भी मथुरा एक वडा राज्य रहा होगा।[१७२]

वैदिक परम्परा मे सास्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव की आधार-शिलाए सात महापुरिया मानी गई है १ अयोध्या, २ मथुरा, ३ माया, ४ काशी ५ काची ६ अवतिका और ७ द्वारिका।[१७३] पद्म-

१७१ उत्तर प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास पृ० ३०

१७२ ऐंटश्येट ज्योगरफी आफ इण्डिया पृ० ४२७-४२८

१७३ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवतिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिका ॥

—गरुडपुराण

पुराण मे मथुरा का महत्त्व सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि यद्यपि काशी आदि सभी पुरिया मोक्षदायिनी है, तथापि मथुरापुरो धन्य है। यह पुरी देवताओ के लिए भी दुर्लभ है।[१७४] इसी का समर्थन 'गर्ग सहिता' मे करते हुए बताया है कि पुरियो की रानी कृष्णपुरी मथुरा ब्रजेश्वरी है, तीर्थेश्वरी है, यज्ञ तपोनिधियो की ईश्वरी है, यह मोक्षप्रदायिनी धर्मपुरी मथुरा नमस्कार योग्य है।[१७५]

यमुना नदी

भारतवर्ष की प्राचीन पवित्र नदियो मे यमुना की गणना गगा के साथ की गई है।

पद्मपुराण मे यमुना के आध्यात्मिक स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—जो सृष्टि का आधार है और जिसे लक्षणो से सच्चिदानन्द स्वरूप कहा जाता है, उपनिषदो ने जिसका ब्रह्मरूप से गायन किया है, वही परमतत्त्व साक्षात् यमुना है।[१७६] मथुरा माहात्म्य मे यमुना को साक्षात् चिदानन्दमयी लिखा है।[१७७]

यमुना का उद्गम हिमालय के हिमाच्छादित शृ ग बदरपुच्छ (ऊँचाई २०, ७३१ फीट) से ८ मील उत्तर-पश्चिम मे स्थित कलिंद पर्वत है। इसी के नाम पर इसे कलिंदजा अथवा कालिंदी कहा जाता है। अपने उद्गम से कई मील तक विशाल हिमागारो और हिममडित कदराओ मे अप्रकट रूप से बहती हुई तथा पहाडी ढलानो पर से बड़ी तीव्रतापूर्वक उतरती हुई इसकी धारा यमुनोत्तरी पर्वत (ऊँचाई १०, ८४६ फीट) से प्रकट होती है।[१७८]

---

१७४ काश्यात्यो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासाहु मध्ये मथुरैव धन्या।
ता पुरी प्राप्य मथुरा मदीया सुर दुर्लभाम्॥
—पद्मपुराण ७३।४४-४५

१७५ काश्यादि सर्गायदिसति लोके ता सा तु मध्ये मथुरैव धन्या।
पुरीश्वरी कृष्णपुरी ब्रजेश्वरी तीर्थेश्वरी यज्ञतपोनिधीश्वरीम्।
मोक्षप्रदीधर्मधुरन्धरा परा मधोर्वने श्री मथुरा नमाम्यहम्॥
—गर्ग सहिता ३३-३४

१७६ पद्मपुराण, पातालखण्ड, मरीचि मर्ग

यमुना का प्रवाह समय-समय पर बदलता रहा है। प्रागैतिहासिक काल मे यमुना मधुवन के निकट बहती थी। जहा उसके तट पर शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी की स्थापना की थी।[१७९] कृष्ण-काल मे यमुना का प्रवाह कटरा केशवदेव के निकट था। १७वी शताब्दी मे भारत आने वाले यूरोपीय विद्वान टेवर्नियर ने कटरा के समीप की भूमि को देखकर यह अनुमान किया था कि वहा किसी समय यमुना की धारा थी। इस पर श्री ग्राउस का मत है, ऐतिहासिक काल मे कटरा के समीप यमुना के प्रवाहित होने की सभावना कम है, किन्तु अत्यन्त प्राचीन काल मे वहा यमुना अवश्य थी।[१८०] इससे भी यह सिद्ध होता है कि कृष्ण-काल मे यमुना का प्रवाह कटरा के समीप ही था।

श्री कनिघम का अनुमान है, यूनानी लेखको के समय मे यमुना की प्रधान धारा या उसकी एक बड़ी धारा कटरा केशवदेव की पूर्वी दीवाल के नीचे बहती होगी।[१८१]

पुराणो से ज्ञात होता है प्राचीन वृन्दावन मे यमुना गोवर्धन के निकट प्रवाहित होती थी,[१८२] जबकि इस समय वह गोवर्धन से प्राय: १४ मील दूर हो गई है।[१८३]

व्रज .

व्रज अथवा व्रज शब्द सस्कृत धातु 'व्रज' से बना है, जिसका अर्थ 'गतिशीलता' है। व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रज —जहाँ गाये नित्य

---

१७७ चिदानदमयी साक्षात् यमुना यम भीतिनत।

—मथुरा माहात्म्य

१७८. व्रज का सास्कृतिक इतिहास पृ० ३१

१७९. (क) वाल्मीकि रामायण, (उत्तर काण्ड ७।८)

(ख) विष्णुपुराण ६।१२।४

१८० मथुरा—ए—डिस्ट्रक्ट मेमोअर (तृ० स०) पृ० १२९-१३०

१८१. विदेशी लेखको का मथुरा वर्णन (पौद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ) पृ० ८२८

१८२ भागवत दशम स्कध तथा स्कधपुराण

१८३. व्रज का सास्कृतिक इतिहास पृ०-३२

चलता अथवा चरती है, वह स्थान भी 'व्रज' कहा गया है। कोशकारो ने व्रज के तीन अर्थ बतलाये है—गोष्ठ (गायो का खिरक) मार्ग और वृन्द (झुड)।[१८४] इनसे भी गायो से सबधित स्थान का ही बोध होता है।

वैदिक सहिताओ तथा रामायण, महाभारत प्रभृति ग्रन्थो मे 'व्रज' शब्द गोशाला, गो-स्थान, गोचर-भूमि के अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद मे यह शब्द गोशाला अथवा गायो के खिरक (वाडा) के अर्थ मे आया है।[१८५] यजुर्वेद मे गायो के चरने के स्थान को 'व्रज' और गो-शाला को 'गोष्ठ' कहा गया है।[१८६] शुक्लयजुर्वेद मे सुन्दर सीगो वाली गायो के विचरण-स्थान से व्रज का सकेत मिलता है।[१८७] अथर्ववेद मे गोशालाओ से सम्बन्धित पूरा सूक्त ही है।[१८८] हरिवश तथा भागवतादि पुराणो मे यह शब्द गोप-वस्ती के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[१८९] स्कध पुराण मे महर्षि शाडिल्य ने व्रज शब्द का अर्थ 'व्याप्ति' वतलाते हुए इसे व्यापक ब्रह्म का रूप कहा है।[१९०]

सूरदास आदि व्रज भाषा के भक्त-कवियो और वार्ताकारो ने भागवतादि पुराणो के अनुकरण पर मथुरा के निकटवर्ती वन्य प्रदेश की गोप-वस्ती को व्रज कहा है।[१९१] और उसे सर्वत्र मथुरा, मधुपुरी

---

१८४ गोष्ठाध्वनिवहा व्रज —अमर कोश, ३।३।३०

१८५ (क) गवामय व्रज वृधि कृणुष्व राधो अद्रिव ।
—ऋग्वेद १।१०।७

(ख) य त्वा जनासो अभिसचरन्ति गाव उष्णमिव व्रज यविष्ठ।
—ऋग्वेद १०।४।२

१८६. व्रज गच्छ गोष्ठान —यजुर्वेद १।२५

१८७ याते धामान्युश्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरि शृङ्गा अयास ।
—शुक्ल यजुर्वेद ६।३

१८८ अथर्ववेद २।२६।१

१८९ (क) तद् व्रजस्थानमधिकम् शुशुभे काननावृतम् ।
—हरिवश, विष्णु पर्व ९।३०

(ख) व्रजे वसन् किमकरोन् मधुपुर्यां च केशव ।
—भागवत १०।१।१०

१९० वैष्णव खण्ड, भागवत माहात्म्य १।१९-२०

या मधुवन से पृथक् बताया है।[१९२] आजकल मथुरा नगर सहित वह भू-भाग, जो कृष्ण के जन्म और उनकी विविध लीलाओ से सम्बन्धित है, व्रज कहलाता है।

भागवत मे 'व्रज' शब्द क्षेत्रवाची अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है।[१९३] वहा इसे एक छोटे ग्राम की सज्ञा दी गई है। उसमे पुर से छोटा ग्राम और उससे भी छोटी बस्ती को व्रज कहा गया है।[१९४] १६वी शताब्दी मे 'व्रज' प्रदेशवाची होकर 'व्रजमण्डल' हो गया है और तव इसका आकार ८४ कोस का माना जाने लगा था।[१९५] उस समय मथुरा नगर व्रज मे सम्मिलित नही माना जाता था। सूरदास आदि कवियो ने व्रज और मथुरा का पृथक् रूप मे ही कथन किया है।

वर्तमान मे मथुरा नगर सहित मथुरा जिले का अधिकाश भाग तथा राजस्थान के डीग और कामवन (कामा) का कुछ भाग, जहा होकर व्रज यात्रा जाती है, 'व्रज' कहा जाता है।

इस समस्त भू-भाग के प्राचीन नाम मधुवन, शूरसेन, मथुरा, मधुपुरी, मथुरा और मथुरामडल थे तथा आधुनिक नाम व्रज या व्रज मण्डल है। यद्यपि इनके अर्थबोध एव आकार प्रकार मे समय-समय पर अन्तर होता रहा है।

●●

---

१९१ (क) वका विदारि चले व्रज' को हरि

—सूरसागर पद स० १०४७

(ख) व्रज मे वाजति आज वधाई।

—परमानन्द सागर पद स० १७

(ग) चौरासी वैष्णव की वार्ता, पृ० ६

(घ) सो अलीखान 'व्रज' देखिकै वहोत प्रसन्न भए।

- दो सौ वावन वैष्णव की वार्ता, प्र० खण्ड पृ० २६६

१९२. आतुर रथ हाक्यौ मधुवन को, 'व्रज' जन भये अनाथ।

—सूरसागर पद ३६११

१९३. श्रीमद्भागवत, १०।१।८-६

१९४. शिशूश्चकार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु —भागवत १०।६।२

१९५. आइ जुरे सव व्रज के वासी। डेरा परे कोस चौरासी ॥

—सूरसागर १५२३, (ना० प्र० सभा)

परिशिष्ट २

हरिवंश

•

जैन ग्रन्थो के अनुसार हरिवश की उत्पत्ति इस प्रकार है :—

दसवे तीर्थकर भगवान् शीतलनाथ के निर्वाण के पश्चात् और ग्यारहवे तीर्थंकर श्रेयासनाथ के पूर्व हरिवश की स्थापना हुई।[1] उस समय वत्स देश मे कौशाम्बी नामक नगरी थी। वहा का राजा सुमुख था। उसने एक दिन वीरक नामक एक व्यक्ति की पत्नी वनमाला देखी। वनमाला का रूप अत्यन्त सुन्दर था। वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने वनमाला को राजमहलो मे बुला लिया। पत्नी के विरह मे वीरक अर्द्ध विक्षिप्त हो गया। वनमाला राजमहलो मे आनन्द क्रीडा करने लगी।

एक दिन राजा सुमुख अपनी प्रिया वनमाला के साथ वन विहार को गया। वहा पर वीरक की दयनीय अवस्था देखकर अपने कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा—मैंने कितना भयकर दुष्कृत्य किया है, मेरे ही कारण वीरक की यह अवस्था हुई है। वनमाला को भी अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। उन्होने उस समय सरल और भद्रपरिणामो के कारण मानव के आयु का बधन किया। सहसा आकाश से विद्युत गिरने से दोनो का प्राणान्त हो गया, और वे हरिवास नामक भोगभूमि मे युगल रूप मे उत्पन्न हुए।

---

१. चउप्पन्न महापुरिस चरिय पृ० १८०

कुछ समय के पश्चात् वीरक भी मरकर बाल तप के कारण सौधर्मकल्प मे किल्विषी देव बना। विभगज्ञान से देखा कि मेरा शत्रु 'हरि' अपनी प्रिया 'हरिणी' के साथ अनपवर्त्य आयु से उत्पन्न होकर आनन्द क्रीडा कर रहा है।

वह क्रुद्ध होकर विचारने लगा—क्या इन दुष्टो को निष्ठुरता-पूर्वक कुचल कर चूर्ण कर दू ? मेरा अपकार करके भी ये भोगभूमि में उत्पन्न हुए है। मै इस प्रकार इन्हे मार नही सकता। यौगलिक निश्चित रूप से मर कर देव ही बनते है, भविष्य मे ये यहा से मरकर देव न बने और ये अपार दु ख भोगे ऐसा मुझे प्रयत्न करना चाहिए।

उसने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा—भरतक्षेत्र मे चम्पानगरी का नरेश अभी-अभी कालधर्म को प्राप्त हुआ है अत इन्हे वहा पहुँचा दू क्योकि एकदिन भी आसक्तिपूर्वक किया गया राज्य दुर्गति का कारण है फिर लम्बे समय की तो बात ही क्या है ?

देव ने अपनी देवशक्ति से हरि-युगल की करोड पूर्व की आयु का एक लाख वर्ष मे अपवर्तन किया[२] और अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) को भी घटाकर १०० धनुष की कर दी।

देव उनको उठाकर वहां ले गया, और नागरिको को सम्बोधित कर कहा—आप राजा के लिए चिन्तित क्यो है, मैं तुम्हारे पर करुणा कर राजा लाया हूँ। नागरिको ने 'हरि' का राज्याभिषेक किया। सप्त व्यसन के सेवन करने के कारण वे नरक गति मे उत्पन्न हुए।

यौगलिक नरक गति मे नही जाते, पर वे गए, इसलिए यह घटना जैन साहित्य में आश्चर्य के रूप मे उट्टङ्कित की गई है।

राजा हरि की जो सन्तान हुई वह हरिवश के नाम से विश्रुत हुई।

---

२. पुव्वकोडीसेसाउएसु तेसिं वेर युमरिऊण वाससयसहस्स विधारेऊण चम्पाए रायहाणीए इक्खागम्मि चन्दकित्तिपत्थिवे अपुत्ते वोच्छिण्णे नागरयाण रायकखियाण हरिवसिसाओ त मिहुण साहरइ कुणति य से दिव्वप्पभावेण धणुसय उच्चत्त।

—वसुदेवहिण्डी ख० १ भाग २, पृ० ३५७

हरि के छह पुत्र थे :—

१ पृथ्वीपति,
२ महागिरि,
३ हिमगिरि,
४ वसुगिरि,
५ नरगिरि,
६[१] इन्द्रगिरि।

अनेक राजाओ के पश्चात् बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रत भी इसी वश मे हुए।

हरिवशपुराण के अनुसार यदुवश का उद्भव हरिवंश से हुआ है।

भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण हरिवश मे ही उत्पन्न हुए थे।

●

परिशिष्ट ३ | वंश परिचय

भगवान् अरिष्टनेमि और श्री कृष्ण के जैन व वैदिक परम्परा के अनुसार वश परिचय इस प्रकार है —

चार्ट १—श्वेताम्वर जैन परम्परा[1]
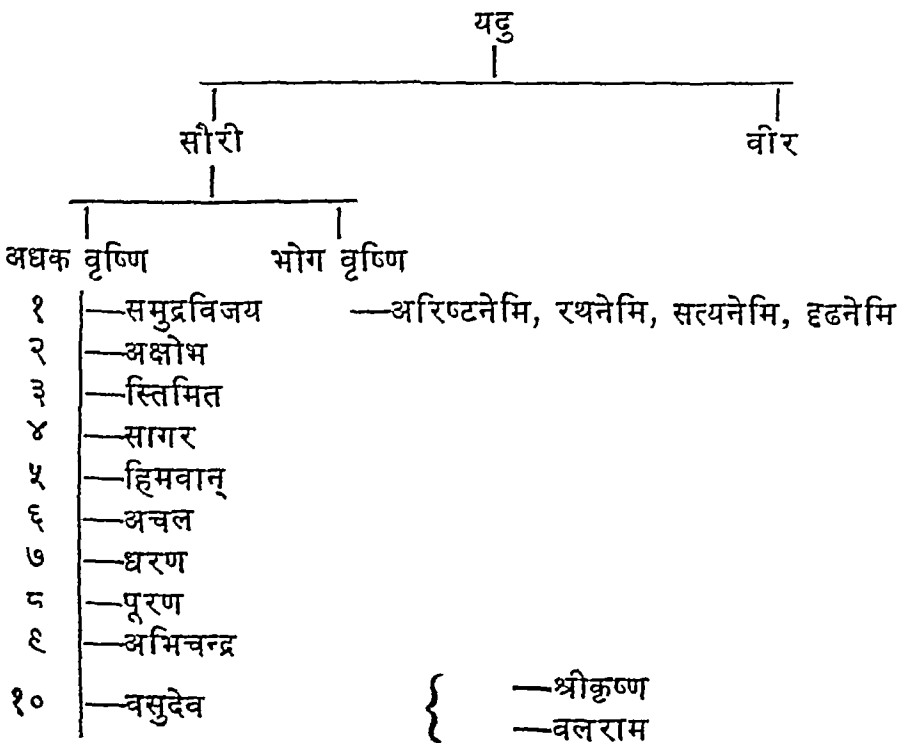
चार्ट—२ दिगम्बर उत्तरपुराण[2] के अनुसार
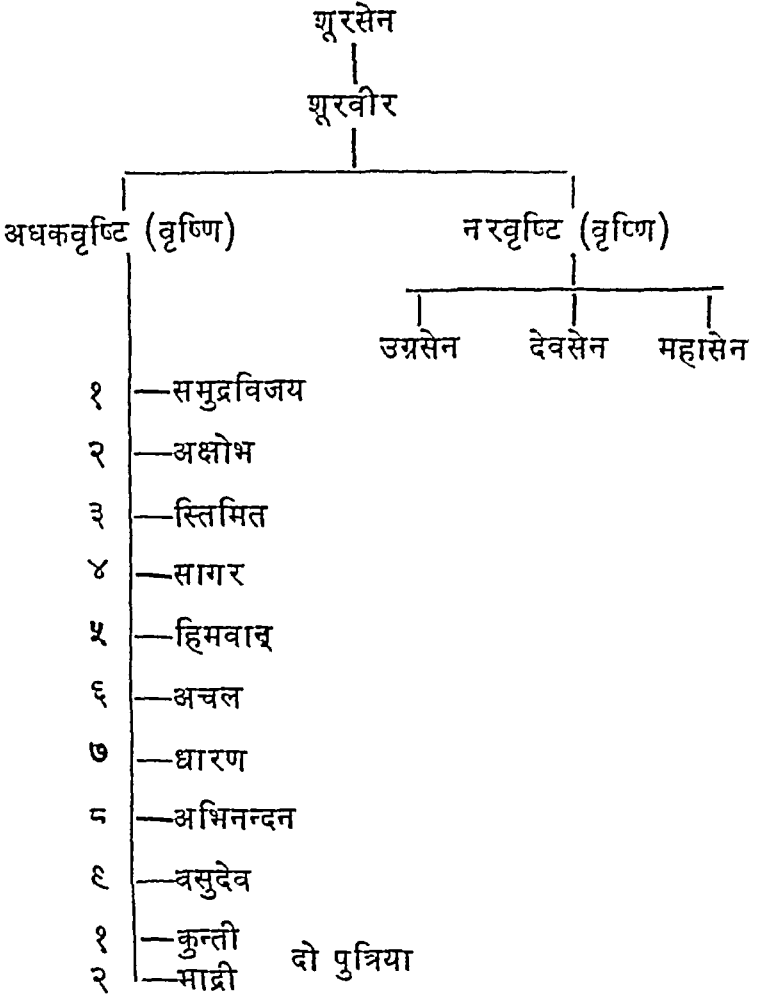
१. जैनधर्म का मौलिक इतिहास पृ० २४५

२ उत्तरपुराण ७०।९३-१००

चार्ट—३, दिगम्बर हरिवंश[3] के अनुसार यादववश परिचय
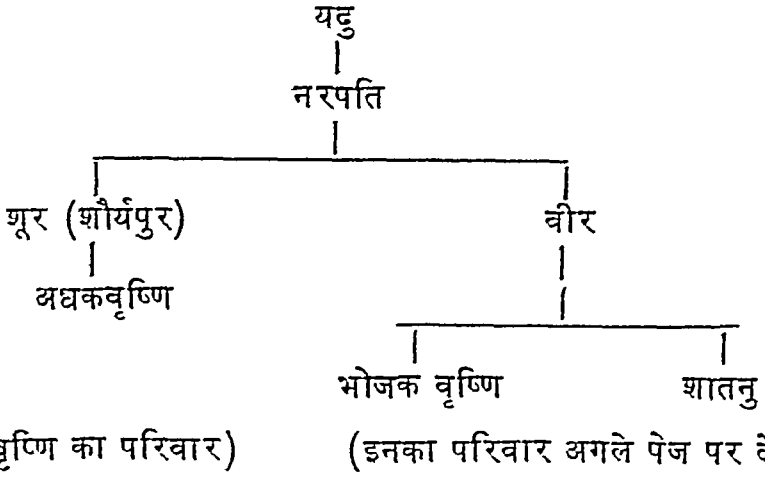
पुत्र	पौत्र
१ समुद्रविजय	—महानेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि, भ० अरिष्टनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफल्गु, तेजसेन, मय, मेघ, शिवचन्द, गौतम आदि
२ अक्षोभ्य	—उद्भव, अम्भोधि, जलधि, वामदेव, दृढव्रत
३ स्तिमित	– ऊर्मिमान वसुमान, वीर, पाताल, स्थिर
४ हिमवान्	—विद्युत्प्रभ माल्यवान, गधमादन
५ विजय	—निष्कम्प, अकम्प, वलि, युगन्त, केशरिन, अलम्वुध
६ अचल	—महेन्द्र मलय, सह्य, गिरि, शैल, नग, अचल
७ धारण	—वामुकि, धनञ्जय, कर्कोटक, शतमुख, विश्वरूप
८ पूरण	—दुष्पूर, दुर्मुख, दुर्दश, दुर्धर
९ अभिचन्द्र	—चन्द्र, शशांक, चन्द्राभ, शशित्, मोम, अमृतप्रभ
१० वसुदेव	इनकी सन्तान अगले चार्ट, ४ मे देखें
१ कुती २ माद्री	—इन दोनो का पाणिग्रहण पाण्डुराजा से हुआ।

---

३. हरिवशपुराण—जिनमेन—अ० १८ जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश, भाग १ से माभार उद्धृत

चार्ट न० ४

भोजक वृष्णि का परिवार :—

१ उग्रसेन	—कस, देवकी, धर, गुणधर, युक्तिक, दर्धर, सागर, चन्द्र
२ महासेन	
३ देवसेन	

शातनु का परिवार :—

चार्ट ५, हरिवशपुराण मे वसुदेव की २३ रानिया व उनकी सतान

रानियां	संतान
१ विजयसेना	—अक्रूर, क्रूर
२ श्यामा	—ज्वलन, अग्निवेग
३ गधर्वसेना	—वायुवेग, अमितगति, महेन्द्रगिर
४ प्रभावती	—दारु, वृद्धार्थ, दारुक
५ नीलयशा	—सिह, मतगज
६ सोमश्री	—नारद, मरुदेव
७ मित्रश्री	—सुमित्र
८ कपिला	—कपिल
९ पद्मावती	—पद्म, पद्मक
१० अश्वसेना	—अश्वसेन

११ पौण्ड्रा	—पौण्ड्र
१२ रत्नवती	—रत्नगर्भ, सुगर्भ
१३ सोमदत्तपुत्री	—चन्द्रकात, शशिप्रभ
१४ वेगवती	—वेगवान, वायुवेग
१५ मदनवेगा	—दृढमुष्टि, अनावृष्टि, हिममुष्टि
१६ वधुमति	—वधुसेने, सिंहसेन
१७ प्रियगुसु दरी	—शिलायुध
१८ प्रभावती	—गाधार, पिंगल
१९ जरा	—जरत्कुमार, वाह्लिक
२० अवती	—ममुख, दुर्मुख, महारथ
२१ रोहिणी	—बलदेव, सारण, विदुरथ
२२ बालचन्द्रा	—वज्रदष्ट्र, अमितप्रभ
२३ देवकी	—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल शत्रुघ्न, जितशत्रु, श्रीकृष्ण

वसुदेव के पुत्र	पुत्रो की सतान
जरत्कुमार	—वसुध्वज, सुवसु, भीमवर्मा, कापिष्ठ, अजातशत्रु शत्रुसेन, जितारि, जितशत्रु आदि
बलदेव	—उन्मुण्ड, निषध, प्रकृतिद्युति, चारुदत्त, ध्रुव, पीठ, शक्रन्दमन, श्रीध्वज, नन्दन, धीमान, दशरथ, देवनन्द, विद्रुम, शान्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु, रोमशैल्य
श्रीकृष्ण	—भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुमजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गभीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शङ्ख, प्रद्युम्न, शम्ब, इत्यादि[४]

४. जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश भा० १, पृ० ३५८ से उद्धृत

चार्ट नं०—६ वैदिक परम्परा

विष्णुपुराण के अनुसार[5] उग्रसेन का वंश

चार्ट नं०—७

यदु
|
क्रोष्टु
|
युधाजित् — देवमीढुष

युधाजित्
- वृष्णि
  - स्वफल्क — अक्रूर
  - चित्रक — अरिष्टनेमि
- अंधक

देवमीढुष
- शूर
  - वसुदेव (१० भाई)
    - श्रीकृष्ण (८ भाई)
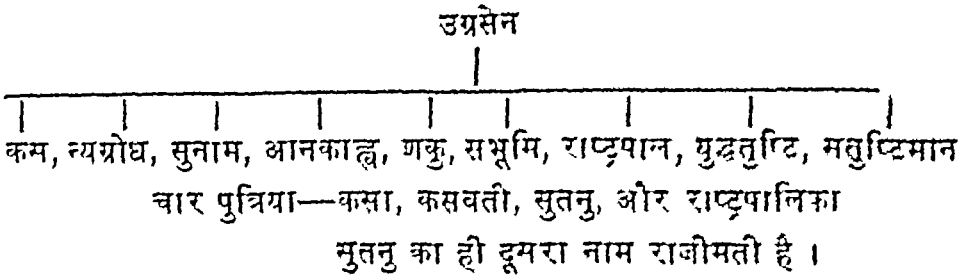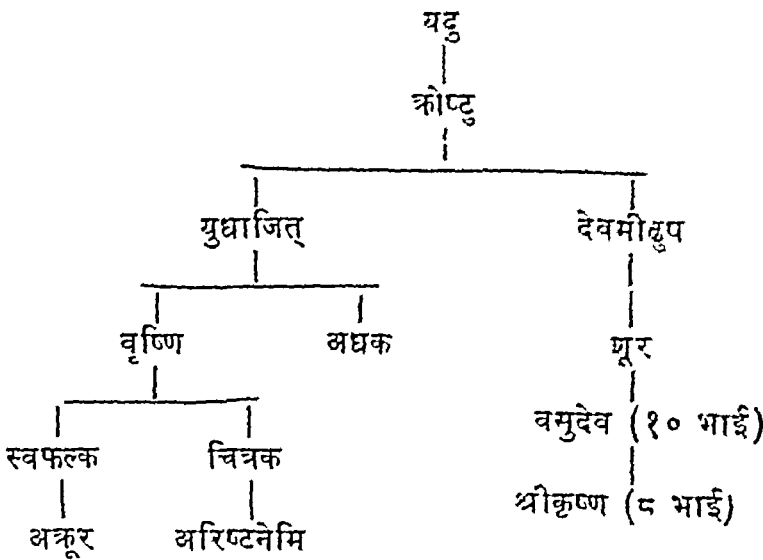
वैदिक हरिवंश[6] के अनुसार यादव वंश परिचय

१	यदु	६	रैवत
२	माधव	७	विश्वगर्भ
३	सत्वत	८	वसु
४	भीम	९	वसुदेव
५	अन्धक	१०	श्रीकृष्ण

---

५ विष्णुपुराण ४।१४।२०-२१

६ हरिवंश पर्व २, अध्याय ३७, श्लोक १२, और ४४ तथा हरिवंश, पर्व २, अध्याय ३८, श्लोक १ से ५२ तक

महाभारत के[७] अनुसार यादव वंश परिचय

१ यदु
२ क्रोष्टा
३ वृजिनिवान्
४ उपगु
५ चित्ररथ
६ शूर (लघु प्रभ)
७ वसुदेव
८ श्रीकृष्ण (वासुदेव)

महाभारत द्रोणपर्व[८] के अनुसार यादव वश की परम्परा

१ यदु
२ · दो या उसमे अधिक राजाओ का नामोल्लेख नही हुआ है।
३ देवमीढ
४ शूर
५ वसुदेव
६ श्रीकृष्ण

वैदिक परम्परा के पुराणो मे इनकी वशावली भिन्न-भिन्न प्रकार से दी गई है।

पूरे विस्तार के लिए अवलोकन करे पारजीटर एन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन पृ० १०४-१०७

जरासध के पुत्र

१ कालयवन[९]
२ सहदेव[१०]
३ द्रुमसेन
४ द्रुम
५ जलकेतु
६ चित्रकेतु
७ धनुर्धर
८ महीजय
९ भानु
१० काञ्चनरथ
११ दुर्धर
१२ गधमादन
१३ सिंहाक
१४ चित्रमाली
१५ महीपाल
१६ वृहद्ध्वज
१७ सुवीर
१८ आदित्यनाग
१९ सत्यसत्व
२० सुदर्शन

---

७. महाभारत अनुशासन पर्व अ० १४७, श्लोक २७-३२
८. महाभारत द्रोणपर्व अ० १४४ श्लोक ६-७
९. त्रिपष्टि के अनुसार जो अग्नि मे जलकर मरा।
१० जिसे कृष्ण ने मगध का चतुर्थ हिस्सा राज्य दिया था।

२१ धनपाल
२२ शतानीक
२३ महाशुक्र
२४ महावसु
२५ वीराख्य
२६ गङ्गदत्त
२७ प्रवर
२८ पार्थिव
२९ चित्राङ्गद
३० वसुगिरि
३१ श्रीमान्
३२ सिंहकटि
३३ स्फुट
३४ मेघनाद
३५ महानाद
३६ सिंहनाद
३७ वसुध्वज
३८ वज्रनाभ
३९ महावाहु
४० जितशत्रु
४१ पुरन्दर
४२ अजित
४३ अजितशत्रु
४४ देवानन्द
४५ शतद्रुत
४६ मन्दर
४७ हिमवान्
४८ विद्युत्केतु
४९ माली
५० कर्कोटक
५१ हृषीकेश
५२ देवदत्त
५३ धनजय
५४ सगर
५५ स्वर्णबाहु
५६ मघवान्
५७ अच्युत
५८ दर्जय
५९ दुर्मुख
६० वासुकि
६१ कम्बन्द
६२ त्रिशिरस्
६३ धारण
६४ माल्यवान्
६५ सभत्र
६६ महापद्म
६७ महानाग
६८ महासेन
६९ महाजय
७० वासव
७१ वरुण
७२ शतानीक
७३ भास्कर
७४ गरुत्मान्
७५ वेणुदारी
७६ वासुवेग
७७ शशिप्रभ
७८ वरुण
७९ आदित्यधर्मा
८० विष्णुस्वासी
८१ सहस्रदिक्
८२ केतुमाली
८३ महामाली
८४ चन्द्रदेव
८५ वृहद्वलि
८६ सहस्ररश्मि
८७ अर्चिष्मान्

(जैन ग्रन्थो के अनुसार)

परिशिष्ट ४

पारिभाषिक शब्द-कोश

अंग—तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट और गणधर द्वारा ग्रथित श्रुत ।

अकल्पनीय—सदोष, अग्राह्य

अकेवली—छद्मस्थ, केवलज्ञान के पूर्व की अवस्था ।

अघाती कर्म—आत्मा के ज्ञान आदि स्वाभाविक गुणो का घात न करने वाले कर्म । वे चार हैं—वेदनीय, आयुष्य नाम और गोत्र ।

अचित्त—निर्जीव पदार्थ

अचेलक—अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित

अणुव्रत—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का एकदेशीय त्याग ।

अट्ठम तप—तीन दिन का उपवास ।

अतिचार—'व्रत भग के लिए सामग्री एकत्रित करना या एक देश से व्रत का खण्डन करना ।

अतिशय—असाधारण विशेपताओ से भी अत्यधिक विशिष्टता ।

अनगार—(अपवाद रहित ग्रहण की हुई व्रतचर्या) । गृहरहित साधु

अध्यवसाय—विचार ।

अनशन—यावज्जीवन या परिमित काल के लिए तीन या चार प्रकार के आहार का त्याग करना ।

अन्तराय कर्म—जो कर्म उदय मे आने पर प्राप्त होने वाले लाभ आदि मे वाधा उपस्थित करते है

अपवर्तन—कर्मों की स्थिति एव अनुभाग-फलनिमित्तक शक्ति मे हानि।

अभिगम—श्रमण के स्थान मे प्रविष्ट होते ही श्रावक द्वारा आचरण करने योग्य पाच विषय ये हैं – (१) सचित्त द्रव्यो का त्याग (२) अचित्त द्रव्यो की मर्यादा करना, (३) उत्तरासग करना, (४) साधु दृष्टिगोचर होते ही करबद्ध होना। (५) मन को एकाग्र करना।

अभिग्रह—प्रतिज्ञा विशेष

अरिहन्त—राग-द्वेप रूप शत्रुओ को पराजित करने वाले सशरीर परमात्मा।

अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के विना केवल आत्मा के द्वारा रूपी द्रव्यो को जानना।

अवसर्पिणी काल—कालचक्र का वह विभाग जिसमे प्राणियो के सहनन और सस्थान क्रमश हीन होते जाते है। आयु और अवगाहना कम होती जाती है। उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुपाकार तथा पराक्रम का ह्रास होता है। इस समय मे पुद्‌गलो के वर्ण, गध, रस और स्पर्श भी हीन होते जाते है। शुभ भाव घटते है और अशुभ भाव वढते है। इसके छ विभाग हैं—१ सुपम-सुपम, २ सुपम, ३ सुषम-दुषम, ४ दु पम-सुषम, ५ दु षम, और ६ दु पम-दु षम।

असख्यप्रदेशी—वस्तु के अविभाज्य अश को प्रदेश कहते हैं। जिसमे ऐसे प्रदेशो की सख्या असख्य हो, वह असख्यप्रदेशी कहलाता है। प्रत्येक जीव असख्य प्रदेशी होता है।

आगार धर्म—गृहस्थधर्म (अपवाद सहित स्वीकृत व्रत चर्या)

आतापना—ग्रीष्म शीत आदि से शरीर को तापित करना।

आरा—काल विभाग

आर्तध्यान—प्रिय के वियोग और अप्रिय के सयोग मे चिंतित रहना।

आशातना—गुरुजनो पर मिथ्या आक्षेप करना, उनकी अवज्ञा करना।

आश्रव—कर्म को आकर्षित करने वाले आत्म-परिणाम। कर्मों के आगमन का द्वार

उत्सर्पिणी—कालचक्र का वह विभाग, जिसमे प्राणियो के सहनन और सस्थान क्रमश. अधिकाधिक शुभ होते जाते हैं, आयु और अवगाहना वढती जाती है तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम की वृद्धि

होती जाती है। इस समय मे प्राणियो की तरह पुद्गलो के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी क्रमश. शुभ होते जाते है।

उदीरणा—नियत समय के पहले ही कर्मो का प्रयत्नपूर्वक उदय मे लाना।

उपयोग—चेतना का व्यापार विशेप—ज्ञान और दर्शन।

उपांग—अगो के विपय को स्पष्ट करने वाले श्रुतकेवली या पूर्वधर आचार्यों द्वारा रचे गये आगम।

एक अहोरात्र प्रतिमा—साधु द्वारा चौविहार पष्टोपवास मे ग्राम के वाहर प्रलम्बभुज होकर कायोत्सर्ग करना।

एक रात्रि प्रतिमा—साधु द्वारा एक चौविहार अष्टम भक्त मे जिनमुद्रा (दोनो पैरो के वीच चार अगुल का अन्तर रखते हुए सम अवस्था मे खडे रहना) प्रलम्ब वाहु, अनिमिप नयन, एक पुद्गल-निरुद्ध दृष्टि और कुछ झुके हुए वदन से एक रात तक ग्रामादि के वाहर कायोत्सर्ग करना। विशिष्ट सहनन, धृति, महासत्व से युक्त भावितात्मा गुरु द्वारा अनुज्ञात होकर ही प्रस्तुत प्रतिमा को स्वीकार कर सकता है।

एकावली तप—विशेप अनुक्रम से किया जाने वाला एक प्रकार का तप। इस तप का क्रम यत्र के अनुसार चलता है। एक परिपाटी में एक वर्ष, दो महीने और दो दिन का समय लगता है। इसमे चार परिपाटी होती है। कुल समय चार वर्प, आठ महीने और दो दिन लगता है। प्रथम परिपाटी मे विकृति का वर्जन आवश्यक नही होता। दूसरी मे विकृति वर्जन, तीसरी मे लेप त्याग और चौथी मे आयविल आवश्यक होता है।

एक हजार आठ लक्षणो के धारक—तीर्थंकर के शरीर मे अर्थात् हाथ, पैर, वक्षस्थल तथा देह के अन्य अवयवो मे सूर्य, चन्द्र, श्रीवत्स स्वस्तिक, शख, चक्र, गदा, ध्वजा आदि शुभ चिह्न होते है। इन विविध चिह्नो की सख्या १००८ कही गई है।

औद्देशिक—परिव्राजक, श्रमण निर्ग्रन्थ आदि को देने के उद्देश्य से वनाया गया भोजन, वस्त्र अथवा मकान आदि।

औत्पत्तिकी बुद्धि—अदृष्ट, अश्रुत व अनालोचित पदार्थों को सहसा ग्रहण कर लेने वाली वुद्धि।

कर्म—आत्मा की सत् एव असत् प्रवृत्तियो के द्वारा आकृष्ट एव कर्म रूप मे परिणत होने वाले पुद्गल विशेप।

कल्प—विधि, मर्यादा, आचार।

कुत्रिकापण—तीनो लोको के सभी प्रकार के पदार्थ जहा पर प्राप्त होते हो उसे कुत्रिकापण कहते हैं। इस दुकान की विशेपता यह है कि जिस वस्तु का मूल्य साधारण व्यक्ति से पाच रुपया लिया जाता ह, इभ-श्रेष्ठी आदि से उसी का मूल्य एक हजार रुपया और चक्रवर्ती आदि से एक लाख रुपया लिया जाता है। दुकानदार किसी व्यतर विशेप को अपने अधीन कर लेता है। वही उनकी व्यवस्था करता है। कितनो का यह भी अभिमत है कि ये दुकाने वणिक रहित होती है। व्यन्तर ही इन दुकानो को चलाते है।

कर्म निर्जरा—कर्मों को नष्ट करने का प्रकार।

कर्बट—छोटी दीवार से परिवेष्टित शहर।

कर्म उदीरणा—जो कर्म सामान्यत भविष्य मे फल देने वाले है उन्हे तपादि द्वारा उसी समय उदय मे फलोन्मुख कर झाड देना।

कला—जैन शास्त्रो मे पुरुषो के लिए वहत्तर और स्त्रियो के लिए ६४ वताई गई हैं। देखिए, ऋषभदेव एक परिशीलन का परिशिष्ट—१-२

कषाय—क्रोध, मान, माया, और लोभ।

कुमारवास—कुवर रूप मे रहना।

केवलज्ञान-केवलदर्शन—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घनघाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त पदार्थों के भूत, भविष्यत् एव वर्तमानकाल के पर्यायो को हस्तामलकवत् जानना, केवलज्ञान है। इसी तरह उक्त पर्यायो को उक्त रूप से देखने की शक्ति का प्रकट होना 'केवल दर्शन' है। केवल का अर्थ अद्वितीय है। जो अद्वितीय केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक होते है, वे केवली, जिन, अर्हत् अरिहत, सर्वज्ञ सर्वज्ञदर्शी आदि कहलाते है।

कौतुक-मंगल—रात्रि मे आये हुए दुस्वप्नो के फल के निवारण हेतु तथा शुभ शकुन के लिए चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यो का तिलक आदि करना कौतुक है। सरसो दही आदि मागलिक वस्तुओ का प्रयोग मगल है।

क्षीर समुद्र—जम्बूद्वीप को आवेष्टित करने वाला पाँचवा समुद्र, जिसमे दीक्षा ग्रहण के समय तीर्थंकरो के लुचित-केश इन्द्र द्वारा विसर्जित किये जाते हैं।

खादिम—मेवा आदि खाद्य पदार्थ

खेड—जिम गाँव के चारो ओर धूली का प्राकार हो। अथवा नदी और पर्वतो से वेष्टित नगर।

गच्छ—श्रमणो का समुदाय, अथवा एक आचार्य का परिवार

गति—एक योनि को छोडकर दूसरी योनि मे जाना।

गण—समान आचार व्यवहार वाले साधुओ का समूह

गणधर—लोकोत्तर ज्ञान-दर्शन आदि गुणो के गण को धारण करने वाले, तीर्थंकरो के प्रधान शिष्य, जो उनकी वाणी सूत्र रूप मे सकलित करते है।

गाथापति—गृहपति—विशाल ऋद्धिसम्पन्न परिवार का स्वामी। वह व्यक्ति जिसके यहा पर कृपि और व्यवसाय ये दोनो कार्य होते है।

गुणरत्न सवत्सर तप—जिस तप से विशेप निर्जरा होती है। या जिस तप मे निर्जरा रूप विशेप रत्नो से वार्पिक समय वीतता है। इस क्रम मे तपोदिन एक वर्प से कुछ अधिक होते है, अत. वह सवत्सर कहलाता है। इसके क्रम मे प्रथम मास मे एकान्तर उपवास, द्वितीय मास मे वेला, इस प्रकार क्रमश वढते हुए सोलह माम मे सोलह-सोलह का तप किया जाता है। तप. काल मे दिन मे उत्कुटुकासन से सूर्याभिमुख होकर आतापना ली जाती है, और रात्रि मे वीरासन से वस्त्र रहित रहा जाता है। तप मे २३ मास ७ दिन लगते है और इस अवधि मे ७३ दिन पारणे के होते है।

ग्यारह अंग—अग सूत्र ग्यारह है जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) आचाराग, (२) सूत्रकृताङ्ग (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग, (५) भगवती, (६) ज्ञाताधर्म कथा (७) उपासक दशाग, (८) अन्तकृत्दशाग, (९) अनुत्तरोपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाक।

गोचरी—जैन श्रमणो का अनेक घरो से विधिवत् आहार गवेषण भिक्षाटन, माधुकरी।

गोत्रकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव उच्चनीच शब्दो से अभिहित किया जाय। जाति, कुल, वल, रूप, तपस्या, श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य प्रभृति का अहकार न करना, उच्च गोत्र कर्म के वंध का निमित्त वनता है और इनका अहकार करने से नीच गोत्र कर्म वध होता है।

घातीकर्म—जैन दृष्टि से ससार परिभ्रमण का हेतु कर्म है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और योग के निमित्त से जब आत्म-प्रदेशो मे कम्पन होता है तब जिस क्षेत्र मे आत्म-प्रदेश होते हैं, उसी प्रदेश मे रहे हुए अनन्तानन्त कर्मयोग्य (कार्मण जाति के) पुद्‌गल आत्म-प्रदेशो के साथ दूध-पानीवत् सम्वन्धित हो जाते है। उन पुद्‌गलो को कर्म कहा जाता है। कर्म के घाती और अघाती ये दो भेद है। आत्मा के ज्ञान आदि स्वाभाविक गुणो

का घात करने वाले कर्म घाती कहलाते हैं। वे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, चार हैं।

चतुर्गति—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति।

चतुर्दशपूर्व—उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद अस्ति-नास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्म-प्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान प्रवाद, विद्या प्रवाद, अवध्यपूर्व, प्राणायुप्रवाद, क्रिया विशाल, लोकबिन्दुसार ये चौदह पूर्व दृष्टिवाद नामक बारहवे अग के अन्तर्गत हैं।

चतुरगिनी सेना—हाथी, घोडे, रथ और पैदलो की सेना।

चतुर्थ भक्त—उपवास, चार प्रकार के आहार का त्याग।

चतुष्क-चत्वर—जहा पर चार मार्ग मिलते हो।

चारण ऋद्धिधर—जघाचारण व विद्याचारण मुनिराज।

जघाचारण लब्धि—यह लब्धि अष्टम तप करने वाले मुनि को प्राप्त होती है। जघा से सम्बन्धित किसी एक व्यापार से तिर्यक् दिशा की एक ही उडान मे वह तेरहवे रुचकवर द्वीप तक पहुँच सकता है। पुन लौटता हुआ वह एक कदम आठवे नन्दीश्वर द्वीप पर रखकर दूसरे कदम मे जम्बूद्वीप के उसी स्थान पर पहुँच सकता है जहाँ से वह चला था। यदि वह उडान ऊर्ध्व दिशा की ओर हो तो एक ही छलाग मे वह मेरु पर्वत के पाण्डुक उद्यान तक पहुँच सकता है। और पुन लौटते समय एक कदम नन्दनवन मे रखकर दूसरे कदम मे जहा से चला था वहा पहुँच सकता है।

विद्याचारण लब्धि—यह दिव्य शक्ति षष्ठभक्त (बेला) तप करने वाले भिक्षु को प्राप्त हो सकती है। श्रुत-विहित ईषत् उपष्टम्भ से दो उडान मे आठवे नन्दीश्वर द्वीप तक पहुँचा जा सकता है। प्रथम उडान मे मानुषोत्तर पर्वत तक जाया जा सकता है। पुन लौटते समय एक ही उडान मे मूल स्थान पर आया जा सकता है। इसी प्रकार ऊर्ध्व दिशा मे दो उडान मे मेरु तक और पुन लौटते समय एक ही उडान मे प्रस्थान-स्थान तक पहुँचा जा सकता है।

चारित्र—आत्म-विशुद्धि के लिए किया जाने वाला सम्यक् आचरण

च्यवन—मरण, देवगति का आयुष्य पूर्ण कर अन्य गति मे जाना।

च्यवकर—च्युत होकर, देवलोक से निकलकर। जैन साहित्य मे यह शब्द उन आत्माओ के लिए प्रयुक्त होता है जो देव आयुष्य पूर्ण कर मानवादि अन्य योनि मे जन्म धारण करती है।

चौबीसी—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल मे होने वाले चौबीस तीर्थंकर।

छट्ठ—(षष्ट) दो दिन का उपवास; वेला।

छद्मस्थ—घातीकर्म के उदय को छद्म कहते है। इस अवस्था मे स्थित आत्मा छद्मस्थ कहलाती है। जहा तक केवलज्ञान की उपलब्धि नही होती है वहा तक वह छद्मस्थ कहलाती है।

जातिस्मरण ज्ञान—पूर्वजन्म की स्मृति कराने वाला ज्ञान। इस ज्ञान के वल से व्यक्ति एक से लेकर नौ पूर्व-जन्मो को जान सकता है। एक मान्यता के अनुसार नौ सौ भव भी जान सकता है।

जिन—राग-द्वेष रूप शत्रुओ को जीतने वाली आत्मा। (अर्हत् तीर्थंकर आदि इसके अनेक पर्याय हैं।)

जिनकल्पिक—गच्छ से पृथक् होकर उत्कृष्ट चारित्र-साधना के लिए प्रयत्नशील साधक। उसका आचार जिन-तीर्थंकरो के आचार के समान कठोर होता है, अत. इसे जिनकल्प कहा जाता है। इसमे साधक जगल आदि एकान्त शान्त स्थान मे अकेला रहता है। रोग आदि होने पर उसके उपशमन के लिए प्रयत्न नही करता। शीत, ग्रीष्म आदि प्राकृतिक कष्टो से विचलित नही होता। देव, मानव और तिर्यंच आदि के उपसर्गो से भयभीत होकर अपना मार्ग नही वदलता। अभिग्रहपूर्वक भिक्षा लेता है और अहर्निश ध्यान तथा कायोत्सर्ग मे लीन रहता है। यह साधना विशेष सहननयुक्त साधक के द्वारा विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न होने के अनन्तर ही की जा सकती है।

जिनमार्ग—वीतराग द्वारा प्ररुपित धर्म

ज्ञान—जानना सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के सामान्य धर्मो को गौण कर केवल विशेष धर्मों को ग्रहण करना।

ज्ञानावरणीय—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म।

तत्त्व—हार्द, पदार्थ।

तीर्थंकर—तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले आप्त पुरुष।

तीर्थंकर नामकर्म—जिस नाम कर्म के उदय से जीव तीर्थंकर रूप मे उत्पन्न होता है।

तीर्थ—जिससे ससार समुद्रतिरा जा सके। तीर्थंकरो का उपदेश, उनको धारण करने वाले गणधर व ज्ञान, दर्शन, चारित्र को धारण करने वाले साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ को भी तीर्थ कहा जाता है।

दर्शन—सामान्य विशेपात्मक पदार्थ के विशेष धर्मो को गौणकर केवल सामान्य धर्मो को ग्रहण करना। दर्शन का दूसरा अर्थ फिलोसफी है।

दशार्ह—समुद्रविजय, आदि दस यादवो को दशार्ह कहा जाता है। उनके समूह को दशार्ह चक्र भी कहा जाता है।

दिक्कुमारिया—तीर्थकरो का प्रसूति कर्म करने वाली देविया। उनकी सख्या ५६ है। इनके आवास विभिन्न होते है। आठ अधोलोक मे, आठ ऊर्ध्वलोक मे-मेरु पर्वत पर, आठ पूर्व रुचकाद्रि पर, आठ दक्षिण रुचकाद्रि पर, आठ पश्चिम रुचकाद्रि पर आठ उत्तर रुचकाद्रि पर, चार विदिशा के रुचक पर्वत पर, और चार रुचक द्वीप पर रहती है।

देवानुप्रिय—आदर व स्नेहपूर्ण सम्बोधन।

देवदूष्यवस्त्र—देव द्वारा प्रदत्त वस्त्र।

द्वादशागी—तीर्थकरो की वाणी का गणधरो द्वारा ग्रन्थ रूप मे होने वाला सकलन अग कहलाता है। वे सख्या मे बारह होते है, अत वह सम्पूर्ण सकलन द्वादशाङ्गी कहलाता है। पुरुष के शरीर मे जैसे दो पैर, दो जघाएँ, दो ऊरु, दो गात्रार्द्ध (पार्श्व) दो बाहु एव गर्दन और एक मस्तक होता है उसी प्रकार श्रुत पुरुष के भी बारह अग है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ आचाराग, २ सूत्रकृताङ्ग ३ स्थानाङ्ग ४ समवायाङ्ग, ५ विवाह प्रज्ञप्ति, ६ ज्ञाता धर्म कथाग ७ उपासक दशाग, ८ अन्तकृतदशा ९ अनुत्तरोपपातिक, १० प्रश्न-व्याकरण ११ विपाक, १२ दृष्टिवाद।

धर्मयान—धार्मिक कार्यो के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला वाहन।

नरक—अधोलोक के वे स्थान जहा घोर-पापाचरण करने वाले जीव अपने पापो का फल भोगने के लिए उत्पन्न होते है। नरक सात है—

(१) रत्नप्रभा—रत्नो की सी आभा से युक्त।

(२) शर्कराप्रभा—भाले बरछी आदि से भी अधिक तीक्ष्ण ककरो से परिपूर्ण।

(३) वालुकाप्रभा—भडभूजे की भाड की उष्ण वालू से भी अधिक उष्ण वालू।

(४) पकप्रभा—रक्त मास और मवाद जैसे कीचड से व्याप्त।

(५) धूमप्रभा—राई, मिर्च के धुए से भी अधिक खारे धुए से परिपूर्ण।

(६) तम प्रभा—घोर अधकार से परिपूर्ण

(७) महातम प्रभा—घोरातिघोर अधकार से परिपूर्ण

निकाचित—गाढ, जिन कर्मो का फल बध के अनुसार निश्चित ही भोगा जाता है।

निदान—फलप्राप्ति की आकाक्षा—यह एक प्रकार का शल्य है। राजा देवता, आदि की ऋद्धि को देखकर या सुनकर मन मे यह अध्यवसाय करना कि मेरे द्वारा आचीर्ण ब्रह्मचर्य, तप आदि अनुष्ठानो के फलस्वरूप मुझे भी ये ऋद्धिया प्राप्त हो।

निर्जरा—कर्म-मल का एक देश से क्षय होना।

नौ योजन—३. कोस। चार कोस का एक योजन होता है।

पच मुष्टिक लुंचन—मस्तक को पाँच भागो मे विभक्त कर हाथो से वालो को उखाडना।

पाँच दिव्य—तीर्थंकर या विशिष्ट महापुरुषो के द्वारा आहार ग्रहण करने के समय प्रकट होने वाली पाँच विभूतियाँ।

१ विविध रत्न, २ वस्त्र, ३ एव फूलो की वर्षा, ४ गन्धोदक वर्षा, ५ देवताओ के द्वारा दिव्य घोष।

परीषह—साधु जीवन मे होने वाले विविध प्रकार के शारीरिक कष्ट

पर्याय—पदार्थों का वदलता हुआ रूप।

पल्योपम—एक दिन से सात दिन की आयु वाले उत्तर कुरु मे उत्पन्न हुए यौगलिको के केशो के असख्य खण्ड कर एक योजन प्रमाण गहरा, लम्वा व चौडा कुआ ठसाठस भरा जाय। वह इतना दवादवाकर भरा जाए कि जिससे उसे अग्नि जला न सके। पानी अन्दर प्रवेश न कर सके और चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सेना भी उस पर से गुजर जाय तो भी जो अश मात्र भी लचक न जाय। सौ-सौ वर्ष के पश्चात् उस कुए मे से एक-एक केश-खण्ड निकाला जाय। जितने समय मे वह कुआ खाली होता है, उतने समय को पल्योपम कहते हैं।

पादोपगमन—अनशन का वह प्रकार, जिसमे श्रमणो द्वारा दूसरो की सेवा का और स्वय की चेष्टाओ का त्याग कर पादप-वृक्ष की कटी हुई डाली की तरह निश्चेष्ट होकर रहना। जिसमे चारो प्रकार के आहार का त्याग होता है। यह निर्हारिम और अनिर्हारिम रूप से दो प्रकार का है।

(१) निर्हारिम—जो साधु उपाश्रय मे पादोपगमन अनशन करते हैं, मृत्यूपरान्त उनके शव को अग्नि सस्कार के लिए उपाश्रय से वाहर लाया जाता है अत वह देह त्याग निर्हारिम कहलाता है। निर्हार का अर्थ है—वाहर निकालना।

(२) अनिर्हारिम—जो साधु अरण्य मे हो पादपोपगमपूर्वक देहत्याग करते हैं, उनका शव सस्कार के लिए कही पर भी बाहर नही ले जाया जाता, अत वह देह-त्याग अनिर्हारिम कहलाता है।

पाप—अशुभ कृत्य। उपचार से पाप के कारण भी पाप कहलाते है।

पौषध—एक अहोरात्र के लिए चारो प्रकार के आहार और पाप पूर्ण, प्रवृत्तियो का त्याग करना।

प्रत्याख्यान—त्याग करना।

प्रायश्चित्त—साधना मे लगे हुए दूषण की विशुद्धि के लिए हृदय से पश्चात्ताप करना। उसके दस प्रकार है —

(१) आलोचना—लगे हुए दोष गुरु या रत्नाधिक के समक्ष यथावत् निवेदन करना।

(२) प्रतिक्रमण—अशुभ योग से शुभ योग मे आना, लगे हुए दोपो के लिए साधक द्वारा पश्चात्ताप करते हुए कहना, मेरा पाप मिथ्या हो।

(३) तदुभय—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो।

(४) विवेक—अनजान मे आधाकर्म आदि दोप से युक्त आहार आ जाय तो ज्ञात होते ही उसे उपभोग मे न लेकर त्याग देना।

(५) कायोत्सर्ग—एकाग्र होकर शरीर की ममता का त्याग करना।

(६) तप—अनशन आदि बारह प्रकार की तपश्चर्या।

(७) छेद दीक्षा पर्याय को कम करना। इस प्रायश्चित्त के अनुसार जितना समय कम किया जाता है उस अवधि मे दीक्षित छोटे साधु दीक्षा पर्याय मे उस दोषी साधु से बडे एव वन्दनीय हो जाते हैं।

(८) मूल—मूलव्रत भग होने पर पुनर्दीक्षा

(९) अनवस्थाप्य तप विशेप के पश्चात् पुनर्दीक्षा।

(१०) पारञ्चितक—सघ-बहिष्कृत साधु द्वारा एक अवधि विशेप तक साधु-वेश परिवर्तित कर जन-जन के बीच अपनी आत्मनिन्दा करना।

प्रीतिदान—शुभ सवाद लाने वाले कर्मकर को दिया जाने वाला दान।

प्रतिलाभ—लाभान्वित करना, बहराना

पौषधशाला—धर्म-ध्यान एव पोषध करने का स्थान विशेप।

बध—आत्मा के साथ कर्म पुद्गलो का घनिष्ट सम्बन्ध।

बलदेव—वासुदेव के ज्येष्ठ विमातृ बन्धु। हरएक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल मे नौ-नौ होते है। कृष्ण के भ्राता बलदेव नौवे बलदेव थे, इनका नाम बलराम था। बलदेव की माता चार स्वप्न देखती है वासुदेव की मृत्यु के

पश्चात् दीक्षा लेकर घोर तपस्या करके आत्म-साधना करते है। कुछ बलदेव मोक्षगामी होते है, पर ये कृष्ण के भ्राता बलदेव स्वर्ग मे गये।

बेला—दो दिन का उपवास, षष्ठभक्त।

ब्रह्मलोक—पाँचवा स्वर्ग

भक्त प्रत्याख्यान—जीवन पर्यन्त तीन व चार प्रकार के आहार का त्याग करना।

भव्य—मोक्ष प्राप्ति की योग्यता वाला जीव।

मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

मनः पर्यव—मनोवर्गणा के अनुसार मानसिक अवस्थाओ का ज्ञान।

महाप्रतिमा—साधु के अभिग्रह विशेष को महाप्रतिमा कहते है। प्रतिमा १२ प्रकार की है। बारहवी प्रतिमा एक रात्रि की होती है। जिसमे शमशान आदि मे जाकर एकाग्रभाव से आत्मचिन्तन करना होता है।

मासखमण—एक महीने का उपवास।

माण्डलिक राजा—एक मण्डल का अधिपति राजा।

मानसिक भाव—मनोगत विचार

मुक्त—सम्पूर्ण कर्म क्षय कर जन्ममरण से रहित होना।

मेरुपर्वत की चूलिका—जम्बूद्वीप के मध्य भाग मे एक लाख योजन समुन्नत व स्वर्ण कान्तिमय यह पर्वत है। इसी पर्वत पर चालीस योजन की चोटी है। इसी पर्वत पर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस, और पाण्डुक नामक चार वन है। भद्रशाल वन धरती की बराबरी पर पर्वत को घेरे हुए है। पाँच सौ योजन ऊपर नन्दनवन है, जहा क्रीडा करने के लिए देवता भी आया करते हैं। बासठ हजार पाँच सौ योजन ऊपर सौमनस वन है। चूलिका के चारो ओर फैला हुआ पाण्डुक वन है। उसी वन मे स्वर्णमय चार शिलाएँ है जिन पर तीर्थंकरो के जन्म महोत्सव होते हैं।

मोक्ष—सर्वथा कर्म-क्षय के अनन्तर आत्मा का अपने स्वरूप मे अधिष्ठान।

योग—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति।

योजन—चार कोश।

रजोहरण—जैन श्रमणो का उपकरण विशेष जो भूमि आदि प्रमार्जन के काम मे आता है।

लब्धि—तपश्चर्या आदि से प्राप्त होने वाली विशिष्ट शक्ति।

लब्धिधर—विशिष्ट शक्तिसम्पन्न

लेश्या—योग वर्गणा के अन्तर्गत पुद्गलो की सहायता से होने वाला आत्म-परिणाम ।

लोक—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गल और जीव की अवस्थिति जहा हो वह आकाशखण्ड ।

लौकान्तिक—पाँचवे ब्रह्मदेवलोक मे छह प्रतर हैं । मकानो मे जैसे मजिल होती है वैसे ही स्वर्गों मे प्रतर होते है । तीसरे अरिष्ट प्रतर के पास दक्षिण दिशा मे त्रसनाडी के भीतर चार दिशाओ मे और चार विदिशाओ मे आठ कृष्ण राजिया है । लौकान्तिक देवो के वहा नौ विमान है । आठ विमान आठ कृष्ण राजियो मे हैं । और एक मध्यभाग मे है । उनके नाम इस प्रकार हैं —(१) अर्ची, (२) अर्चिमाल, (३) वैराचन, (४) प्रभकर (५) चन्द्राभ, (६) सूर्याभ, (७) शुक्राभ, (८) सुप्रतिष्ठ (९) रिष्टाभ (मध्यवर्ती) । एकभवावतारी होने के कारण ये लोकान्तिक कहलाते है । विषय-वासना से ये प्राय मुक्त रहते हैं । अत इन्हे देवर्षि भी कहते हैं । प्राचीन परम्परा के अनुसार तीर्थंकरो के दीक्षा के समय ये उद्बोधन देने हेतु आते है ।

वर्षीदान—तीर्थंकरो द्वारा एक वर्ष तक प्रतिदिन दिया जाने वाला दान ।

वासुदेव—पूर्वभव मे किये गये निदान के अनुसार नरक या स्वर्ग से आकर वासुदेव के रूप मे अवतरित होते हैं । प्रत्येक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल मे ये नौ-नौ होते हैं । उनके गर्भ मे आने पर माता सात स्वप्न देखती है । शरीर का वर्ण कृष्ण होता है । भरतक्षेत्र के तीन खण्डो के अधिपति होते है । प्रतिवासुदेव को मारकर ही त्रिखण्डाधिपति होते है । इनके सात रत्न होते हैं— (१) सुदर्शन चक्र, (२) अमोघ खड्ग, (३) कौमोदकी गदा (४) धनुष्य अमोघवाण, (५) गरुडध्वजरथ, (६) पुष्पमाला, (७) कौस्तुभमणि ।

विभग ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के विना केवल आत्मा के द्वारा रूपीद्रव्यो को जानना अवधिज्ञान है । मिथ्यात्वी का यही ज्ञान विभग कहलाता है ।

विराधक—ग्रहण किये हुए व्रतो की आराधना नही करने वाला, या विपरीत आचरण करने वाला अथवा अपने दुष्कृत्यो का प्रायश्चित्त करने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाने वाला ।

वैमानिक—देवो का एक प्रकार

वैयावृत्ति—आचार्य, उपाध्याय, शैक्ष, ग्लान, तपस्वी, स्थविर साधर्मिक, कुल, गण, और सघ की आहार आदि से सेवा करना ।

वैश्रवण—कुवेर

शय्यातर—साधु जिसके मकान मे रहते हैं, वह शय्यातर कहलाता है।

शल्य—जिससे पीडा हो। वह तीन प्रकार का है।

(१) मायाशल्य—कपट भाव रखना।

(२) निदानशल्य—राजा या देवता आदि की ऋद्धि को निहार कर मन मे इस प्रकार दृढ निश्चय करना कि मुझे भी मेरे तप जप का फल हो तो इस प्रकार की ऋद्धिया प्राप्त हो।

(३) मिथ्या दर्शन शल्य— विपरीत श्रद्धा का होना।

शिक्षाव्रत – पुन पुन. सेवन करने योग्य अभ्यास प्रधान व्रत, वे चार है—(१) सामायिक व्रत, (२) देशावकाशिक व्रत, (३) पौपधोपवासव्रत, (४) अतिथि सविभाग व्रत।

शुक्लध्यान—निर्मल प्रणिधान उत्कृष्ट समाधि अवस्था। इसके चार प्रकार है—(१) पृथक्त्व वितर्क सविचार, (२) एकत्व वितर्क अविचार (३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपति (४) समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति।

शेषकाल—वर्पा-चातुर्मास के अतिरिक्त का समय।

शैलेशी अवस्था—चौदहवें गुणस्थान मे जव मन, वचन, और काय योग का निरोध हो जाता है तव उसे शैलेशी अवस्था कहते है। इसमे ध्यान की पराकाष्ठा के कारण मेरु सदृश निष्प्रकम्पता व निश्चलता आती हे।

श्रुतज्ञान—शब्द सकेत के आधार पर होने वाला ज्ञान।

श्रुतभक्ति—श्रुतज्ञान का अनवद्यप्रचार प्रसार तथा उसके प्रति होने वाली जन-अरुचि को दूर करना।

संघ—गण के समुदाय को सघ कहते है।

संथारा—अन्तिम समय मे आहार आदि का परित्याग करना।

सलेखना—शारीरिक तथा मानसिक एकाग्रता से कपाय आदि का शमन करते हुए तपस्या करना।

सवर—कर्म वन्ध करने वाले आत्म परिणामो का निरोध।

सस्थान—शरीर का आकाश।

समचतुरस्र—पुरुप जव सुखासन (पालथी लगाकर) से वैठता है तो उसके दोनो घुटनो का और दोनो वाहुमूल-स्कधो का अन्तर (दाया घुटना वाया स्कध, वाया घुटना दाया स्कध) इन चारो का वरावर अन्तर रहे वह समुचतुरस्र सस्थान कहलाता है। भगवती सूत्र की टीका मे अभयदेव ने लिखा है—जो आकार सामुद्रिक आदि लक्षण शास्त्रो के अनुसार सर्वथा

योग्य हो वह समचतुरस्र कहलाता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती वासुदेव और बलदेव का यही सस्थान होता है।

सहनन—शरीर की अस्थियो का बधन।

समय—काल का सूक्ष्मतम अविभाज्य अश।

समवसरण—तीर्थंकर परिषद् अथवा वह स्थान जहा पर तीर्थंकर का उपदेश होता है।

समाचारी—साधुओ को अवश्य करणीय क्रियाए व व्यवहार।

समाधिमरण—श्रुत और चारित्र मे स्थित रहते हुए निर्मोह भाव से मृत्यु। अर्थात् राग द्वेष से रहित होकर समभाव पूर्वक पण्डित मरण।

समिति—सयम के अनुकूल प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। वे पांच है

(१) **ईर्या**—अहिंसा के पालन के निमित्त युग परिमाण भूमि को देखते हुए तथा स्वाध्याय व इन्द्रियो के विषयो का वर्जन करते हुए चलना।

(२) **भाषा**—भाषा-दोषो का परिहार करते हुए पाप रहित एव सत्य, हित, मित और असदिग्ध वचन बोलना।

(३) **एषणा**—गवेषणा, ग्रहण और ग्रास सम्बन्धी एषणा के दोषो का परिहार करते हुए आहार पानी आदि औधिक उपधि और शय्या, पाट औपग्रहिक उपधि का अन्वेषण करना।

(४) **आदान निक्षेप**—वस्त्र, पात्र, प्रभृति उपकरणो को सावधानीपूर्वक लेना व रखना।

(५) **उत्सर्ग**—मल-मूत्र, खेल, थूक, कफ, आदि का विधि पूर्वक पूर्वदृष्ट एव प्रमार्जित निर्जीव भूमि पर विसर्जन करना।

सम्यक्त्व—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा

सम्यक्त्वी—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा से सम्पन्न

सागरोपम—पल्योपम की दस कोटाकोटी से एक सागरोपम होता है। पल्योपम देखे। उपमाकाल विशेष।

सावद्य—पापसहित

सिद्ध—कर्मों का निर्मूल नाश कर जन्म-मरण से मुक्त हुई आत्मा।

सिद्धि—सर्व कर्मों के क्षय से प्राप्त होने वाली अवस्था, चरम लक्ष्य की प्राप्ति।

स्थविर—वृद्ध स्थविर तीन प्रकार के होते हैं—१ प्रव्रज्यास्थविर—जिन्हे प्रव्रजित हुए बीस वर्ष हो गये हो, २ वयस्थविर—जिनका वय साठ वर्ष का हो गया हो (३) श्रुत स्थविर—जिन्होने स्थानाङ्ग समवायाग आदि का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया हो।

परिशिष्ट ५

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्रन्थ सूची

●

अन्तकृद्दशांग —आचार्य श्री हस्तीमल जी म०

अन्तगड़ दशा —जैन सस्कृति रक्षक सघ, सैलाना

अष्टाध्यायी —पाणिनी,

अतीत का अनावरण —मुनि श्री नथमल जी

अरिष्टनेमि चरित — श्री रत्नप्रभ सूरि

अरिष्टनेमि चरित —श्री विजय गणी

अर्हत् अरिष्टनेमि और वासुदेव कृष्ण —श्री चन्द रामपुरीया,

अथर्ववेद

अमयस्वामी चरित्र —मुनि रत्नसूरि रचित अनु० भानुचन्द्रविजय

अमर कोष —निर्णय सागर प्रेस, वम्बई

अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ७, —राजेन्द्र सूरि, रतलाम

अभिधान चिन्तामणि (कोप) —हेमचन्द्राचार्य रचित

अंगुत्तर निकाय —स० भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा

अन्नल्स आफ दी भण्डारकर रिचर्स इन्स्टीट्यूट पत्रिका —जिल्द २३

अरिष्टनेमि —धीरजलाल टोकरशी शाह

आवश्यक निर्युक्ति —आचार्य भद्रबाहु

आवश्यक निर्युक्ति-मलयगिरिवृत्ति सहित —आगमोदय० वम्बई

आवश्यक चूर्णि जिनदास गणी —ऋषभदेव केसरीमल संस्था, रतलाम
आचारांग —प्रसिद्धवक्ता सौभाग्यमल जी म०
आदि पुराण —आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
आदि पुराण मे प्रतिपादित भारत —नेमिचन्द्र जैन, वर्णी ग्रन्थमाला वाराणसी
आवश्यक निर्युक्ति दीपिका —माणिक्यशेखर, सूरत
इसिभासियं —श्री सुधर्मा ज्ञान मन्दिर, कान्दावाडी बम्बई
इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली
इण्डियन एन्टीक्वेरी, सन् १९२५, सप्लिमेण्ट
इण्डिया अजड्रिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्ट्स ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म
उत्तरपुराण —आचार्य गुणभद्र, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
उत्तराध्ययन —श्वे० तेरापंथी महासभा, कलकत्ता १
उत्तराध्ययन . एक समीक्षात्मक अध्ययन – मुनि नथमल जी
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति —वेतालवादी शान्ति सूरि
उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति
उत्तरप्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास —प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी
उपदेशमालाप्रकरण (पुष्पमाला)— मलधारी हेमचन्द्र प्रकाशक-ऋषभदेवजी केशरीमल, संस्था इन्दौर
ऋषभदेव : एक परिशीलन —देवेन्द्र मुनि, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा
ऋग्वेद
ऐतरेय ब्राह्मण
ऐतरेय आरण्यक
अेरीयन —चिनोक आवृत्ति
एथनिक सेटिलमेन्ट इन् एन्शियन्ट इण्डिया
ऐंटरयेंट ज्यागरफी आफ इण्डिया
औपपातिक सूत्र
ओघनिर्युक्ति, श्रीमती वृत्ति सहित, द्वि० भद्रबाहु प्र० आगमोदय समिति
कल्पसूत्र —आगमप्रभाकर मुनि पुण्यविजयजी सम्पादित
कल्पसूत्र —देवेन्द्र मुनि सम्पादित, श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान, गढ सिवाना
कल्पसूत्र कल्प सुबोधिका टीका —उपाध्याय विनय विजय जी

कल्पसूत्र-कल्पलता टीका —समय सुन्दरजी
कल्पसूत्र-कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी —राजेन्द्र सूरि
कालक कथा संग्रह
कथाकोष प्रकरण —जिनेश्वर सूरि
कथा सरित्सागर भूमिका —डा० वासुदेव शरण अग्रवाल
कठोपनिषद्
कण्ह चरित —देवेन्द्रसूरि
कुमारपाल पडिवोह —सोमप्रभ सूरि
कृष्णावतार (भाग ४), —कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी
कृष्ण चरित —चिन्तामणि विनायक वेद
कल्याण का कृष्णाङ्क —गीताप्रेस गोरखपुर
कौटिल्य अर्थशास्त्र
काव्यमीमांसा
खारवेल शिलालेख
खूब कवितावली —पूज्य खूबचन्दजी म०, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा
गरुड़ पुराण
गर्गसंहिता
गजेटियर ऑफ आगरा
गयसुकुमाल रास
गीता रहस्य —वालगगाधर तिलक
गिलगित मैनुस्क्रिप्ट ऑव द विनयपिटक
गीता —गीता प्रेस गोरखपुर
चउप्पन्न महापुरिस चरिय —आचार्य शीलाङ्क
चोप्पन्न महापुरुषोनां चरितो अनुवाद —आ० हेमसागर
चार तीर्थंकर —प० सुखलाल जी सघवी
चौरासी वैष्णव वार्ता
छान्दोग्योपनिषद्
जातक कथा —भदन्त आनन्द कौसल्यायन
जैन साहित्य का इतिहास पूर्व : पीठिका —प० कैलाशचन्द्र जी
जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज —डा० जगदीशचन्द्र जैन
जैन साहित्य और इतिहास —नाथूराम प्रेमी, हिन्दीग्रन्थरत्नाकर, वम्बई
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (सटीक)

जातक (प्रथम खण्ड) —ईशानचन्द्र घोष
जातक मानचित्र —भदन्त आनन्द कौशल्यायन
ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनॉमिक स्टडीज इन दी महाभारत
जनरल आँफ रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग १
ज्यागरैफिकल डिक्शनरी आव ऐंशेंट ऐंड मिडिवल इण्डिया
—नन्दलाल दे रचित (ल्युजाक ऐ ड कम्पनी, लन्दन)
जातक पालि (त्रिपिटक) —भिक्षु जगदीश काश्यप,
जयवाणी —आचार्य जयमल जी म०, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा
जैन दर्शन और संस्कृति परिषद् शोधपत्र —जैन श्वे० तेरापथी महासभा-कलकत्ता
जिनवाणी (पत्रिका) —सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर
जवाहर किरणावली —आचार्य श्री जवाहरलाल जी म०
डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, २ भाग, —जी० पी० मलालशेखर-सम्पादित (लन्दन)
तैत्तिरीयारण्यक
थावच्चापुत्र रास —मुनि जीवराज जी
थेरगाथा —(हिन्दी अनुवाद) अ० भिक्षुधर्मरत्न एम० ए महाबोधिसभा सारनाथ, बनारस
थेरीगाथा —(हिन्दी अनुवाद) अ० भरतसिंह उपाध्याय सस्तासाहित्य मडल, दिल्ली
थेरीगाथा —बम्बई विश्वविद्यालय सस्करण
दशाश्रुतस्कंध— —आत्माराम जी महाराज,
दीघनिकाय —नालन्दा महाविहार से
दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता
द्विसधान या राघवपाण्डवीय महाकाव्य —धनञ्जय
देवी भागवत
दरबार —अनकचन्द्र भायालाल नो लेख
दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ ईण्डिया
दशवैकालिक
नन्दीसूत्र —श्री पुण्यविजय जी म० सम्पादित
नन्दीसूत्र —श्री हस्तीमल जी म०
नन्दीसूत्र —मलयगिरिवृत्ति, आगमोदय समिति

नेमवाणी —(नेमिचन्द्र जी म०) प० प्रवर पुष्कर मुनि जी म० सम्पादित
नेमिनाथ चरित्र —विजयसेन सूरि
नेमिनाथ अने राजुल —वैद्यकवि दुर्लभश्यामध्रुव, (गुजराती)
नेमिनाथ चरित्र —सकलित-उपाध्याय कीर्तिराज, मुनिहर्षविजय विरचित
नेमिनाथ चरित्र —हरिसेन
नेमिनाथ चरित्र —तिलकाचार्य
नेमिनिर्वाण काव्य —वाग्भट्ट
नेमिनाथ रास —सुमति गणी
नेमिनाह चरिउ —द्वि० हरिभद्र सूरि, लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर अहमदावाद-९
नेमिनाथ चरित —प० काशीनाथ जैन
नेम-राजुल (गुजराती) —जया वहन ठाकोर
नारद पुराण
निशीथ चूर्णि —उपा० अमर मुनि स०, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा
नेमिरगरत्नाकर छंद —कवि लावण्यसमय रचित, डा० शिवलाल जेसलपुरा, ला० द० भा० वि० अहमदावाद-९
नेमिचरित —विक्रम कवि रचित, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय वम्वई
निरियावलिका
पाली-इगलिश-डिक्शनरी —रीस डेविड्स तथा विलीयम स्टेड सम्पादित (पाली टेक्स सोसाइटी, लदन)
पाण्डव पुराण —शुभचन्द्राचार्य, सोलापुर से
प्रभास पुराण
प्रज्ञापना —पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित
प्रवचन सारोद्धार —नेमिचन्दसूरि, प्र० देवचन्द लालभाई फड
प्राचीन तीर्थमाला सग्रह —आचार्य विजयधर्मसूरि सम्पादित
पाण्डव चरित्र (महाकाव्यम्) — मलधारी देवप्रभसूरि विरचित —मेसर्स ए० एम० एण्ड कम्पनी पालीताणा (सौराष्ट्र)
पाण्डव चरित्र —अनुवादक भीमसिंह माणेक, सन् १९७८
प्रद्युम्न चरितम् —महासेनाचार्य विरचितम्, माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति वम्वई
प्रद्युम्न चरित्र —उपाध्याय रत्नचन्द्रगणी, भापातर—

चारित्र-विजय, जैन पत्र आफिस बम्बई
प्रद्युम्न चरित्र महाकाव्यम् —शान्तिचन्द्र उपाध्याय, अन्तेवासी रत्नचन्द्र गणी वि० वि० महाशमाना मण्डली
पाण्डव चरित्र महाकाव्यम् —शुभवर्धनगणी विरचित बालाभाई मूलचन्द अहमदाबाद
प्रभावक चरित्र —प्रभाचन्द्र
प्रश्न व्याकरण
प्राकृत साहित्य का इतिहास —डा० जगदीश चन्द जैन, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १
पाण्डव पुराण —भट्टारक श्री भूषण
पाली साहित्य का इतिहास —भरतसिंह उपाध्याय
पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ
परमानन्द सागर
प्रेमावतार —जयभिक्खु, गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय अहमदाबाद
पाण्डव यशोरसायन —मरुधर केसरी मिश्रीमलजी म० आचार्य—रघुनाथ ज्ञान भण्डार, सोजत सिटी
पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियंट इण्डिया
बौद्ध धर्म दर्शन —आचार्य नरेन्द्र देव
बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
बुद्धिष्ट इण्डिया
वृहत्कल्प भाष्य वृत्ति —आत्मानन्द जैन सभा भावनगर
ब्रह्मवैवर्त पुराण
ब्रह्माण्ड पुराण
बौद्धायन सूत्र
भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन —देवेन्द्र मुनि शास्त्री
भगवान् श्री नेमिनाथ —ले० राजहस
भव-भावना —मलधारी हेमचन्द्रसूरि प्र० ऋषभदेव केशरीमल जी जैनश्वेताम्बर सस्था रतलाम
भगवती सूत्र —प० वीरपुत्र सम्पादित सस्कृति रक्षक सघ, सैलाना
भगवती सूत्र —प० बेचरदास दोशी सम्पादित
भारतीय सस्कृति और अहिसा —धर्मानन्द कोसाम्बी
भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति —देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धारक फड

भगवान् महावीर नी धर्म कथाओ —प० वेचरदास दोशी गुजरात विद्यापीठ अहमदावाद

भविष्यपुराण

भारतीय इतिहास की रूपरेखा —प० जयचन्द्र विद्यालकार

भगवान् नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण —दिवाकर चौथालजो म०, दि० दिव्य ज्योति कार्यालय व्यावर

भारतीय वाड्मय में राधा —प० वलदेव उपाध्याय

भागवत माहात्म्य

महाभारत —(सचित्र) महावीर प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर

महाभारत कथा —चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली

महाभारत —गीताप्रेस गोरखपुर

मज्झिमनिकाय —पाली प्रकाशन मण्डल नालन्दा विहार

महावंश —(हिन्दी अनुवाद) भदन्त आनन्द कौशल्यायन

मिलिन्द पञ्हो —वम्बई विश्वविद्यालय सस्करण

मुनिसुव्रत काव्य —अर्हद्दास

मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ —मु० ह० स्मृति प्रकाशन व्यावर (राजस्थान)

मुनि मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ —व्यावर, राजस्थान

मथुरा माहात्म्य

मोक्षमार्ग प्रकाश प० टोडरमलजी

मथुरा —ए डिस्ट्रिक्ट मेमोअर

महाभारत —श्री शुक्लचन्द जी म०

यजुर्वेद

राधावल्लभ सम्प्रदाय —सिद्धान्त और साहित्य

राधिकोपनिषद

रामायण

लोक प्रकाश —आगमोदय समिति

लंकावतार सूत्र

लघु त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र —मेघविजय, प्र० प० मफतलाल जवेरचन्द खेतरपालनी पोल अहमदावाद

वैष्णविज्म-शैविज्म —डा० भण्डारकर

विशेषावश्यक भाष्य — यशोविजय ग्रन्थमाला
विविध तीर्थंकल्प —आचार्य जिनप्रभ सूरि स० जिनविजय गणी
वसुदेव हिण्डी (१-२) —संघदासगणी, पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित आत्मानन्द सभा भावनगर
वसुदेव हिण्डी अनु० डा० भोगीलाल साण्डेसरा
वायु पुराण
व्यवहार सूत्र सभाष्य —स० मुनि माणेक, वकील त्रिकमदास अगरचन्द
वासुदेव श्रीकृष्ण अने जैन साहित्य —प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया
व्रज का सांस्कृतिक इतिहास —प्रभुदयाल मित्तल
विपाक सूत्र —पूज्य घासीलाल जी म०
वृहत्कल्प भाष्य वृत्ति —मुनि पुण्यविजय जी सम्पादित
वाल्मिकी रामायण
समवायाङ्ग —मुनि कन्हैयालाल 'कमल' सम्पादित
सूरदास —आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
सांख्य कारिका —ईश्वरचन्द्र चौखम्बा विद्याभवन काशी
सामवेद
स्कन्ध पुराण
सूत्रकृताङ्ग वृत्ति —आचार्य शीलाङ्क
संस्कृत जैन साहित्य नो इतिहास —भाग-१-२, प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया
सूर सागर —नागरी प्रचारिणी सभा
सूर और उनका साहित्य —डा० हरवंशलाल शर्मा
सौराष्ट्र नुं इतिहास —शम्भुप्रसाद हरप्रसाद देसाई
सुत्तनिपात की भूमिका —धर्म रक्षित
समवायाङ्ग —जैनधर्म प्रचारक सभा भावनगर
सुत्तागमे —धर्मोपदेष्टा फूलचन्द जी म०
स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया
स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विरीज
संस्कृत साहित्य का इतिहास —वाचस्पति गैरोला
स्टडीज इन दी ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया
सुमंगलविलासिनी

समराइच्च कहा
शिवपुराण
शिशुपालवध महाकाव्यम् —महाकवि माघ, चौखम्बा-विद्याभवन वाराणसी
शतपथब्राह्मण
शक्ति तत्र
शत्रुंजय महात्म्य
शुक्ल यजुर्वेद
हिन्दी साहित्य मे राधा —द्वारकाप्रसाद
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डा० रामकुमार वर्मा
हरिवंशपुराण भाग-१-२ —जिनसेनाचार्य माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई
हरिवंशपुराण —भारतीय ज्ञानपीठ काशी
हरिवंशपुराण (वैदिक)
हिन्दु मिलन मन्दिर (पत्रिका) —सूरत
हरिवंशपुराण —भट्टारक सकलकीर्ति
हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (मूल) —आचार्य हेमचन्द्र
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र —(गुजराती अनु०) जैन धर्म प्रचारक सभा भावनगर
ज्ञाता सूत्र
श्रमण भगवान् महावीर —प० कल्याण विजयगणी
श्रीमद्भगवद् गीता

परिशिष्ट ६

लेखक की महत्त्वपूर्ण कृतियां

●

१ ऋषभदेवः एक परिशीलन (शोध प्रबन्ध) मूल्य ३)०० रु०

२ धर्म और दर्शन (निबन्ध) मूल्य ४)०० रु०

दोनो के प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामडी आगरा—२

३ भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन

(शोध प्रबन्ध) मूल्य ५)०० रु०

प्रकाशक—प० मुनि श्रीमल प्रकाशन

जैन साधना सदन २५९ नानापेठ पूना—२

४ साहित्य और संस्कृति (निबन्ध) मूल्य १०)०० रु०

प्रकाशक—भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बोक्स १०८-कचौडी गली, वाराणसी—१

५ चिन्तन की चाँदनी (उद्बोधक चिन्तनसूत्र) मूल्य ३)०० रु०

६ अनुभूति के आलोक मे (मौलिक चिन्तन सूत्र) मूल्य ४)०० रु०

दोनो के प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (राज०)

७ सस्कृति के अंचल मे (निबन्ध) मूल्य १)५० रु०

प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल; जोधपुर

८ कल्प सूत्र मूल्य . राजसस्करण २०, रु० साधारण० १६)

प्रकाशक—श्री अमर जैन आगम शोध सस्थान

गढ सिवाना, जिला बाडमेर (राजस्थान)

९ **अनुभव रत्न कणिका** (गुजराती, चिन्तन सूत्र) मूल्य २) रु०
सन्मति साहित्य प्रकाशन व स्थानकवासी जैन सघ
उपाश्रयलेन घाटकोपर बम्बई—८४

१० **चिन्तन की चांदनी** (गुजराती भाषा मे)
प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भडार, गाधी मार्ग (अहमदावाद)

११ **फूल और पराग** (कहानियाँ) मूल्य १)५० रु०

१२ **खिलती कलियाँ मुस्कराते फूल** (लघु रूपक) मूल्य ३)५० रु०

१३ **भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन**
मूल्य १०) रु०

१४ **बोलते चित्र** (शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कहानिया) मूल्य १)५० रु०

१५ **बुद्धि के चमत्कार** मूल्य १)५० रु०

१६ **प्रतिध्वनि** (विचारोत्तेजक रूपक) ३)५० रु०
सभी पुस्तको के प्रकाशक—
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर, राज०)

सम्पादित

१७ **जिन्दगी की मुस्कान** (प्रवचन सग्रह) मूल्य १)४० रु०

१८ **जिन्दगी की लहरें** ,, ,, मूल्य २)५० रु०

१९ **साधना का राजमार्ग** ,, ,, मूल्य २)५० रु०

२० **रामराज** (राजस्थानी प्रवचन) मूल्य १)०० रु०

२१ **मिनख पणा रो मोल** (राज० प्रवचन) मूल्य १)०० रु०
सभी पुस्तको के प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल, जोधपुर

२२ **ओकार एक अनुचिन्तन** मूल्य १)०० रु०

२३ **नेमवाणी** (कविवर प० नेमिचन्द जी म० की
कविताओ का सकलन) मूल्य २)५० रु०
प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा उदयपुर, राज०

२४ **जिन्दगी नो आनन्द** (गुजराती प्रवचन) मूल्य० ३)२५ रु०

२५ **जीवन नो झंकार** ,, ,, मूल्य ४)७५ रु०

२६ **सफल जीवन** ,, ,, मूल्य ३)७५ रु०

२७ **स्वाध्याय** ,, ,, मूल्य ०)५० रु०

२८ **धर्म अने संस्कृति** (गुजराती निबन्ध मूल्य ४)०० रु०
प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भण्डार गाधी मार्ग, अहमदाबाद—१

शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

२९ कल्पसूत्र (गुजराती सस्करण)
३० विचार रश्मियाँ
३१ चिन्तन के क्षण
३२ महावीर जीवन दर्शन
३३ महावीर साधना दर्शन
३४ महावीर तत्त्व दर्शन
३५ सास्कृतिक सौन्दर्य
३६ आगम मथन
३७ अन्तगडदशा सूत्र
३८ अनेकान्तवाद · एक मीमासा
३९ सस्कृति रा सुर
४० अणविध्या मोती
४१ जैन लोक कथाएँ (नौ भाग)
४२ जैन धर्म . एक परिचय
४३ ज्ञाता सूत्र : एक परिचय
४४ महासती सोहनकु वर जी : व्यक्तित्व और कृतित्व

मुनि श्री के सभी प्रकाशन इस पते पर प्राप्त हो सकेंगे।

श्रीलक्ष्मी पुस्तक भण्डार
गांधी मार्ग, अहमदाबाद-१

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	१३	वदिक	वैदिक
२०	१२	चतन्य	चैतन्य
४३	२५	शत्र	शत्रु
४६	१६	अनगदेव	अनगदेव
५२	१४	प्रस्तिथ	प्रस्थित
१५६	६	म्पदा	सम्पदा
१५६	७	१०००६६ श्रमणोपासक	१६६००० श्रमणोपासक
१५६	८	३०००३६ श्रमणोपासिकाएँ	३३६००० श्रमणोपासिकाए
१५८	७	कल्पसूत्र १०००६६ श्रमणोपासक	१६६००० श्रमणोपासक
१५८	८	कल्पसूत्र ३०००३६ श्रमणोपासिकाए	३३६००० श्रमणोपासिका
१६५	१०	मे दुवारा नेमिनाह चरिउ का उल्लेख हो गया है।	
१७७	८	वादेसुव	वासुदेव
१८१	१३	कृष्ण पाणिग्रहण	कृष्ण के पाणिग्रहण
२६२	१४	गजा	राजा
२६४	१८	यद्ध	युद्ध
२६६	२६	श्रयस्कर	श्रेयस्कर

इनके अतिरिक्त भी कुछ प्रूफ्स तथा टाइप आदि कटिग होने से अशुद्धिया रह गई हैं उन्हे विज्ञ सुधार लें। हेमचन्द्र के नाम के पूर्व मल्लधारी छपा है वहा मलधारो पढ़े ।